

नागा लोक साहित्य का अनुशीलन
(जेलियांग जनजाति के विशेष संदर्भ में)
Naga Lok Sahitya Ka Anusheelan
(Zeliang Janjati Ke Vishesh Sandarbh Men)

हिंदी विषय में पीएच.डी. उपाधि हेतु आंशिक पूर्ति के रूप में नागालैंड विश्वविद्यालय
के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध

(Thesis submitted to Nagaland University in partial fulfillment of
requirements for award of Ph.D. degree in Hindi)

द्वारा / By

थुन्बुई/ Thunbui

पंजीकरण संख्या –PhD. HIN-00200 (23/08/2018)

Regn. No.- PhD. HIN-000200 (w.e.f. 23/08/2018)

शोध निर्देशक/ Under the supervision of
डा. मुन्नी चौधरी/ Dr. Munni Chaudhary



हिंदी विभाग
मानविकी एवं शिक्षा संकाय
नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा परिसर, मेरिमा
Department of Hindi
School of Humanities and Education
Nagaland University, Kohima Campus, Meriema

DECLARATION

I, Thunbui, hereby declare that the subject matter of my thesis entitled '**Naga Lok-Sahitya Ka Anushilan : Zeliang Janjati Ke Vishesh Sandarbh Men** (नागा लोक-साहित्य का अनुशीलन : जेलियांग जनजाति के विशेष संदर्भ में)' is the bonafide record of work done by me under the supervision of Dr. Munni Chaudhary and that the content of the thesis did not form the basis of the award of any previous degree to me or to the best of my knowledge to anybody else, and that the thesis or any part of it, has not been submitted by me for any other research degree, fellowship, associateship etc. in any other university or institute. This is being submitted to the Nagaland University for the degree of Doctor of Philosophy in Hindi.



Dated - 01-11-2023

Thunbui

Regn. No-PhD.HIN-00200 (w.e.f. 23/08/2018)

Countersigned by:



Supervisor
Dr. Munni Chaudhary
Dr. Munni Chaudhary
Associate Professor
Nagaland University
Department of Hindi
Kohima Campus, Meriema



Head of Department
Dr. Munni Chaudhary
Head
Department of Hindi
Nagaland University
Kohima Campus, Meriema



नागालैंड विश्वविद्यालय
(संसद के अधिनियम, 35/1989 द्वारा स्थापित एक केंद्रीय विश्वविद्यालय)
(A Central University established by the act of Parliament, 35/1989)

Nagaland University

हिंदी विभाग (Hindi Department)

कोहिमा परिसर, मेरिमा, कोहिमा- 797004, नागालैंड, भारत
Kohima Campus, Meriema, Kohima-797004, Nagaland

NU-HIN-.....

The 1st Nov. 2023

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis titled '**Naga Lok-Sahitya Ka Anushilan : Zeliang Janjati Ke Vishesh Sandarbh Men** (नागा लोक-साहित्य का अनुशीलन : जेलियांग जनजाति के विशेष संदर्भ में)' is the bonafide record of research work done by Thunbui, Regn. No-Ph.D.HIN-00200 (w.e.f. 23/08/2018), Department of Hindi, Nagaland University, Kohima Campus, Meriema during 2018-2023, submitted to the Nagaland University in partial fulfilment of the requirements for award of the degree of Doctor of Philosophy in Hindi. This thesis has not previously formed the basis for the award of any degree, diploma, associateship, fellowship or other title and that the thesis represents independent and original work on the part of the scholar under my supervision. This is again certified that the research has been undertaken as per UGC Regulations May 2016 (amended) and the scholar has fulfilled the criteria mentioned in the University Ordinances for submission of the thesis. Plagiarism test of the thesis has been conducted and 1 % of similarity has been detected which is permissible under the UGC regulations 2018.

Dated- the 1st Nov. 2023
Kohima


SUPERVISOR

Dr. Munni Chaudhary
Department of Hindi

N.U., Kohima Campus, Meriema
Kohima-797004, Nagaland,
Mob- +919871691727

Email- munni@nagalanduniversity.ac.in

Dr. Munni Chaudhary
Associate Professor
Nagaland University
Department of Hindi
Kohima Campus, Meriema



नागालैंड विश्वविद्यालय
(संसद के अधिनियम, 35/1989 द्वारा स्थापित एक केंद्रीय विश्वविद्यालय)
(A Central University established by the act of Parliament, 35/1989)

हिंदी विभाग (Hindi Department)

कोहिमा परिसर, मेरिमा, कोहिमा- 797004, नागालैंड, भारत
Kohima Campus, Meriema, Kohima-797004, Nagaland

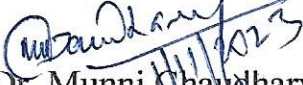
PLAGIARISM TEST CERTIFICATE

Name of the Research Scholar	Thunbui
Ph.D. Registration No.	Ph.D. HIN-000200 (w.e.f. 23/08/2018)
Title of Ph.D. Dissertation	Naga Lok Sahitya Ka Anushilan : Zeliang Janjati Ke Vishesh Sandarbh Men
Name and Institutional Address of the Supervisor	Dr. Munni Chaudhary, Department of Hindi, Nagaland University, Kohima Campus, Meriema.
Name of the Department and School	Department of Hindi, School of Humanities and Education
Date of Submission	16-10-2023
Date of Plagiarism Check	16-10-2023
Percentage of similarity detected by the DrillBit software	1%

I hereby declare/certify that the Ph.D. Dissertation submitted by me is complete in all respect, as per the guidelines of Nagaland University for this purpose. I also certify that the thesis (soft copy) has been checked for plagiarism using DrillBit similarity check software. It is also certified that the contents of the electronic version of the thesis are the same as the final hardcopy of the thesis/dissertation. Copy of the Report generated by the DrillBit software is also enclosed.

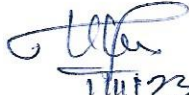
Date: 01/11/2023

Place: Kohima


Dr. Munni Chaudhary
(Supervisor)

Signature with seal

Dr. Munni Chaudhary
Associate Professor
Nagaland University
Department of Hindi
Kohima Campus, Meriema


16/10/23

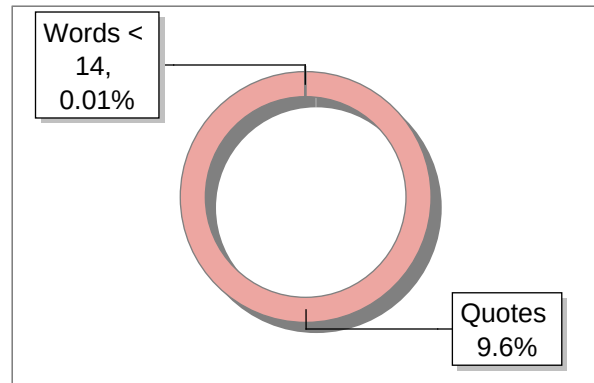
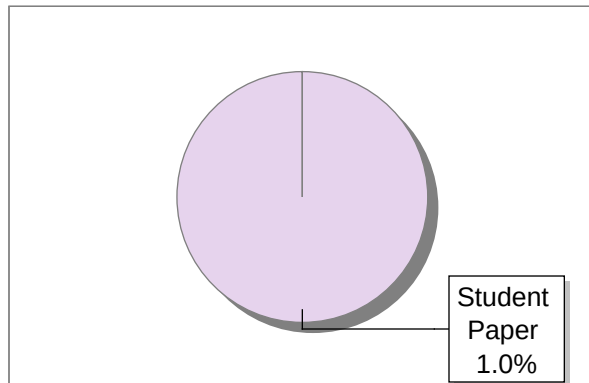
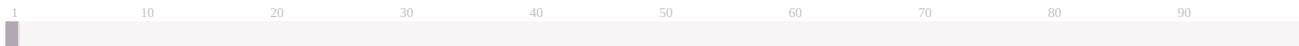
Thunbui
Research Scholar

Submission Information

Author Name	Thunbui
Title	Naga Loksahitya ka Anushilan (Zeliang Janjati k..
Paper/Submission ID	1029258
Submitted by	munni@nagalanduniversity.ac.in
Submission Date	2023-10-16 18:03:07
Total Pages	289
Document type	Thesis

Result Information

Similarity **1 %**



Exclude Information

Quotes	Excluded
References/Bibliography	Excluded
Sources: Less than 14 Words Similarity	Excluded
Excluded Source	0 %
Excluded Phrases	Not Excluded

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File





DrillBit Similarity Report

1		1	A	A-Satisfactory (0-10%) B-Upgrade (11-40%) C-Poor (41-60%) D-Unacceptable (61-100%)	
SIMILARITY %		MATCHED SOURCES		GRADE	
LOCATION	MATCHED DOMAIN			%	SOURCE TYPE
1	REPOSITORY - Submitted to Nagaland University on 2023-10-16 17-47			1	Student Paper

अनुक्रम

शीर्षक	पृष्ठ संख्या
भूमिका	i - iii
शोध-प्रबंध सार	1 - 8
अध्याय - एक	
अवधारणात्मक विश्लेषण	9 - 34
अध्याय - दो	
नागा जनजाति विषयक अध्ययन	35 - 64
अध्याय - तीन	
लोकसाहित्य में नागालैंड का जनजातीय जीवन	65 - 105
अध्याय - चार	
जेलियांग जनजाति – समाज और संस्कृति	106 - 148
अध्याय - पाँच	
जेलियांग जनजाति - लोक गीत एवं नृत्य	149 - 212
अध्याय - छह	
जेलियांग जनजाति - लोक कथा तथा लोकोक्तियाँ	213 - 274
उपसंहार	275 - 299
परिशिष्ट	300 - 306

भूमिका

नागा-लोक की निर्मिति का आधार लोक-जीवन, उसकी संस्कृति, तथा उसका साहित्य है। इनके अभाव में लोक की कल्पना नहीं की जा सकती परंतु जीवन-व्यापार के व्यावहारिक अनुभवों के आधार पर निर्मित जीवन-मूल्यों का परित्याग करके तथाकथित सभ्य-समाज की धार्मिक एवं सामाजिक गुंथियों में उलझने के बाद इस स्वच्छंद जीवन का परिदृश्य ही बदलता नज़र आ रहा है। यही कारण है कि नागा समाज में जो सादगीपन, नैतिकता, स्वाभिमान और उदात्त भाव पीढ़ियों से जीवन के अंग बने हुए थे, लुप्तप्राय से हो गए हैं। आज संपूर्ण नागा समाज किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में है। यदि लोक-जीवन के इन गुणों को बनाए रखना है तो इन्हें स्वयं को बाह्य प्रभावों से बचाते हुए अपने जीवन-मूल्यों, संस्कृति, साहित्य तथा परंपराओं का अनुपालन करते हुए विकास के अन्य आयामों की ओर बढ़ना होगा, तभी ये अपनी उस अस्मिता को बचाने तथा पल्लवन करने में सक्षम होंगे जिनके कारण उनकी विशिष्ट पहचान है।

प्रस्तुत लोक साहित्य-सर्वेक्षण में जेलियांग लोक साहित्य के माध्यम से नागा लोक साहित्य के अनुशीलन की लोक परंपरा को विप्लेषित किया गया है, जिसमें विषय संबद्ध कुछ पुस्तकें हैं जिनके अध्ययन से महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी प्राप्त हुई है। प्रो. गांग्मुमै कामै ने अपनी पुस्तक 'जादोनांग ए मिस्टिक नागा रिबेल' में नागा समाज के ऐतिहासिक विकास को रेखांकित किया है। पांच खंडों में विभक्त इस पुस्तक में लेखक ने नागा समाज के इतिहास को वृहत्तर परिप्रेक्ष्य में लेते हुए कम्बीरोन गांव के मनीषी जादोनांग की जीवनी के माध्यम से नागा समाज के लोक जीवन, धार्मिक प्रवृत्ति एवं सांस्कृतिक तथ्यों को उजागर किया है। उन्हीं की दूसरी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ जेलियांगरोंग नागा' में जेलियांग जनजाति के प्रागैतिहासिक काल से बीसवीं सदी तक के सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास क्रम को ऐतिहासिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने लोकगीतों और कथाओं को मिथकीय आधार देते हुए लोक में प्रचलित धारणाओं को अभूतपूर्व ढंग से पुष्ट किया है। रिचर्ड हालेंग ने अपनी पुस्तक 'द नागा रैपोर्ट' में नागा जनजातियों के उद्भव, उनके प्रवर्जन, सभ्यता के विकास तथा सांस्कृतिक परंपराओं एवं रीति-रिवाजों का वर्णन किया है, जिनके माध्यम से नागा लोक जीवन को समझने में सहायता मिली है। उर्सुला ग्राहम बावर ने अपनी पुस्तक 'नागा पथ' में जेलियांग क्षेत्र के लैसोंग नामक गाँव में वास के दौरान उस क्षेत्र के लोक-जीवन के अध्ययन को व्यवस्थित क्रम में संजोया है। उन्होंने एक मानव-शास्त्री के रूप में लोक का सूक्ष्म अध्ययन करते हुए उन सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों का उद्घाटन किया है, जिन पर जन-सामान्य का ध्यान प्रायः नहीं जाता है। डॉ. एच. बरेह ने 'गज़ेतिर

ऑफ़ इंडिया, नागालैंड, कोहिमा जिला' में नागा समाज, उनके लौकिक जीवन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक त्योहारों को उनकी उपादेयता के साथ उद्घाटित किया है। साथ ही इनकी धार्मिक आस्था के संदर्भ में यह कहा गया है कि ईसाइयत के आने के पूर्व लगभग सभी नागा जनजातियाँ प्रकृति-पूजक थे और प्रकृति के प्रत्येक रूप में ये किसी न किसी अदृश्य शक्ति की उपस्थिति मानते थे।

इनके अतिरिक्त जेलियांग लोक-गीतों के संकलन के रूप में जेलियांगरोंग हेराका एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित 'हेराकामे लेउ', जेलियांगरोंग पौपेचेंग के तत्वावधान में हेरिटेज फाउंडेशन, गुवाहाटी द्वारा प्रकाशित 'पौपई लुइ ख्वांग' एवं डॉ. तसिले एन. जेलियांग द्वारा संकलित 'लियांगमै लुइ' तथा लोक-कथाओं के संग्रह के रूप में डॉ. तसिले एन. जेलियांग के द्वारा लिपिबद्ध 'न्दा राचम', किपेइल्वा हंग्क्या के द्वारा शब्दबद्ध 'न्दामचू रसम ञाक' और इग्यनेंग दइमे के द्वारा संकलित- 'जेमे फोकटेल्स एंड नर्सरी राइम्स' कुछ ऐसी पुस्तकें हैं, जिनमें जेलियांग लोक-कथाओं के विविध रूप प्रस्तुत हुए हैं। इस शोध में इन्हीं संग्रहों को आधार बनाकर लोक-गीतों एवं कथाओं का अध्ययन-विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तुत शोध संबंधी तथ्य प्राथमिक और द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों से प्राप्त किया गया है। साथ ही इसमें ऐतिहासिक विधि को आधार बनाकर प्राप्त स्रोतों पर विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक एवं वैज्ञानिक विधि का प्रयोग करते हुए लोक साहित्य के विविध अंगों का अध्ययन किया गया है। इस विधि के माध्यम से नागा; विशेष रूप से जेलियांग लोक-साहित्य का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक मूल्यांकन का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्राथमिक स्रोत के रूप में पांडुलिपि (हस्तलिपि), लोक में प्रचलित लोक-गीतों, लोक-कथाओं, समसामयिक इतिहासकारों, स्थानीय लोगों के द्वारा संकलित तथ्यात्मक एवं साहित्यिक पुस्तकों और सामाजिक-सांस्कृतिक किंवदंतियों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोत के अंतर्गत इस शोध-प्रबंध में भिन्न-भिन्न क्षेत्रीय लोक-साहित्य यथा- पूर्वोत्तर भारत के अन्य जनजातियों के लोक-साहित्य एवं भारत के अन्य भागों में लोक-साहित्य पर किए गए शोधात्मक प्रबंध आदि से सहायता ली गई है। इसके अतिरिक्त इंटरनेट पर प्रकाशित लेख, लोक-गीतों के ऑडियो एवं विडियो तथा अन्य सामग्रियों के अध्ययन एवं विश्लेषण से इस शोध-प्रबंध को पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

इस शोध कार्य को आरंभ करते ही कोविद महामारी के कारण इसे अपेक्षित समय पर पूरा करने में कुछ रुकावटें आईं। पर महामारी के समाप्त होते-होते विश्वविद्यालय के द्वारा नए अध्यापकों की नियुक्ति के साथ मुझे डॉ. मुन्नी चौधरी जी के रूप में नए शोध-निर्देशक का मार्ग-दर्शन प्राप्त हुआ। उन्हीं के मार्ग-दर्शन से ही इस शोध-प्रबंध को महज डेढ़ वर्ष में पूरा करने का मुझे प्रोत्साहन मिला।

एक तो महामारी और दूसरा, पिछले दो वर्षों से शोध-निर्देशक के अभाव में हतोत्साहित होकर मैंने इस कार्य को स्थगित कर देने का मन बना लिया था, परंतु मेरे नए शोध-निर्देशक महोदय ने जिस तत्परता के साथ मेरा हौसला बढ़ाते हुए, जिस प्रकार इस कार्य को अत्यल्प समय में संपन्न कराया है, उसके लिए मैं सदैव उनका आभारी रहूँगा।

हिंदी विभाग के ही प्राध्यापक गण डॉ. अनुज कुमार तथा डॉ. बृजेश कुमार शर्मा के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने समय-समय पर अपने बहुमूल्य सुझावों के माध्यम से मार्ग-दर्शन देकर इस शोध कार्य को संपन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

अंग्रेजी विभाग के प्रो. निगमानंद दास के प्रति मैं अत्यंत विनम्रता के साथ अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य के लिए मेरे पंजीकरण के बाद से सदा ही अपना स्नेह बनाए रखा तथा शोध-प्रबंध लेखन के अंतिम छोर पर इसे सही स्वरूप प्रदान करने के लिए सभी दस्तावेज उपलब्ध कराए।

इस शोध-प्रबंध कार्य को पूर्ण करने में जिन्होंने परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से मेरी सहायता की है, उन सभी के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ।

अंत में उस ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनकी कृपा से ही इस शोध-प्रबंध के रूप में मैं अपने कुछ विचारों को मूर्त-रूप प्रदान करने की स्थिति तक पहुँच सका हूँ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में यदि टंकण संबंधी कोई त्रुटि रह गई हो, तो उसके लिए मैं सभी विद्वत्जनों से क्षमा-याचना करता हूँ। इस प्रकार आप सभी विद्वानों के समक्ष यह शोध-प्रबंध परीक्षार्थ प्रस्तुत है।

धुन्बुई

शोध-प्रबंध सार

‘नागा लोक साहित्य का अनुशीलन’ शीर्षक के अंतर्गत नागा जनजातियों के लोक साहित्य में अभिव्यक्ति लोक जीवन की परंपराओं के अध्ययन से यह जानने का प्रयास किया गया है कि ‘नागा’ नाम से अभिहित जनजातियों के इस समुच्चय में ऐसी कौन सी बातें हैं, जिनके कारण इन्हें इस नाम के अंतर्गत एक सूत्र में पिरोकर रखा गया है। इस शोध कार्य को आरंभ करते हुए यह उद्देश्य निश्चित किया गया था कि लोक साहित्य के अध्ययन में विभिन्न अनुशासनों की उपादेयता को किस प्रकार स्थापित किया जाए। इसके साथ ही यह भी प्रयास किया गया है कि नागा लोक साहित्य के विश्लेषण से समाज में उसकी लोक ग्राह्यता को बनाए रखते हुए, उसके विविध विधाओं को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया जाए। यहाँ विशेष रूप से जेलियांग जनजातीय लोक साहित्य के अध्ययन एवं विश्लेषण के माध्यम से नागा जनजातीय समूह की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को रेखांकित करते हुए उनकी लोक सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है। उपर्युक्त उद्देश्यों को लेकर शोध कार्य को संपन्न करते हुए इस प्रश्न के उत्तर को भी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है कि लोक साहित्य का अध्ययन जनजातीय समाज की सांस्कृतिक अस्तित्व को बचाए रखने में किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता है। साथ ही इस पर भी विचार किया गया है कि लोक साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण के माध्यम से जनजातीय मनोभाषिक तत्वों को उद्घाटित करते हुए, हाशिए के लोगों के जीवन मूल्यों को संरक्षित किया जाए।

अध्याय एक – अवधारणात्मक अध्ययन :

नागालैंड पूर्वोत्तर भारत का एक छोटा-सा राज्य है, जिसका क्षेत्रफल लगभग साढ़े सोलह हज़ार वर्ग किमी है। यह राज्य पूर्व में म्यांमार, पश्चिम में असम, उत्तर में असम व अरुणाचल प्रदेश तथा दक्षिण में मणिपुर से घिरा हुआ है। इसका अधिकांश क्षेत्र पहाड़ियों व घाटियों के रूप में है। वर्तमान में राज्य की जनसंख्या लगभग बीस लाख है। यहां की चौदह प्रमुख नागा जनजातियां- अंगामी, आओ, चाखेसंग, चांग, ख्यम्युंडन, कोन्याक, लोथा, फोम, पोचुरी, रेंगमा, सांगतम, सुमी, यिम्खुंग (पूर्व में यिम्चुंगर) और जेलियांग हैं। सन 2022 में नागालैंड सरकार द्वारा ‘तिखिर’ को एक नई जनजाति के रूप में मान्यता दिए जाने के बाद पंजीकृत नागा जनजातियों की संख्या अब पंद्रह हो गई है। कछारी, कुकी, गारो एवं गोरखा अन्य जनजातियाँ हैं, जो नागालैंड राज्य की पंजीकृत जनजातियाँ हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से एक छोटा राज्य होते हुए भी प्राकृतिक संसाधनों एवं मानवीय सांस्कृतिक परम्पराओं की दृष्टि से यह अपनी विविधताओं से परिपूर्ण है। सभी नागा जनजातियों एवं उप-जनजातियों की अपनी-अपनी पृथक् बोलियाँ हैं। संपर्क-भाषा के रूप में यहां किसी एक बोली का प्रयोग किया जाना असंभव-सा है। इनका क्षेत्र वर्तमान नागालैंड राज्य में ही नहीं बल्कि मणिपुर के सेनापति, तमेंगलॉंग, उखरुल एवं चंदेल जिलों में, असम के डिमा हसौ (एन. सी. हिल्स), मिखिर हिल्स, लखीमपुर, नवगाँव एवं शिवसागर जिलों में, अरुणाचल प्रदेश के तिराप एवं चान्लांग जिलों और म्यांमार (बर्मा) के सोमरा एवं उससे संबंधित क्षेत्रों तक फैला हुआ है। इस प्रकार, राजनैतिक कारणों से ये अलग-अलग प्रशासनिक क्षेत्रों के अंतर्गत आते हैं, परन्तु, इसे समग्र एवं सम्पूर्णता के साथ नागा लोक भूमि के नाम से अभिहित किया जाता है।

नागा जनजातियों के द्वारा वर्तमान स्थान पर जीवन का आरम्भ अथवा ‘नागा’ नामकरण, उसके अर्थ आदि के बारे में यद्यपि प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं हो पाए हैं, मगर इतना तो स्पष्ट है कि इन्हें अपने लौकिक संस्कृति के रूप में अपने पूर्वजों से विशाल एवं समृद्ध विरासत मिली हुई है, जो मौखिक रूप में

एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती आई है। लगभग सभी नागा जनजातियों की अपनी-अपनी भाषाएँ, रीति-रिवाज़, परम्पराएँ तथा सामाजिक जीवन हैं। इस पर भी जब जीवन के इन तत्वों का विश्लेषण करते हैं, तब बहुत से पहलू ऐसे सामने आते हैं, जो सभी जनजातियों में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। नागा समाज अथवा लोक में पारंपरिक रूप से गाँव ही समाज की सबसे बड़ी एवं स्वतंत्र इकाई रही है। अधिकांश जनजातियों में ग्रामीण प्रशासन के अंतर्गत वंशानुगत तरीके से मुखिया का पद होता था और कुछ में यह जन सामान्य के द्वारा अथवा जन प्रतिनिधियों के द्वारा चुना जाता था। प्रत्येक गाँव में कई कुल के लोग रहते थे और हर एक कुल के लोगों के द्वारा प्रौढ़ व्यक्तियों को अपने प्रतिनिधि के रूप में चुनकर ग्राम समिति में भेजे जाते थे। इन्हीं में से किसी एक को ग्राम-मुखिया के रूप में चुन लिया जाता था और वे ही ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था के मुखिया हुआ करते थे। प्रत्येक नागा गाँव के भूमि की एक परिसीमा रहती है। सैद्धांतिक रूप से गाँव का मुखिया ही उस सम्पूर्ण भू-भाग का मालिक होता है। परन्तु यह भी स्पष्ट होता है कि वह गाँव के भू-भाग का कोई भी अंश बेच या किसी को नहीं दे सकता था, क्योंकि यह भी परंपरा रही है कि किसी भी गाँव की ज़मीन का टुकड़ा किसी अन्य ग्रामवासी को न दिया जाए। उल्लेखनीय है कि जनसंख्या घनत्व की विरलता के कारण किसी भी व्यक्ति को अपने ग्राम-परिसीमा के बाहर के जमीन की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

नागा जनजातियों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह भी है कि वे बड़े मनमौजी होते हैं और स्वच्छंदता एवं उन्मुक्तता के बड़े प्रेमी होते हैं। यही कारण है कि एक ही वंश से उत्पन्न होते हुए भी वे इतनी जनजातियों तथा उप-जनजातियों में विभाजित होते गए और कभी-कभी उनकी जाति अथवा समाज का केन्द्रीकरण नहीं हुआ। आज नागा जनजातियों की संख्या का 50 से अधिक होना तथा अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधता को बनाये रखना यह स्पष्ट संकेत देता है कि उन्मुक्तता एवं स्वच्छंदता के ये बड़े शौकीन होते हैं। इसी उन्मुक्त एवं स्वच्छंद प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि प्रत्येक गाँव एक-दूसरे से पृथक् होते गए और सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से वे स्वतंत्र होकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे, जिसे ग्राम-समाज अथवा ग्राम-प्रांत कहा जाता है। नागाओं ने प्राचीन रीति एवं परम्पराओं के आधार पर ही भू-स्वामित्व की प्रणाली को विकसित किया है।

अध्याय दो- नागा जनजातियाँ :

सांस्कृतिक परम्पराओं की दृष्टि से सभी नागा जनजातियों की अपनी-अपनी विशिष्टता रही है। अपनी विशिष्टताओं के होते हुए भी दो सामान्य ऐसी बातें हैं, जो लगभग सभी नागा जनजातियों में पाई जाती हैं और वे हैं – शत्रु के सर को काटकर अपनी वीरता का प्रदर्शन करना तथा दूसरा अपने समाज के लिए 'महा-भोज' का आयोजन करना। शत्रु-सर काटने की संख्या के अनुसार समाज में प्रत्येक योद्धा की प्रतिष्ठा में बढ़ोत्तरी होती थी। आदर-सत्कार के प्रतीकार्थ इनके वेश-भूषा एवं आभूषण भी सर्वसामान्य से अलग एवं विशिष्ट बनाए जाते थे। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने का दूसरा माध्यम 'सामाजिक महाभोज' का अनुष्ठान था। नागालैंड की कुल जनसंख्या के लगभग 88% ईसाई हैं। ईसाइयों की कुल जनसंख्या का लगभग 75% बैप्टिस्ट हैं और शेष में रोमन कैथोलिक, रिवाइवल, पेंटिकोस्टल और सेवेंथ डे-जैसे अन्य ईसाई पंथ हैं। कोहिमा एवं दीमापुर में हिन्दू, मुस्लिम तथा राज्य के सुदूर ग्रामीण अंचलों में अपने पारंपरिक पैतृक धर्म के अनुयायी कई नागा जनजातियों में विद्यमान हैं। कृषि-प्रधान सामाजिक पृष्ठभूमि रहने के कारण इनके प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण त्योहार किसी न किसी रूप में कृषि-कार्य प्रणाली तथा मान्यताओं से संबद्ध होते हैं। यहाँ की सांस्कृतिक विरासत को पर्यटन की दृष्टि से प्रोत्साहित एवं पल्लवित

करने के उद्देश्य से नागालैंड सरकार ने इनके पारंपरिक त्योहारों के तर्ज पर ही 'हार्नबिल फेस्टिवल' को आरंभ किया है, जो दिसंबर में पहली से दस तारीख तक कोहिमा के पास किसामा में मनाया जाता है। इस त्योहार में सभी नागा जनजातियों के साथ कुकी एवं कछारी जनजातियों के जीवंत सांस्कृतिक परिवेश का प्रदर्शन किया जाता है।

'अंगामी' नागालैंड राज्य के नृजातीय समूह का एक मुख्य एवं महत्वपूर्ण घटक है। वर्तमान में इनका निवास स्थान कोहिमा, चुमुकेदिमा एवं दीमापुर जिलों के अंतर्गत आता है। इनके क्षेत्र को चार उपक्षेत्रों- उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी और चख्रो अंगामी के रूप में विभाजित किया जाता है। 'आओ' नागालैंड की सबसे उन्नत जनजाति मानी जाती है। ईसाई मिशनरियों के आगमन के साथ ही ईसाइयत को अपनाने वाली पहली जनजाति होने के कारण उन्होंने शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति को सबसे पहले प्राप्त किया। प्राचीनकाल में 'पूर्वी अंगामी' कहलाने वाले लोग आज चखेसांग जनजाति सबसे प्रगतिशील एवं उल्लेखनीय नागा जनजातियों में से एक है। इनका पारंपरिक निवास फेक जिले के अंतर्गत आता है, मगर वर्तमान में ये कोहिमा, दीमापुर एवं पेरेन जिलों में भी बड़ी संख्या में निवास करते हैं। 'चांग' नागालैंड की एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण जनजाति है। अंग्रेजों के शासन काल में इन्हें 'मजुंग' के नाम से जाना जाता था।

ख्यम्युनान नागालैंड की मुख्य जनजातियों में से एक है। इनका पारंपरिक निवास नोकलक जिले के अंतर्गत आता है, जिसकी सीमाएं म्यांमार से भी लगी हुई हैं। ये अपने को ख्यम्युनान नामक स्थान से उत्पन्न मानते हैं और इसी आधार पर इन्होंने अपना नामकरण कर लिया है। नागालैंड की लोथा जनजाति वोखा जिले में रहती है। भाषाविद जार्ज इब्राहीम ग्रियर्सन द्वारा विश्लेषित तीन नागा भाषा समूह में से लोथा भाषा को मध्य समूह में रखा है। इस जिले में कुल 114 गाँव हैं और सभी लोग इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। फोम जनजाति नागा, जनसंख्या की दृष्टि से बड़ी नहीं है, फिर भी पारंपरिक सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण ये अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। वे यह मानते हैं कि इनके पुरखों का प्राचीनतम स्थान लोंगलेंग जिले में स्थित 'यिंगली ओंशांग' नामक पहाड़ी श्रृंखला है, जहाँ से वे विभिन्न स्थानों की ओर फैल गए। पोचुरी जनजाति का मुख्यालय फेक जिले के पूर्वी भाग में स्थित 'मेलुरी' टाउन है, जो राजधानी कोहिमा से 166 कि.मी. की दूरी पर है। वर्तमान में अधिकांश लोग ईसाई हो चुके हैं। परन्तु छोटी जनजाति होने के बावजूद इनमें से कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने अपने पैतृक धर्म को जीवंत बनाकर रखा है, जिसे 'अनाले' कहा जाता है।

'रेंगमा' जनसंख्या की दृष्टि से नागालैंड की एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण जनजाति है। इनका मुख्यालय कोहिमा नगर से 55 कि.मी. की दूरी पर स्थित 'त्सेमिन्यु' जिला है। रेंगमा लोग अपने को कार्बीआंगलोंग का मूल निवासी मानते हैं। संगतम नामक नागा जनजाति नागालैंड के त्वेन्संग एवं किफिरे जिलों में निवास करती है। किफिरे इनके क्षेत्र का दक्षिणी भाग है, जबकि उत्तरी क्षेत्र के रूप में त्वेन्संग का लोंग्विम और चारे संभाग आते हैं। सुमी या सेमा नागा नृजातीय समूह का एक मुख्य एवं महत्वपूर्ण घटक है। ये लोग जुन्हेबोटो, किफिरे और दीमापुर जिलों में निवास करते हैं। यिम्खुंग जनजाति के नामकरण का आधार- 'गंतव्य पर पहुँचा हुआ' होता है। इन्हें यिम्चुंगरू, यिम्चुंगरे के नाम से भी जाना जाता है। ये लोग वर्तमान में नागालैंड के त्वेन्संग एवं किफिरे जिलों तथा म्यांमार के पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों में रहते हैं। जेलियांग पूर्वोत्तर भारत की एक प्रमुख नागा जनजाति है और वर्तमान में असम, मणिपुर तथा नागालैंड के संलग्न जिलों में निवास करती है।

नागालैंड में नागा जनजातियों के अतिरिक्त कछारी, कुकी, गारो और मिकिर आदि राज्य के पंजीकृत अन्य जनजातियाँ हैं। कछारियों में डिमासा तथा मेच कछारी आते हैं। डिमासा लोग मूलतः दीमापुर नगर तथा इसके इर्द-गिर्द मैदानी क्षेत्र में निवास करते हैं। वास्तव में, यह क्षेत्र इनके द्वारा बसाया गया था परन्तु नागा जनजातियों के धीरे-धीरे यहाँ आकर बसने के कारण इनकी संख्या विरल हो गई है। आज भी दीमापुर में 'कछारी राजबाड़ी' के नाम से इनके कुछ ऐतिहासिक खंडहर संरक्षित करके रखे गए हैं। ये लोग मुख्यतः हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। 'कुकी' दूसरी गैर-नागा जनजाति है, जो नागालैंड की जनजाति के रूप में पंजीकृत है। इनका निवास मुख्यतः पेरेन जिले के अधिबुंग क्षेत्र है तथा कुछ गाँव दीमापुर के मेदज़िफेमा क्षेत्र में भी हैं।

अध्याय तीन - लोकसाहित्य में नागालैंड का जनजातीय जीवन :

पूर्वोत्तर भारत के एक महत्वपूर्ण जनजाति समुदाय का निर्माण करने वाली नागा जनजातियों के संदर्भ में भी यही सच है कि जीवन के प्रति लोक के दृष्टिकोण तथा उससे प्राप्त अनुभवों को ही आधार मानकर साहित्य को मूर्त रूप दिया गया है, जिसमें जीवन के विविध फलकों को अभिव्यंजित किया गया है। लोक कथा तथा लोक गीत जैसी प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त यहाँ कतिपय समाज में उपलब्ध लोक गाथाओं में, जहाँ जीवन के विस्तृत एवं विविध पक्ष व्यक्त हुए हैं, वहीं लोकोक्तियों एवं कहावतों के माध्यम से जीवन के गूढ़ तथ्यों एवं मूल्यों को सूत्रों के रूप में पिरोया गया है। इस अध्याय में साक्षात्कार, कतिपय पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में छपे लेखों तथा इंटरनेट में उपलब्ध विषय-वस्तुओं के आधार पर लोक साहित्य में व्यक्त नागा जनजातीय जीवन की समीक्षा की गई है। लगभग सभी नागा जनजातियों का लोक साहित्य जीवन के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही पक्षों के यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं। यहाँ के लोक साहित्य, विशेषतया कथाओं में कल्पना तत्त्व को प्रधानता दी गयी है। परिणामतः प्रत्यक्ष लौकिक जीवन से परे अनेक तथ्य यहाँ के लोक गीतों एवं कथाओं में देखे जा सकते हैं।

नागा जनजातियों में लोक कथाएँ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक स्तर पर ही हस्तांतरित होती आई हैं, जिनमें नागा जनजातीय जीवन के चित्र स्पष्ट रूप से झलकते हैं। कथाकारों ने मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए जहाँ हास्य को कथा का एक महत्वपूर्ण तत्त्व माना है, वहीं नैतिक शिक्षा एवं न्याय को भी ध्यान में रखते हुए कथाओं को मूर्त रूप दिया है। लोक में प्रचलित परियों अथवा राजकुमारियों की मनोहर कथाओं में उनका विवाह निर्धन एवं असहाय-अनाथ युवक से कराकर लोक में दुखी, निराश्रित एवं निराश लोगों के मन में सांसारिक जीवन के प्रति राग एवं आस्था उत्पन्न करने के प्रयास किए गए हैं। कुछ दुखांत लोक कथाओं में प्रताड़ित पात्र मानवीय जीवन से परेशान एवं निराश होकर मानवेतर किसी पक्षी अथवा पशु योनि में स्वयं को परिवर्तित कर लेता है। कभी-कभी ऐसे पात्र मानवेतर योनि में रहकर उन आततायी पात्रों से बदला लेता है, जिनके कारण उसे अपनी योनि बदलनी पड़ी थी और कभी तो वह स्थायी रूप से समाज में रहकर लोगों को न्याय प्रदान करने का कार्य करता है। यहाँ की लोक कथाओं में, जहाँ एक ओर प्रेम, आदर, स्नेह, ममता, सौंदर्य, परस्पर बंधुत्व तो दूसरी ओर लालच, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार तथा वैमनस्यता आदि मनोविकारों को प्रकट करने वाली अनेक ऐसी घटनाएँ प्राप्त होती हैं, जिन्हें हम जन सामान्य के जीवन से जोड़ सकते हैं या यों कहें कि जिन भावनाओं, खुशियों, दुखों, संघर्षों एवं जीवन कार्य-व्यापार को हम सामाजिक जीवन में देखते हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे फलक हैं, जो यहाँ की लोक कथाओं में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हुए हैं। नागा लोक में जहाँ लुन्सो एवं शोजिला जैसी दंपतियों का प्रेम है, वहीं होजी

का ईर्ष्या एवं लोभ भी विद्यमान है। इसमें शोजिला का अपने बच्चों के लिए ममता एवं स्नेह है तो होजी का अपने सौतेली संतानों के प्रति निर्ममता और क्रूरता है।

जिस प्रकार नागा लोक कथाओं में लोक जीवन का व्यापक चित्रण हुआ है, उसी प्रकार, यहाँ के लोक-गीतों में भी जीवन की अनुभूतियों एवं कल्पनाओं के आधार पर विविध मानसिक स्थिति एवं शारीरिक कार्य-व्यापार के विविध रूप अभिव्यक्त हुए हैं। इन जनजातियों में लोक गीतों के विभिन्न स्वरूप एवं प्रकार देखे जा सकते हैं, जिन्हें गीत के आकार, गीतों के भाव, गायकों की अवस्था, गायकों की संख्या, गायकों के लैंगिक आधार, विविध आयोजनों के गीत आदि आधारों पर वर्गीकृत किए जा सकते हैं। इस आधार पर छोटे एवं लम्बे गीत, प्रेम के गीत (संयोग एवं वियोग के भाव), हर्षोल्लास के गीत, बच्चों, युवाओं एवं बूढ़ों के गीत, सामूहिक, युगल एवं एकल गीत, महिलाओं के गीत, पुरुषों के गीत, कृषि-कार्य के गीत, त्योहार-उत्सवों के गीत तथा शादी-ब्याह आदि के गीत आते हैं।

आकार के आधार पर लोक गीतों को छोटे एवं लम्बे -दो प्रकार के गीतों में विभाजित किए जा सकते हैं। यहाँ के लोक गीतों में प्रायः छोटे गीतों में ही विविधताएं अधिक पाई जाती हैं तथा उनके गायन में भी आवृत्तियाँ पाई जाती हैं। इन लोक गीतों में मुखड़ा या अंतरा का भेद नहीं पाया जाता है। इसलिए गायक जन उसे बार-बार दोहराते हुए गाते हैं और इन्हें प्रायः सामूहिक रूप में गाते हैं। लोक में प्रचलित 'लुङ्-थेंग' अर्थात् लम्बे गीत, आकार की दृष्टि से अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं, जिनमें कवि या मूल गायक के जीवन की घटनाओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में वर्णन होता है। इस प्रकार के गीतों में वह अपने सुख-दुःख, सफलता-असफलता, आकांक्षाओं के साथ-साथ मृदु एवं कटु स्मृतियों को संजोते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। ऐसे गीतों में कवि अपनी प्रेम गाथा भी सुनाता है, तो कभी शत्रु-संहार में कलम किए गए शत्रुओं के सिरों को लेकर आत्म-प्रशस्ति भी करता है। कुछ गीतों में दैव के मारे प्रेम में असफल एवं पारिवारिक जीवन की निरीहता को व्यक्त करते हुए भी गीत गाए जाते हैं। छोटे गीतों के विपरीत लुङ्थेंग प्रायः एकल में तथा कभी-कभी युगल में ही गाए जाते हैं। इन गीतों को एक ही आवृत्ति में गाया जाता है।

गीतों में व्यक्त भावों के आधार पर स्त्रियों एवं पुरुषों के द्वारा अलग-अलग प्रकार के गीत गाए जाने की परंपरा रही है। यहाँ के गीतों में जीवन के प्रेम-प्रसंग व्यापक रूप में व्यक्त होते हैं, जिनमें संयोग एवं विरह दोनों ही भावनाएं प्रकट हुई हैं। शृंगारिक प्रेम के अतिरिक्त इनमें अपने गाँव, अपनी माटी अथवा अपने देश के प्रति प्रेम की भावनाएं भी प्रबलता से प्रस्फुटित हुई हैं। कुछ गीतों में प्रशस्ति के भाव भी पाए जाते हैं, जिनमें स्त्री-सौंदर्य प्रशस्ति तथा विशिष्ट-अनुष्ठानकर्ता जजमान की प्रशस्तियाँ होती हैं। स्त्री सौंदर्य के गीत प्रायः एकल या युगल में गाए जाते हैं, तो किसी जजमान की प्रशस्ति में जन-समूह के द्वारा हर्षोल्लास के गीत गाए जाते हैं। कुछ लम्बे गीतों – लुङ् थेंग में आत्म-प्रशस्ति के भाव भी होते हैं। परंतु इस प्रकार के भाव बिरले ही होते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन में विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करता है या युद्ध में शत्रु को मारकर उसका सिर काट लाता है या फिर शिकार में भालू, शेर, जंगली सूअर जैसे हिंसक पशुओं का शिकार कर लेता है, तब वह अपनी गौरव-गाथा को लोगों के सामने प्रस्तुत करने के लिए लम्बे गीतों के माध्यम से आत्म-प्रशस्ति के गीत गाता है।

अध्याय चार – जेलियांग जनजाति – सामाज, साहित्य और संस्कृति :

अन्य नागा जनजातियों की तरह ही जेलियांगरोंग समुदाय के लोग भी मखेल से निकलकर रामतिंग कबिन, चेवांग फुंगनिंग और मकुइल्वांगदी होते हुए अपने वर्तमान क्षेत्र में आये थे। जेलियांग नागाओं में चिरकाल से कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाएं विद्यमान रही हैं, जो समय के प्रवाह के साथ-साथ कुछ तो धूमिल-सी हो गयी हैं, पर आज भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो समाज में अपनी जीवंतता के साथ शाश्वत बने हुए हैं। जब समाज के विभिन्न संस्थाओं की बात की जाती है, तब इन्हें एक गाँव के अंतर्गत ही देखा जाना चाहिए। इनमें से प्रमुख आयाम निम्न रहे हैं, जो अब भी कुछेक गांवों में विद्यमान हैं- परिवार, किखुन/किदुई (कुल), खंग्चू (हंग्सेऊ), ल्युच्यु (लेउसेऊ), चेहुत (हेगुत), सिन्कू (तिन्कू) प्रणाली, चेवांग (हेग्वांग) का स्वरूप

जेलियांग समाज में परिवार सबसे छोटी तथा महत्वपूर्ण इकाई है। इस समाज में पितृ-सत्तात्मक तथा एकल परिवार की परम्परा रही है। खंग्चू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेऊ)- इस समाज की ऐसी दो सामाजिक संस्थाएं रही हैं, जो समाज के युवक-युवतियों में जीवन के मूल्य संचारित करते आये हैं। ये संस्थाएं युवक एवं युवतियों के शिक्षण-प्रशिक्षण के केन्द्र माने जाते हैं। आज सामान्य भाषा में इसे 'मोरुंग' के नाम से जाना जाता है। जेलियांग समाज में हेगुत या चेहुत कृषि कार्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण आयाम है। हेगुत का अर्थ है, युवकों एवं युवतियों का वह समूह जो बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में जा कर काम करते हैं और कृषि कार्य-व्यवस्था में भी एक-दूसरे का साथ देते हुए, जीवन-व्यापार को आगे बढ़ाते हैं। इस समाज के गांवों में पुरोहित के रूप में कार्य करने वाले को सिन्कू या तिन्कू कहा जाता है। वे गाँव के सबसे आदरणीय व्यक्ति माने जाते हैं। इनके गांवों में चेवांग अर्थात् राजा की भी परम्परा रही है, परन्तु यह सिन्कू प्रणाली से पूर्व की है। किसी-किसी गाँव में तिन्कू प्रणाली एवं चेवांग या हेग्वांग की परम्परा भी समानांतर रूप से चलती रही है।

जेलियांग जनजाति की सामाजिक परम्पराओं में कुछ वैयक्तिक संस्कार हैं, तो कुछ को सामाजिक रीति-रिवाजों के शीर्षक के रूप में देखे जा सकते हैं। संस्कारों के अंतर्गत नामकरण, विवाह तथा मृत्यु को महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य माना जाता है। इनके अतिरिक्त *खंग्चू-ल्युच्यू सदस्य निर्धारण, विवाह में वर-वधू चयन संबंधी परंपराएं, चेमन-चपौलुत, पैतृक-संपत्ति का उत्तराधिकार, चेमौ-चमेंग, चेहुत-चेकू कूबो, रम्बौ मेज्वक्बो, अजन त्यूबो तथा रिमन पत्बो* इत्यादि अनेक रीति-रिवाज वैयक्तिक तथा पारिवारिक जीवन में निभाए जाते हैं। *का-अलौबो, चेकुन-बुंगबो एवं चेपी-गुत्बो* इत्यादि संस्कार भी बच्चों के लिए क्रियान्वित किए जाने वाले संस्कार होते हैं।

जेलियांग जनजाति के सामाजिक जीवन में नए गाँव की स्थापना तथा उसमें क्रियान्वित किए जाने वाले कर्मकांड अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। नए गाँव को बसाने के लिए स्थान का चयन कई बातों को ध्यान में रखकर किया जाता था। तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ग्राम स्थल के चयन में सुरक्षा को सबसे अधिक महत्व दिया जाता था। जिस प्रकार से प्रत्येक जेलियांग नागा गाँव प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से स्वतंत्र इकाई हुआ करता था, उसी प्रकार कुछेक बातों को छोड़कर आर्थिक दृष्टि से भी वह आत्मनिर्भर होता था। इनकी अर्थ व्यवस्था उनकी भूमि तथा वन्य उत्पादों पर निर्भर थी। ये लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए मुख्यतः कृषि कार्य करते थे। साथ ही, ये पशुपालन, बागवानी, शिकार तथा कुछ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यापारिक लेनदेन पर भी निर्भर होते थे।

अध्याय पाँच - जेलियांग जनजाति - लोक गीत एवं नृत्य

जेलियांग जनजाति में लोक-गीतों की परंपरा विविधताओं से परिपूर्ण है। यद्यपि यहाँ भी लोक-साहित्य की लोकप्रियता में कमी आई है। वास्तव में, लोक-जीवन के जितने भी आयाम होते हैं, उन सभी पहलुओं से सम्बद्ध हर्ष, विषाद, संघर्ष, उल्लास एवं गौरव सम्बन्धी असंख्य गीत इस समाज में गाये जाते हैं। इस दृष्टि से इनका वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है; यथा गीत के आकार, गायकों की संख्या, गायकों की अवस्था, गायकों के लैंगिक आधार और भावों पर आधारित गीत आदि। आकार या स्वरूप के आधार पर लम्बे गीत एवं छोटे गीत, गायकों की संख्या के आधार पर एकल, जुगल एवं सामूहिक गीत, अवस्था के आधार पर बच्चों एवं वयस्कों के गीत, गाये जाने के समय के आधार पर कृषि कार्य गीत, त्यौहार/उत्सव के गीत, विवाह के गीत, प्रार्थनाएँ और विशिष्ट अनुष्ठान के गीत तथा भावों के आधार पर प्रेम विषयक, भक्ति परक, प्रशस्ति, आत्मप्रशस्ति आदि देखे जा सकते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में गीतों के उदाहरणों से यह स्पष्ट किया गया है कि जेलियांग लोक-गीतों में एक तो अपने गाँव, अपने लोगों के प्रति लगाव के भाव व्यंजित हुए हैं, वहीं दूसरी ओर यह भी दिखता है कि परदेश जाकर बसे लोगों को फिरसे वापस आने की भी गुहार लगाई गई है। इसके साथ ही इनमें पशु-पक्षियों, अन्य जीव-जंतुओं, नदी, जल या चाँद जैसे प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से भी अपनी भावनाओं को व्यक्त किया गया है। इन गीतों में प्रत्यक्ष अनुभूतियों के आधार पर अभिव्यंजित सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन के व्यापक एवं गूढ़ बिम्ब प्राप्त होते हैं।

अध्याय छह – जेलियांग जनजाति – लोक कथा तथा लोकोक्तियाँ :

जेलियांग लोक कथाओं में सृष्टि का आरंभ, सामाजिकता, प्रेम-विषयक एवं सांस्कृतिक तत्व प्रधानता के साथ प्राप्त होते हैं। मनोरंजन की दृष्टि से हास्य-परक कथाओं का भी प्रचलन रहा है। कुछ कथाओं में मनोरंजन के साथ-साथ उपदेशात्मक तत्व भी पाए जाते हैं। कुछ कथाओं में परियों के मनोहर रूप, उनके चमत्कारों के माध्यम से किसी अनाथ बालक का सुखी-सम्पन्न हो जाना सामान्य बात रहती है। कुछ कथाओं में दक्षिण भारत में प्रचलित तेनालीराम की मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद तत्वों की विद्यमानता रहती है। इन्हें समाज ने खुद रचा या तेनालीराम की कथाएँ ही उड़ते-उड़ते आ पहुँची, यह कहना कठिन है। जेलियांग लोक-कथाओं में प्रेम अभिन्न रूप से पाया जाता है। इन कथाओं में भाई-बहिन, पिता-पुत्र, माता-पुत्री, पुत्र-माता और पति-पत्नी के बीच सात्विक प्रेम की भावनाओं को आसानी से देखा जा सकता है। इसके साथ ही इनमें लोकमंगल की भावनाओं के भी पुट पाए जाते हैं। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि विषय-वस्तु की दृष्टि से लोक-कथाओं में भी लगभग वे ही तत्त्व हैं, जो शिष्ट साहित्य की कहानियों की है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार कथा-तत्वों में बदलाव भी देखे जा सकते हैं।

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत पुरा कथाएँ, मनोहर कथाएँ, अनाथों से संबंधित कथाएँ, वीर योद्धा संबंधी कथाएँ, शिक्षाप्रद कथाएँ, पशु पक्षी संबंधी कथाएँ तथा हास्य व्यंग्यात्मक एवं छोटे बच्चों के लिए अति लघु कथाएँ प्रायः सुनी और सुनाई जाने की परंपरा रही है। इन कथाओं के आदि स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों ने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर अपनी कल्पना शक्ति को उसमें जोड़ते हुए इनकी रचना की होगी और संभवतः समय परिवर्तन के साथ-साथ उनमें कुछ अन्य तत्व भी जुड़ते चले गए होंगे। आज भी जेलियांग लोक प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों एवं वनांचलों में

बसता है, अतः स्पष्ट है कि इन लोक कथाओं का उद्भव भी प्रकृति के प्रांगण में ही हुआ होगा। ऐसे में पुरा कथाओं में व्यक्त आदि पुरुष से लेकर पशु-पक्षी एवं मानव समाज के विस्तार तक इनकी लोक कथाओं में मानव एवं प्रकृति के बीच सहज समन्वय एवं एकाकार की प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। प्रकृति के बीच स्थित लोक की मानसिकता एवं उनकी कल्पनाशीलता के कारण ही मानव जाति ही नहीं, बल्कि लोक के समक्ष प्रस्तुत सभी जीवों, पशु-पक्षियों, यहाँ तक कि कीड़ों-मकोड़ों को भी सामान्य रूप में मनुष्य जाति से समान भाषा में संवाद करते हुए दिखाना इनकी लोक कथाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इन कथाओं में कभी-कभी सजीव ही नहीं, बल्कि प्रकृति में विद्यमान निर्जीव मानी जाने वाली वस्तुएँ तथा प्राकृतिक उपादान -नदी, पहाड़, घाटी, वृक्ष इत्यादि भी सजीव रूप धारण करके अन्य जीवों से अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करते हुए चित्रित किए जाते हैं।

जेलियांग भाषा में भी ऐसे अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग किए जाते हैं जो जीवन के हर पहलू से संबंधित होते हैं। लोक कथाओं की तरह ही ये लोकोक्ति भी सर्वसामान्य लोक की रचना होती है। जेलियांग लोक-उक्तियों में कुछ तो समाज को सही मार्ग-दर्शन करने के लिए, तो कुछ उक्तियाँ हास्य-व्यंग्यात्मक पुट लिए मनोरंजक भी होते हैं। लोक में प्रचलित ये उक्तियाँ स्थानीय परिवेश एवं संदर्भ के लिए प्रयुक्त होते हुए भी कुछ तो इतने सारगर्भित हैं कि वे सार्वभौमिक भाव उत्पन्न करते हैं। जेलियांग लोकोक्तियों में लोक कथाओं के दृष्टांत के आधार पर निर्मित अनेक उक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें प्रायः कथा-पात्रों के चरित्र के अनुसार ही उन उक्तियों के अर्थ समन्वित होते हैं। इन लोकोक्तियों में मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों के दृष्टांत को लेकर भी इन उक्तियों की रचना की गई है। अतः लोकोक्तियाँ इनके साहित्य का एक प्रमुख घटक तो है ही, साथ में भाषा को समृद्ध करने की दृष्टि से भी इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

अध्याय - एक अवधारणात्मक विश्लेषण

- 1.1 लोक
- 1.2 लोक साहित्य
- 1.3 नागा जनजातीय समूह
- 1.4 जेलियांग जनजाति
- 1.5 जेलियांग सामाजिक संरचना
 - 1.5.1 परिवार
 - 1.5.2 किखुन/किदुई (कुल/घराना)
 - 1.5.3 खंग्च्यू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेउ)
 - 1.5.4 चेहत (हेगुत)
 - 1.5.5 सिन्कू (तिंग्कू) प्रणाली
 - 1.5.6 चेवांग/हेग्वांग (राजा) परंपरा
- 1.6 जेलियांग जनजाति में लोक गीतों की परंपरा
- 1.7 जेलियांग लोक कथाएँ

अध्याय - एक

अवधारणात्मक विश्लेषण

भारत विविधताओं से परिपूर्ण जन समुदायों का देश है। यहां हजारों वर्षों से सैकड़ों जन समुदाय अपनी भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ रहते आए हैं, जिनमें कुछ तो समय की धारा के साथ बाहरी प्रभावों में आते गए और कुछ अपनी पुरानी जीवन पद्धति में परिवर्धन एवं परिमार्जन करते हुए अभी भी अपनी मूल पहचान में ही बने हुए हैं। पूर्वोत्तर भारत मूल रूप से जनजाति-बहुल क्षेत्र रहा है, जहां सांस्कृतिक विरासत, धार्मिक धारणा, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान एवं वेश-भूषा इत्यादि की विविधताओं से भरपूर सैकड़ों जनजातियां निवास करती हैं। प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से अद्वितीय पूर्वोत्तर के राज्यों में लोक-जीवन के विविध रूप- त्योहार, कृषि-कार्य, लोगों की स्वच्छंद प्रवृत्ति तथा मौलिक सौम्यता इनके आंतरिक सौंदर्य में अभिवृद्धि करते हैं। इन्हीं प्राकृतिक सौंदर्य एवं मानव मन में अविच्छिन्न रूप से बहती आई संवेदनाओं के व्यापक रूप यहाँ के उद्गारों में भी अत्यंत गहराई के साथ व्यक्त हुए हैं, जिन्हें यहाँ के लोक साहित्य में लक्षित किया जा सकता है। यहां की अनेक जनजातियों एवं उनके साहित्य पर कई विद्वानों ने सराहनीय कार्य भी किए हैं, पर अब भी अनेक ऐसी जनजातियां हैं, जिन्हें साहित्यिक दृष्टि से तो दूर, अब तक सामाजिक एवं नृजातीय विषयों के आधार पर भी प्रकाश में लाने के प्रयास नहीं किए गए हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए यहां जेलियांग नागा जनजाति के लोक साहित्य के माध्यम से नागालैंड की लोक-संस्कृति एवं उनके साहित्य को समझने का प्रयास किया गया है।

1.1 : लोक

जब हम सम्पूर्ण 'नागा जन समुदाय को 'लोक' की दृष्टि से देखते हैं, तब यह भी जान लेना आवश्यक है कि 'लोक' का अर्थ क्या है! 'लोक' पालि और मगही भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ होता है 'देखना' व 'लोग'। कुल मिलाकर, 'लोक' शब्द के मूल में 'देखना' व 'लोग' अर्थ है। दूसरे शब्दों में, 'लोगों को देखना' इसका अर्थ है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि वह समस्त जन समुदाय, जो देखने का कार्य करे, उसे 'लोक' शब्द के रूप में अभिहित किया जाता है। यही 'लोक' मगही और हिंदी का 'लोग' है।

'लोक' शब्द का अभिप्राय उस 'समस्त जन समूह' से है, जो किसी एक भू-भाग में निवास करता है। वैसे, 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' (Folk) शब्द के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। हालांकि 'लोक' शब्द के स्पष्टीकरण के लिए शिष्ट समाज को अलगाकर ही देखा जा सकता है। शिष्ट

समाज वह होता है, जिसकी सभ्यता, संस्कृति एवं जीवन पद्धति में एक 'नियमबद्धता' या 'रूढ़ता' या 'जड़ता' का पाया जाना अपेक्षित होता है। इसके विपरीत, लोक और उसके जीवन की बात की जाए, तो उसमें एक अलग ही स्वच्छंदता या उन्मुक्तता के साथ-साथ बेतरतीबी पायी जाती है। यही बेतरतीबी तथा नियमबद्धता का न होना ही लोक का प्राण है। यह लोक गांव व नगर दोनों में एकमेक है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक के संबंध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है कि, "लोक शब्द का अर्थ जानपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गांवों में फैली हुई वह समस्त जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचि-संपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं।" (उपाध्याय, 1987) दरअसल, नगर हो या गांव, वह सम्पूर्ण जन समूह, जो शिष्ट समाज के संकुचित, शास्त्र आधारित जीवन पद्धति से परे अपने मौखिक ज्ञान एवं परम्पराओं की जीवन-पद्धति व शैली के आधार पर सतत बहता चला जाता है, उसे ही 'लोक' कहा जाता है। कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार, "जो लोग सुसंस्कृत तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन परिस्थिति में वर्तमान हैं, उन्हें ही लोक कहा जाता है।" (उपाध्याय, 1987) इस प्रकार, लोक में जनजीवन शास्त्रबद्ध, गूढ़ एवं तथ्यपरक न होकर अधिक सहजता के साथ प्राकृतिक संवेदनाओं से युक्त अपनी गतिशीलता में प्रवाहमान होता है। लोक मानस मौखिक परम्पराओं के साथ अधिक व्यापक रूप में विविधताओं से परिपूर्ण होता है। यही लोक व लोग ही आज का लोकवाद या जनवाद (Democracy) है। इसीलिए अब्राहम लिंकन द्वारा लोकवाद की दी गई परिभाषा सर्वमान्य है, 'Democracy is the government of the people, for the people and by the people.' दरअसल, यही जनता व आम लोग ही लोक है। इन्हीं आम लोगों की अपनी शासन-पद्धति लोकवाद है, जो पूरी दुनिया की सर्वाधिक पसंदीदा शासन-पद्धति है।

'लोक' आम जन-समूह का पर्याय है। यह जनपद का भी पर्याय है। हर जनपद खुद में एक विश्व होता है। यहां वे सारी विशेषताएं मिल जाती हैं, जिसकी परिकल्पना में एक सम्पूर्ण विश्व होता है तथा जो अपने-आप में परिपूर्ण होता है। यहां लोगों का जीवन गतिशील रहता है और जिसे किसी दूसरी दुनिया की कोई जरूरत नहीं रहती। डा. मुन्नी चौधरी लिखते हैं कि 'वहां के निवासियों की उत्तरजीविता सतत बनी रहती है। वह अपने-आप में पूर्ण होता है। यही पूर्णता लोक है। यह लोक मूल या आदिवासी-निवासी का द्योतक है। भारत की पचासी प्रतिशत जनता इसी वर्ग में आती है। दूसरे शब्दों में, भारत की पचासी प्रतिशत जनता मूल निवासी है, जिन्होंने अपने वंशों को उत्तरोत्तर बढ़ाने में हजारों सालों से अपनी परिपूर्णता या दक्षता का परिचय दिया है और देता आ रहा है। यहां के दलित, आदिवासी व

पिछड़े जन-समुदाय उत्तरजीविता के सशक्त उदाहरण हैं, जो अपने-आप में स्वतंत्र हैं और जिसे किसी 'खास' समुदाय की कभी आवश्यकता नहीं रही और न अब है। इन वर्गों के लोगों ने प्राचीन भारत में अपनी अत्याधुनिकता का परिचय दे दिया है। सिंधुघाटी व बौद्धकालीन सभ्यताएं इस बात की पुष्टि कर देती हैं तथा जो दुनिया के गिने-चुने सभ्यताओं की समकालीन रही हैं। यही उत्तरजीविता इनको आज भी सशक्त बनाये हुए है। यही वह नींव है, जिसपर इनका महल खड़ा है। यही कारण है कि दुनिया के तमाम आततायियों ने इनकी हस्ती को मिटाने की पुरजोर कोशिशें कीं लेकिन मिटा न सकीं - इनकी नींवें न हिला सकीं। इनके धरती-पूत अपनी सशक्तता के प्रमाण पेश करते आ रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे। लाखों बर्बरों के झंझावात भी इन्हें न मिटा सकेंगे। इस लोक की कुछ विशेष वजहें हैं, जिनके कारण इनकी हस्ती नहीं मिटती और न मिटायी जा सकती है।

लोक जन सामान्य या जन साधारण का प्रतिरूप है जो गांव या जनपद का द्योतक है। लेकिन यह विशेषता सिर्फ गांवों में ही नहीं मिलती बल्कि नगरों में भी दिखाई देती है। डा. रवींद्र भ्रमर के शब्दों में, 'इस दृष्टि से केवल गांवों में ही नहीं वरन नगरों, जंगलों, पहाड़ों और टापुओं में बसा हुआ वह मानव समाज जो अपनी परम्परा-प्रदत्त रीति-रिवाजों और आदिम विश्वासों के प्रति आस्थाशील होने के कारण अशिक्षित एवं अल्प सभ्य कहा जाता है, 'लोक' का प्रतिनिधित्व करता है'। डा. भ्रमर के 'अशिक्षित और अल्प-सभ्य' शब्दगत अर्थों से पूर्णतया सहमत नहीं हुआ जा सकता, लोकमानस अशिक्षित नहीं होता है बल्कि वह अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण होता है और उन्हीं संवेदनाओं के आधार पर अपने जीवन को सरलतम रूप में जीता है। अक्षर-ज्ञान मात्र से अर्जित डिग्री या पदवी प्राप्त लोग शिक्षित और सभ्य नहीं कहे जा सकते। सच पूछा जाए तो किसी भी समाज की सांस्कृतिक विरासत को विकृत करने में जितनी भूमिका तथाकथित डिग्रीधारियों, ज्ञानियों और पैदाइशी विद्वानों की रही है, उतनी आम जनों की नहीं है। कबीर किसी भी दृष्टि से अशिक्षित और असभ्य नहीं कहे जा सकते, जिसने अपनी आँखों देखी साखी के आधार पर ही लोकमानस को समन्वयात्मक जीवन-दृष्टि के रूप में प्रतिपादित किया। जिस प्रकार 'गँवई' लोगों को 'गँवार' कहना गलत है, उसी प्रकार, यह कहना कि लोक के लोग अशिक्षित और असभ्य होते हैं- सही नहीं है। लोक गँवई या जनपदीय या क्षेत्रीयता का द्योतक है। इसी बात को अब्राहम लिंकन ने लोकतंत्रीय शासन-पद्धति के रूप में समझाने की कोशिश की है। दरअसल, लोक का तंत्र ही लोकतंत्र है, जिसे आज सभ्य जन और सभ्य समाज की सर्वाधिक कल्याणकारी शासन-पद्धति कही जाती है। फिर, जिनकी शासन-पद्धति इतनी सभ्य-शालीन हो वे भला असभ्य कैसे हो सकते हैं।

1.2 : लोक साहित्य

लोक का साहित्य 'लोक-साहित्य' है। अंग्रेजी के 'फोक लिट्रेचर' शब्द के पर्याय के रूप में हिंदी में 'लोक साहित्य' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अंग्रेजी के 'फोक लोर' शब्द का प्रयोग लोक संस्कृति के लिए किया जाता है। अंग्रेजी के 'लोर' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' होता है। इसीलिए लोक में संचित मौखिक व परम्परागत रूप से विद्यमान वे सभी ज्ञान, जो लोक-जीवन को संचारित करते हैं, उन्हें लोक का ज्ञान कहा जाता है। जब लोक के इस ज्ञान को किसी साहित्य के रूप में ढाला जाता है, तब उसे लोक साहित्य का नाम दिया जाता है। लोक साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव, क्योंकि इसमें जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रकृति एवं समय सभी कुछ समाहित है। इसे लोक संस्कृति का दर्पण भी कहा जा सकता है क्योंकि जन संस्कृति का जिस सजीवता के साथ इसमें चित्रण किया जाता है, वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता है।

भारत का लोक विशाल है, जिसका एक प्रतिशत हिस्सा भी सभ्य दुनिया तक नहीं पहुँचा है। लोक इतना विशाल होता है कि इसका 'सम्पूर्ण' साहित्य में समा नहीं पाता। इसीलिए इनका प्रतिनिधित्व जितना इनका लिखित साहित्य नहीं करता, उससे ज्यादा इनका मौखिक साहित्य करता है। सांकेतिक भाषा-भाव-ज्ञान जितना कमतर का बोध कराता है, मौखिक उतनी ही विपरीतता में विशालता को प्रदर्शित करता है। यही कारण है कि यहां मौखिक साहित्य-ज्ञान इनकी सभ्यता-संस्कृति का प्रतिनिधि है और यह भी उत्तरजीवी है, ठीक उनके वंशों की तरह। लोक साहित्य मौखिक रूप में हजारों सालों तक जिंदा रहता है और इस रूप में उनका धरोहर सतत प्रवाहमान बना होता है। लोक साहित्य में पारंपरिक व आनुभाविक ज्ञान, संस्कृति और जीवन-शैली सुरक्षित, कुछ घिसती-जुड़ती चलती चली जाती है। इसमें उनके मिथक, नयी-पुरानी परम्पराएँ, रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास, गीत-संगीत, नाटक, कथा, दर्शन, विचार आदि सब कुछ जिंदा, सततता में गतिशील रहते हैं, जो आज गद्य और पद्य दोनों रूपों में उपलब्ध हैं। साहित्य के विविध रूपों में मूल निवासियों की भावनाएँ या संस्कृति अभिव्यक्त होती हैं। ये सामाजिक परंपराओं, रीति-रिवाजों, आस्था-विश्वासों, मानव-मूल्यों और व्यवहारों की संवाहक होती हैं। इसका संबंध मानव जीवन के संघर्षों और उपलब्धियों से होता है। इसमें उनका सुख-दुख या कहीं सब कुछ व्यक्त होता है, जिसमें जीवन के पूर्व से लेकर मौत के बाद तक की क्रिया-कलापों-विश्वासों का भी अंकन होता है।

लोक-साहित्य में लोक का सम्पूर्ण जीवन अभिव्यक्त होता है और सुरक्षित भी रहता है। वह अपनी सहजता, सरलता, स्वच्छंदता और स्वाभाविकता के लिए जाना जाता है। उसमें जटिलता का गुण

नहीं पाया जाता। उसकी भाषा भी सरल-सहज-सुबोध होती है, ठीक उसी तरह जैसे लोक का जीवन होता है। देश की सारी क्षेत्रीय भाषाएँ इस बात की पुष्टि करती हैं। हिंदी लोक की भाषा है, लोक से निकली है और लोक द्वारा सृजित है। इसकी प्रकृति इसीलिए सरल, सुगम और सुबोध है। लोक साहित्य अपनी सहजावस्था में उपस्थित रहता है। इसमें लोक जीवन की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मृत्यु, लाभ-हानि, सुख-दुख आदि भावानुभावों की अभिव्यंजना साफ दिखती है। अब्राहम लिंकन के तर्ज पर कहें तो यह जनता का साहित्य है, जो जनता द्वारा जनता के लिए है।

संस्कृति मानव जीवन के विकास यात्रा की संचित निधि है, जिसका अनुसरण व्यक्ति जीवन पद्धति के उत्तरोत्तर विकास या परिवर्धन में करता है। किसी समाज या समुदाय विशेष की संस्कृति उस समाज के अंतर्गत आने वाले मनुष्यों के सहस्त्रों वर्षों के जीवन क्रियाओं का निचोड़ होता है। मानव के अच्छे व्यवहारों व परंपराओं को जीता हुआ व्यक्ति अपने चिरत्व को प्राप्त करते हैं। ये परंपराएँ और व्यवहार ही मानव के संस्कृति के रूप में उसकी पहचान बनाते हैं। संस्कृति (Culture) अंग्रेजी भाषा का शब्द है, जो लैटिन भाषा के कल्ट (Cult) या कल्टस (Cultus) शब्द से बना है, जिसका अर्थ कृषि कार्य में जोतना, विकसित करना या परिष्कृत करना होता है। हिंदी में इसके लिए 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो संस्कृति शब्दार्थ का वाहक नहीं है। यह शब्द संस्कृति के अर्थ का प्रतिनिधित्व नहीं करता। इसीलिए अधिकतर विद्वान संस्कृति और कल्टीवेशन को एक समान मानते हैं तथा कृषि कार्य से सम्बन्धित जीवन-शैली बताते हैं। इस प्रकार कल्ट अर्थात् श्रम के महत्व को जिस प्रकार कृषि कार्य में आवश्यक माना जाता है, उसी प्रकार किसी समाज की आवश्यकताओं के अनुसार सामाजिक व्यवहार के प्रतिमान स्थापित होकर स्थायित्व को प्राप्त होते हैं तथा ये ही प्रतिमान उस समाज की संस्कृति के अवयव होते हैं। किसी समाज का मानव-जीवन-व्यवहार (संस्कृति) एक दिन में पनपकर अपने परिपक्वता को प्राप्त नहीं होता, बल्कि यह दीर्घकाल तक निरंतर सामाजिक प्रतिमानों की प्रतिस्थापना के परिणामस्वरूप विकसित होता है। संस्कृति सतत प्रवाहमान होता है और सामाजिक मान्यताओं एवं प्रतिमानों में बदलाव के साथ-साथ उसके स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।

लोक संस्कृति से हमारा तात्पर्य जन-साधारण के उस संस्कृति से है, जो अपनी प्रेरणा और जीवन दोनों ही लोक से प्राप्त करता है। लोक संस्कृति के अनुयायी लोग अर्थात् लोक बौद्धिक विकास की दृष्टि से उच्चतम धरातल पर अवस्थित होता है और अपने संस्कृति हेतु स्वयं में विद्यमान मान्यताओं, विश्वासों अथवा अंधविश्वासों पर ही नहीं टिका होता, बल्कि बेहतर को स्वीकार व बुरे को तिरस्कार भी करता रहता है। मानव की बेहतरी के लिए लोक जरूरी है। यही कारण है कि दुनिया के सर्वाधिक

सम्पन्न व सुखी देश-समाजों ने लोकवाद को स्वीकार किया तथा खासवाद का तिरस्कार किया है। लोक सतत प्रवाहमान होता है जबकि खास को ताकत के बल पर फैलाया जाता है। उदाहरण के तौर पर, नाजीवाद को देखा जा सकता है। हिटलर ने अपनी विचारधारा को फैलाने के लिए जिस प्रकार से मानव-विध्वंस का सहारा लिया, वह चंद सालों में ही मिट गया। उसके उलट जिन देश-समाजों ने लोकवाद को स्वीकार किया, वे आज दुनिया के सिरमौर बने हुए हैं तथा उनके लोग सर्वाधिक सुखी जीवन-यापन कर रहे हैं।

संस्कृति के निर्माण-तत्वों में जनसमूह या व्यक्ति के प्रयत्नों की मुख्य भूमिका होती है। सच तो यह भी है कि वैयक्तिक व सामाजिक अपेक्षा के बिना कोई भी प्रयत्न सम्भव नहीं होता। इस प्रक्रम में जब मनुष्य का प्रयत्न फलीभूत होता है, तब यह निर्णय होता है कि प्राप्त फल सुफल है या कुफल। यदि प्राप्त फल मानव जीवन के अनुकूल अर्थात् सुफल होता है, तब ऐसे प्रयत्नों को प्रतिमान अथवा मान्यताओं के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। ये मान्यताएँ ही लोक में परम्परा के रूप में प्रचलित होकर संस्कृति के अवयव बन जाते हैं। लोक में मानव जीवन के व्यवहार गुण-सम्पन्नता के साथ-साथ दोषमुक्त भी होते जाते हैं। गुणों को ग्रहण कर दोष निवारण करना ही कल्चर्ड होना कहलाता है और इन्हीं अच्छे व्यवहारों की परम्परा से ही किसी लोक का संस्कृति निर्मित होता है।

लोक साहित्य में किसी समाज का कुछ भी समाहित हो सकता है, इसीलिए तो उसे साहित्य कहा जाता है। लोक विश्वास, रीति-रिवाज़, प्रथाएँ, सोच, आस्था, विरोध, आंदोलन, बदलाव आदि कुछ भी लोक-साहित्य का हिस्सा हो सकता है। सभी के लिए जो अच्छा हो, वह लम्बे समय तक चलता चला जाता है, जबकि बुरा या कम फायदेमंद चीज या विश्वास कुछ ही समय में समाप्त हो जाता है। इस दृष्टि से, लोक साहित्य लोक संस्कृति का ही एक अवयव है। ध्यान देने की बात है कि लोक संस्कृति को लोक साहित्य का पर्याय नहीं कहा जा सकता। अगर कोई पर्याय मानता है तो वह लोक संस्कृति की व्यापकता तथा उसके अर्थ को संकुचित करता है। वास्तव में, लोक साहित्य उसके सांस्कृतिक प्रतिमानों एवं पारंपरिक मान्यताओं पर ही आधारित होता है। लोक साहित्य के प्रणयन में उसके संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान होता है तथा सम्बन्धित साहित्य पीढ़ी दर पीढ़ी संस्कृति रूपी तरंगिणी भी अपने गति को बनाये रखने में सक्षम होती है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि लोक संस्कृति मानव जीवन के समस्त अंगों से सम्बन्धित होने के साथ-साथ लोक साहित्य को भी आत्मसात किये हुए होता है। “यदि लोक संस्कृति की किसी विशाल वृक्ष से उपमा दी जाए तो लोक साहित्य उसकी एक शाखा के समान है।” (उपाध्याय, 1987)

1.3 : नागा जनजातीय समूह

भारत के सोलहवें राज्य के रूप में 1 दिसंबर 1963 को अपने अस्तित्व में आए, नागालैंड पूर्वोत्तर का एक छोटा-सा राज्य है, जिसका क्षेत्रफल लगभग साढ़े सोलह हजार वर्ग किलो मीटर है। क्षेत्र की दृष्टि से सीमित होते हुए भी प्राकृतिक छटा की विविधताओं से भरपूर, इस राज्य का अधिकाँश भू-भाग पहाड़ियों व घाटियों के रूप में है। वर्तमान में राज्य की जनसंख्या लगभग बीस लाख है। यहां की चौदह प्रमुख नागा जनजातियां- अंगामी, आओ, चाखेसंग, चांग, ख्रम्युंडन, कोन्याक, लोथा, फोम, पोचुरी, रेंगमा, सांगतम, सुमी, यिम्खुंग (पूर्व में यिम्चुंगर) और जेलियांग हैं। सन 2022 में नागालैंड सरकार द्वारा 'तिखिर' को एक नई जनजाति के रूप में मान्यता दिए जाने के बाद पंजीकृत नागा जनजातियों की संख्या अब पंद्रह हो गई है। इनके अलावा कछारी, कुकी, गारो, गोरखा जैसी कुछ अन्य जन जातियां भी यहां रहती हैं, जो राज्य की पंजीकृत जनजातियां हैं। क्षेत्रफल की दृष्टि से एक छोटा राज्य होते हुए भी नागालैंड प्राकृतिक संसाधनों एवं मानवीय जीवन-परम्पराओं को लेकर अपनी विविधताओं में अत्यंत समृद्ध है। सभी नागा जनजातियों एवं उप-जनजातियों की अपनी-अपनी अलग भाषाएं व बोलियाँ भी हैं। यहां संपर्क-भाषा के रूप में इनकी अपनी किसी एक बोली या भाषा का प्रयोग किया जाना असंभव-सा है। फिर भी, यहां जन सामान्य की संपर्क भाषा के रूप में 'नागामी' (Nagamese) का प्रयोग किया जाता है, जो असमिया, हिंदी एवं बंगला भाषाओं का मिश्रित रूप है। आज के सन्दर्भ में, यहां संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाता है। यही यहां की राजकीय भाषा भी है। हालांकि, आज हिंदी भी यहां की सम्पर्क भाषा बनती जा रही है।

जब भी नागालैंड की नागा जनजातियों की बात की जाती है, तो यहां कुछ ही की बात प्रमुखता से की जाती है। हालांकि यह एक संकुचित दृष्टि है। परन्तु बड़े स्तर पर इन्हें देखें, तो ये चीनी-मंगोल वंश के एक विशिष्ट एवं बड़े जन-समुदाय के रूप में परिलक्षित होते हैं। नागालैंड के मोन जिले में कोन्याक जनजाति, लोंग्लेंग में फोम, मोकोकचुंग में आओ, त्वेन्संग में चांग, सांगतम, यिम्खुंग (यिम्चुनगर) व ख्रम्युंडन; किफिरे में सांगतम, यिम्खुंग व सुमी; वोखा में लोथा, जुन्हेबोटो में सुमी (सेमा), फेक में चकेसांग व पोचुरी; कोहिमा में अंगामी व रेंगमा; दीमापुर में कछारी व गारो तथा पेरेन में जेलियांग व कुकी जनजातियों को पारंपरिक निवासियों के रूप में जाना जाता है। सामाजिक परिवर्तन एवं आर्थिक विकास के कारण कोहिमा (राजनीतिक राजधानी) एवं दीमापुर (व्यावसायिक केंद्र) की ओर अधिकाँश जनजातियों के लोगों ने अपना रुख किया है। अब इन दोनों नगरों में लगभग सभी जनजातियों के लोग स्थायी रूप से निवास करने लगे हैं। परन्तु, जब वृहद् दृष्टि से नागा समुदाय की बात की जाती है, तो इसमें 50 से अधिक जनजातियों को सम्मिलित किया जाता है। हालांकि, ये सभी जनजातियां भारत के

साथ-साथ म्यांमार में भी पाई जाती हैं। इस संदर्भ रिचर्ड हालेंग लिखते हैं, - "There are more than 50 Naga tribes living under two different administrative unit (India and Myanmar)." (Haleng, 2000) ये सभी जनजातियां मिलकर एक विशाल नागा समुदाय व नागालैंड की परिकल्पना को साकार करती हैं।

मूल रूप से इनका क्षेत्र वर्तमान नागालैंड राज्य में ही नहीं, बल्कि मणिपुर के सेनापति, तमेंगलोंग, उखरुल एवं चंदेल जिलों में, असम के डिमा हसौ (एन. सी. हिल्स), मिखिर हिल्स, लखीमपुर, नवगांव एवं शिवसागर जिलों में, अरुणाचल प्रदेश के तिराप एवं चांगलांग जिलों और म्यांमार (बर्मा) के सोमरा एवं उससे संबंधित इलाकों तक फैला हुआ है। राजनैतिक कारणों से भले ही ये अलग-अलग प्रशासनिक क्षेत्रों के अंतर्गत आते हैं; परन्तु, इसे समग्रता एवं सम्पूर्णता के साथ 'नागा लोक भूमि' के नाम से अभिहित किया जाता है। विभिन्न नागा जनजातियों की अपनी-अपनी विशिष्टताओं के बावजूद अनेक ऐसे तथ्य हैं, जो सामान्य रूप से सभी नागा जनजातियों में पाए जाते हैं। इसी 'लोकभूमि' में नागाओं ने अपने जीवन के आयामों को मूर्त रूप देते हुए एक स्वच्छंद एवं उन्मुक्त 'लोक जीवन प्रणाली' को प्रतिस्थापित किया है।

ऐसा माना जाता है कि नागाओं से पूर्व किसी मानव समूह ने इस क्षेत्र में कदम नहीं रखा था या यूँ कहें कि पहली बार नागाओं ने ही इस वीरान भू-भाग को 'अपना' जीवन-क्षेत्र चुना, बनाया और विकसित किया। इस क्षेत्र की ओर नागाओं का आगमन कई दिशाओं से हुआ। परन्तु, सबसे पहले ये तिब्बत एवं नेपाल के रास्ते अरुणाचल प्रदेश के उत्तर की ओर आये। यहां आने के बाद ये अपने-अपने वर्तमान क्षेत्र में आ कर बस गए। इनका एक बहुत बड़ा वर्ग चीन व बर्मा से होते हुए मणिपुर के 'मखेल' नामक स्थान पर आकर काफी समय तक बसा रहा था। फिर वहीं से वे अपने-अपने अलग स्वतंत्र क्षेत्र की खोज में निकले।

'नागा' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं। इस 'लोक समुदाय' के लिए वर्तमान में प्रदत्त संज्ञा 'नागा' का कोई स्पष्ट अर्थ नहीं है। कुछ लोग इस शब्द से 'नंगा' का अर्थ लगाते हैं, तो कुछ इसे 'नग' अर्थात् पहाड़ के निवासी के अर्थ में लेते हैं। कुछ अन्य व्याख्याओं के अनुसार 'नाका', 'नोक' या 'नोका' या फिर 'नोगा' आदि भी कहते हैं, जिसके अनुसार कर्ण-भेदी लोग, लोक या लोग, पर्वतारोही आदि अर्थ लगाकर नागाओं की पहचान करते हैं। कुल मिलाकर, आज तक इस संज्ञा से कोई एक स्पष्ट अर्थ लक्षित नहीं हो पाया है। फिर भी, यह तो स्पष्ट है कि वह जन समुदाय या लोक

जिन्हें 'नागा' के नाम से जाना जाता है, उसका 'भूमि-क्षेत्र' भारत के चार राज्यों के अतिरिक्त म्यांमार के बड़े क्षेत्र तक फैला हुआ है। कुल मिलाकर, 'नागा' लोगों की अपनी भूमि 'नागालैंड' है।

नागा कोई एक जनजाति का नाम नहीं है, बल्कि यह कई जनजातियों का समूह है। नागा जनजातियां न केवल नागालैंड में बल्कि असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर व बर्मा में निवास करती हैं। "बर्मी भाषा में 'नाका' शब्द का अर्थ होता है- वे लोग जो कानों में बालियां पहनते हैं या कानों को छिदवाते हैं। कछारी भाषा में 'नांग्रा' शब्द का अर्थ योद्धा होता है। लेफ्टिनेंट बडाल के अनुसार, 'नागा' वे होते हैं, जो पहाड़ियों या पहाड़ों पर रहते हैं।

नागाओं को उनकी अपनी पहचान को लेकर अंग्रेजों के जमाने से ही सवाल उठने लगे थे तथा नागा इसके उत्तर की तलाश तभी से कर रहे हैं। नागा लेखक नेचुरियाजो चुचा ने इसका उत्तर देने की कोशिश की है। उनके अनुसार, "नागा लोग खुद को मंगोल मानते हैं। मुख्यभूमि यानि भारत में रहने वाले आर्यों अथवा द्रविड़ों से वे न केवल चेहरे-मोहरे से भिन्न हैं बल्कि उनके रहन-सहन के तौर-तरीके भी उनसे बिल्कुल अलग हैं। ये भिन्नता ही उन्हें अपने से कुछ सवाल पूछने के लिए उकसाती रहती है कि उनका उद्गम क्या है? उनके पूर्वज कौन हैं? यह देश के बाकी हिस्से से अथवा अन्य समूहों से अलगाव का मामला भर नहीं है और न ही यह अकेले पड़ जाने का सवाल है, बल्कि वे इसे अपनी अस्मिता या पहचान का सवाल मानते हैं। इस प्रश्न से उन्हें प्रायः रू-ब-रू होना पड़ता है, जब भारत के लोग ही उनसे यह प्रश्न करते हैं कि क्या आप चीनी हैं? क्या आप बर्मी या जापानी हैं? तब वे हतप्रभ रह जाते हैं। उन्हें इसका कोई जवाब नहीं सूझता। अपने ही देश के लोग उन्हें नहीं पहचानते।" (गुप्ता, 2018)

नागा समुदायों या जनजातियों के द्वारा वर्तमान स्थान पर जीवन का आरम्भ, 'नागा' नामकरण, उसके अर्थ आदि के बारे में यद्यपि प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं हैं, फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि इन्हें अपने पूर्वजों से विशाल एवं समृद्ध संस्कृति विरासत में मिला हुआ है, जो मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता आ रहा है। यद्यपि इनका इतिहास लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है, फिर भी इनकी लोक-कलाओं व संस्कृति के माध्यम से नागा लोक-जीवन को समझा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि लगभग सभी नागा जनजातियों की अपनी-अपनी भाषाएँ, रीति-रिवाज़, परम्पराएं तथा सामाजिक जीवन हैं। जब-जब इनके जीवन के इन तत्वों का विश्लेषण किया जाता है, तब-तब बहुत से पहलू ऐसे सामने आते हैं, जो सभी जनजातियों में सामान्य रूप में पाए जाते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो इनके बीच समता अधिक और विषमता कम पायी जाती है।

नागा समाज अथवा लोक में परम्परागत रूप से गांव ही समाज की सबसे बड़ी एवं स्वतंत्र इकाई रहा है। इस संदर्भ में रिचर्ड हालेंग लिखते हैं, "Traditionally the Nagas lived in a village-state, similar to the Greek city state and was headed by a chief." (Haleng, 2000) इससे स्पष्ट है कि एक गांव अपने में संप्रभु-सम्पन्न होता था और एक प्रकार से यह एक राज्य अथवा राष्ट्र से कम नहीं था। अधिकांश जनजातियों में वंशानुगत तरीके से मुखिया का पद होता था और कुछ में यह जन सामान्य अथवा जन प्रतिनिधियों के द्वारा चुना जाता था। प्रत्येक गांव में कई कुल के लोग रहते थे और हर एक कुल के लोगों के द्वारा प्रौढ़ व्यक्तियों को अपने प्रतिनिधि के रूप में चुनकर विलेज समिति में भेजे जाते थे। इन्हीं में से किसी एक को विलेज-मुखिया के रूप में चुन लिया जाता था। यही मुखिया गंवई प्रशासनिक व्यवस्था का भी मुखिया हुआ करता था। हर एक नागा गांव के भूमि की एक परिसीमा रहती है और सैद्धांतिक रूप से गांव का मुखिया ही उस सम्पूर्ण भू-भाग का मालिक होता है। परन्तु यह भी तथ्य है कि वह गांव के भू-भाग का कोई भी अंश बेच या किसी को दे नहीं सकता था। यह परम्परा रही है कि किसी भी गांव की ज़मीन का एक छोटा टुकड़ा भी किसी अन्य गांव के निवासी को न दिया जाए। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि जनसंख्या-घनत्व की विरलता के कारण किसी भी व्यक्ति को अपने गांव की परिसीमा के बाहर के जमीन की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ती थी।

नागा जनजातियों की एक बड़ी विशेषता यह भी है कि वे बड़े मनमौजी होते हैं तथा स्वच्छंदता एवं उन्मुक्तता के बड़े प्रेमी होते हैं। यही कारण है कि एक ही वंश से उत्पन्न होते हुए भी वे इतनी अधिक जनजातियों व उप-जनजातियों में विभाजित होते चले गए। यहां उनकी जाति अथवा समाज का केन्द्रीकरण नहीं हुआ। यह हमेशा विकेन्द्रीकृत रहा, जो लोक की सबसे बड़ी विशेषता है। आज नागा जनजातियों की संख्या का 50 से अधिक होना तथा अपनी सामाजिक एवं संस्कृति लविविधता को बनाये रखना - स्पष्ट संकेत है कि उन्मुक्तता एवं स्वच्छंदता के ये बड़े शौकीन होते हैं। यही उन्मुक्त एवं स्वच्छंद प्रवृत्ति का परिणाम है कि प्रत्येक गांव एक-दूसरे से अलग होकर अपना स्वतंत्र अस्तित्व बनाये रखा है। वे सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं संस्कृति ल दृष्टि से स्वतंत्र होकर अपना जीवन व्यतीत करते रहे हैं, जिसे गांव-समाज अथवा विलेज स्टेट कहा जाता है। जैसे कि रिचर्ड हालेंग लिखते हैं, "They honored the independence and integrity of the village-state, violation of which led to inter-village war." (Haleng, 2000) नागाओं ने प्राचीन रीति एवं परम्पराओं के आधार पर ही भू-स्वामित्व की प्रणाली को विकसित किया है। इनका विश्वास है कि धरती माँ का रूप है तथा वह मनुष्य से बड़ी और प्राचीन है। ऐसा विश्वास है कि इस मिटटी से उत्पन्न मनुष्य यदि किसी की भूमि पर झूठा हक जमाता है, तो शीघ्र ही मिटटी में उसके फिर से मिल जाने का खतरा बना रहता है। इसीलिए प्राचीनकाल

से ही भू-स्वामित्व के नाम पर इनमें अनबन होने की संभावना नहीं दिखती या बहुत ही कम रही है। जमीन के नाम पर नागाओं में झगड़े न के बराबर ही मिलते हैं।

नागा लोक संस्कृति में 'मोरुंग' की परम्परा रही है, जो एक महत्वपूर्ण सामाजिक-शैक्षिक संस्था के तौर पर कामकरती है। यह युवाओं के सोने के स्थान के साथ-साथ शिक्षा का भी केंद्र है। मानव शिकार(Head Hunting) का भी नागा लोक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रहा है, क्योंकि इसी से किसी भी व्यक्ति के योद्धा बनने का मार्ग प्रशस्त होता था, - "The tradition of Naga life revolved round Head Hunting and the Feast of Merit! It was every body's wish and longing to perform the Feast of merit and to be a successful warrior in head hunting." (Haleng, 2000) इसकी मान्यता है कि जो योद्धा अपने जीवन में जितने अधिक शत्रुओं का संहार करता है, वे सभी उस योद्धा की मृत्यु-लोक की यात्रा के समय उसके दास अथवा संगी बनकर उस लोक में जाते हैं। कुछ जनजातियों में तो यह भी माना जाता है कि उसके द्वारा मारे हुए सभी जानवर भी उसके साथ-साथ स्वर्गलोक को जाते हैं। पारंपरिक रूप से नागाओं के घर बाँस, लकड़ी एवं एक विशेष प्रकार के फूस से बनाये जाते हैं, जिसमें प्रायः दो भाग होते हैं। नागाओं के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में 'गेना' (Genna) अथवा वर्जना की परम्परा महत्वपूर्ण रही है। नागाओं का पारिवारिकस्वरूप संयुक्त न होकर एकल रहा है।

1.4 : जेलियांग जनजाति:

जेलियांग पूर्वोत्तर भारत की एक प्रमुख नागा जनजाति है, वर्तमान में असम, मणिपुर तथा नागालैंड के सम्बन्धित जिलों में निवास करती है। जेलियांगरोंग समुदाय के बारे में कहा जाता है कि ये मखेल से निकलकर रामतिंग कबिन, चेवांग फुंगनिंग और मकुइल्वन्दी होते हुए अपने वर्तमान क्षेत्र में आये थे। यह भी मान्यता है कि यहीं से जेलियांगरोंग संस्कृति की शुरुआत हुई थी। यहीं से जेमै, लियांगमै और रोंगमै अपनी-अपनी विशिष्टताओं के साथ अलग-अलग स्थानों की ओर चले गए थे। परन्तु प्रवर्जन की यह प्रक्रिया अचानक या तेजी से न होकर होकरधीरे-धीरे हुई थी। इस संदर्भ में प्रो. गान्मुमई कामै लिखते हैं, "It must have taken centuries for the ancestors of the Nagas including the Zeliangrong people to move down from and then moving into their present habitat." (Kamei, 2004) सम्प्रति ये पेरेन (नागालैंड), एन.सी. हिल्स (अब दिमा हसौ, असम) तथा तमेंगलोंग एवं सेनापति (मणिपुर) जिलों में निवास करती हैं।

मूल रूप से 'जेलियांग' शब्द दो शब्दांशों का संयुक्त रूप है, जो उसकी उपजातियों- जेमे व लियांग्मै से बना है। वैसे तो इन्हें सामाजिक बंधन की दृष्टि से जेलियांगरोंग के नाम से जाना जाता है, किंतु नागालैंड राज्य के जातीय पंजीकरण में केवल जेमे एवं लियांग्मै लोगों को शामिल करते हुए इनका 'जेलियांग' नामकरण कर दिया गया है, अन्यथा जेमे, लियांग्मै तथा रोंग्मै लोग एक ही कुल से उत्पन्न माने जाते हैं। इन्हें संयुक्त नाम देने के पीछे उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमी, सामाजिक संरचना, भाषा-स्वरूप एवं जीवन-शैली की साम्यताओं को माना जा सकता है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आज भी इन लोगों में सामाजिक बंधन अन्य लोगों की तुलना में परस्पर बहुत सशक्त तथा घनिष्ठ हैं और इनके पारंपरिक त्योहार, सामाजिक व्यवहार तथा धार्मिक विश्वास एवं मान्यताओं में ग्रामीण परिवेश के अनुसार कुछ परिवर्तन को यदि निकाल दिया जाए, तो अद्भुत समानता पाई जाती हैं।

जनसंख्या की दृष्टि से 'जेलियांगरोंग' एक बड़ा जन-समुदाय है और यदि केवल जेलियांग के संदर्भ में बात कही जाए, तब भी बहुत से अन्य नागा जनजातियों की अपेक्षा ये अधिक विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए हैं और जनसंख्या की दृष्टि से भी अपेक्षाकृत अधिक हैं। स्वतंत्र भारत में इन्हें असम, मणिपुर और नागालैंड तीन प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया और नागालैंड में जहां इन्हें जेलियांग नाम मिला, वहीं मणिपुर में कचा नागा तथा असम में जेमे नाम प्राप्त हुआ। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की सेनानी पद्मभूषण रानी गार्दिन्त्यु के नेतृत्व में 'जेलियांगरोंग पीपल्स कन्वेंशन' के बैनर तले बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में 'जेलियांगरोंग होमलैंड' के रूप में इनके लिए एक अलग राज्य की मांग की गई परन्तु अन्य नागा जनजातियों के विरोध के चलते इसे मूर्तरूप न दिया जा सका और यह जनजाति भारत के तीन प्रान्तों में अलग-अलग नामों से बिखरी हुई है।

1.5 : जेलियांग- सामाजिक संरचना:

जेलियांग नागाओं में कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाएं विद्यमान रही हैं, जो समय परिवर्तन के साथ-साथ कुछ तो समाप्त हो गयी हैं और कुछ आज भी मौजूद हैं। इनमें कुछ तो खास है, जिसके कारण इनकी जीवंतता शाश्वत है। इस संदर्भ में बात करते समय हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि इस जनजाति के सामाजिक स्वरूप का सबसे बड़ा एवं स्वतंत्र इकाई गांव है। अंग्रेजों के अधिकार में तथा बाद में भारतीय शासन के अंतर्गत आने के पूर्व तक एक प्रकार से प्रत्येक गांव एक कबीला की तरह ही अपने आप में स्वतंत्र था। इस सन्दर्भ में William McCulloch का कथन उद्धरणीय है, "Their world view was confined to the village which was a geographical entity with social, cultural and political parameters." (Kamei, 2004) आज यद्यपि सरकारी

तंत्र के प्रभाव के कारण उनमें बहुत बदलाव आए हैं फिर भी सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इनकी स्थिति यथावत बनी हुई है। अतः जब ग्रामीण समाज के विभिन्न संस्थाओं की बात की जाती है, तब निम्न आयाम आते हैं जो अब भी किसी-किसी गांव में हैं- परिवार, किखुन/किदुई (कुल), खंग्यू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेऊ), चेहुत (हेगुत), सिन्कू (तिन्कू) प्रणाली, चेवांग (हेग्वांग) परंपरा।

1.5.1 : परिवार

जेलियांग समाज की सबसे महत्वपूर्ण इकाई परिवार है जिसकी अगुआई एक पिता करते हैं। इस समाज में एकल परिवार की परम्परा रही है। इस संदर्भ में यह उद्धरणीय है, "Generally, most of the families (in Zeliang society) consisted of husband and wife, their unmarried and minor children. These families are normally nuclear in nature since its core is the married couple." (Riamei, 2018) इस एकल परिवार की परंपरा के लिए इनके पारंपरिक छोटे एवं अस्थायी घरों को कारक माना जा सकता है। घर-निर्माण लकड़ियों तथा एक विशेष प्रकार के घास, जिसे स्थानीय भाषा में 'खेर' कहा जाता है- से किया जाता है और दस से पंद्रह वर्ष के बाद उसे तोड़कर फिरसे नया घर बनाया जाता है।

पितृ-सत्तात्मक परिवार की परंपरा तथा परिवार के महत्वपूर्ण विषयों के निर्णय घर के मुखिया अर्थात् पिता द्वारा ही लिया जाता है। हालांकि उसकी अनुमति के बिना भी माँ एवं अन्य सदस्यों की भागीदारी परिवार में महत्वपूर्ण बनी रहती है। कृषि कार्यों में माता-पिता के साथ-साथ बच्चों की भी भागीदारी समान रूप से रहती है। यद्यपि आज शिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया में बच्चों एवं नौजवानों की इसमें भागीदारी कम हो गयी है। फिर भी गांवों में रहने वाले युवक-युवतियाँ आज भी कृषि संबंधी कार्यों में समान रूप से भाग लेती हैं। झूम कृषि के लिए भारी शारीरिक कार्यों के अतिरिक्त अनाज-बीजों की बोआई से लेकर फसल की कटाई व अन्न संग्रह करने तक के सभी कार्यों में स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं। कृषि कार्य में सबसे अधिक व्यस्तता के दौरान परिवार के छोटे-छोटे बच्चों तथा उनकी देख-रेख के लिए किसी एक बुजुर्ग को छोड़ कर सभी लोग खेतों की ओर चले जाते हैं। त्योहारों एवं शीत के दो महीनों को छोड़ कर समाज के लोग साल भर कृषि कार्य में व्यस्त रहते हैं। जब कभी नए परिवार के लिए कृषि कार्य तथा बच्चों की देख-रेख एक समस्या बन जाती है, तब ऐसे परिवारों के बच्चों की देख-रेख का जिम्मा गांव की किसी बुजुर्ग महिला को दे दिया जाता है, जिससे उस परिवार के कृषि कार्य में बाधा न पड़े। यह सामाजिक दायित्व दरअसल आदिवासियों के बीच ही बची हुई है। इस प्रकार जहां एक परिवार छोटा इकाई है वहीं पूरा गांव कभी-कभी एक परिवार की तरह दिखने लगता है।

1.5.2 : किखुन/किदुई (कुल/घराना)

जेलियांग गांवों में परिवार से बड़ी इकाई कई किखुन/किदुई हुआ करती हैं, जिन्हें कुल या खानदान भी कहा जा सकता है। एक किखुन का प्रत्येक परिवार एक ही पिता-वंशावली से उत्पन्न माना जाता है और इसमें अंतर्विवाह भी वर्जित है। इस संदर्भ में यह उद्धरणिय है, "Any clan could be traced back to a single family, which had multiplied into numerous families but stayed connected to each other." (Riamei, 2018) जब किखुन या किदुई की बात की जाती है तब यह भी उल्लेखनीय है कि जेलियांग जनजाति में दो मुख्य कुल हैं, जिन्हें न्यूमै एवं पामै के नाम से जाना जाता है। सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से, इन दोनों कुलों में किसी प्रकार का अंतर नहीं किया जाता।

व्यावहारिक रूप में किसी गांव में कुल की जनसंख्या के अनुसार उनके प्रभाव को लक्षित किया जा सकता है। न्यूमै एवं पामै एक गांव-सीमा से बंधा हुआ न होकर सम्पूर्ण जेलियांग जनजाति में व्याप्त है। परन्तु गांव विशेष में इन्हीं के कई किखुन हो जाया करते हैं। सम्पूर्ण गांव-भूमि में प्रत्येक किखुन के निश्चित भू-भाग होते हैं, जिनपर कृषि-कार्य की दृष्टि से केवल उन्हीं का अधिकार होता था। ये किसी भी सामाजिक, धार्मिक या सांस्कृतिक अनुष्ठान या उत्सवों पर अन्य किखुन सदस्यों की अपेक्षा अपने कुल-परिवारों के साथ अधिक निकटता से जुड़े देखे जाते हैं। इस प्रकार एकल परिवार की परंपरा में भी एक किखुन को बड़े-परिवार के रूप में देखा जा सकता है।

1.5.3 : खंग्च्यू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेऊ)

खंग्च्यू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेऊ) जेलियांग समाज की ऐसी दो सामाजिक संस्थाएं रही हैं, जो समाज के युवक-युवतियों में जीवन के मूल्य संचारित करते आये हैं। ये संस्थाएं युवक-युवतियों के शिक्षण-प्रशिक्षण के केन्द्र माने जाते हैं। खंग्च्यू अर्थात् युवकों के लिए वह स्थान, जहां गांव के सभी अविवाहित युवक अपनी रात बिताते हैं। इसी प्रकार ल्युच्यू युवतियों के लिए सोने का स्थान हुआ करता है। आज सामान्य भाषा में इसे मोरुंग के नाम से जाना जाता है।

प्रत्येक गांव में अक्सर दो या अधिक खंग्च्यू हुआ करते हैं। खंग्च्यूकी अर्थात् युवकों का घर, जिसमें दिनभर के अपने घर एवं खेती के कार्यों से निपटने कर रात्रि-भोजन के बाद सोने तथा सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए एकत्र होते हैं। बुद्धा कामेई लिखते हैं, "Khangchiu is one common and very important socio-cultural and political institution of the

Zeliangrong. It provides as a communal sleeping hall for the boys and other members of the dormitory.” (Kamei, 2015) इस तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि केवल अविवाहित युवक ही नहीं बल्कि विवाहित पुरुष भी खंग्च्यू सदस्य होते हैं तथा वे भी अपने मोरुंग में सोते हैं। युवकों को शिक्षित करने के कार्य बुजुर्ग लोग करते हैं। ये ज्ञान, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ इसी हंग्सेऊ के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती हैं। जब हंग्सेऊ या युवक-मोरुंग की बात की जाती है, तब यह एक अपेक्षाकृत बड़ा घर होता है, जिसमें घर मालिक के साथ-साथ खंग्च्यू सदस्यों के बैठने तथा सोने के लिए पर्याप्त स्थान होते हैं।

उक्त बातों के अतिरिक्त खंग्च्यू के प्रबंधन एवं परिचालन सम्बन्धी कुछ अन्य और भी बातें हैं, जो बड़े ही दिलचस्प हैं। युवक-जन शाम के समय रोज़ जंगल से लकड़ियाँ लाते हैं ताकि बुजुर्गों के साथ बैठकर अपनी रात अँधेरे में न गुजारनी पड़े। आग जलती रहेगी, रोशनी और ताप मिलते रहेंगे तथा बुजुर्गों का सुखद संयोग भी उन्हें मिलता रहेगा। मोरुंग परिचालन की परम्परा रही है कि जब भी कोई सदस्य किसी जानवर का शिकार करता है, तब उस जानवर का सर, हृदय और गुर्दा मोरुंग में लाया जाता है तथा उसे पका कर सभी सदस्यों को दावत दी जाती है। खंग्च्यू को समर्पित जानवर के सिर का पकवान महिलाओं के लिए पूरी तरह वर्जित है। हंग्सेऊ से जुड़ी बातों में शिकार-पूजा (तथ्युलेंग/हेतेउले), त्योहारों के मौकों पर पारंपरिक खेलों में भागीदारी तथा किसी विशेष आयोजन पर मिथुन को पकड़ने की प्रतियोगिता आदि बातें भी आती हैं। तथ्युलेंग खंग्च्यू में एक प्रकार का आयोजन होता है, जो अक्सर वर्ष के प्रारंभ में किया जाता है और इसमें अधिक शिकार की प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है। त्योहारों में आयोजित पारंपरिक खेल यद्यपि सामूहिक न होकर वैयक्तिक होते हैं, परन्तु अपने मोरुंग के यश के लिए सभी सदस्य अपने मोरुंग के खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करते हैं। मिथुन-पकड़ प्रतियोगिता एक प्रकार से सामूहिक खेल है। यह इतना बड़ा जानवर होता है कि एक अकेला व्यक्ति उसे पकड़ कर गिरा नहीं सकता। ऐसे में सभी सदस्यगण उसे मिलकर पकड़ते हैं।

जेलियांग नागा गांवों में ‘खंग्च्यू’ की संख्या के अनुसार ही युवती-मोरुंग अर्थात् ल्युच्यूकी भी होते हैं। गांव के किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के परिवार को ही इसका मालिक बनाया जाता है। जब यह घर बन रहा होता है, तब अन्य घरों से काफी बड़ा बनाने के कारण गांव के अधिक से अधिक लोगों का सहयोग अपेक्षित रहता है। यह मालिक का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सदस्य-समाज का घर होता है, क्योंकि सभी सदस्य-युवतियों के शयन का स्थान यही होता है।

जिस प्रकार हंग्सेऊ परिचालन की परम्पराएं हैं, उसी प्रकार लेउसेऊ परिचालन की भी कुछ विशेष परम्पराएं होती हैं। युवतियां रात-भोजन के बाद अपने-अपने लेउसेऊ में सोने के लिए जाती हैं। वे मोरुंग-माँ अर्थात मालकिन से स्त्रियोचित जीवन-व्यवहार के ज्ञान भी प्राप्त करती हैं। कुछ युवतियाँ अपने घरों से सूत कातने के लिए रुई ले कर आती हैं। ल्युच्यू के सम्बन्ध में यह कथन उद्धरणीय है, "Unlike the khangchiu, the category of membership of this dormitory (liuchiu) is only the unmarried girls." (Kamei, 2015) जिस प्रकार हंग्सेऊकी में बुजुर्ग पुरुषों के आने तथा उनके द्वारा गीत व कहानियां गाने-सुनाने की परम्परा है, उसी प्रकार लेउसेऊकी में भी बुजुर्ग महिलाएं आती हैं। जब अपने हंग्सेऊकी में प्रौढ़-जन सोने लगते और जलती हुई आग, राख से दबकर बुझने लगती है, तब युवक-जन लेउसेऊकी टहलने निकल पड़ते हैं। वे आपस में हास-परिहास और बातचीत भी करते हैं। कुछ युवतियाँ बड़ी खुली होती हैं, पर अधिकांश युवतियाँ उन युवकों के सामने घूँघट डाले, सिर नीचा किये सूत कातती रहती हैं। ऐसी स्थिति में युवकजन युवतियों से गीतों में ही वार्तालाप करते हैं। यहां की परंपरा के अनुसार यदि युवतियों को किसी युवक से गीत सुनना होता था, तब वे उसे एक लाठी पकड़ा देती थीं। इसके बाद उस युवक के सामने गीत सुनाने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय न होता था। इस प्रकार लेउसेऊकी, जो युवतियों के लिए एक शिक्षण संस्था है, वहीं दिनभर के कार्यों की थकान को दूर करने तथा अपने हम-उम्र के लोगों के साथ आनंद उठाने का भी एक माध्यम था, जो आज भी कमोबेश अपनी पहचान को बनाये हुए है।

1.5.4 : चेहुत (हेगुत)

जेलियांग समाज में हेगुत या चेहुत का कृषि कार्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण स्थान है। हेगुत का अर्थ है, युवकों एवं युवतियों का वह समूह जो बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में जा कर काम करते हैं और कृषि कार्य-व्यवस्था में भी एक-दूसरे का साथ देते हुए जीवन-व्यापार को आगे बढ़ाते हैं। एक हेगुत अक्सर एक हंग्सेऊ एवं एक लेउसेऊ के सदस्य मिलकर बनाते हैं, परन्तु कभी-कभी अपनी संगति-सुविधानुसार अपने हंग्सेऊ अथवा लेउसेऊ से बाहर के लोगों के साथ भी मिलकर अपना समूह बना लिया जाता है, जिसमें एक बुजुर्ग या वरिष्ठ व्यक्ति का होना अनिवार्य माना जाता है। वरिष्ठ व्यक्ति के द्वारा हेगुत के तौर-तरीकों और कार्य का निर्देशन होता है; साथ ही ये किसी कार्य में गाये जाने वाले गीतों के प्रशिक्षण व अगुवाई के कार्य भी करते हैं। एक प्रकार से वह व्यक्ति उक्त समूह का अभिभावक होता है। वही यह भी तय करता है कि अमुक दिन किसके खेत में कार्य करने हेतु जाना होगा। यह एक ऐसी प्रणाली है, जिससे कृषि कार्य में अपेक्षाकृत कम क्षमता रखने वाले व्यक्ति के खेत में भी समान श्रम-क्षमता के साथ कार्य हो जाता है। इसलिए सामाजिक सहयोग की दृष्टि से इसे

अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इसके माध्यम से परस्पर सहयोगी कार्य जैसे - जंगल की कटाई, उसे जलाकर साफ़ करने, बीज लगाने, निराई करने से लेकर फसल की कटाई तक निरंतर चलते रहते हैं। कभी-कभी यह चेहुत बिना किसी सदस्य-परिवर्तन के साथ वर्षों तक भी बना रहता है।

1.5.5 : सिन्कू (तिङ्कू) प्रणाली

जेलियांग नागा गांवों में पुरोहित के रूप में कार्य करने वाले को सिन्कू कहा जाता है। वह गांव का सबसे आदरणीय व्यक्ति माना जाता है। प्रत्येक गांव में एक मुख्य सिन्कू होता है तथा उसकी सहायता के लिए एक-दो सहायक भी होते हैं। ये मुख्य सिन्कू की अनुपस्थिति में घर अथवा गांव के लिए पूजा-अनुष्ठान का कार्य सम्पादित करते हैं। भारतीय स्वतंत्रता के पूर्व तक किसी भी गांव में गांव-पंचायत की प्रणाली नहीं थी। ऐसे में, तिङ्कू या सिन्कू ही मुखिया की तरह कार्य करता था। सम्पूर्ण गांव के लिए वही घोषणाएं करता था। लोगों तक सूचनाएं भी उसी के माध्यम से पहुँचती थीं। किसी भी कृषि-संबंधी कार्य को आरम्भ करना हो, किसी त्यौहार की तिथि तय करनी हो या फिर त्यौहारों का आरम्भ इसकी घोषणा के बिना कुछ न होता था। इसलिए मुख्य सिन्कू हो या सहायक अपना जीवन अत्यंत संयमित ढंग से जीता था। सिन्कू प्रणाली के बारे में डॉ. आर. ब्राउन ने अपने 'Account of Zeliangrongs' में लिखा है, "Each (Zeliangrong) village has a priest who directs the sacrifices and also acts as the physician, performing sacrifices and incantation for the recovery of the sick." (Brown, 1874, Kamei, 2004) इससे पता चलता है कि सिन्कू का काम केवल पूजा-अर्चना तक ही सीमित नहीं था बल्कि वह गांव में बीमार व्यक्ति का इलाज़ भी करता था।

मुख्य सिन्कू की मृत्यु के बाद उसके किसी एक सहायक को मुख्य सिन्कू बनाया जाता था। यह प्रणाली पिता से पुत्र को धरोहर के रूप में नहीं बल्कि गांव-समाज ही तय करता था कि अगला मुख्य सिन्कू कौन बनेगा। इस प्रकार जेलियांग समाज में सिन्कू प्रणाली को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था तथा आज भी पुरातन-धर्मी गांवों में इसका अनुपालन किया जाता है।

1.5.6 : चेवांग/हेगवांग (राजा) परम्परा

जेलियांग गांवों में चेवांग की भी परम्परा रही है, परन्तु यह सिन्कू प्रणाली से पूर्व की है। किसी-किसी गांव में तिङ्कू प्रणाली एवं चेवांग या हेगवांग की परम्परा भी समानांतर रूप से चलती रही है। गाँवों में राजा होते थे, परन्तु उनका ग्रामीण जीवन-व्यापार में ज्यादा हस्तक्षेप नहीं होता था। प्रो। गान्मुमई कामै लिखते हैं, "An elder who led the people in the migration and settlement

at the new site was made the Chief.” (Kamei, 2004) इससे स्पष्ट है कि एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर प्रवर्जन के समय अथवा किसी गांव-भूमि की खोज के समय कोई एक व्यक्ति जन-समूह का नेतृत्व करता था। गांव की स्थापना का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति अनायास ही उस गांव का राजा कहलाता था। एक प्रकार से वही गांव के संपूर्ण भू-भाग का मालिक होता था। यदि कोई व्यक्ति बाहर से आकर उस गांव में रहने लगता था तो गांव-संस्थापक अर्थात् चेवांग की अनुमति से वह गांव-भूमि के किसी हिस्से का अधिग्रहण अपने लिए करता था। कालांतर में वह भूमि उसके किखुन का हिस्सा हो जाता था। यद्यपि चेवांग सम्पूर्ण जमीन पर अपना आधिपत्य नहीं जमाता था, फिर भी सम्मान के तौर पर ग्रामीणजन उसे भेंट के रूप में प्रतिवर्ष अनाज देते थे। किसी-किसी गांव में जब किसी को शिकार के रूप में जानवर मिलता, तो राजा को भेंट के रूप में उस जानवर की 'टांग' दी जाती थी। यह परम्परा आज भी कहीं-कहीं विद्यमान है। जब कोई शिकारी किसी बहुत बड़े जानवर को मार लेता या किसी हिंसक पशु- भालू, शेर आदि का शिकार करता था, तब वह उस पशु को सम्पूर्ण गांव को समर्पित कर देता था। ऐसे में, उस जानवर के शरीर को पूरे गांव के लोग मिलकर उठाते तथा राजा के घर ले जा कर रख देते थे और उसके मांस को सभी लोगों में बाँटा दिया जाता था। ऐसी स्थिति में भी जानवर के सिर, हृदय एवं गुर्दे को शिकारी के हंग्सेऊकी में ही दिया जाता था।

इस प्रकार हेन्वांग की परम्परा जेलियांग समाज में रही है, भले ही वह एक राजा की तरह पेश न आता हो, फिर भी नाम के लिए ही सही राजा हुआ करता था। परन्तु यदि ग्रामीणजन के बीच किसी प्रकार की लड़ाई, भूमि सम्बन्धी झगड़े या अन्य कारणों से किसी समस्या का हल नहीं निकलता, तब राजा ही उसका निर्णय करता था अर्थात् न्याय प्रणाली प्रायः राजा के ही अधीन रहता था।

1.6 : जेलियांग जनजाति में लोक गीतों की परंपरा

किसी भी समाज में लोक साहित्य की विद्यमानता अनिवार्य रूप से होती है। जनजातीय समाज में लोक-साहित्य का लोकरंजक व लोकरक्षक दोनों रूप अपनी जीवन्तता के साथ विद्यमान रहते हैं। नागा जनजातियों के साहित्यिक अवलोकन से स्पष्ट होता है कि सभी जनजातियों का लोक-साहित्य अपनी विशिष्टताओं के साथ अपने समुदाय के जीवन प्रणाली को आत्मसात करते हुए लोकरंजन व लोकरक्षण करता रहता है। कालांतर एवं सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ-साथ सांस्कृतिक दृष्टिकोण में बदलाव आने के कारण यहां का लोक-साहित्य अपनी जीवन्तता को खोता-सा प्रतीत हो रहा है। फिर भी सुदूर ग्रामांचलों के लोक-जीवन में आज भी यह जीवंत है। लोक भले ही कितना बदल जाए लेकिन वह सम्पूर्ण नहीं बदलता, बल्कि अपनी बेहतरी के लिए अच्छे को स्वीकार करता और

जड़-पुरानी परम्पराओं को छोड़ता चला जाता है। यह बदलाव उसकी जरूरत के अनुसार होता रहता है। साथ ही, नवीन का संचार उनमें नवजीवन प्रदान करता रहता है। तभी तो नागा समाज आधुनिक होकर भी अपने लोकगीतों को आज भी जिंदा रखा हुआ है।

जेलियांग जनजाति में लोक-गीतों की परंपरा विविधताओं से परिपूर्ण है। यद्यपि यहां भी लोक-साहित्य की लोकप्रियता में कमी आई है। वास्तव में लोक-जीवन के जितने भी आयाम होते हैं, उन सभी पहलुओं से सम्बद्ध हर्ष, विषाद, संघर्ष, उल्लास एवं गौरव संबंधी असंख्य गीत इस समाज में आज भी गाये जाते हैं। यहां लोकगीतों का विपुल भंडार है। इसीलिए इनका वर्गीकरण करना अनिवार्य है; यथा – गीत के आकार, गायकों की संख्या, गायकों की अवस्था, गायकों के लैंगिक आधार, भावों के आधार आदि। आकार या स्वरूप के आधार पर लम्बे गीत एवं छोटे गीत, गायकों की संख्या के आधार पर एकल, जुगल एवं सामूहिक गीत, अवस्था के आधार पर बच्चों एवं वयस्कों के गीत, गाये जाने के समय के आधार पर कृषि कार्य गीत, त्यौहार/उत्सव के गीत, विवाह के गीत, प्रार्थनाएँ और विशिष्ट अनुष्ठान के गीत तथा भावों के आधार पर प्रेम विषयक, भक्ति परक, प्रशस्ति, आत्मप्रशस्ति आदि देखे जा सकते हैं। इस प्रकार जेलियांग लोक साहित्य में गीतों का ऐसा अम्बार है कि यदि उनका ईमानदारी के साथ संकलन किया जाए तथा उनमें निहित भावों को समझा जाए, तो उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के मर्म एवं सौंदर्य को विशालता के साथ अनुभव किया जा सकता है। यही कारण है कि आज नागालैंड अन्य राज्यों से ज्यादा विकसित व सभ्य समुदायों का राज्य है। कुछ लोग तो इससे इतने प्रभावित हैं कि इसे मिनी यूरोप भी कहते हैं।

गीतों के स्वरूप या आकार से यहां तात्पर्य गीतों की लंबाई से है। जेलियांग लोकगीतों में आकार के आधार पर लघु एवं लंबे गीत प्राप्त होते हैं। यहां ध्यातव्य बात यह है की लोक में गाए जाने वाले अधिकांश गीत छोटे ही होते हैं, इसलिए इन्हें छोटे गीत या इसके विशेषण युक्त कोई नाम प्राप्त नहीं है पर आकार की दृष्टि से अपेक्षाकृत लम्बे गीतों को 'लुइथेंग' के नाम से जाना जाता है। जेलियांग जनजाति में प्रचलित लोक गीत विभिन्न अवसरों एवं समय के अनुसार भी अपनी विशिष्टताओं के साथ गाए जाते हैं। यहां जीवन के विविध आयामों के अनुसार अलग-अलग समय पर या विभिन्न क्रिया-कलापों पर आधारित लोक गीत गाए जाते हैं। कृषिकार्य करते हुए गाए जाने वाले गीतों को कृषि गीतों के अंतर्गत रखे जाते हैं। जेलियांग जनजाति की सामाजिक संरचक तत्वों में **चेहुत या हेगुत** कृषिकार्यों पर आधारित एक महत्वपूर्ण सामाजिक अंग है और जब कृषि कार्यों में चेहुत की भूमिका रहती है, तो वे कृषि कार्य के साथ-साथ गीत के लय को मिलाते हुए सामूहिक रूप में इन गीतों को गाते हैं। जेलियांग लोक गीतों की परंपरा में गाए जाने के समय या किसी विशेष आयोजन के आधार पर गाए जाने वाले

गीतों के अंतर्गत त्योहार एवं उत्सवों के गीत बड़े ही मशहूर हैं। जेलियांग जनजाति में पारंपरिक लोक त्योहार एवं उत्सवों में चेगांन्खे , चेगागादी , न्नुइडी, चेक्कक एवं अथौसक (कडे) मुख्य रूप से आते हैं और अंतिम को छोड़कर प्रायः अन्य सभी त्योहार संपूर्ण समाज के द्वारा मनाये जाने वाले त्योहार होते हैं, जिनमें सभी लोग मिलकर बड़े ही मनोयोग से लोक-गीतों के गायन का आनंद लेते हैं। लोकगीतों की परंपरा में शादी-ब्याह के अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों का अपना अलग महत्त्व होता है। जेलियांग समाज में शादी-ब्याह हो या फिर त्योहार-उत्सव , हर अवसर पर गीतों को खूब गाया जाता है और प्रायः हर्षोल्लास के समय गाए जाने वाले गीतों में त्योहारों एवं शादी ब्याह के गीतों में अंतर नहीं किया जाता है, फिर भी कुछेक प्रकार के गीत ऐसे होते हैं, जिन्हें केवल शादी-ब्याह के दिन, वह भी दुल्हन को विदाई देते समय गाए जाते हैं। इन गीतों का अपना अलग महत्त्व होता है। वैसे तो हर्षोल्लास के गीतों के साथ-साथ कभी-कभी दुल्हन पक्ष की ओर से दूल्हा को चुनौती देते हुए क्रोध का स्वांग करते हुए नाटकीय अंदाज में कुछ गीत गाए जाते हैं। गाए जाने के समय या आयोजन आधारित गीतों के अंतर्गत नृत्य करते समय गाए जाने वाले गीतों को चेलिन लुई (नृत्य के गीत) कहा जाता है। जेलियांग लोक गीतों में चेलिन लुई अन्य गीतों से इस बात में अलग एवं विशिष्ट है कि इनमें नृत्य की क्रियाशीलता को दर्शाया जाता है।

जेलियांग जनजाति के लोकगीतों की परंपरा में, यद्यपि प्रार्थना गीत या कहुम लुई की परंपरा बहुत प्राचीन नहीं है, फिर भी आज के लगभग एक सौ वर्ष पूर्व जब जादोनाग एवं गाइदिन्यू ने समाज में धार्मिक सुधार करके 'हेराका' नाम के पंथ की स्थापना की, तब कहा जाता है, कि ईश्वर की प्रेरणा से उन्हें अनेक गीत प्राप्त हुए जिनमें से कुछ प्रार्थना गीतों के अंतर्गत आते हैं। जेलियांग समाज में कृषि, विवाह एवं त्योहार, उत्सवों से संबंधित गीत सैकड़ों वर्षों से प्रचलित रही हैं और समाज के बहुसंख्यक वर्ग के द्वारा विभिन्न आयोजनों में इनका गायन एवं श्रवण होता रहा है परंतु जहां तक प्रार्थना गीतों की बात है, एक पंथ विशेष के लोगों के बीच ही गाए जाने के कारण ये समाज के सर्वसाधारण तबके तक प्रचलित नहीं है। जेलियांग लोकगीतों के अंतर्गत प्रार्थना के समय गाए जाने वाले गीतों में भक्ति के भाव अभिव्यंजित होते हैं। इन गीतों में लोक अपने जीवन में सुख-शांति एवं समृद्धि की कामना करते हुए अपने आराध्य के प्रति भक्ति की भावनाओं से युक्त गीत गाते हैं।

जेलियांग लोक गीतों में जीवन के विविध आयामों के समावेशन के साथ-साथ परिस्थितियों एवं आयोजनों के अनुसार उनमें विभिन्न भावों को अभिव्यक्ति मिली हुई है जिनमें कहीं लोक को उल्लसित करके संपूर्ण समाज को लोक-रंजित कर देने के भाव होते हैं तो कहीं लोक-जीवन से पलायन तथा लोक-संस्कारों के विलुप्त होते परिदृश्य को देख लोगों के मन में उत्पन्न पीड़ा एवं तड़प के कारण विरह

की भावनाओं को व्यंजित किए गए हैं। इसके साथ ही इन गीतों में जहां अपने देश एवं गांव के प्रति प्रेम, उसकी सांस्कृतिक परंपराओं को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए संपूर्ण लोक-भूमि को किसी सम्राट के ऐश्वर्यपूर्ण दरबार की संज्ञा दे दी गई है वहीं प्रेमी-युगलों के अगाध प्रेम में संयोग-वियोग के अत्यंत मार्मिक भाव अभिव्यक्त हुए हैं। इतना ही नहीं इनके लोक गीतों में किसी यजमान को गौरवान्वित करते हुए उसे किसी सिंहासन में बिठा देने की क्षमता है तो इन्हीं गीतों के माध्यम से आत्म-प्रशस्ति में स्वयं को किसी राजकुमार के रूप में प्रतिस्थापित करने के भाव भी इनमें गुंठित हैं। जेलियांग समाज में प्रचलित लोकगीतों के अंतर्गत किसी गीत-विशेष को उनके गायकों की संख्या के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। इन लोकगीतों के अंतर्गत एक व्यक्ति के द्वारा गाए जाने वाले गीतों को लुइथेंग (लंबे गीत) कहा जाता है। कुछ गीत ऐसे होते हैं, जिनमें जुगलबंदी की संभावना होती है। इस प्रकार के गीतों के अंतर्गत प्रायः स्त्री-पुरुष की जुगलबंदी होती है। इन लोकगीतों में 'लुइथेंग' को छोड़ दिया जाए तो लगभग सभी प्रकार के गीत सामूहिक रूप में ही गाए जाते हैं। जेलियांग लोक में प्रचलित कुछ ऐसे विशिष्ट गीत होते हैं, जिन्हें अलग-अलग आयु वर्ग के लोगों के द्वारा गाए जाते हैं। इस आधार पर इन गीतों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है- सर्वसामान्य के द्वारा गाए जाने वाले गीत, वृद्धों के द्वारा गाए जाने वाले गीत, बच्चों के लिए / बच्चों के द्वारा गाए जाने वाले गीत। जेलियांग जनजाति के लोकगीतों के वर्गीकरण के आधारों में एक लैंगिक आधार को भी लिया जा सकता है क्योंकि लोक में प्रचलित गीतों में कुछ ऐसे गीत होते हैं, जो केवल पुरुषों के द्वारा गाए जाते हैं और कुछ गीत केवल स्त्रियों के द्वारा गाए जाते हैं। जेलियांग लोकगीतों की परंपरा के अंतर्गत गीतों के स्वरूप विविध समय एवं आयोजनानुसार गाए जाने , गायकों की संख्या, अवस्था इत्यादि की चर्चा के साथ-साथ उनके गायन के विविध स्वरूपों पर भी चर्चा कार लिया जाना अपेक्षित रहेगा, क्योंकि गीतों की विविधता के साथ-साथ उनके गायन की भी अलग-अलग पद्धतियाँ विद्यमान हैं, जिनका विश्लेषण किए बिना जेलियांग लोकगीत नामक शीर्षक को पूर्ण नहीं माना जा सकता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जेलियांग लोक में प्रचलित इन गीतों का विषय अत्यंत व्यापक है। इन लोक-गीतों में एक तो अपने गांव, अपने लोगों के प्रति लगाव का भाव व्यंजित होता है, वहीं दूसरी ओर यह भी देखा जा सकता है कि परदेश जाकर बसे लोगों को फिरसे वापस आने की भी गुहार लगाई गई है। इसके साथ ही, इनमें पशु-पक्षियों, अन्य जीव-जंतुओं, नदी, जल या चाँद जैसे प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से भी अपनी भावनाओं को व्यक्त किया गया है। भावनात्मक स्तर पर देखा जाए तो इन गीतों में प्रत्यक्ष अनुभूतियों के आधार पर अभिव्यंजित सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन के व्यापक एवं गूढ़ बिम्ब प्राप्त होते हैं।

1.7 : जेलियांग लोक कथाएँ

लोकसाहित्य में लोकगीतों के बाद कथाओं का स्थान आता है। इनका प्रचलन लोकरंजन व लोकरक्षण दोनों उद्देश्यों से ही किया जाता रहा है। कथाओं का वाचन अक्सर बूढ़ी महिला के द्वारा छोटे बच्चों के सामने करने की परंपरा रही है। जब समाज कृषि-कार्य में व्यस्त होता था और किसी एक बूढ़ी काकी को गांव के बच्चों की देख-रेख की जिम्मेदारी दी जाती थी, तब दोपहर के समय इन्हीं कथाओं के माध्यम से वह बच्चों का मनोरंजन करती तथा शिक्षा देने के कार्य भी करती थी।

लोक कथाओं में पुरातन, सामाजिक, प्रेम-विषयक एवं सांस्कृतिक तत्त्व प्रधानता के साथ प्राप्त होते हैं। मनोरंजन की दृष्टि से कभी-कभी हास्य-परक कथाओं का भी प्रचलन रहा है। कुछ कथाओं में मनोरंजन के साथ-साथ उपदेशात्मक तत्व भी पाए जाते हैं। कुछ कथाओं में परियों के मनोहर रूप, उनके चमत्कारों के माध्यम से किसी अनाथ बालक का सुखी-सम्पन्न हो जाना सामान्य बात रहती है। कुछ कथाओं में दक्षिण भारत में प्रचलित तेनालीराम की मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद तत्वों की विद्यमानता दिखती है। उल्लेखनीय है कि इन्हें समाज ने खुद रचा या तेनालीराम की कथाएं ही उड़ते-उड़ते आ इन इलाकों में आ पहुंची, यह कहना कठिन है। जेलियांग लोक-कथाओं में प्रेम मुख्य रूप से पाया जाता है। इन कथाओं में भाई-बहिन, पिता-पूत, माता-बेटी, बेटा-माता और पति-पत्नी के बीच सात्विक प्रेम-जन्य भावनाओं को आसानी से देखा जा सकता है। इसके साथ ही, इनमें लोकमंगल की भावनाओं के भी पुट पाए जाते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विषय-वस्तु की दृष्टि से लोक-कथाओं में आधुनिक कथाओं के सभी तत्व मौजूद हैं। फर्क अनायास और सायास का है। लोककथाओं में अनायासता दिखती है, जबकि शिष्ट कथाओं में सायासता दिखती है। यही अनायासता लोक कथा को जीवंत बनाती है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार कथा-तत्वों में बदलाव स्वाभाविक है।

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत पुरा कथाएँ, मनोहर कथाएँ अनाथों से संबंधित कथाएँ, वीर योद्धा संबंधी कथाएँ, शिक्षाप्रद कथाएँ, पशु पक्षी संबंधी कथाएँ तथा हास्य व्यंग्यात्मक एवं छोटे बच्चों के लिए अति लघु कथाएँ प्रायः सुनी और सुनाई जाने की परंपरा रही है। जेलियांग लोक में प्रचलित पुरा या प्राचीन कथाओं के अंतर्गत सृष्टि की रचना के बाद आदि मानव के द्वारा इस धरती पर मानव जीवन एवं उसकी सभ्यता के विकास को दर्शाने वाली कथाओं को लिया गया है अमांग एवं, जिनमें बंगलावांग, मुन्चेरुंग की कथाएँ आती हैं-असा। जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत अनेक मनोहर कथाएँ कही जाती हैं, जिनमें किसी कारणवश अनाथ हुए बच्चों के जीवन में चमत्कारपूर्ण घटनाओं के कारण उनका जीवन अभाव को पीछे छोड़ते हुए सुखमय हो जाता है। ऐसी कथाओं में प्रायः बच्चे आरंभ में अनेक

प्रकार के कष्टों को सहते हुए चित्रित किए जाते हैं। उपेक्षाओं एवं प्रताड़नाओं से पीड़ित बच्चों को प्रायः गृहत्याग या गृह-निष्कासन का सामना करते हुए दिखाए जाते हैं और अचानक किसी दैवीय कृपा अथवा कभी-कभी भूत पिशाचों के किसी कार्य-व्यापार के कारण उन्हें चमत्कारिक वस्तु अथवा शक्तियों को प्राप्त करते दिखाए जाते हैं। जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत अनाथों की कथाओं को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ऐसी कथाओं के अंतर्गत जब कभी किसी बच्चे के जननी की असमय मृत्यु हो जाती है या माँ के द्वारा उसका परित्याग कर दिया जाता है, तब उसके जीवन में आने वाली परेशानियों एवं संघर्षों को इन कथाओं में चित्रित किया जाता है। ऐसी कथाओं में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कोई अनाथ या तो माता-पिता दोनों से वंचित रहता है या फिर पिता के होते हुए भी माँ के अभाव में अनाथ की तरह जीवन जीता है। इन कथाओं में प्रायः माँ के होते हुए पिता के अभाव को अभावग्रस्त नहीं दिखाया जाता है, परंतु यदि पिता के होते हुए भी उसकी माँ न हो, तो उसे अनाथ के जैसा जीवन जीते दिखाया जाता है। जेलियांगलोक कथाओं के अंतर्गत कुछ ऐसी भी कथाएँ कही जाती हैं, जिनमें किसी वीर पुरुष के पराक्रम को चित्रित करते हुए सर्व सामान्य लोगों के लिए असंभव से लगने वाले अत्यंत ही कठिन एवं विरले कार्यों को सम्पन्न करते दिखाए जाते हैं। ऐसी कथाओं में जब किसी समाज, लोक अथवा स्त्रियों पर विपत्ति के बादल मंडराए होते हैं और उसके कारण लोगों में भय का माहौल बना होता है तब किसी नायक के द्वारा उनकी विपत्तियों का निवारण करते हुए उन्हें उस संकट से उबारते दिखाए जाते हैं।

कथा साहित्य की यह विशेषता है कि उनमें मनोरंजक तत्वों के साथ-साथ किसी न किसी प्रकार की शिक्षा सन्निहित रहती है। जेलियांग लोक कथाएँ भी इसकी अपवाद नहीं हैं और इनकी सभी लोक कथाओं में किसी न किसी रूप में शिक्षा या उपदेशात्मक तथ्य विद्यमान रहते हैं। इस पर भी कुछ कथाएँ ऐसी होती हैं, जिनमें लोगों को शिक्षा देने या उनका मार्गदर्शन करने के तत्त्व मुख्य रूप से उपस्थित होते हैं या यों कहा जा सकता है कि इस प्रकार की कथाओं की रचना ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से लोक मानस को सामाजिक जीवन के अंतर्गत शिक्षित करने के लिए ही किया जाता है। इन कथाओं में से जेलियांग लोक में प्रचलित नमुतुन की कथाएँ शिक्षाप्रद कथाओं के रूप में सुनी-सुनायी जाती हैं। जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत कथाकारों ने लोक जीवन को तो मार्मिक ढंग से चित्रित किया ही है, साथ ही उनके आस-पास पाए जाने वाले पशु-पक्षियों से संबंधित अनेक कथाएँ भी रचित हैं, जिन्हें लोक में मनोरंजन के लिये सुने-सुनाए जाते हैं। इनकी लोक कथाओं में मनुष्यों के साथ पशु-पक्षियों के अंतर्संबंध को तो दिखाया ही गया है, जिनमें कहानी के मुख्य पात्र के रूप में मानव ही होते हैं और उनके इर्द-गिर्द पशु-पक्षियों को अपने जीवन के लय में बहते चलते दिखाए गए हैं। परंतु इन

कथाओं से परे कुछ ऐसी कथाएँ भी हैं, जिनमें पात्र भी पशु-पक्षी हैं और कथावस्तु भी उनके जीवन से ही संबंधित हैं। जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत कुछ ऐसी कथाएँ हैं, जो हास्यव्यंग्यात्मक होने के - प्रद भी हैं-साथ एक प्रकार से शिक्षा-साथ। इस प्रकार की कथाओं में अचम्यू एवं अर्यांग नामक व्यक्तियों की कथाएँ लोगों को हँसाने के हेतु से लोक में सुने और सुनाए जाते हैं। जेलियांग लोक में प्रचलित कुछ ऐसी अतिलघु कथाएँ भी हैं, जिन्हें काव्यात्मक लय में छोटे बच्चों को सुनाया जाता है। इस प्रकार की कथाएँ बच्चों के मन को बहलाने के साथ-साथ रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग किए जाने वाले शब्दावलियों से भी उन्हें परिचित कराने के उद्देश्य से भी रचित होते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

- Bareh, Dr. Hamlet (1970). Gazetteer of India, Nagaland, Kohima District. Calcutta: Sree Saraswaty Press Ltd.
- Boruah, B.K. (1993). NAGAMESE: The Language of Nagaland. New Delhi: Mittal Publications. First Edition. ISBN-81-7099-353-9.
- Epao, Veprari (.....). From Naga Animism To Christianity. Dimapur: Hindustan Print-O-Print.
- Ganguli, Milada (1984). A Pilgrimage to the Nagas. New Delhi, Bombay and Calcutta: Oxford & IBH Publishing Co.
- Haleng, Richard (2000). The Naga Rapport- A tribute to the Naga Youths. Dimapur: AMEUA Publications.
- Kamei, Pro. Gangmumei (2004). A History of the Zeliangrong Nagas. New Delhi and Guwahati: Spectrum Publications.
- अग्रवाल, पुरुषोत्तम (1995). संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध. नयी दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. प्रथम संस्करण.
- उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव (1963). लोक साहित्य की भूमिका. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव (1987). लोक संस्कृति की भूमिका. वाराणसी.
- गुप्ता, रमणिका (2018). (सं) – पूर्वोत्तर का आदिवासी स्वर. लेख 'नागा इतिहास की खोज और पुनर्चना' – नैचुरियाजो चुचा. (अनु.) रमणिका गुप्ता. दिल्ली: अनन्य प्रकाशन.

दिनकर, रामधारी सिंह (1962). संस्कृति के चार अध्याय . इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
 यादव, डॉ. वीरेन्द्र सिंह (2012). (सं.)- लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति: परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य. नयी दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन. प्रथम संस्करण. ISSN- 978-81-8455-398-7.

साहू, डॉ. रवीन्द्र कुमार (2013). उधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं. दिल्ली: पैसिफिक पब्लिकेशन.

वेब ओपेक:

Kamei, Budha (2015). Zeliangrong : Social Structure.

<http://indpeadia.com/ind/index.php/Zeliangrong: Social structure>

Riamei, Dr. Gaikhamsin (2018). Social Structure of Zeliangrong Society, part-1.

<https://rongmeiencyclopedia.wordpress.com/2018/08/03/social-structure-of-zeliangrong-society/>

अध्याय- दो नागा जनजाति विषयक अध्ययन

2.1 नागालैंड

2.2 नागा जनजातियाँ

2.2.1 अंगामी

2.2.2 आओ

2.2.3 चखेसांग

2.2.4 चांग

2.2.5 ख्रम्युनान

2.2.6 कोन्याक

2.2.7 लोथा

2.2.8 फोम

2.2.9 पोचुरी

2.2.10 रेंगमा

2.2.11 संगतम

2.2.12 सुमी

2.2.13 यिम्खुंग

2.2.14 जेलियांग

2.3 कुकी, कछारी, गारो और मिकिर

अध्याय- दो

नागा जनजाति विषयक अध्ययन

2.1 : नागालैंड

नागालैंड पूर्वोत्तर भारत का एक छोटा-सा राज्य है, जिसकी सीमाएं पश्चिम में असम, उत्तर में असम एवं अरुणांचल, पूर्व में म्यांमार और दक्षिण में मणिपुर से लगी हुई हैं। यह भारतीय संघ के सोलहवें राज्य के रूप में 1 दिसंबर 1963 ई. को अपने अस्तित्व में आया। राज्य की राजधानी कोहिमा और सबसे बड़ा शहर दीमापुर है। इसका कुल क्षेत्रफल 16,579 वर्ग किमी और सन् 2011 ई. की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 19,80,602 है। राज्य में कुल सोलह जिले हैं जिनके नाम- चुमुकेदिमा, दीमापुर, किफिरे, कोहिमा, लोंगलेंग, मोकोकचुंग, मोन, न्यूलैंड, नोकलक, पेरेन, फेक, शमातोर, त्सेमेन्यु, त्वेन्सांग, वोखा और जुन्हेबोटो है। संवैधानिक मुखिया राज्यपाल है तथा कार्यपालिका के रूप में 60 सदस्यीय विधान सभा है, जिसके अंतर्गत मुख्यमंत्री, उसका मंत्रिपरिषद तथा विपक्ष आते हैं। यहाँ से लोक सभा तथा राज्य सभा के लिए एक-एक सदस्य चुने जाते हैं। यहाँ अलग से उच्च न्यायलय नहीं है, बल्कि गुवाहाटी उच्च न्यायलय के अंतर्गत कोहिमा बेंच कार्य करता है। यहाँ की राजभाषा अंग्रेजी है और साक्षरता का दर लगभग 80% है। राजकीय पशु मिथुन, पक्षी ट्रेगोपन, फूल रोडोडेन्ड्रोन तथा राजकीय पेड़ एल्डर (बड़ का पेड़) है, जिसका वनस्पति वैज्ञानिक नाम ऐल्स ग्लटिनोसा है।

भारतीय स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेजों एवं स्वातंत्र्योत्तर भारत में भारतीय संघ से नागा जनजातियों ने अपनी स्वतंत्रता एवं संप्रभुता के लिए लगातार माँग की थी। इन बातों को ध्यान में रखते हुए 'नागालैंड संक्रमणकालीन प्रावधान विनियमन 1961' के अंतर्गत यहाँ के लिए 45 सदस्यीय अंतरिम समिति का गठन किया गया और इसी क्रम में भारतीय संसद के द्वारा सन् 1962 ई. में 'नागालैंड एक्ट' को पास करके इसे राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। औपचारिक रूप से 1 दिसंबर 1963 ई. को नए राज्य के रूप में इसका उद्घाटन किया गया और 11 फरवरी 1964 ई. को लोकतांत्रिक रूप से यहाँ का पहला विधान सभा गठित किया गया। नागालैंड का अधिकांश भाग पहाड़ी क्षेत्र है, जिसमें नागा पहाड़ी श्रृंखला, पत्काई श्रृंखला और बराक श्रृंखला का कुछ भाग मुख्य रूप से आती हैं। सरामती यहाँ का सबसे ऊँचा पर्वत है जिसकी ऊँचाई 12,601 फीट है। मुख्य नदियाँ दोयंग, धनसरी और बराक हैं। राज्य के कुल क्षेत्रफल का लगभग 20% घने जंगलों से ढका हुआ है। यहाँ मानसून प्रभावी रहता है, जिसके कारण वर्षा 70-100 ईंच वार्षिक रहती है। फरवरी एवं मार्च में तेज हवाएं चलती हैं।

नागालैंड की कुल जनसंख्या का लगभग 88% ईसाई है। भारत के ईसाई बहुल तीन राज्यों मेघालय एवं मिज़ोरम के साथ यह भी एक है। कोहिमा, दीमापुर, मोकोकचुंग एवं वोखा जैसे नगरों में छोटे-बड़े गिरजे प्रत्येक नुक्कड़ पर देखे जा सकते हैं। ईसाइयों की कुल जनसंख्या का लगभग 75%

बैप्टिस्ट है और शेष में रोमन कैथोलिक, रिवाइवल, पेंटिकोस्टल और सेवेंथ डे जैसे अन्य ईसाई पंथ हैं। कोहिमा एवं दीमापुर में हिन्दू, मुस्लिम तथा राज्य के सुदूर ग्रामीण अंचलों में अपने पारंपरिक पैतृक धर्म के अनुयायी कई नागा जनजातियों में विद्यमान हैं। प्रत्येक नागा जनजाति की अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ ही अनेक पर्वों एवं त्योहारों को भी मनाने की परंपरा रही है और कृषि-प्रधान सामाजिक पृष्ठभूमि रहने के कारण इनके प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण त्योहार किसी न किसी रूप में कृषि-कार्य प्रणाली तथा मान्यताओं से संबद्ध होते हैं। यहाँ की सांस्कृतिक विरासत को पर्यटन की दृष्टि से प्रोत्साहित एवं पल्लवित करने के उद्देश्य से नागालैंड सरकार ने इनके पारंपरिक त्योहारों के तर्ज पर ही 'हार्नबिल फेस्टिवल' को आरंभ किया है, जो दिसंबर में पहली से दस तारीख तक कोहिमा के पास किसामा में मनाया जाता है। इस त्योहार में सभी नागा जनजातियों के साथ कुकी एवं कछारी जनजातियों के जीवंत सांस्कृतिक परिवेश का प्रदर्शन किया जाता है।

2.2 : नागा जनजातियाँ

नागा जनजातियों का इतिहास अस्पष्टताओं के अंधकार में दबा हुआ है। किंवदंतियों के अनुसार कहा जाता है कि ये लोग म्यांमार से मणिपुर होते हुए वर्तमान स्थान पर आए। अंगामी, रेंगमा, लोथा और सुमी जनजातियों के बारे में कहा जाता है कि उनके पुरखे एक साथ चलकर वर्तमान स्थान में पहुँचे। इस संदर्भ में डॉ. बरेह लिखते हैं, "The Lotha, the first who entered Nagaland via Mao, were followed by Sema (Sumi) who came by the southern route. Rengma and Angami were the last." (Bareh, 1970, page- 15) एक अन्य स्रोत के अनुसार कहा जाता है कि आओ जनजाति के लोग इनके पीछे आए लेकिन इन चारों जातियों को पार करते हुए अपने वर्तमान स्थान पर पहुँचे। लेकिन आओ लोगों के अनुसार उनका उद्भव वर्तमान त्वेन्सांग के चुंग्लीयिम्ती नामक स्थान पर हुआ था, जहाँ से वे उंगमा तथा अन्य स्थानों में फैल गए। प्रत्येक नागा जनजाति की अपनी मान्यता और अपना विश्वास है कि वे किस प्रकार अपने वर्तमान स्थान में बसने के लिए आए। रेंगमा लोगों के अनुसार उनके पुरखे धातुओं की खोज में आए, जबकि लोथा लोग यह मानते हैं कि उनके पुरखों ने अपने वर्तमान स्थान को इसलिए चुना क्योंकि यहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानें पाई जाती हैं, जिनका उपयोग वे अपने स्मारकों को स्थापित करने के लिए किया करते थे। अंगामी लोग यह मानते हैं कि उनके पूर्वज सीढ़ी-नुमा खेतों की खोज में आए और वर्तमान अंगामी क्षेत्र की ढलान को उसके लिए उपयुक्त मानते हुए यहाँ रुक गए। कुछ अन्य नागा जनजातियों के बारे में यह कहा जाता है कि वे अपने आभूषणों और सजावट के लिए पंखों की खोज करते-करते यहाँ आ पहुँचे। नागा भूमि पर अपेक्षाकृत बाद में आने वालों में जेलियांगरोंग जनजाति का नाम आता है, "The Zeliangrong came at a later wave of migration, constituted of Zemi, Liangmai and Ruongmai allied to the Kabui

Naga tribe who came by the Barail southwardly route." (Bareh, 1970, page-19) इनके बारे में कहा जाता है कि ये बराक नदी के उद्गम से ही दुर्गम पर्वतों को पार करते हुए नदी के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर प्रस्थान कर आए। इस रास्ते से आने के पीछे यह कहा जाता है कि ये लोग पहले से पहुँचे हुए अन्य जातियों से किसी प्रकार का टकराव नहीं चाहते थे। इनके बारे में यह भी कहा जाता है कि ये नमक की खोज में घाटियों से होते हुए चले आए। अन्य जनजातियों के विपरीत ये प्रवर्जन की प्रक्रिया में अकेले ही वर्तमान स्थान में आए थे, हालाँकि कालांतर में ये अंगामी लोगों से घुल-मिल गए और कहीं-कहीं तो इनके संयुक्त गांव भी स्थापित हुए। रज़ेफेमा आज एक पुराना अंगामी गांव के रूप में प्रतिष्ठित है, लेकिन कहा जाता है कि इस गांव की स्थापना में जेलियांग लोगों की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इस संदर्भ में डॉ. बरेह लिखते हैं, "Even Razephema is said to contain Zeliang strain in its original background." (Bareh, 1970, page- 19) आरंभ में जेलियांगरोंग लोगों को 'कचा नागा' नाम दिया जाना अंगामी जनजाति से इनकी नज़दीकी को दर्शाता है। वास्तव में अंगामियों के द्वारा इन्हें 'केत्सा' कहकर पुकारा गया था, जिसका अर्थ घना जंगल होता है, क्योंकि ये लोग घने जंगलों के अंदर रहते थे। यहाँ यह कहा जा सकता है कि अपेक्षाकृत बाद में आने के कारण इनके गांवों का स्वरूप अंगामी गांवों की तरह व्यवस्थित न रहा हो और उन्हें वे जंगल ही प्रतीत हुए हों। अंग्रेजों के आने के बाद इसी 'केत्सा' शब्द को उच्चारण-दोष के साथ 'कचा' नाम दे दिया गया, जिसे आज भी कुछ लोग अधिक विकृत करते हुए 'कच्चा नागा' शब्द का प्रयोग करते हैं। कालांतर में धीरे-धीरे यह 'कचा' शब्द स्थान वाचक हो गया, जो जेलियांग क्षेत्र में एक पर्वत के लिए प्रयुक्त किया जाता है।

इतिहास की तरह ही नागा समुदाय की उत्पत्ति भी एक विवादित प्रश्न रहा है। इनके शारीरिक बनावट, रहन-सहन तथा जीवन मूल्यों को देखते हुए ये हिमालय से लेकर म्यानमार, थाईलैंड, मलेशिया, फिलिपिन्स एवं इंडोनेशिया के लोगों की संस्कृति के अंतर्निहित प्रतीत होते हैं। इनके जीवन-व्यापार में इन विभिन्न जातियों के संस्कार आत्मसात होते और विलयित होते देखे जा सकते हैं। इसके साथ ही यह भी कहा जाता है कि लगभग सभी नागा जनजातियाँ अपने प्रवर्जन के किसी न किसी कालखंड में सागर तथा उसके किनारे से अपने को संबद्ध करते दिखाई देते हैं- "In 1874, Butler at the head of an exploration expedition party was told by the people at Tesophenyu (Rengma) that they had ruled 'the coast for ages.'" (Bareh, 1970, page-19) इसकी पुष्टि, इस बात से भी होती है कि आज भी अधिकांश नागा जनजातियाँ शंख को विभिन्न आकारों में काटकर अपने आभूषणों के रूप में प्रयोग करते हैं तथा कौड़ियों को सजावट के रूप में अपने पारंपरिक वस्त्रों में लगाते हैं। नागा समुदाय को इन सुदूर एवं विस्तृत जन-समुदायों से संबद्ध करते हुए भी यह नहीं माना

जा सकता कि ये हाल ही में अपने वर्तमान स्थान पर आए हैं। इनके पुरातात्विक अवशेषों को देखते हुए विद्वानों का यह मानना है कि इनके पुरखे अपने वर्तमान स्थान में कम से कम एक हजार वर्ष पूर्व आ चुके थे। डॉ. बरेह के अनुसार, "In 1875, James Johnstone was told at Chumukedima (a latest Angami village) that the people had settled there for seven generations, which approximately covered 500 years." (Bareh, 1970, page- 21) उल्लेखनीय है कि चुमुकेदिमा सबसे बाद में बसाए जाने वाले अंगामी गांवों में से एक है और यदि अन्य पुराने गांवों के पुरातात्विक अवशेषों का विश्लेषण किया जाए, तो संभव है कि उनकी आयु दस शताब्दियों से भी अधिक निकल आए। कुछ रेंगमा गांवों में पुरखों के कब्र में बने पाषाण-स्मारकों के बारे में यह कहा जाता है कि उन्हें बने हुए पंद्रह पीढ़ियाँ बीत चुकी हैं। व्यवस्थित एवं लिखित साक्ष्यों के अभाव में नागा जनजातियों के वर्तमान स्थान में आने का सटीक समय अभी तक नहीं जाना जा सका है, फिर भी, चूँकि ये सदियों से इसी भूमि में रह रहे हैं, इसी भूमि को अपना मूल निवास मानते हैं।

नागा समाज कई जनजातियों में विभाजित है और प्रत्येक जनजाति की अपनी अलग सांस्कृतिक विशिष्टता रही है। प्रत्येक नागा जनजाति अपने में पूर्ण स्वायत्त थी और जनजाति के भीतर भी हरेक गांव की अपनी प्रशासनिक व्यवस्था होती थी, जिसमें कुछ सामान्य बातें तो सभी में पाई जाती थीं लेकिन अनेक ऐसे नियम होते थे जो ग्रामीण व्यवस्था के अनुसार अलग-अलग गांवों में अपनी भिन्नता लिए हुए होते थे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि एक नागा की अस्मिता उसकी ग्रामीणता पर ही निर्भर होती है और उसे अपने गांव की भूमि, कृषि कार्य संबंधी-भूमि प्रबंधन, न्याय व्यवस्था, सामाजिक रीति-रिवाजों एवं धार्मिक परम्पराओं से विशेष आत्मीयता होती थी। इस संदर्भ में डॉ. वैरियर लिखते हैं, "Before the advent of the British, the world of the Naga revolved around his village, family, clan (*khel*), and village largely represented the extent of his concern and involvement." (Verrier, 1961) इसी संदर्भ में नागा गांवों की स्वायत्तता के बारे में हरगोविंद जोशी लिखते हैं, "At a time when there was no unified system of administration, a village elder settled disputes and disagreements of the village. Traditionally, the Nagas had no kind of internal government and they acknowledge no supreme authority." (Joshi, 2001) इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नागाओं में आरंभ से ही किसी प्रकार का एकीकृत अंतर्जातीय प्रशासनिक तंत्र नहीं था और वे अपने गांव के पारंपरिक नियमों से ही बंधे होते थे, जिसका नेतृत्व गांव के मुखिया करते थे। नागा गांवों की प्रशासनिक व्यवस्था को व्याख्यायित करते हुए डॉ. वैरियर लिखते हैं, "Naga society presents a varied pattern of near-dictatorship and extreme democracy." (Verrier, 1961) उनके अनुसार सुमी एवं चांग नागाओं में वंशानुगत मुखिया

की परंपरा थी, जबकि कोन्याक लोगों में बहुत ही शक्तिशाली मुखिया हुआ करते थे, जिन्हें 'आंह' कहा जाता था। आंह को गांव का पवित्र व्यक्ति माना जाता था और उनके शब्द ही गांव के कानून होते थे। ऐसी परिस्थितियों में कभी-कभी मुखिया निरंकुश होकर तानाशाह बन जाते थे। इसके विपरीत अंगामी, लोथा, रेंगमा और अन्य नागा जनजातियों में ग्रामीण प्रशासन प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर आधारित था, जिसमें सभी लोगों की सहमति के बाद ही मुखिया किसी नियम को लागू करता या किसी समस्या का समाधान निकालता था।

नागालैंड में मुख्यतः चौदह नागा जनजातियां निवास करती हैं, जिनमें अंगामी, आओ, चखेसांग, चांग, ख्यम्युंडन, कोन्याक, लोथा, फोम, पोचुरी, रेंगमा, सांग्तम, सुमी, यिम्बुंग तथा जेलियांग नागा नृजाति समूह की जनजातियां हैं तथा डिमासा कछारी एवं कुकी गैर-नागा जनजातियां हैं। सन 2022 में नागालैंड सरकार द्वारा 'तिखिर' को एक नई जनजाति के रूप में मान्यता दिए जाने के बाद पंजीकृत नागा जनजातियों की संख्या अब पंद्रह हो गई है। इनके अतिरिक्त यहाँ स्थायी रूप से रहने वाली जनजातियों में गारो एवं मिकिर भी आते हैं। गोरखा नेपाली, बंगाली, जैन, मारवाड़ी तथा बिहारी हिन्दू भी दीमापुर एवं कोहिमा नगरों में पर्याप्त संख्या में रहते हैं। प्रत्येक नागा जनजाति अपनी संस्कृति, रीति-रिवाज, भाषा और वेश-भूषा आदि में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं, फिर भी सभी जनजातियों का पारंपरिक पेशा कृषि ही रहा है, जो इनका आर्थिक नियामक भी है। धान यहाँ का मुख्य फसल है और इसके साथ मक्का, बाजरा, कोदों, दाल, गन्ने, तम्बाकू और तेल-तिलहन की भी फसलें होती हैं। खीरे, खरबूजा एवं तरबूज जैसे फलों के साथ-साथ कद्दू, कोहड़ा, बन्डा, आलू आदि सब्जी भी कहीं-कहीं उगाई जाती हैं। झूम-कृषि एवं सीढ़ीनुमा सिंचाई कृषि होने के कारण यहाँ अलग-अलग प्रकार के धान उगाए जाते हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि इन कृषि-परम्पराओं में रासायनिक खादों का प्रयोग नहीं किया जाता है, इसलिए इन्हें ऑर्गेनिक उत्पाद के अंतर्गत रखे जा सकते हैं।

सांस्कृतिक परम्पराओं की दृष्टि से सभी नागा जनजातियों की अपनी-अपनी विशिष्टता रहीं हैं, फिर भी दो सामान्य ऐसी बातें हैं, जो लगभग सभी नागा जनजातियों में पाई जाती थीं और वे हैं – शत्रु के सर को काटकर अपनी वीरता का प्रदर्शन करना तथा दूसरा अपने समाज के लिए 'महा-भोज' का आयोजन करना। नागा लोगों में प्रायः पड़ोसी गांवों अथवा जनजातीय लोगों से लड़ाईयां होती रहती थीं, जिसमें जो भी शत्रु-सर को काटकर गांव में लाता था, उसकी गिनती योद्धाओं में की जाती थी। शत्रु-संहार की संख्या के अनुसार समाज में प्रत्येक योद्धा की प्रतिष्ठा में बढ़ोत्तरी होती थी। कुछ जनजातियों में योद्धाओं की इसी प्रतिष्ठा के आधार पर ही युवतियाँ उन्हें पति के रूप में वरण करती थीं। आदर-सत्कार के प्रतीकार्थ इनके वेश-भूषा एवं आभूषण भी सर्वसामान्य से अलग एवं विशिष्ट बनाए जाते थे। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने का दूसरा माध्यम 'सामाजिक महाभोज' का अनुष्ठान था, जिसमें

यजमान अपने ग्राम-समाज के लिए कुछ निश्चित दिनों हेतु खाने-पीने की व्यवस्था करता था। इन दिनों इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि कोई भी ग्रामीण इससे अछूता रह न जाए। इन बातों से स्पष्ट है कि इसकी यजमानी करने वाला व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से संपन्न रहते होंगे। अतः इस अनुष्ठान के इच्छुक व्यक्ति वर्षों तक खेतों में खूब श्रम करके धन-धान्य का संग्रह करते और पशु-पालन करके अपनी संपत्ति में बढ़ोत्तरी करते थे। इस अनुष्ठान में अनेक प्रकार के धार्मिक रीति-रिवाजों तथा सामाजिक परम्पराओं का अनुपालन यजमान एवं पुरोहित (सिन्कू) द्वारा तथा कुछेक ग्राम समाज के द्वारा किया जाता था।

2.2.1 : अंगामी

नागालैंड राज्य के नृजातीय समूह का एक मुख्य एवं महत्वपूर्ण घटक है। ये लोग अपनी ईमानदारी के लिए जाने जाते हैं। पुराने समय में इनके लिए ईमानदारी एक सोच या दृष्टिकोण नहीं बल्कि उनके संस्कार हुआ करते थे। अंगामी समाज में भी अन्य जनजातियों की तरह ही गांव एक महत्वपूर्ण इकाई है, जिसके अंतर्गत खेल (वंश) एवं परिवार अन्य सामाजिक इकाई हैं, जिन्हें यहाँ अन्य जनजातियों की तुलना में अधिक सशक्त रूप में देखा जा सकता है। इस जनजाति में गांव की महत्ता को दर्शाते हुए असोसो योनो लिखते हैं, "The village has been an important unit in Angami history because each village had a distinct identity and was self sufficient in most things. Therefore, an Angami village has been described as a *village state*." (Yonuo, 1974) अंगामी लोग अंग्रेजों के विस्तारवादी साम्राज्यवाद के अंतर्गत आने वाले सबसे पहले नागाओं में से एक थे। वर्तमान में इनका निवास स्थान कोहिमा, चुमुकेदिमा एवं दीमापुर जिलों के अंतर्गत आता है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी जनसंख्या 1,41,722 है जिसमें से 98.22% लोग ईसाई हो चुके हैं और शेष पारंपरिक सनातन धर्मावलंबी हैं। इनकी भाषा चीनी-तिब्बती भाषा-परिवार के अंतर्गत आती है और जाति के नाम पर ही इसे अंगामी या तेन्गिदिये नाम से जाना जाता है।

इनके क्षेत्र को चार उपक्षेत्रों- उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी और चख्रो अंगामी के रूप में विभाजित किया जाता है। जे.एच. हट्टन ने अपनी पुस्तक 'द अंगामी नागा' में इन्हें खोनोमा, कोहिमा, विस्वेमा और चाख्रोमा के नाम से चार समुदायों में विभाजित किया है। प्राचीनकाल में पूर्वी उपक्षेत्र के अंगामी कहलाने वाले लोगों को चाखेसंग के नाम से एक नयी जनजाति के रूप में मान्यता दे दी गई है। उत्तरी अंगामी क्षेत्र के अंतर्गत कोहिमा, तोफेमा, जदिमा, रूसोमा और सिहामा आदि गांव आते हैं। इनमें से द्वितीय-विश्वयुद्ध एवं वर्तमान में राज्य की राजधानी होने के कारण कोहिमा का एक खास स्थान है तथा पुरानी लोक कथाओं के लिए रूसोमा (रुकेहामा) को याद किया जाता है। विस्वेमा, जखामा, किग्वेमा,

किदिमा और खुज़ामा जैसे गांव दक्षिणी अंगामी क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। पश्चिमी अंगामी में खोनोमा, जोत्सोमा, सचु-जुब्जा और दज़लके जैसे गांव आते हैं। चख्रो अंगामी क्षेत्र के अंतर्गत मेदजीफेमा, सोविमा और पिफेमा आदि गांव आते हैं, जो प्रशासनिक दृष्टि से कोहिमा में न होकर, चुमुकेदिमा जिले में पड़ता है।

अंगामी लोगों की संस्कृति को उनके रहन-सहन, पहनावे, खान-पान और भाषा इत्यादि से जाना जा सकता है। यदि आज के तथाकथित आधुनिक रंग में रंगे लोगों के व्यवहार को छोड़ दिया जाए तो अंगामी लोक-जीवन की सबसे बड़ी पहचान उनकी ईमानदारी को लिया जा सकता है। इन लोगों को यदि सरसरी नज़रों से देखा जाए तो ऐसा लगता है कि ये लोग कई 'उपजातियों का समूह' हैं। इसका कारण यह माना जा सकता है कि ये लोग किसी एक-दो गांव या छोटे क्षेत्र में सीमित न होकर एक विस्तृत भू-भाग में फैले हुए हैं और इसी देशांतर के कारण ही इनकी परंपराओं एवं मान्यताओं में कुछ अंतर दिख जाते हैं, यहाँ तक कि उनके सबसे प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण त्योहार 'सेक्रेन्यी' के मनाए जाने के समय में भी पर्याप्त अंतर देखा जा सकता है। लेकिन यदि इनके जीवन को बारीकी से देखा जाए तो स्पष्ट रूप से सभी गांवों में विद्यमान अंगामी जीवन-मूल्य लक्षित हो जाते हैं। इनके रंगों में ईमानदारी बसी हुई है, इसलिए चोरी इनके यहाँ नहीं होती और लोग घरों में ताले नहीं लगाते। इनके यहाँ चोरी को अनैतिकता तक सीमित नहीं रखते बल्कि इनकी यह धारणा है कि चोरी करने से ईश्वर के कोप का भाजन बनना पड़ता है। अंगामी लोगों में कुश्ती खेल को सबसे अधिक पसंद किया जाता है और आज तो प्रायोजित ढंग से बड़े पैमाने पर इसकी प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया जाता है। अंगामी संस्कृति को उनके त्योहारों के माध्यम से भी जाना जा सकता है। फरवरी में मनाया जाने वाला 'सेक्रेन्यी' इनका सबसे महत्वपूर्ण त्योहार है, जिसे 'केज़ी' (अंधकार) के नाम से भी जाना जाता है। यही त्योहार दक्षिणी अंगामी लोगों में दिसंबर में मनाया जाता है। यह शुद्धीकरण का त्योहार है, इसलिए इसे 'फूसान्यी' (Phousanyi) भी कहा जाता है।

अंगामी एक पहाड़ी जनजाति है, जिनका मुख्य पेशा कृषि-कार्य तथा पशुपालन रहा है, यद्यपि अब समाज के शिक्षित लोग सरकारी सेवाओं एवं व्यापार को भी अपने जीवन-यापन का माध्यम बना रहे हैं। ये लोग अपनी सीढ़ीनुमा कृषि परंपरा के लिए प्रसिद्ध हैं और अपने परिश्रमपूर्ण कृषि-कार्य के कारण भूमि को ही अपनी सबसे महत्वपूर्ण संपत्ति मानते हैं। कृषि-कार्य के प्रति इनकी रूचि पुराने समय से रही है जो आज भी इनके संस्कार के रूप में जन-सामान्य में विद्यमान है और प्रायः देखा जाता है कि आज लोग भले ही शिक्षित होकर शहर में नौकरियाँ करते हों फिर भी दफ्तरों में जिस दिन छुट्टी रहती है, लोग अपने औज़ार लेकर खेतों की ओर निकल पड़ते हैं। सिंचाई पर आधारित सीढ़ीनुमा कृषि

करने वाले कुछेक नागा जनजातियों में इनकी गिनती होती है। पारंपरिक रूप से अंगामी पुरुष योद्धा हुआ करते थे। सन् 1879 ई. में अंग्रेजी प्रशासन के अंतर्गत आने के पहले तक लग-भग सभी अंगामी पुरुष अपने प्रतिपक्षी गांव के लोगों के साथ युद्ध में व्यस्त रहते थे। ईसाइयत के आने के साथ ही मानव-सिर शिकार (Head Hunting) की परंपरा को स्थायी विराम मिला। अंगामी परंपरा में सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से पुरुषों एवं स्त्रियों में किसी प्रकार का अंतर नहीं किया जाता है। पारिवारिक संपत्ति का सभी लड़कों एवं लड़कियों में बराबर भाग वितरित किया जाता है परंतु पैतृक गृह सबसे छोटे पुत्र को ही दिया जाता है और वही माता-पिता की अंतिम समय तक सेवा-सुश्रूषा भी करता है।

अंग्रेजों के आने तथा साथ ही उनके साथ ईसाई मिशनरियों के आने से अंगामी लोगों ने भी धीरे-धीरे इसाई पंथ को अपना लिया। आधुनिकता एवं नए धर्म ने उनके पारंपरिक जीवन-शैली को पर्याप्त रूप में प्रभावित किया जिसके परिणाम-स्वरूप उन्हें अपने ही पारंपरिक संस्कारों में दोष नज़र आने लगे। इस संदर्भ में एन. माथुर लिखते हैं, "The practice of traditions are left behind and Christianity was embraced. However, the acceptance of Christianity has not completely wiped out traditional animist belief and practice." (Mathur, 1992) अंगामी लोगों के पारंपरिक धार्मिक विश्वास के अनुसार वे प्रकृति-पूजक रहे हैं। इस के साथ ही वे विभिन्न प्रकार के देवी देवताओं के अस्तित्व पर विश्वास करते थे। अंगामी जनजाति में बैप्टिस्ट, रिवाइवल, रोमन कैथोलिक, पेंटीकोस्टल और सेवेंथ डे एडवेंटिस्ट मुख्य इसाई संप्रदाय हैं। यद्यपि इनके 98% लोग ईसाई हो चुके हैं मगर अंगामी उन नागा जनजातियों में से एक है, जिनमें अपने पारंपरिक पैतृक धर्म को मानने वाले लोग अब भी विद्यमान हैं। इनके इस धर्म को 'क्रना' अथवा 'फुत्साना' कहा जाता है, जो विशेष रूप से दक्षिणी अंगामी क्षेत्र में अब भी जीवंत है। यद्यपि आज अंगामी जनजाति के बहुसंख्यक समुदाय ने ईसाई पंथ को अपना लिया है, फिर भी अन्य जनजातियों की तुलना में इन्होंने अपनी पारंपरिक आस्था को बनाए रखने का प्रयास किया। इस संदर्भ में फ्रेड्रिक डाउन का यह कथन उद्धरणीय है, "When Christianity was introduced, the *Angami* received it rather slowly, and even at present, there is a sizeable number of *Angami* who practice traditional religion." (Down, 1983) विलुप्तता के कगार पर खड़े इस पारंपरिक धर्मावलम्बियों को संगठित करने एवं उनकी सांस्कृतिक विरासत को जीवंत बनाए रखने के लिए सन् 1987 ई. में 'जफु-फिकी फुत्साना केसेको केहू' के नाम से एक धार्मिक संगठन की स्थापना की गई।

2.2.2 : आओ

‘आओ’ नागालैंड की सबसे उन्नत जनजाति मानी जाती है। ईसाई मिशनरियों के आगमन के साथ ही ईसाइयत को अपनाने वाली पहली जनजाति होने के कारण उन्होंने शिक्षा एवं पाश्चात्य संस्कृति को सबसे पहले प्राप्त किया और नागा जनजातियों में अग्रणीय हो गए। इनका पारंपरिक निवास मोकोकचुंग तथा असम के संलग्न क्षेत्र में आते हैं। इनकी सीमाएँ उत्तर में असम, पूर्व में त्वेन्सांग, दक्षिण में जुन्हेबोटो और पश्चिम में वोखा जिला एवं असम के कुछ भागों को छूती हैं। आओ लोगों की यह भूमि दिखू नामक नदी के पूर्व में स्थित है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या लगभग 2,27,000 है। इनके क्षेत्र को छः श्रेणियों- लंग्पंग्कोंग (दिखू नदी के किनारे), असेत्कोंग, चांग्किर्कोंग (चांग्की गांव के नाम पर), जपुर्कोंग (जपु गांव के नाम पर), त्सुरंग्कोंग, और ओन्ग्यांग्कोंग में विभाजित किया जाता है। चार श्रेणियां तो पहले से ही थीं, पर इनमें से अंतिम दो को हाल ही में नए क्षेत्रों का नाम दिया गया है। इन क्षेत्रों के अतिरिक्त ये लोग अब राजधानी कोहिमा और व्यावसायिक नगर दीमापुर में भी बड़ी संख्या में रहते हैं।

आओ लोगों की पुरानी कथाओं के अनुसार कहा जाता है कि वे ‘लॉंग्लोक’ नामक गुफा से निकले और ‘चुंग्लीयिम्ती’ में जाकर बस गए। दूसरी दंत-कथा के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि ये लोग सांग्तम लोगों के क्षेत्र में स्थित छः पत्थरों वाले स्थान-लॉंग्लोक से उत्पन्न हुए थे और बाद में अपने नियत स्थान की ओर प्रस्थान कर गए। कथाएँ जो भी रही हों, पर इनके लिए चुंग्लीयिम्ती गांव बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसी गांव में ही इन लोगों ने अपने समाज को एक सुव्यवस्थित ग्राम-स्वरूप में ढलते देखा था। इस गांव के बाद इन लोगों ने ‘सोयुम’ गांव बसाया, जिसे आज ‘उंग्मा’ के नाम से जाना जाता है। यहाँ से अलग-अलग दिशाओं की ओर प्रस्थान करते हुए इन लोगों ने वर्तमान के छः श्रेणियों को अपना क्षेत्र बना लिया, जिनमें आज अस्सी से भी अधिक गांव हैं।

आओ जनजाति में समाज की सबसे छोटी एवं महत्वपूर्ण इकाई परिवार है, जिसमें पिता ही मुखिया होता है। एक परिवार पति-पत्नी और उनकी संतानों से मिलकर बनता है। इस समाज में संयुक्त परिवार की परंपरा नहीं रही है, इसलिए जब कोई संतान विवाहित हो जाता है, तब वह अपने पितृ-परिवार से अलग होकर नए परिवार की स्थापना करता है। आओ जनजाति में पुरुष मोरुंग को ‘अरिजू’ और लड़कियों के मोरुंग को ‘जुकी’ कहा जाता है। पुराने जमाने में, परिवार में दस वर्ष से अधिक उम्र के लड़के प्रायः अरिजू में ही सोते थे और इसी प्रकार जवान लड़कियाँ अपने जुकी में सोती थीं। अरिजू एवं जुकी में ही नए पीढ़ी के लोगों को सामाजिक जीवन से संबंधित सभी पहलुओं के ज्ञान दिए जाते और उत्तम जीवन जीने हेतु प्रशिक्षित एवं अनुशासित किए जाते थे। आओ जनजाति में परिवार की दृष्टि

से वंशावली-वृक्ष अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है, जिसे स्थानीय बोली में 'किदोंग' कहा जाता है। अपने ही किदोंग में अंतर्विवाह वर्जित होता है, चाहे वह कितना ही दूर न हो जाए क्योंकि इनके यहाँ यह विश्वास किया जाता है कि एक किदोंग के अंतर्गत आने वाले सभी परिवार एक ही पिता से उत्पन्न संतानें हैं। यही कारण है कि अपने किदोंग के सभी हम-उम्र के लोगों को ये भाई-बहन मानते हैं। इन लोगों में पारिवारिक घनिष्ठता को दर्शाते हुए रोबिन तेम्सु लिखते हैं, "When hunting dangerous games, or when in battle array, the members of the same kidong were grouped together." (Temsu) महिलाओं को सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से समानता देते हुए भी सामाजिक एवं ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था में पुरुषों का ही वर्चस्व रहा है।

आओ जनजाति में सबसे सशक्त एवं प्रभावी इकाई गांव रहा है। ये लोग प्रायः पहाड़ के ऊपर ही घर बसाते हैं। इसके पीछे पुराने समय में प्रचलित युद्ध और शत्रु के सर को काटने की परंपरा को उत्तरदायी माना जाता है। प्रत्येक आओ गांव में पारंपरिक रूप से एक प्रशासनिक संस्था रही है, जिसे 'पुतु मेन्देन' कहा जाता है। इसके संरचक तत्त्व विभिन्न कुलों के मनोनीत प्रतिनिधि होते हैं, जिसका कार्यकाल समाज के एक पीढ़ी का होता है- अर्थात् एक 'पुतु मेन्देन' का कार्यकाल लगभग 30 वर्षों तक भी बना रहता है। गांव के प्रत्येक कुल या वंश का प्रतिनिधि 'मोंगसेन' कहलाता है, जिसकी सदस्यता पुतु मेन्देन में रहती है। इसका कार्यकाल निश्चित नहीं होता है और जब तक कुल का समर्थन रहे, वह इस पद पर बना रहता है। इससे यह तथ्य निकलकर आता है कि जब तक कोई मोंगसेन शारीरिक दृष्टि से सक्षम रहता है और वह नैतिकता का पालन करते हुए समाज में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखता है, उस पद पर बना रहता है।

आओ जनजाति शिक्षा एवं आर्थिक दृष्टि से उन्नत होने के साथ-साथ हस्त-कलाओं में भी निपुण माने जाते हैं। इनके पारंपरिक पोशाक, शाल आदि अत्यंत सुन्दर एवं आकर्षक होते हैं। इनके अतिरिक्त ये बांस एवं लकड़ी से भी अनेक आकर्षक घरेलू एवं अन्य उपयोगी वस्तुओं का निर्माण करते हैं।

आओ जनजातियों के अनेक पारंपरिक सांस्कृतिक त्योहारों में से 'मोअत्सु' को सबसे बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण त्योहार माना जाता है जो प्रतिवर्ष मई माह के प्रथम सप्ताह में 3 दिनों के लिए मनाया जाता है। खेतों में बीजारोपण के बाद इसे कृषि कार्यों के एक चरण की समाप्ति पर विश्राम एवं लोक-रंजन के उद्देश्य से मनाया जाता है। साथ ही इस त्योहार में अच्छी फसल के लिए, अन्न के स्वस्थ पौधों की कामना करते हुए ईश्वर की प्रार्थना की जाती है। 'त्सुंगरेम्मोंग' इनका दूसरा महत्त्वपूर्ण त्योहार है, जिसे

फसलों की कटाई के ठीक पहले मनाया जाता है। इसमें त्सुंगरेम (ईश्वर) को धन्यवाद देने के साथ-साथ अन्न की पर्याप्तता के लिए भी प्रार्थना की जाती है।

सन् 1870 के दशक से ही आओ लोगों ने ईसाई पंथ को अपनाना आरम्भ कर दिया था और आज लगभग सभी लोग इसे अपना चुके हैं, इसमें अधिकांश लोग प्रोटोस्टेंट बैप्टिस्ट हैं तथा कुछ अन्य पंथों के अनुयायी भी हैं।

2.2.3 : चखेसांग

प्राचीनकाल में 'पूर्वी अंगामी' कहलाने वाले लोग आज चखेसांग जनजाति सबसे प्रगतिशील एवं उल्लेखनीय नागा जनजातियों में से एक है। 'चखेसांग' तीन शब्दों- चोकरी, खेज़ा एवं सांगतम को मिलाकर बनाया गया है, जो इस जनजाति के उप-समुदाय रहे हैं। यद्यपि 'सांगतम' को एक नई जनजाति के रूप में मान्यता दिए जाने के बाद प्रथम दोनों ही रह जाते हैं, फिर भी नाम में कुछ बदलाव नहीं किया गया है। इनका पारंपरिक निवास फेक जिले के अंतर्गत आता है, मगर वर्तमान में ये कोहिमा, दीमापुर एवं पेरेन जिलों में भी बड़ी संख्या में निवास करते हैं। जेस्सामी एवं क्रोवेमी के नाम से मणिपुर के उख्रूल जिले में इनके दो गांव हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी जनसंख्या लगभग दो लाख है।

चखेसांग लोगों में चोकरी और खेज़ा बोलियाँ बोली जाती हैं। अंगामी लोगों के निकट होने के कारण इनकी बोलियों एवं तेन्पिदिये में बहुत अंतर नहीं है और इनके चर्च में तेन्पिदिये में लिखित गीत तथा बाइबल का आधिकारिक तौर पर प्रयोग किया जाता है। अधिकांश लोगों ने ईसाई मत को अपना लिया है, फिर भी कुछ लोग अपने अपने पारंपरिक पैतृक धर्म को मानने वाले अब भी विद्यमान हैं।

चखेसांग जनजाति के लोग अपने जीवन-यापन के लिए पारंपरिक तौर पर कृषि पर निर्भर थे, परन्तु अब शिक्षित होने के बाद सरकारी नौकरियों में ही नहीं बल्कि राजनीति एवं व्यापार में भी उत्तरोत्तर अपनी भागीदारी को बढ़ा रहे हैं। अंगामी के निकट रहने के कारण ये भी सीढ़ीनुमा सिंचाई पर आधारित कृषि करते हैं। धान इनका मुख्य फसल है और साथ में मक्के एवं सब्जियां भी ये उगाते हैं। अधिकांश नागा जनजातियों की तरह ही इनके यहाँ झूम कृषि की भी परंपरा है।

कृषि-कार्य के साथ-साथ वस्त्रों की बुनाई, मिट्टी के बर्तन बनाना, धात्विक औज़ार बनाने के कार्य तथा शिकार भी इनके जीवन के महत्वपूर्ण आयाम हैं। वस्त्रों की बुनाई के कार्य केवल महिलाएं करती हैं। कृषि-कार्यों की व्यस्तता से मुक्त रहने पर वे घंटों तक बैठकर इस कार्य में लगी रहती हैं,

जिसके परिणाम स्वरूप सुंदर एवं आकर्षक शाल, मेखला आदि बनकर तैयार होते हैं। कुछ गांव मिट्टी के बर्तन बनाने में माहिर थे, जिसमें थेजुमी, रून्गुजुमी तथा खोलाजुमी आदि गांव आते हैं। यहाँ की औरतें खाना पकाने तथा भोज्य पदार्थों के संग्रहण के लिए मिट्टी के बर्तन बनाते थे तो पुरुष समाज तीर, कृषि-कार्य संबंधी औज़ार आदि बनाते थे। फुर्सत के दिनों में ये शिकार पर जाते और नदियों में सामूहिक रूप से मछली पकड़ने जाते थे।

चखेसांग जनजाति में कई पारंपरिक- सांस्कृतिक त्योहार मनाने की परंपरा रही है, जिनमें 'सुकुन्ये' को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। इस त्योहार को अंगामी त्योहार सेक्रेन्यी के समतुल्य माना जाता है। इस त्योहार को ग्यारह दिनों तक मनाने की परंपरा रही है, जिसमें अनेक धार्मिक अनुष्ठान किये जाते थे। इसे जनवरी के महीने में मनाया जाता है। यद्यपि आज भी इस त्योहार को बड़े धूम-धाम के साथ मनाया जाता है, फिर भी ईसाइयत के प्रभाव में इसके धार्मिक पक्ष अर्थात् रीति-रिवाजों एवं धार्मिक अनुष्ठानों को इसमें से निकाल दिया गया है, जिसके कारण इन पारंपरिक त्योहारों का आंतरिक सौन्दर्य एवं आध्यात्मिक पक्ष विलुप्त हो गए हैं।

2.2.4 : चांग

'चांग' नागालैंड की एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण जनजाति है, जिसकी जनसंख्या सन् 2011 के अनुसार 64226 है। चांग लोगों की दंत-कथा के अनुसार वे एक प्रकार के पीपल के वृक्ष 'चोंग्यु' से उत्पन्न हुए थे, जिसकी ऊँचाई इतनी थी कि उसे हर दिशा से देखा जा सकता था। इसी आधार पर जाति के नामकरण के संबंध में कहा जाता है कि, "The word Chang is derived from the word 'Changennyu' which means 'standing tall' or towering above its surroundings." (Chang, 2023) जनजाति के नाम के आधार पर ही इनकी भाषा को भी अभिहित किया गया है। अंग्रेजों के शासन काल में इन्हें 'मजुंग' के नाम से जाना जाता था। अन्य पड़ोसी जनजातियों के द्वारा इन्हें चंघई, मोचुमी, चांग्रु आदि नाम दिए गए हैं। एक अन्य धारणा के अनुसार ये लोग अपने को 'चांगसांगमोंगको' नामक स्थान से उत्पन्न मानते हैं और वहाँ से निकलकर 'चांगसांग' नामक स्थान पर रहने लगे। ऐसा भी कहा जाता है कि ये लोग वर्तमान स्थान पर पूर्व दिशा से आये थे, इसलिए स्वयं को चांग अर्थात् पूर्वी लोग के नाम से जानते हैं। इनके कुछ लोग अपने को आओ जनजाति के पूर्वजों के वंशज भी मानते हैं।

चांग लोगों का पारंपरिक निवास स्थान त्वेन्सांग जिले का मध्य भाग है। इनका प्राचीन मुख्य गांव मोजुंगजामी था, जहाँ से ये लोग अन्य गांवों की ओर फैल गए। चांग जनजाति में मुख्य रूप से चार कुल

माने जाता हैं जिन्हें ओंग, कांगशौ, लोमोऊ और चोंगफो होंगांग के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल में प्रत्येक कुल के अलग-अलग दायित्व होते थे, जिनमें ओंग- गांव के मुखिया, कांगशौ- झूम कृषि के लिए जंगल की सफाई में अगुआई, लोमोऊ- फसलों की कटाई का नेतृत्व और चोंगफो होंगांग- वर्ष के आरंभ में गांव के मुख्य द्वार की पूजा करते थे। इनकी पुरानी कथाओं के अनुसार इनके पुरखे जंगली जानवरों के साथ अपने सार्वजनिक जीवन जीते थे, जिनमें से कुछ उनके कुलदेवता के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। 'ओंग' कुल के लोग 'बाघ' को अपना कुलदेवता मानते हैं और कुछ कुल के लोग कौवे, बाज और जंगली बिल्ली जैसे पशु-पक्षियों को भी अपना कुलदेव मानते हैं।

अन्य नागा जनजातियों की तरह ही चांग में भी शत्रुओं के सर काटने (head hunting) की परंपरा रही है। इनकी परंपरा के अनुसार सर्वाधिक शत्रु सर लेन वाले व्यक्ति ही गांव का मुखिया बनाया जाता था और उसे ही अपने घर को विशिष्ट सजावट देने का अधिकार होता था जो सर्वसामान्य के लिए वर्जित था। इसी प्रकार तीज-त्योहारों में अन्य लोगों से अलग वह विशेष पोशाक पहनता था। गांव में होने वाले सभी विवाद वही सुलझाते थे। इनके गांवों में बीचों-बीच 'मुल्लांग शोन' नामक एक स्थान बनाया जाता था, जहाँ लोग एकत्र होकर ग्राम-प्रशासन, कृषि-कार्य, त्योहार, परिवार और भूमि संबंधी विवादों को सुलझाते थे।

चांग लोग पारंपरिक रूप से प्राकृतिक-पूजक थे और उनका यह विश्वास था कि सभी प्राकृतिक वस्तुओं की रचना ईश्वर ने की है, अतः उनमें उसकी प्रतिच्छाया विद्यमान रहती है। वे यह मानते हैं कि मानवीय, प्राकृतिक एवं ईश्वरीय शक्तियों में अंतर्सम्बन्ध तथा समंजन बना रहता है। इनके कुलदेव और ग्राम-देव होते थे मगर उनकी पूजा-अर्चना नहीं होती थी, बल्कि उन्हें आदरणीय मानकर सम्मान दिया जाता था। जल, आकाश, वन, भूमि आदि प्राकृतिक घटकों में ईश्वर की विद्यमानता स्वीकारते हुए भी कृषि-भूमि के देव 'सम्पुले मुखाओ' को सबसे अधिक महत्त्व देते थे और त्योहारों में उनके नाम पर अनेक अनुष्ठान किए जाते थे। 'नक्यु लेम' इनका सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहार माना जाता है और यह माना जाता है कि इस त्योहार के दौरान छः दिनों तक अन्धकार रहता है और सातवें दिन प्रकाश निकल आये, इसकी प्रार्थना करते हुए वे छः दिनों तक घर के अन्दर ही रहते हैं।

भोज्य पदार्थ के रूप में चावल एवं मांस का प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता है और पेय के रूप में चावल के किण्वन से प्राप्त मादक पदार्थ का उपयोग किया जाता है। समाज पितृ-सत्तात्मक होता है और पारिवारिक संपत्ति का हकदार केवल पुरुष ही होते हैं। झूम-कृषि इनका प्रमुख व्यवसाय रहा है, जिसमें ये धान, मक्का, दाल और सब्जियाँ उगाते हैं। सन् 1936 ई. के लगभग यहाँ के लोगों ने ईसाई

पंथ को अपनाना आरम्भ किया और 1940 ई. में चांग बैप्टिस्ट एसोसिएशन की स्थापना हुई। आज लगभग 99% लोग ईसाई हो चुके हैं।

2.2.5 : ख्यम्युंडन

ख्यम्युंडन नागालैंड की मुख्य जनजातियों में से एक है। इनका पारंपरिक निवास नोकलक जिले के अंतर्गत आता है, जिसकी सीमाएं म्यांमार से भी लगी हुई हैं। इनकी जनसंख्या का एक बड़ा भाग म्यांमार में भी रहता है। ख्यम्युंडन का शाब्दिक अर्थ 'महा जलस्रोत' होता है। यद्यपि अंग्रेजों ने इनको 'काल्यो केन्यु' के नाम से अभिहित किया है, तथापि ये अपने को ख्यम्युंडन नामक स्थान से उत्पन्न मानते हैं, जो 'पथ्सो' नामक पहाड़ी श्रृंखला के अंतर्गत 'लेंग्यु और त्सुवाओ' गांवों के पास स्थित है और इसी आधार पर इन्होंने अपना नामकरण कर लिया है। ये लोग भाषा एवं संस्कृति के आधार पर तिब्बती-बर्मी लोगों के निकट आते हैं।

ख्यम्युंडन जनजाति के गांव का प्रशासन महत्वपूर्ण आठ नेताओं के द्वारा संचालित होता था, जिन्हें युद्ध प्रमुख, शान्ति प्रमुख, पुजारी, पुजारिन, वैद्य, लोहार, कथावाचक और जादुई पत्थर का रखवाला के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक गांव में एक जादुई पत्थर हुआ करता था जो किसी अनिष्ट की संभावना होने पर गांव के लोगों को किसी न किसी प्रकार का संकेत देता था, जिससे वे सावधान हो जाते थे। सन् 1990 ई. तक आते-आते इन नेताओं में से केवल शान्ति-प्रमुख, लोहार तथा पत्थर के रखवाले ही प्रासंगिक रह गए। इनके बारे में यह कहा जाता है कि प्राचीनकाल से ही राजा या मुखिया जैसे किसी एक के हाथ में ग्राम-प्रशासन केन्द्रित न होकर योग्यतानुसार दायित्वों का वितरण कर दिया जाता था।

ख्यम्युंडन लोगों का पारंपरिक व्यवसाय झूम-कृषि रहा है और इन कृषि कार्यों के दौरान वर्ष भर अनेक त्योहार मनाए जाते हैं, जिनमें कई प्रकार के रीति-रिवाजों एवं अनुष्ठानों को क्रियान्वित किया जाता है। इनके पारंपरिक परिधान हल्के लाल एवं गहरे नीले रंग के होते थे। आभूषण के रूप में ये कौड़ियों एवं शंखों का प्रयोग करते थे। वाद्य-यंत्रों के रूप में इनका 'तख्ता-ड्रम' मशहूर है। इसके अतिरिक्त बांसुरी तथा लौकी नुमा फल के सख्त बाहरी आवरण से बने बाजे का भी ये प्रयोग करते हैं।

इनके त्योहारों में 'म्यू' और 'त्सोकुम' को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। 'म्यू' खेतों में बीजारोपण के ठीक पहले मनाया जाने वाला त्योहार है, जिसमें अन्न की अच्छी उपज के लिए पूजा की जाती है। त्सोकुम त्योहार सितम्बर के अंत में या अक्टूबर के आरंभ में झूम-कृषि से प्राप्त नए अन्न को ग्रहण करने से ठीक पहले ईश्वर को कृतज्ञता प्रकट करते हुए मनाया जाता है। इस त्योहार में ही नए

अन्न को लोग घरों में पकाते हैं। प्राचीनकाल में इन त्योहारों में अनेक अनुष्ठानों के साथ पशु-बलि की भी परंपरा रही है, परन्तु कालांतर में इन प्रथाओं को बंद करके सामान्यीकृत किया गया है। आज इन त्योहारों को प्रायः सांकेतिक तौर पर ही मनाया जाता है।

2.2.6 : कोन्याक

‘कोन्याक’ जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ी नागा जनजातियों में से एक है जो अपने कर्ण-भेदन एवं मुख पर बने विभिन्न आकृति के चिह्नों के माध्यम से अन्य नागा जनजातियों से स्वयं को विशिष्ट बनाते हैं। इनका पारंपरिक निवास नागालैंड में मोन जिला है, जिसे ‘आडह’ लोगों का साम्राज्य भी कहा जाता है। आडह कोन्याक समाज के लोगों का मुखिया होता है, जिन्हें प्रतिष्ठा की दृष्टि से राजा की मान्यता प्राप्त है। नागालैंड के अतिरिक्त इनका क्षेत्र अरुणाचल के तिराप एवं चांगलांग जिलों, असम के शिवसागर तथा म्यांमार के सीमावर्ती क्षेत्रों तक फैला हुआ है। अरुणाचल में इन्हें ‘वान्चो’ के नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही यहीं के नोक्ते जनजाति के लोग भी नृजातीय, सांस्कृतिक एवं भाषायिक दृष्टि से कोन्याक लोगों के बहुत करीब माने जाते हैं। इनकी भाषा चीनी-तिब्बती परिवार के ‘साल’ उप-भाषा परिवार के अंतर्गत आती है।

कोन्याक लोग पूर्वोत्तर भारत के सबसे खूंखार ‘सिर-उतार-योद्धा’ (head hunters) के रूप में जाने जाते हैं। कुछ दशकपूर्व तक ये लोग युद्ध-प्रिय योद्धा जनजाति के रूप में प्रसिद्ध थे, जो प्रायः अन्य जनजातियों के संलग्न गांवों पर आक्रमण करके अपने मोरुंग में सजाने के लिए शत्रुओं की खोपड़ियाँ लाया करते थे। मोरुंग में लगे खोपड़ियों की संख्या योद्धाओं एवं गांव के सामूहिक शौर्य के प्रतीक होते थे।

प्रत्येक कोन्याक गांव एक मुख्य आडह के अधीन होता था और ग्रामीण क्षेत्र-विस्तार के अनुसार, तीन से छः तक उप-आडह हुआ करते थे, जो अलग-अलग खेल (कुल) के सामाजिक प्रशासन, उसका समन्वयन और युद्धनीति का संचालन करते थे। यह समाज पितृसत्तात्मक है, परन्तु सामाजिक जीवन-व्यापार में पुरुषों एवं महिलाओं का समान सहयोग रहता है। शूम्-कृषि के कार्यों में पुरुष-महिला समान रूप से सहयोग करते हैं परन्तु परिवार का संचालन, अन्नागारों की देख-रेख तथा धात्विक औज़ारों की खरीदारी आदि पुरुषों का अतिरिक्त दायित्व होते हैं। भोजनालय की व्यवस्था, जल, इंधन का संग्रह तथा वस्त्रों की बुनाई आदि महिलाओं की जिम्मेदारी होती है।

कोन्याक जनजातियों के त्योहारों में ‘औलेंग’ और ‘लौ-ओंगे-मो’ प्रमुख त्योहार माने जाते हैं। ‘औलेंग’ प्रायः अप्रैल के आरम्भ में मनाया जाने वाला त्योहार है, जिसे बहारों के आगमन का त्योहार भी

कहा जाता है। यह वनों में नए पत्तों के उगने से छा जाने वाली हरियाली के स्वागत में उत्प्लावित जनमानस के हृदय को प्रकट करने वाला त्योहार है। प्राचीनकाल में पारंपरिक रीति-रिवाजों एवं अनुष्ठानों के माध्यम से इस त्योहार के दौरान खेतों में बीज डालने के पहले कृषि-भूमि की उर्वरता तथा फसलों को प्राकृतिक आपदाओं से बचाए रखने के लिए 'खवांग' (ईश्वर) की पूजा की जाती थी। 'लौ-ओंगे-मो' इनका दूसरा महत्वपूर्ण त्योहार है, जो फसलों की कटाई के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। यह त्योहार सितम्बर में मनाया जाता है।

2.2.7 : लोथा

नागालैंड के विभिन्न जनजातियों में से लोथा जनजाति को अन्यतम स्थान प्राप्त है। नागालैंड का वोखा जिला लोथा बहुल क्षेत्र है। भाषाविद जार्ज इब्राहीम ग्रियर्सन ने भारत में भाषा की विभिन्न शाखाओं का विश्लेषण करते हुए नागा भाषाओं को तीन समूह- पूर्वी, पश्चिमी और मध्य समूह में वर्गीकृत किया है, जिनमें से लोथा भाषा को मध्य समूह में रखा है। इस भाषा के प्रयोक्ता वोखा जिले में 1,48,210 लोग हैं। भाषा परिवार की दृष्टि से यह चीनी-तिब्बती भाषा के अंतर्गत आती है। इस जिले में कुल 114 गांव हैं और सभी लोग इसी भाषा का प्रयोग करते हैं। कहा जाता है कि इनके पूर्वज पूर्वी चीन से निकलकर मलेशिया, इंडोनेशिया और म्यांमार से होते हुए वर्तमान स्थान पर पहुँचे थे, परन्तु यह सामान्य तथ्य सभी नागा जनजातियों पर लागू किया जा सकता है, क्योंकि भले ही इतिहास की जानकारी के अभाव के कारण हर कोई इस बात को न कहता हो, आखिर सभी नागा जनजातियां एक ही मूल के रहे होंगे। ये भी खेज़ाकेनोमा में कुछ समय रहकर वर्तमान स्थान तक आये, ऐसा कहा जाता है। ऐसा भी कहा जाता है कि इनके पुरखे नागालैंड के पूर्व में स्थित लेंका नामक स्थान पर रहते थे और वहाँ से निकलते हुए ये लोग दो भागों में बंट गए, जिनमें से एक समूह ब्रह्मपुत्र के मैदानी घाटी में बस गए तथा दूसरा वर्तमान क्षेत्र में आकर रहने लगे।

मूलतः लोथा लोग स्वयं को 'क्योंग' कहते हैं, जिसका अभिप्राय व्यक्ति से है। 'लोथा' शब्द की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यह मत प्रचलित है कि खुजा एवं अंगामी भाषा के 'ला-था' शब्द को अंग्रेजों ने अपनी उच्चारण सुविधानुसार लोथा बना दिया। ला-था शब्द का अर्थ दूर स्थान पर जाने वाले लोग या आगे बढ़ चुके लोग होता है। इस मत को प्रामाणिक मानने के पीछे यह कहा जाता है कि खुजा और अंगामी लोग अंग्रेजों के संपर्क में पहले आये थे, इसलिए संभव है कि क्योंग के स्थान पर ला-था से लोथा शब्द बन गया और यही प्रचलन में आ गया।

लोथा नागालैंड की प्रगतिशील एवं उद्यमी जनजाति है। ये लोग कर्मठ एवं मिलनसार प्रवृत्ति के होते हैं। इनकी अपनी अलग सांस्कृतिक परंपरा है जो इन्हें अन्य नागा जनजातियों से अलग करती हैं। इनकी प्रथागत सामाजिक व्यवस्था है जो समुदाय को जीवित रखने के लिए ही नहीं अपितु उसे सुचारू रूप से संचालित होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। ये लोग अपने सुन्दर नृत्यों और लोक-गीतों के लिए मशहूर हैं। पुरुष 'ओप्पुरम' तथा महिलाएं 'लॉंगपेंसु' नामक शाल ओढ़ते हैं।

'तोखु इमोंग' और 'पिखुचक' लोथा लोगों के प्रमुख त्योहार हैं। तोखु इमोंग 7 नवम्बर को मनाया जाता है। कृषि-कार्यों के अंतिम चरण अर्थात् फसलों को अन्नागार में पहुँचाने के बाद इस त्योहार को मनाने की परंपरा रही है। वर्ष भर के कठिन परिश्रम के बाद नए फसल के अन्न का आनंद उठाते, लोक-गीतों एवं नृत्यों में मग्न यह त्योहार सामाजिक हर्षोल्लास का अनन्य रूप होता है। आरम्भ में इस त्योहार की तिथि निश्चित नहीं थी। गांव के पुजारी की घोषणा के साथ ही इसे आरम्भ करने की परंपरा रही है। इस त्योहार के बारे में विशेष बात यह कही जाती है कि यदि कोई बाहरी व्यक्ति गांव में आया हुआ है तो उसे या तो त्योहार के आरम्भ होने के पहले गांव छोड़ना होता था या फिर त्योहार के समाप्त होने तक वहीं रहना होता था। इस त्योहार के संपन्न होने के बाद ही शादी-व्याह के शुभ कार्य प्रारंभ होते थे। वर्तमान में अधिकांश लोथा लोगों ने ईसाई धर्म को अपना लिया है, इसलिए सांस्कृतिक त्योहारों के स्वरूप में भी परिवर्तन आ गया है। इन लोगों में बैप्टिस्ट सबसे अधिक है और अन्य पंथ के अनुयायियों में से कैथोलिक हैं, जो वोखा मुख्यालय में ही केन्द्रित हैं।

2.2.8 : फोम

फोम नागालैंड की एक जनजाति है जो जनसंख्या की दृष्टि से बड़ी नहीं है, फिर भी पारंपरिक सांस्कृतिक विशेषताओं के कारण ये अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या लगभग 54000 है। इनकी पारंपरिक सीमाएं पूर्वोत्तर में कोन्याक, पश्चिम में आओ और दक्षिण में चांग क्षेत्रों से लगी हुई हैं। वर्तमान में इनका क्षेत्र लोंगलेंग जिले के अंतर्गत आता है। योंग्राह इस जनजाति का सबसे बड़ा गांव है। इनकी मौखिक किंवदंतियों के अनुसार इनके पूर्वज पत्थर से उत्पन्न माने जाते हैं। वे यह भी मानते हैं कि इनके पुरखों का प्राचीनतम स्थान लोंगलेंग जिले में स्थित 'यिंगली ओंग्शांग' नामक पहाड़ी श्रृंखला है, जहाँ से वे विभिन्न स्थानों की ओर फैल गए।

झूम-कृषि इनका पारंपरिक पेशा रहा है। कुछ लोगों में मिट्टी के बर्तन बनाने, बाँस एवं लकड़ियों की कारीगरी करने आदि की भी परंपरा रही है। इनका सामान्य पारंपरिक वेश सफेद या गहरे नीले रंग का शालनुमा वस्त्र होता है, जिन्हें पुरुष अपने शरीर के चारों ओर लपेटकर ओढ़ते हैं।

महिलाएं 'शुंग्रंग' नामक स्कर्टनुमा रंग-बिरंगे वस्त्र पहनती हैं। गांव के विशेष योद्धा अथवा जिस किसी ने लोगों के लिए 'महाभोज' की मेजबानी की हो, वे कौड़ियों से अलंकृत वस्त्रों का प्रयोग करते थे।

अन्य नागा जनजातियों की भाँति फोम लोगों में भी मोरुंग की विशेष एवं प्रभावी परंपरा रही है। इनके यहाँ इसे सामाजिक एवं सांस्कृतिक शिक्षण संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त है। साथ ही गांव के योद्धाओं के द्वारा मारे गए शत्रुओं की खोपड़ियों को मोरुंग में सजाकर रखने की परंपरा रही है। कहा जाता है कि जब इनके पूर्वजों ने सर्वप्रथम मोरुंग की स्थापना की, तब एक शेरनी ने आकर उसमें अपने बच्चे को जन्म दिया था, इसलिए शेर को अपनी शक्ति का प्रतीक मानकर ये लोग अपने मोरुंग के बड़े-बड़े लकड़ी के खम्भों पर शेर के चित्र की नक्काशी करते हैं। मोरुंग में युवकों को युद्ध-प्रशिक्षण के साथ-साथ तलवार (दाव), बंदूकें, भाला जैसे हथियार तथा अन्य घरेलू उपयोगी वस्तुएं बनाना भी सिखाया जाता था। इनके मोरुंग में एक गुप्त स्थान भी होता था, जहाँ सैकड़ों शत्रुओं की खोपड़ियाँ रखी होती थीं।

फोम जनजाति के गांवों में मुखिया का चुनाव सामान्य जनता के द्वारा किया जाता था और उन्हें एक राजा की तरह मान दिया जाता था। कोन्याक लोगों के विपरीत इनके मुखिया या राजा को एक ही विवाह करना होता था। कुछ गांवों में एक निश्चित वंशज के लोगों को ही मुखिया पद का अधिकार प्राप्त होता था। इनके एक गांव 'याचेम' के बारे में ऐसा कहा जाता है कि कुल ग्यारह कुलों में से तीन-अवानाहो, माक्योंग एवं मोखो कुल के लोगों को ही मुखिया बनाया जाता है। ईसाइयत के आने के बाद इनकी अधिकांश परम्पराएं इतिहास बन चुकी हैं। आज ये लोग या तो बैप्टिस्ट पंथ के अनुयायी हैं या फिर रोमन कैथोलोक को मानने वाले।

2.2.9 : पोचुरी

पोचुरी जनसंख्या की दृष्टि से नागालैंड की एक छोटी जनजाति है, जिनकी संख्या सन् 2011 की जनगणना के अनुसार 21700 है। इनका मुख्यालय फेक जिले के पूर्वी भाग में स्थित 'मेलुरी' टाउन है, जो राजधानी कोहिमा से 166 कि.मी. की दूरी पर है। वर्तमान में अधिकांश लोग ईसाई हो चुके हैं, परन्तु छोटी जनजाति होने के बावजूद इनमें से कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने अपने पैतृक धर्म को जीवंत बनाकर रखा है, जिसे 'अनाले' कहा जाता है।

पोचुरी जनजाति के अंतर्गत कुपो, कुचु और खुरी नामक तीन उप-समुदाय आते हैं। किंवदंतियों के अनुसार ये तीनों समुदाय तीन गांवों के रूप में थे जो प्रायः परस्पर युद्ध में लिप्त रहते थे, परन्तु

शान्ति-समझौता करके ये संगठित हो गए, जो धीरे-धीरे एक जनजाति के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। इनको अन्य नागा जनजातियों के द्वारा सोजोमी, शांतरी और न्युशुरी आदि नामों से भी पुकारा गया है।

पारंपरिक रूप से पोचुरी लोग कृषि एवं पशुपालन के पेशेवर रहे हैं। इसके साथ ही प्राचीनकाल में ये शिकार, मछली पकड़ने तथा अन्य वन्य उत्पादों से जीवन यापन के साधन जुटाते थे। झूम-कृषि परंपरा के साथ-साथ ये छोटे पैमाने पर सीढ़ीनुमा सिंचाई आधारित खेती भी करते हैं। इनका मुख्य भोज्य पदार्थ चावल ही है और इसी से वे अपना स्थानीय पेय भी बनाते थे, जिसमें कुछ मात्रा में मादकता भी पाई जाती है।

पोचुरी लोगों में पितृसत्तात्मक परिवार है और प्रायः सामान्य लोग एकल विवाह करते हैं, परन्तु कुछ संभ्रांत एवं प्रतिष्ठित पुरुष दो या अधिक विवाह भी करते हैं। विवाह में वर-पक्ष की ओर से वधू के मूल्य चुकाए जाते थे और बेटी की विदाई पर उसके साथ अनेक उपहार वर-पक्ष के लिए भी भेजे जाते थे। बहुविवाह करने वाले पुरुष की पत्नियाँ एक छत के नीचे नहीं रहती थीं, अतः जितनी पत्नियाँ होती थीं, उतने घर उस व्यक्ति को बनाने पड़ते थे। पारिवारिक जीवन में पुरुष एवं महिलाओं की समान प्रतिष्ठा थी, परन्तु तलाक की स्थिति में महिला को संपत्ति का चौथाई भाग ही दिया जाता था। यदि कोई औरत अपने बद-चलन अथवा चरित्र-पतन के कारण पति-गृह से निष्कासित की जाती थी, तब उसे संपत्ति से कुछ भी नहीं दिया जाता था। प्रायः पति की मृत्यु के बाद विधवा ही घर की मुखिया बनकर अपने बच्चों के साथ रहती थी।

पोचुरी समाज में प्रत्येक गांव की प्रशासनिक व्यवस्था 'मजुलो' नामक समिति की देख-रेख में होता था, जिसमें गांव के विभिन्न कुलों के छः या सात प्रतिनिधि होते थे। इस समिति का मुखिया प्रायः 'त्सुरी' नामक कुल से होता था, जिसे स्थानीय भाषा में 'कजिवा' कहा जाता था। कजिवा ही गांव के सर्वोच्च धार्मिक पुरोहित का दायित्व भी निभाते थे। इनके पैतृक धर्म 'अनाले' में प्राकृतिक तत्वों के साथ-साथ भूत-प्रेतों की भी पूजा होती थी।

पोचुरी लोगों की भाषा को उनकी जाति के नाम से ही अभिहित किया गया है। इस भाषा के अंतर्गत अनेक बोलियों यथा- मलुओरी, फोरू, यिसी, अपोक्शा, फोंगखुंरी और संबुरी आदि को शामिल किया गया है। वास्तव में इनके यहाँ प्रत्येक गांव की बोलियों में तान-अनुतान अथवा सुर के आधार पर अंतर पाए जाते हैं और इन्हीं बोलियों को मिलाकर जो सामान्य रूप अपनाया गया है, उसे ही 'पोचुरी' भाषा के रूप में जाना जाता है।

2.2.10 : रेंगमा

‘रेंगमा’ जनसंख्या की दृष्टि से नागालैंड की एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण जनजाति है। इनका मुख्यालय कोहिमा नगर से 55 कि.मी. की दूरी पर स्थित ‘त्सेमिन्यु’ जिला है। इनका पारंपरिक निवास स्थान केवल नागालैंड में ही नहीं बल्कि असम के कार्बी-आंगलोंग एवं मिकिर पहाड़ियों में भी फैला हुआ है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार नागालैंड में इनकी संख्या 62,951 है। रेंगमा लोग अपने को कार्बी-आंगलोंग का मूल निवासी मानते हैं, परन्तु कार्बियों के मौखिक इतिहास के अनुसार इनको चीन के युन्नान क्षेत्र से आये मानते हैं। अब तक के प्राप्त तथ्य के अनुसार ये लोग एक बार अंगामी क्षेत्र केज़ामी से निकलकर मेलोमी होते हुए अठारहवीं शती के आरम्भ में मिकिर हिल्स पहुँचे और तब से वहीं रहने लगे। इस तथ्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये भी अन्य नागा जनजातियों की तरह ही पूरब की दिशा से ही आये होंगे।

रेंगमा लोग अपने को ‘न्जोन्यु’ कहते थे, परन्तु अंग्रेजों के समय से ही इनका नामकरण रेंगमा पड़ा। इनमें दो मुख्य समुदाय आते हैं, जिन्हें उत्तरी रेंगमा अर्थात् ‘न्थीन्यीजो’ और दक्षिणी रेंगमा अर्थात् ‘न्जोन्यु’ कहा जाता है। रेंगमा नामकरण ‘रमे’ अर्थात् प्रेत शब्द से माना जाता है। कहा जाता है कि एक रेंगमा योद्धा को अपने पारंपरिक वेश में देख एक अंग्रेज अधिकारी के मन में भूत-प्रेत का खयाल आया और उसने यह पूछा कि सपने में दिखने वाले प्रेत को क्या कहा जाता है, तब जवाब में ‘रमे’ सुनकर उसने इसे रेंगमा लिख लिया। तब से ‘न्जोन्यु’ रेंगमा हो गए। स्थानीय लोगों के अनुसार लोथा और रेंगमा लोगों को एक ही जनजाति के बताए जाते हैं और रेंगमा लोगों का ‘फिरो’ नामक लोथा गांव से घमासान युद्ध होने की बात कही जाती है। इन लोगों का अंगामी जनजाति से भी अकसर लड़ाई होती रहती थी।

रेंगमा जनजाति के बारे में एक खास बात यह कही जाती है कि इनके समाज में दास प्रथा का प्रचलन था। समाज में अधिक प्रतिष्ठित एवं संपन्न लोग अपनी सेवा-सुश्रुषा और अन्य कार्यों के लिए सेवक रखते थे, जिन्हें ‘मेनुगेतेन्यु’ कहा जाता था और उन्हें बाक़ायदा क्रय करके लाया जाता था। इन प्रथाओं के पीछे यह कहा जा सकता है कि ये लोग असम के अहोम राजाओं के बराबर संपर्क में थे और जीवन-व्यापार का भी आदान-प्रदान होता था। इसलिए कहा जा सकता है कि यह प्रथा अहोम लोगों से इनके समाज में आ पहुँचे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रेंगमा लोग वर्तमान नागालैंड से अहोम राज्य तक प्राचीनकाल से ही रह रहे थे।

रेंगमा लोगों का मुख्य त्योहार ‘डग़दा’ कहलाता है, जो फसलों की कटाई के बाद मनाया जाता है। इसे कृषि-कार्य के सत्रांत के द्योतक के रूप में नवंबर के अंत में मनाया जाता है। पुराने दिनों में इस

त्योहार के आरंभ होने की घोषणा गांव के मुख्य पुजारी 'फेसेडु' के द्वारा तब की जाती थी, जब गांव के सभी लोग फसलों का संग्रह करके उन्हें अन्नागारों में पहुंचा चुके होते थे। त्योहार के दिनों में ये अपने विशेष पारंपरिक वेश-भूषा पहनते हैं। पुराने दिनों में अलग-अलग सामाजिक प्रतिष्ठा एवं ओहदे के अनुसार उनके वस्त्र हुआ करते थे। उदहारण स्वरूप 'रिखो' सामान्य व्यक्ति, 'मोयेत्सू' युवक-गण, 'अलुंत्सु' संभ्रांत व्यक्ति तथा 'फिकेत्सु' योद्धाओं के द्वारा पहने जाते थे।

2.2.11 : संगतम

संगतम नामक नागा जनजाति नागालैंड के त्वेन्संग एवं किफिरे जिलों में निवास करती है। किफिरे इनके क्षेत्र का दक्षिणी भाग है, जबकि उत्तरी क्षेत्र के रूप में त्वेन्संग का लोंखिम और चारे संभाग आते हैं। इनके 62 गांव 'युनाइटेड संगतम' के नाम से संगठित हैं, जिनमें से 24 गांव लोंखिम-चारे तथा 38 गांव किफिरे के अंतर्गत आते हैं। इस जनजाति के नामकरण के पीछे यह कहा जाता है कि ये लोग जुन्हेबोटो जिले में स्थित 'सांगदांग' नामक स्थान से विस्थापित होकर वर्तमान स्थान में आये थे और अंग्रेजों ने इसी सांगदांग को उच्चारण त्रुटि के साथ संगतम नाम दे दिया। किंवदंतियों के अनुसार संगतम जनजाति के लोग भी उनमें से थे जिन्हें मंगोलिया से चीन की दीवार बनाने के लिए लाए गए थे। वहीं से वे दक्षिण की ओर म्यांमार होते हुए मखेल में आकर रहने लगे। यहाँ कुछ समय रहने के बाद ये खेजाखेनोमा, शुकुमुकोह, मुत्साली, खुजा होते हुए किरहु नामक नदी के किनारे 'जुवुहुंन्यांग' में बस गए। यहाँ से अलग-अलग समूह में निकलने के बाद कुछ लोग 'हुरोंग' गांव में आकर रहने लगे जिसे ही त्सांगदांग या सांगदांग कहा जाता है।

संगतम लोग भी अधिकाँश नागा जनजातियों की तरह ही पारंपरिक रूप से झूम-कृषि पर निर्भर रहे हैं। आज भी बहुसंख्यक लोग जीवन-यापन के लिए इसे ही अपनाते हैं। इस जनजाति की यह खासियत है कि ईसाई धर्म के प्रभाव में रहते हुए भी अनेक लोग ऐसे हैं, जिन्होंने अपने पारंपरिक पैतृक धर्म का परित्याग नहीं किया है और अपनी सांस्कृतिक विरासत को जीवंत बनाया हुआ है। संगतम क्षेत्र के अंतर्गत सात प्रशासनिक संभाग आते हैं। हाल ही में इन लोगों ने दीमापुर जिले में स्थित त्सिथ्रोंसे, संगतम तिला और मुरिसे नामक गांवों को बसाया है।

संगतम लोगों में वर्ष भर अनेक सांस्कृतिक एवं सामाजिक त्योहार मनाये जाते हैं, जिनमें मोंग्मोंग, त्सोहसुह और हनापुंग्बी मुख्य त्योहार माने जाते हैं। पुराने दिनों में मोंग्मोंग गृह-देव पूजा के रूप में मनाया जाता था, जिसमें तीन पत्थरों से बने विशेष चूल्हे की पूजा की जाती थी। इसके साथ ही इस त्योहार में अच्छी फसल के लिए भी ईश्वर की प्रार्थना की जाती है। यह त्योहार प्रायः सितम्बर के

माह में मनाया जाता है। त्सोहसुह त्योहार वसंत ऋतु के आगमन के साथ मनाया जाता है। इसे हरियाली के स्वागत में मनाया जाने वाला त्योहार भी कहा जाता है। इस त्योहार को खेतों में बीजारोपण के पहले की जाने वाली पूजा से भी जोड़ा जाता है। इस परंपरा के अनुसार गांव का पुजारी खेत में जाकर सबसे पहले अपने खेत की सफाई करके झोपड़ी बनाता है, इसके बाद ही अन्य लोग अपने कृषि-कार्य को आरंभ करते हैं। हनापुंग्बी अगस्त के दूसरे सप्ताह में मनाया जाने वाला त्योहार है, जिसमें बच्चों की खुशहाली के लिए ईश्वर की प्रार्थना तथा बड़े-बुजुर्गों से आशीर्वाद लिए जाते हैं।

2.2.12 : सुमी

सुमी या सेमा, नागा नृजातीय समूह का एक मुख्य एवं महत्वपूर्ण घटक है। ये लोग जुन्हेबोटो, किफिरे और दीमापुर जिलों में निवास करते हैं, हालांकि अब इनका प्रसार अन्य जिलों कोहिमा, वोखा, मोकोकचुंग त्वेन्संग और पेरेन में भी तेजी से हो रहा है। वर्तमान में इनकी जनसंख्या लगभग दो लाख है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक ये प्रकृति-पूजक थे और अन्य नागा जनजातियों की तरह ये भी शत्रु-गांवों के योद्धाओं के सर काटने में लगे रहते थे। इसाई मिशनरियों के आने के साथ-साथ धड़ल्ले से ईसाई होते चले गए और आज 99% लोग मतांतरित हो चुके हैं।

सुमी लोगों का इतिहास भी 'खेज़ाखेनो' से ही आरम्भ माना जाता है। कहा जाता है कि 'खेप्यू' नामक व्यक्ति के नेतृत्व में ये मखेल से चलकर खेज़ाखेनो पहुँचे थे। यहाँ कई पीढ़ियों तक रहने के बाद ये लोग कई दिशाओं में फैल गए। इनकी मौखिक कथाओं के अनुसार, खेप्यू के पुत्र एवं पौत्रों में क्रमशः सोपू, कोज़ा और राऊ हुए। राऊ के तीन पुत्र थे, जिनमें- ख्रिऊ, लेओ और सेओ के वंशज क्रमशः अंगामी, चखेसंग और सेमा या सुमी के नाम से नई जनजातियों के रूप में अस्तित्व में आए। सुमी जनजाति के कुछ लोगों का यह कहना कि इनका नामकरण 'सुमी' शब्द पेड़ या लकड़ी के आधार पर हुआ है, सही नहीं है, बल्कि 'सेओ' नाम के आधार पर ही इनकी जाति का नाम सेमा या सुमी हुआ है।

सुमी लोग भी पारंपरिक रूप से झूम-कृषि पर निर्भर रहे हैं। इसमें ये धान के साथ मक्का, सब्जियाँ और खीरा, तरबूज एवं खरबूजा जैसे फल भी लगाते हैं। इनकी कृषि पद्धति में सामूहिक कार्य-परंपरा महत्वपूर्ण रही है, जिसे 'अलोंजी' कहा जाता है। अलोंजी 20 से 30 लोगों का समूह होता है, जो बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में जाकर काम करते हैं और अतिरिक्त दिनों में दैनिक मजदूरी के आधार पर किसी और के खेत में जाते हैं। इस कार्य के बदले में ये धान या रुपए लेते हैं, जिनका उपयोग त्योहार के दिनों में सहभोज के लिए किया जाता है।

सुमी लोगों में कई पारंपरिक त्योहार मनाए जाते हैं, जो प्रायः नए मौसम के आरंभ, नई फसल की कटाई अथवा युद्ध में विजय प्राप्त होने के अवसरों पर आयोजित होते हैं। इनके त्योहारों में से 'तुलुनी' और 'अहुना' दो मशहूर त्योहार हैं, जिन्हें लोग बड़े धूम-धाम से मनाते हैं। तुलुनी को 'अन्नी' भी कहा जाता है जो धन-धान्य की प्रचुरता का द्योतक है और यह प्रतिवर्ष 8 जुलाई को मनाया जाता है। अहुना 14 नवंबर को मनाया जाता है, जो फसलों को एकत्र करने के बाद नए खाद्यान्न की प्राप्ति पर ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए मनाया जाता है। इस त्योहार में हरे बाँस के पोर में नए चावल को पकाया जाता है। इन त्योहारों में अनेक प्रकार के अनुष्ठान होते थे, जिसमें रीति-रिवाजों एवं प्रथाओं के द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक उन्नत को व्यक्त किए जाते थे, परंतु समय के साथ ये अब लुप्त-प्राय से हो चुके हैं। कहा जाता है कि इनके सुमी एवं तुकुमी नामक दो कुलों की परंपराओं और रीति-रिवाजों में भिन्नताएं पाई जाती थीं। यद्यपि तुलुनी सांस्कृतिक दृष्टि से इनका सबसे महत्वपूर्ण त्योहार है, तथापि वर्ष के अंत में मनाए जाने के कारण सरकारी कैलेंडर में 'अहुना' को ही आधिकारिक त्योहार माना गया है।

2.2.13 : यिम्बुंग

यिम्बुंग अथवा यिम्बुंगरू का अर्थ- 'गंतव्य पर पहुँचा हुआ' होता है। इसी शब्द को यिम्बुंगरू, यिम्बुंगरे के नाम से भी अभिहित किया जाता है। सुमी जनजाति के लोग इन्हें यचुमी, यत्सुमी अथवा यचिमी और चांग लोग यम्शोंग के नाम से बुलाते हैं। ये लोग वर्तमान में नागालैंड के त्वेन्संग एवं किफिरे जिलों तथा म्यांमार के पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों में रहते हैं। मकुरी और चिर्र इनकी उप-जनजातियां हैं। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार नागालैंड में इनकी संख्या 74647 है। सन 2022 में, नागालैंड सरकार के द्वारा 'तिखिर' को एक नई जनजाति के रूप में मान्यता दिए जाने के पूर्व तक, ये भी यिम्बुंग के अंतर्गत ही आते थे। अधिकांश लोगों के द्वारा ईसाई पंथ को अपनाने के बाद भी कुछ सुदूर गांवों में अपने पारंपरिक पैतृक धर्म को मानने वाले अब भी विद्यमान बताए जाते हैं।

अन्य नागा जनजातियों की तरह ही यिम्बुंग लोगों की उत्पत्ति के संबंध में कोई लिखित प्रमाण नहीं है। इनकी किंवदंतियों के अनुसार इनका सबसे प्राचीन ज्ञात निवास स्थान 'मोरू' बताया जाता है, जहाँ से ये जुरे या चिरु नामक गांव आए। ऐसा भी माना जाता है कि ये लोग, ख्यम्युंडन जनजाति के साथ म्यांमार के उत्तरी भाग से होते हुए वर्तमान नागा क्षेत्र में आए और मोरू से अपने-अपने गंतव्य की ओर चले गए। इनके संबंध में ऐसा भी कहा जाता है कि ये आरंभ में किसी बड़े जनजाति का अंग रहे होंगे, जो अपने स्थायी निवास की खोज में अलग निकल आए। ये लोग बंजारों की तरह जीवन-यापन करते थे और प्रायः एक स्थान पर एक या दो पीढ़ी रहने के बाद उस स्थान को कुछ लोगों के लिए

छोड़कर अधिकांश लोग कृषि-भूमि एवं अन्य आवश्यकताओं की खोज में नए स्थान की ओर चल देते थे। कभी-कभी तो किसी महामारी अथवा शक्तिशाली शत्रु से बचने के लिए संपूर्ण गांव को सुरक्षित स्थान की खोज में निकल जाना पड़ता था। अपने घुमक्कड़ी जीवन के अंतिम चरण में ये लोग 'यिम्बुंग अवन' नामक गांव पहुँचे, जहाँ से ये यिम्बुंगरू कहलाने लगे। इस गांव से उत्तर की ओर इन्होंने 'लंगा' नामक गांव बसाया, जिसमें 'जन्बुंगर', 'जंगर' और 'खिफुर' जैसे वंश स्थापित हुए और इन्हीं वंशों में शक्तिशाली योद्धा हुए जो कालांतर में स्वाभिमान तथा स्वार्थ के लिए युद्ध करते-करते नए गांवों की स्थापना करते चले गए।

यिम्बुंग लोगों में अपनी सांस्कृतिक विरासत एवं पारंपरिक कृषि-कार्यों के प्रति विशेष लगाव रहा है, जिन्हें उनके लोक-गीतों में लक्षित किया जा सकता है। इनका 'लॉग-ड्रम' मशहूर वाद्य-यन्त्र है और बांसुरी एवं अन्य वाद्य-यंत्रों का भी ये प्रयोग करते हैं। लट्टू घुमाने का खेल भी इनके यहाँ प्रचलित रहा है। इनके पारंपरिक पहनावे में पशुओं के खाल एवं पक्षियों के परों से सुसज्जित बेंत-निर्मित मुकुट को विशेष महत्व दिया जाता है। पुरुषों एवं महिलाओं के अलग-अलग रंग-बिरंगे परिधान अत्यंत आकर्षक होते हैं। ये लोग अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं के संरक्षण एवं संवर्धन में अग्रणी माने जाते हैं, इसलिए नागालैंड सरकार की ओर से इन्हें प्रोत्साहित भी किया जाता रहा है। सरकार द्वारा आयोजित हॉर्नबिल- फेस्टिवल के सांस्कृतिक-कार्यक्रमों में इनकी महत्वपूर्ण सहभागिता रहती है।

'मेटेम्नेओ' इनका सबसे महत्वपूर्ण पाँच-दिवसीय त्योहार है, जो फसलों की कटाई से संबंधित है। इसे अगस्त के दूसरे सप्ताह में बाजरे की कटाई के बाद मनाया जाता है। त्योहार के रीति-रिवाजों का आरंभ गांव के वृद्ध 'खुंपू' के द्वारा किया जाता है। इस त्योहार के दौरान गांव एवं खेतों की ओर जाने वाले सड़कों की सफाई, अन्य गांवों को जाने वाले मार्गों की मरम्मत, गांव के जल-स्रोतों की सफाई तथा कृषि-औजारों की पूजा आदि अनुष्ठान विधिवत किए जाते हैं। इन्हीं दिनों वर्ष-भर में मरे लोगों की आत्मा की शांति के लिए भी प्रार्थना की जाती है तथा त्योहार के उत्तरार्ध में शादी-व्याह के लिए सगाई भी होने लगते हैं। इनका विश्वास है कि पुरुषों की छः और स्त्रियों की पाँच आत्माएं होती हैं, इसलिए समाज में पुरुष जाति को स्त्रियों से श्रेष्ठ माना जाता है।

2.2.14 : जेलियांग

जेलियांग पूर्वोत्तर भारत की एक प्रमुख नागा जनजाति है और वर्तमान में असम, मणिपुर तथा नागालैंड के संलग्न जिलों में निवास करती है। ऐसा माना जाता है कि हजारों वर्ष पूर्व नागा जनजातियां किसी अंजान जगह से प्रव्रजित होकर मखेल (मणिपुर) आये थे और यहीं से पुनः अपने-अपने वर्तमान

क्षेत्र की ओर फैलते चले गए। जेलियांगरोंग समुदाय के बारे में भी यही कहा जाता है कि मखेल से निकलकर रामतिंग कबिन, चेवांग फुंगनिंग और मकुइल्वांग्दी होते हुए अपने वर्तमान क्षेत्र में आये थे। यह भी कहा जाता है कि यहीं से जेलियांगरोंग संस्कृति का बीजवपन हुआ था। यहीं से **जेमै, लियांगमै** और **रोंगमै** अपनी-अपनी कुछ विशिष्टताओं के साथ अलग-अलग स्थानों की ओर चले गए।

वस्तुतः जेलियांग शब्द दो शब्दों का संयुक्त रूप है, जो उसकी उपजातियों- **जेमै तथा लियांगमै** से बना है। यह संयुक्त नाम इनके लिए इसलिए प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इनके उद्भव, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भाषा-स्वरूप, सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में समानता पाए जाते हैं। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये उप-जनजातियां स्वयं को एक पितृ-कुल से उत्पन्न भाई मानते हैं। यही कारण है कि इनमें आज भी अन्य नागा जनजातियों की अपेक्षा परस्पर अपनत्व की भावना अधिक पायी जाती है। इसके अतिरिक्त इनके पारंपरिक त्योहार, सामाजिक संस्कार एवं जीवन-शैली में भी असामान्य उभयनिष्ठता पाई जाती है।

जेलियांग समाज में भी परिवार सबसेछोटी तथा महत्वपूर्ण इकाई है। इस समाज में पितृ-सत्तात्मक तथा एकल परिवार की परम्परा रही है। गृह-निर्माण लकड़ियों तथा एक विशेष प्रकार का घास, जिसे स्थानीय भाषा में 'खेर' (छप्पर) कहा जाता है, से किया जाता है। यही कारण है कि इन घरों को अधिक से अधिक पंद्रह वर्ष तक ही रखा जा सकता है।

परिवार से कुछ विस्तृत, परन्तु एक गांव के अंतर्गत कई किखुन/किदुई हुआ करते हैं, जिन्हें कुल या खानदान भी कहा जा सकता है। प्रत्येक किखुन एक पितृ-वंशावली से उत्पन्न माना जाता है और इनमें अंतर्विवाह भी वर्जित है। जेलियांग जनजाति में दो मुख्य कुलों की बात की जाती है, जिन्हें 'न्यूमै' एवं 'पामै' के नाम से अभिहित किया जाता है।

खंग्चू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेऊ), जेलियांग समाज की ऐसी दो सामाजिक संस्थाएं रही हैं, जो समाज के युवक-युवतियों में जीवन के मूल्य संचारित करते आये हैं। ये संस्थाएं युवकों एवं युवतियों के शिक्षण-प्रशिक्षण के केन्द्र माने जाते हैं। खंग्चू युवकों के लिए तथा ल्युच्यू युवतियों के लिए सोने का स्थान हुआ करता है। आज सामान्य भाषा में इसे 'मोरुंग' के नाम से जाना जाता है।

जेलियांग समाज में हेगुत या चेहुत, कृषि कार्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण आयाम है। हेगुत का अर्थ है, युवकों एवं युवतियों का वह समूह जो बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में जा कर काम करते हैं और कृषि कार्य-व्यवस्था में भी एक-दूसरे का साथ देते हुए, जीवन-व्यापार को आगे बढ़ाते हैं।

जेलियांग नागा गांवों में पुरोहित के रूप में कार्य करने वाले को सिन्कू या तिन्कू कहा जाता है और वे गांव के सबसे आदरणीय व्यक्ति माने जाते हैं। प्रत्येक गांव में एक मुख्य सिन्कू और एक या दो सहायक होते हैं, जो पहले की अनुपस्थिति में घरों में अथवा गांव के लिए पूजा-अनुष्ठान के कार्य सम्पादित करते हैं। मुख्य सिन्कूकी मृत्यु के बाद उनके किसी एक सहायक को मुख्य सिन्कू बनाया जाता था। यह प्रणाली वंशानुगत न होकर ग्राम समाज की सहमति से ही नए मुख्य सिन्कू का चयन किया जाता है। इस प्रकार जेलियांग समाज में सिन्कू प्रणाली को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है और आज भी कई गांवों में इसका अनुपालन किया जाता है।

जेलियांग गांवों में चेवांग की भी परम्परा रही है, परन्तु यह सिन्कू प्रणाली से पूर्व की है। किसी-किसी गांव में तिन्कू प्रणाली एवं चेवांग या हेग्वांग की परम्परा समानांतर रूप से चलती रही। यद्यपि चेवांग सम्पूर्ण जमीन पर अपना आधिपत्य नहीं जमाता था, फिर भी सम्मान के तौर पर ग्रामीणजन उन्हें भेंट के रूप में प्रतिवर्ष अनाज देते थे। यदि ग्रामीणजन के बीच किसी प्रकार की लड़ाई, भूमि सम्बन्धी झगड़े या अन्य कारणों से किसी समस्या का हल नहीं निकलता, तब राजा ही इसका निर्णय करते थे, अर्थात् न्याय प्रणाली प्रायः राजा के ही अधीन रहता था।

2.3 : कछारी, कुकी, गारो और मिकिर

नागालैंड में नागा जनजातियों के अतिरिक्त कछारी, कुकी, गारो और मिकिर; राज्य के पंजीकृत अन्य जनजातियां हैं। कछारियों में डिमासा तथा मेच कछारी आते हैं। डिमासा लोग मूलतः दीमापुर नगर तथा इसके इर्द-गिर्द मैदानी क्षेत्र में निवास करते हैं। वास्तव में यह क्षेत्र इनके द्वारा बसाया गया था, परन्तु नागा जनजातियों के धीरे-धीरे यहाँ आकर बसने के कारण इनकी संख्या विरल हो गई है। आज भी दीमापुर में 'कछारी राजबाड़ी' के नाम से इनके कुछ ऐतिहासिक खंडहर संरक्षित करके रखे गए हैं। ये लोग मुख्यतः हिन्दू धर्म को के अनुयायी हैं। इनके यहाँ शिवजी को 'सिबराय' के नाम से जाना जाता है तथा अन्य हिन्दू परम्पराओं की तरह ही धार्मिक स्थल के रूप में मंदिर आदि की स्थापना की जाती है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो अपने प्राचीन पारंपरिक आस्था को मानते हैं, जिसमें मूर्ति-पूजा जैसी कोई परिकल्पना नहीं होती है, बल्कि एक प्रकार से किसी बाहरी आध्यात्मिक तत्त्व को लिए बिना स्थानीय समाज से प्राप्त विश्वासों के आधार पर ही अपनी आस्था को कायम किए हुए हैं। ईसाई बहुल राज्य में रहने के कारण इन पर भी इसका प्रभाव पड़ा है और कुछ लोगों ने ईसाई पंथ को भी अपना लिया है। सन् 2011 की जनगणनानुसार नागालैंड में डिमासा लोगों की संख्या 4,871

है। डिमासा कछारी के अलावा यहाँ बोड़ो कछारी भी रहते हैं, जिन्हें मेच कछारी भी कहा जाता है। ये लोग जनसंख्या की दृष्टि से डिमासा से कम हैं परन्तु इनमें ईसाईकरण अपेक्षाकृत अधिक हुआ है।

‘कुकी’ दूसरी गैर-नागा जनजाति है, जो नागालैंड की जनजाति के रूप में पंजीकृत है। इनका निवास मुख्यतः पेरेन जिले के अथिबुंग क्षेत्र है तथा कुछ गांव चुमुकेदिमा जिले के मेदज़िफेमा क्षेत्र में भी है। सन् 2011 की जनगणनानुसार नागालैंड में इनकी जनसंख्या 16,768 है, जो राज्य की कुल जनसंख्या का लगभग एक प्रतिशत है। वैसे तो ये लोग पूर्वोत्तर भारत के कमोबेश सभी राज्यों में निवास करते हैं, जिन्हें ‘चिन’ के सामान्य नाम से जाना जाता है, परन्तु अलग-अलग राज्यों में इनके विशिष्ट नाम हैं। नागा जनजातियों की भांति ही लगभग सभी कुकी लोगों ने ईसाई पंथ को अपना लिया है और आज की स्थिति में शायद ही कोई अपने पैतृक धर्म का अनुयायी हो।

अन्य जनजातियों के अंतर्गत गारो और मिकिर ऐसी दो जनजातियां हैं, जो जनसंख्या की दृष्टि से तो नगण्य हैं, फिर भी नागालैंड की जनजातियों के रूप में इनकी गिनती की जाती है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार गारो 2346 तथा मिकिर लोगों की संख्या मात्र 218 बताए गए हैं। गारो जनजाति के लोग मेघालय के गारो हिल्स में बहुसंख्यक के रूप में रहते हैं, परन्तु नागालैंड में ये किस प्रकार पहुँचे, इस बात का कोई प्रामाणिक दस्तावेज़ उपलब्ध नहीं है। मिकिर लोग असम के मिकिर हिल्स के बहुसंख्यक लोग हैं, परन्तु नागालैंड राज्य के सीमांकन के दौरान इनके क्षेत्र का कुछ भाग इस राज्य में आ गया और यहाँ की जनजातियों में ये भी अंकित हो गए। इस प्रकार नागालैंड में ये मुख्य चार गैर-नागा जनजातियां हैं, जो जनसंख्या की दृष्टि से नहीं, अपितु अपनी सांस्कृतिक एवं सामाजिक विशिष्टताओं के कारण महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं।

संदर्भ सूची

- Bareh, Dr. Hamlet (1970). *Gazetteer of India, Nagaland, Kohima District*, Govt. of Nagaland. Calcutta: Sree Saraswaty Press Ltd.
- Down, Fredericks S (1983). *Christianity In Northeast India. (History of Christianity in India.)*
- Hutton, J.H. (1921). *The Angami Naga*. London: Macmillan and Co. Limited.
- Joshi, Hargovind. (2001). *Nagaland: Past and Present*. New Delhi: Akansha Publishing House.

Kamei, Pro. Gangmumei (2004). A History of the Zeliangrong Nagas. New Delhi and Guwahati: Spectrum Publications.

Mathur, N. (1992). Religious Ethos of The Angami Naga. New Delhi: Cosmo Publication.

Thong, Joseph S. (2022). Head Hunters Culture (Historic Culture of Nagas). Tseminyu: JOS Compilation and Translation Chamber, Tseminyu.

Verrier, Dr.Elvin. (1961). Nagaland. Shillong: Published By P. Dutta for the Research Department, Adviser's Secretariat, Shillong.

Yonuo, Asoso. (1974). The Rising Nagas- A Historical and Political Study. Delhi: Vivek Publishing House.

पत्रिका:

Singh, Dr. R.K.. Heritage Explorer. (August-2018, vol. xvii, No. 8), Traditional livelihood system among the Chakhesang Tribe of Nagaland.

वेब ओपेक:

Angami Tribes, Religion of Angami, Angami Culture and Occupation.

<https://www.indianmirror.com/tribes/angamitribe.html>

Ao Nagas

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Ao_Naga

Temsu, Robin. Traditional Ao Naga Socio-Cultural History.

https://www.academia.edu/11510733/TRADITIONAL_AO_NAGA-SOCIO_CULTURAL_HISTORY

Chakhesang Naga

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Chakhesang_Naga

Wouters, Jelle J.P.. The making of tribes: The Chang and Chakhesang Nagas

<https://journals.sagepub.com>

Chang (By National Informatics Centre, Govt. of India. 2023.)

<https://tuensang.nic.in/chang>

Khamniungan People

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Khiamniungan_people

The Last Head Hunters of Nagaland

<https://www.atlasofhumanity.com>

Lotha Naga - Wikipedia

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Lotha_Naga

Phom Naga- Wikipedia

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Phom_Naga

Chukhapa, K.. The Pochury Naga Tribe: A History of their migration and Tribe formation. <https://ijcrt.org>

Rengma Naga- Wikipedia

https://en.m.wikipedia.org/Rengma_Naga

Head Hunting - Society of Nagaland

https://webindia1232.com>nagaland>people>naga_society2.

Sumi Naga - Wikipedia

https://en.m.wikipedia.org/Sumi_Naga

Yimkhyung Naga- Wikipedia

https://en.m.wikipedia.org/Yimkhyung_Naga

Zeliang Naga Tribes

https://www.indianetzone.com/51/zeliang_naga.htm

अध्याय – तीन लोकसाहित्य में नागालैंड का जनजातीय जीवन

3.1 लोक कथाओं में नागा जनजातीय जीवन

- 3.1.1 अंगामी- मेहूविअ और मोरुसा
- 3.1.2 आओ- जिना और एतिबेन
- 3.1.3 चखेसांग- क्रूर भाभी
- 3.1.4 चांग- दो भाई
- 3.1.5 ख्यम्युंगन- महा बाढ़
- 3.1.6 कोन्याक- अनो-चिंयू
- 3.1.7 लोथा- लंकोंगहोनी
- 3.1.8 फोम- अपीसांग्बा और अंग्यादांयू
- 3.1.9 पोचुरी- चेखरा
- 3.1.10 रेंगमा- काशो-कप्फु
- 3.1.11 संगतम- लोंखोंग्ला
- 3.1.12 सुमी- नृत्य की उत्पत्ति
- 3.1.13 यिम्खुंग- विलुप्त लंगा
- 3.1.14 जेलियांग (हामै) - हैगुइंग (कैवींग)

3.2 लोक गीतों में व्यक्त जीवन

अध्याय – तीन

लोकसाहित्य में नागालैंड का जनजातीय जीवन

विश्व का कोई भी समाज साहित्य-विहीन नहीं होता, चाहे वह शहरी समाज हो या फिर लौकिक समाज। यह भी सच है कि प्रत्येक समाज के साहित्य में उस समाज के जीवन-मूल्य तथा जनजीवन के चित्र प्रतिबिंबित होते ही हैं। पूर्वोत्तर भारत के एक महत्वपूर्ण जनजाति-समुदाय का निर्माण करने वाली नागा जनजातियों के संदर्भ में भी यही बात लागू होती है। जीवन के प्रति लोक के दृष्टिकोण तथा उससे प्राप्त अनुभवों को ही आधार मानकर साहित्य को मूर्त रूप दिया जाता है, जिसमें जीवन के विविध फलकों को अभिव्यंजित किया जाता है। नागा जनजातीय साहित्य के संबंध में भी यह बात है। लोक कथा तथा लोक गीत जैसी प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त यहाँ कतिपय समाज में उपलब्ध लोक गाथाओं में जहाँ जीवन के विस्तृत एवं विविध पक्ष व्यक्त हुए हैं, वहीं लोकोक्तियों एवं कहावतों के माध्यम से भी जीवन के गूढ़ तथ्यों एवं मूल्यों को सूत्रों के रूप में पिरोया गया है। यद्यपि ये सभी सामग्रियां लिखित एवं व्यवस्थित रूप में प्राप्त नहीं हैं, तथापि साक्षात्कार के माध्यम से, कतिपय पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में छपे लेखों तथा इंटरनेट पर उपलब्ध विषय-वस्तुओं के आधार पर लोक साहित्य में व्यक्त जनजातीय जीवन की समीक्षा की जा सकती है। यह विश्वास किया जाना चाहिए कि इनके साहित्य की प्रत्येक विधा में जीवन के कुछ न कुछ पुट एवं रंग प्राप्त हो ही जाते हैं, क्योंकि इनकी रचना का आधार ही जीवन तथा उससे उत्पन्न विविध आयाम हैं। वैसे तो लगभग सभी नागा जनजातियों का लोक साहित्य जीवन के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही पक्षों के यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं, फिर भी जिस प्रकार शिष्ट साहित्य में काव्यशास्त्रीय तत्वों के माध्यम से काव्य को और अधिक गौरवान्वित किया जाता है, उसी प्रकार यहाँ के लोक साहित्य-विशेषतया, कथाओं में भी कल्पना-तत्त्व को प्रधानता दी गई है। परिणामस्वरूप, प्रत्यक्ष लौकिक जीवन से परे अनेक तथ्य यहाँ के लोक गीतों एवं कथाओं में देखे जा सकते हैं। इसके पीछे यह तथ्य हो सकता है कि लोक में मनोरंजन को साहित्य का प्रमुख उद्देश्य मानते हुए विविध विधाओं की रचना में लोक-रंजन के लिए ऐसे तत्त्व भी जोड़े जाते रहे हैं, जो उनके यथार्थ जीवन से परे मनोहर एवं अतिरंजित से लगते हैं। कुछ जनजातियों में लम्बे गीतों की परंपरा रही है, जिनमें गीतकारों ने अपने जीवन की कहानी को गीत के रूप में व्यक्त किया है, जिन्हें गीत न कहकर गाथा भी कही जा सकती है। इस प्रकार, साहित्य में व्यक्त नागा जनजातीय जीवन को उनके लोक साहित्य की निम्न विधाओं के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है-

1. लोक कथाओं में नागा जनजातीय जीवन
2. नागा लोक गीतों में व्यक्त जीवन

3.1 : लोक कथाओं में नागा जनजातीय जीवन

नागालैंड की लोक कथाओं के संबंध में यह कहा जाता है कि प्रायः सभी नागा जनजातियों में ये पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में हस्तांतरित होती आई हैं, जिनमें नागा जनजातीय जीवन के चित्र स्पष्ट रूप से झलकते हैं। कथाकारों ने मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए जहाँ हास्य को कथा का एक महत्वपूर्ण तत्त्व माना है, वहीं नैतिक शिक्षा एवं न्याय को भी ध्यान में रखते हुए कथाओं को मूर्त रूप दिया है। कहना न होगा कि यहाँ की लोक कथाओं में कल्पना के पुट का अभाव है, बल्कि जिस प्रकार नैतिकता को ध्यान में रखते हुए अंत में बुराई की हार तथा भलाई की जीत को दिखाया जाता है, उसी प्रकार मानसिक तुष्टि के लिए अधिकांश कथाओं को कल्पना की चादर में लपेटकर सुखान्त बनाया गया है। लोक में प्रचलित कुछ ऐसी कहानियाँ भी होती हैं, जिनमें मनोरंजन के उद्देश्य से हास्य तत्वों को प्रमुखता दी जाती है तो कहीं परियों अथवा राजकुमारियों की मनोहर कथाओं में उनका विवाह निर्धन एवं असहाय अनाथ युवक से कराकर लोक में दुखी, निराश्रित एवं निराश लोगों के मन में सांसारिक जीवन के प्रति राग एवं आस्था उत्पन्न करने के प्रयास किए जाते हैं। कुछ दुखांत लोक कथाओं की भी परंपरा रही है, जिनमें प्रताड़ित पात्र मानवीय जीवन से परेशान एवं निराश होकर मानवेतर किसी पक्षी अथवा पशु जीव में स्वयं को परिवर्तित कर लेता है। कभी-कभी ऐसे पात्र मानवेतर जीव में रहकर उन आततायी पात्रों से बदला लेता है, जिनके कारण उसे अपनी देह बदलनी पड़ी थी। कभी-कभी तो वह स्थायी रूप से समाज में ही रहकर लोगों को न्याय प्रदान करने का कार्य करता है। यहाँ की जेलियांग जनजाति में प्रचलित 'पेपुई तेनु' (Nbung, 2020) नामक एक लोक कथा के अनुसार, अपनी सौतेली माँ के द्वारा किए गए अमानवीय व्यवहार तथा प्रताड़ना से परेशान होकर एक युवक अपनी प्रेमिका के प्रेम को अनिच्छा पूर्वक त्यागते हुए एक 'धनेश' पक्षी का रूप धरकर आसमान में उड़ जाता है। कहा जाता है कि कुछ वर्षों बाद जब वह उसी पक्षी के रूप में उड़ते हुए अपने गाँव वापस आता है, तब अपनी सौतेली माँ से बदला लेता है तथा अपनी पूर्व प्रेमिका, जो कि अब किसी और से शादी करके एक बच्चे की माँ बन चुकी होती है -को अपना सबसे सुंदर पंख देकर फिर उड़ जाता है। इसी से मिलता-जुलता सुमी जनजाति में धनेश पक्षी की उत्पत्ति को 'किविघो' नाम के निर्धन लड़के एवं कहली नाम की संपन्न परिवार की लड़की के प्रेम के रूप में सुनाया जाता है, जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए फल तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़कर फिर उतर नहीं पाता है और वहीं से वह धनेश पक्षी बनकर उड़ जाता है। ये लोग यहीं से धनेश पक्षी की उत्पत्ति मानते हैं।

कल्पना एवं नैतिकता के साथ-साथ मानव जीवन की सामान्य भावनाओं तथा उसके विकारों को व्यक्त करने वाली अनेक ऐसी कथाएं भी यहाँ की लोक कथाओं में प्राप्त होती हैं, जिन्हें हम रोजमर्रा

अथवा सर्वसाधारण के दैनिक जीवन में देखते हैं। ऐसे में, जहाँ एक ओर प्रेम, आदर, स्नेह, ममता, सौंदर्य, परस्पर बंधुत्व तो दूसरी ओर लालच, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार तथा वैमनस्यता आदि मनोविकारों को प्रकट करने वाली अनेक ऐसी कथाएँ इनकी लोक कथाओं में प्राप्त होती हैं, जिन्हें हम जन सामान्य के जीवन से जोड़ सकते हैं या यों कहें कि जिन भावनाओं, खुशियों, दुखों, संघर्षों एवं जीवन कार्य-व्यापार को हम सामाजिक जीवन में देखते हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे चित्र हैं, जो यहाँ की लोक कथाओं में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हुए हैं। उदाहरण के रूप में, यहाँ प्रचलित एक कहानी 'बेरहम सौतेली माँ' (फिलिप, 2014), के अनुसार कहा जाता है कि किसी गाँव में लुन्सो नामक युवक पर सभी लड़कियाँ मरती थीं, पर उसने शोजिला नामक एक निर्धन परन्तु सुशील युवती से शादी कर ली, जिससे जलकर मुखिया की घमंडी एवं बिगड़ी हुई बेटी होजी ने कुछ वर्षों बाद शोजिला की हत्या कर दी और स्वयं लुन्सो से ब्याह करके उसके पुत्र छिपोंग एवं पुत्री त्सयन्ला की सौतेली माँ बन बैठी। कुछ वर्षों के बाद उसने दोनों बच्चों को भी जंगल में छोड़ दिया, ताकि वे हिंसक पशुओं के शिकार बन जाएँ, पर वे दोनों बच जाते हैं तथा बड़े होकर अपना ऐसा बदला लेते हैं कि होजी को ही हिंसक पशुओं का शिकार बनना पड़ता है। इस कहानी से यह स्पष्ट होता है कि नागा लोक में जहाँ लुन्सो एवं शोजिला जैसे दंपतियों का प्रेम है, वहीं होजी का ईर्ष्या एवं लोभ भी विद्यमान है। इसमें शोजिला का अपने बच्चों के लिए ममता एवं स्नेह है तो होजी का अपने सौतेली संतानों के प्रति निर्ममता और क्रूरता है। लुन्सो के, बिन माँ के बच्चों को माँ का प्यार दिलाने की चाहत उनके जीवन को और अधिक कष्टमय बना देता है। परन्तु यहाँ यह भी दिखाया गया है कि होजी जैसी सौतेली माँ को छिपोंग एवं त्सयन्ला के माध्यम से ऐसी सज़ा मिलती है कि उसे अपने सभी बुरे कर्मों का फल मिल जाता है। ऐसी कहानियों के माध्यम से लोक-जन को जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना करने तथा जीवन के संघर्ष में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी जाती होगी।

नागालैंड में रहने वाली प्रमुख 14 नागा जनजातियों की एक-एक लोक कथाओं को यहाँ उदाहरण के रूप में लिया जा रहा है, जिनका आवश्यकतानुसार विश्लेषण करते हुए, इन कथाओं में अभिव्यक्त लौकिक जनजीवन का उद्घाटन किया जाएगा।

3.1.1 : अंगामी

अंगामी जनजाति में प्रचलित कथा 'मेहूविअ और मोरुसा' (Bose, 2019, page-15) के अनुसार, दक्षिणी अंगामी क्षेत्र के बीचों-बीच किसी गाँव में मेहूविअ नाम की अत्यंत सुंदर एवं सुशील लड़की अपने माता-पिता के साथ रहती थी। उसके सौंदर्य की चर्चा हर जगह पहुँच रही थी। उसके गाँव तथा आस-पास के अन्य गाँवों से कई लड़के विवाह के लिए उसका हाथ माँगने आ चुके थे। हर कोई

चाहता था कि उसे मेहूविअ मिल जाए। हर माता-पिता की हार्दिक इच्छा यही थी कि मेहूविअ उसकी बहू बने। परंतु उसने पहले ही किसी और पर अपना हृदय न्यैछावर कर दिया था।

कहा जाता है कि उसके गाँव के पास ही किदिमा नामक गाँव में मोरुसा नाम का एक वीर योद्धा रहता था, जो स्वस्थ, ऊँचे कद एवं चौड़े सीने वाला था। उस इलाके में सभी लोग उसकी वीरता की कथाएं कहते-सुनते थे। उसके बारे में सुनकर मेहूविअ उसे देखे बिना ही अपना दिल दे बैठी। यही कारण था कि जब कोई भी उसका हाथ माँगने आता, तो उसे मना कर देती थी। संयोग की बात यह थी कि मोरुसा के घर वाले उसका विवाह कर देना चाहते थे और उन्होंने उसके लिए मेहूविअ का हाथ माँगने हेतु कुछ रिश्तेदारों को भेजा। मोरुसा के घर से विवाह का प्रस्ताव आता देख मेहूविअ की खुशी का ठिकाना न रहा। इस बात से उसके माता-पिता भी अत्यंत हर्षित हुए। मेहूविअ अब इतनी खुश रहती थी कि उसके पाँव जमीन पर ही न पड़ते थे। उसने अपने सभी सखियों को यह खुशखबरी सुनाई और उनके साथ हँसी-खुशी में वक्त गुजारती हुई अपने विवाह के दिन की प्रतीक्षा करने लगी।

इधर मोरुसा के घर पर भी विवाह की तैयारियाँ आरंभ हो गईं। एक योद्धा होने के नाते उन दिनों की दृष्टि से उसके मन में यह बात आनी स्वाभाविक थी कि शादी के पहले वह किसी शत्रु का मर्दन करे तथा उसका सर अपनी होने वाली पत्नी को उपहार-स्वरूप प्रदान करे। यही सोचकर वह किसी शत्रु की तलाश में निकल पड़ा कि कोई दिख जाए, तो उसका सर कलम कर ले आए। परंतु उसका दुर्भाग्य था या शत्रु गाँव का सौभाग्य, उस दिन शत्रु गाँव का कोई भी व्यक्ति आते-जाते दिखाई न पड़ा। इसलिए वह सुदूर अन्य गाँव की ओर निकल गया। इस प्रकार चलते हुए वह एक सुनसान गाँव में पहुँचा, जहाँ किसी भी व्यक्ति का नामोनिशान नहीं था। वह गाँव के अंदर घुसता चला गया और अंततः उसने एक घर के आँगन में एक औरत को कपड़े बुनते देखा। वह अपनी बुनाई में इतनी तल्लीन थी कि उसने मोरुसा को पास आते महसूस नहीं की। इस अवसर को गँवाए बिना उसने झट से अपने भाले से उस महिला का हृदय बिंध डाला। महिला उसी क्षण वहीं ढेर हो गई। उसने मृत शरीर से सर को काट लिया और उसे लेकर उमंग के साथ अपने घर आ गया। उसके घर वाले और सभी रिश्तेदार भी अत्यंत प्रसन्न थे कि मोरुसा ने एक शत्रु का सर अपने नाम कर लिया है। विवाह की तैयारियाँ और भी जोर-शोर से चलने लगीं, जश्न मनाया जाने लगा और गाँव के सभी लोगों को विवाह में आने का न्योता भेजा जाने लगा।

इस बीच यह खबर आई कि मेहूविअ का अचानक देहावसान हो गया है। विवाह की सारी तैयारियाँ रोक दी गईं, घर का वातावरण शोक-संतप्तपूर्ण हो गया। बरात लेकर जाने के बजाय मेहूविअ

के मैथ्यत में शामिल होने के लिए मोरुसा के रिश्तेदार भी निकल पड़े। वहाँ जाकर पता चला कि किसी ने मेहूविअ की हत्या ही नहीं की, बल्कि उसका सर भी काटकर ले गया है। तभी मोरुसा के घर वालों को संदेह होने लगा कि जिस औरत का सर उसके द्वारा लाया गया है, वह कहीं मेहूविअ का तो नहीं है! आखिरी काम के बाद उन्होंने जब गाँव वापस आकर मोरुसा से उस औरत के घर, गाँव की स्थिति आदि के बारे में ठीक से जाना, तब यह निश्चित हो गया कि उसने ही अपने होने वाली पत्नी की हत्या कर दी थी। इस प्रकार, तत्कालीन समाज में प्रचलित इस आभासी वीरता के दंभ ने एक निर्दोष एवं भावी जीवन के प्रति सैकड़ों सपने संजोए मेहूविअ के जीवन का अंत कर दिया तथा मोरुसा को अपना पारिवारिक जीवन आरंभ करने के पहले ही विधुर बना दिया।

इस कहानी में व्यक्त मेहूविअ का मोरुसा के प्रति प्रेम यह स्पष्ट करता है कि अंगामी समाज में किसी वीर योद्धा के गुण-कथन से ही लड़कियों के मन में उनके प्रति प्रीति की भावना उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक बात थी। अतः यह कहा जा सकता है कि जहाँ स्त्रियों में सौंदर्य, गृहकार्य एवं कृषि-कार्यों में कुशलता को अधिक महत्त्व दिया जाता था, वहीं पुरुषों के संबंध में वीरता एवं बहादुरी को अपेक्षित गुण माना जाता था। साथ ही, उन दिनों शत्रु गाँव के लोगों को मारना और उनके सर को काटकर अपने गाँव लाने की परंपरा थी, जिसे अंग्रेजों ने 'हेड-हंटिंग' नाम दिया था। यदि कोई योद्धा किसी का सर कलम कर उसे गाँव ले आता था, तब वह दिन उसके जीवन का विशेष दिन होता था तथा उसकी आन-बान-शान एवं मान में अभिवृद्धि होती थी।

कहानी में मेहूविअ के द्वारा कपड़ों की बुनाई को दर्शाया जाना, अन्य लोगों के साथ खेतों में न जाकर घर पर ही रहना- बताता है कि उन दिनों जब कोई लड़की विवाह करके अपने पति के घर जाती थी, तब वह अपने हाथों से बुनी अधिक से अधिक वस्त्र अपने ससुराल ले जाती थी। तब अपने पति के लिए ही नहीं, बल्कि सास-ससुर के लिए भी विशेष प्रकार के शाल ले जाए जाते थे। इसलिए जिन लड़कियों का विवाह निकट होता था, वे प्रायः घर पर ही रहकर वस्त्रों की कताई-बुनाई का कार्य करती थीं। दूसरी बात, वे खेतों में न जाकर घर पर इसलिए भी रहती थीं, ताकि बाहर की कड़ी मेहनत, धूप-बारिश से उनके रंग-रूप फ़ीके न पड़ जाएं अर्थात् अपने सौंदर्य को ध्यान में रखते हुए वे घर के अंदर रहकर ही अधिकांश कार्य सम्पन्न करती थीं।

इस कहानी से यह भी उद्घाटित होता है कि जहाँ शत्रु को मारने पर योद्धाओं में हर्षोल्लास का भाव होता था, वहीं अपनों की मृत्यु पर बड़ा ही मातम मनाया जाता था। मोरुसा के द्वारा मेहूविअ को गाँव के अंदर घुसकर घर में ही मारना उन दिनों की इस मान्यता को और भी अधिक पुष्ट करता है कि

स्त्रियों एवं बच्चों को मारकर उनका सर लाना और भी अधिक बहादुरी का प्रतीक था, क्योंकि वे प्रायः गाँव के भीतर अपेक्षाकृत अधिक सुरक्षित घरे में होते थे। सुरक्षित जगह से शत्रु का सर काटकर लाना सर्वाधिक सम्मान और बहादुरी की बात होती थी। मोरुसा के कृत्य से पता चलता है कि अनजाने में ही सही, उसने अपनी भावी पत्नी की हत्या कर दी थी। यह भी पता चलता है कि उन दिनों लोग अपनी खोखली वीरता को दिखाने के लिए किसी भी अबला स्त्री या बच्चे को मारने से नहीं हिचकते थे। यह निश्चित तौर पर उन दिनों की बहुत बड़ी सामाजिक बुराई अथवा कुरीति थी। यहाँ यह भी लक्षित होता है कि चाहे जितनी भी दूर गाँव का हो, यदि कोई अपने रिश्तेदार अथवा जान-पहचान के लोगों में से किसी की मृत्यु होती है, तो लोग उस दुःख में सहभागी होने-बनने के लिए अवश्य जाते थे। मेहूविअ का विवाह मोरुसा से नहीं हुआ था, पर जब उसकी मृत्यु की खबर आई, उसके घर वाले उस शोक में सहभागी बने। उस शोक में मोरुसा का शामिल न होना यह सिद्ध करता है कि मोरुसा दुःख, ग्लानि व शर्म के गहरे गर्त में समा चुका था। यह भी सिद्ध होता है कि मोरुसा ने गलती की है। उसकी अंतरात्मा धिक्कार उठी थी कि उसने एक निर्दोष की हत्या की है, जो उसकी भावी पत्नी थी। वह भला किस मुंह से शोक में शामिल होने जाये! वह साहस न जुटा सका। यह घटना उसकी खोखली वीरता व सामाजिक मान्यता को उजागर कर देता है। यह घटना उसकी नैतिक हार थी।

वर्तमान में इस प्रकार की कथाओं को लोक में इस मंतव्य के साथ नई पीढ़ी को सुनाई जाती है कि हेड-हंटिंग जैसी प्रथा हमारी वीरता का प्रतीक नहीं बल्कि सामाजिक अभिशाप रही है। यही कारण है कि नागा समाज ने आज इस प्रकार की कुप्रथाओं एवं सामाजिक रूढ़िवाद को दशकों पीछे छोड़ दिया है।

नागा जनजातियों का समाज आरम्भ से ही पुरुष प्रधान रहा है। नारी सौंदर्य के प्रति लोगों में आसक्ति भी शुरू से ही रही है। कहीं-कहीं स्त्री के सौंदर्य के प्रति क्रूरता दिखाते हुए उसके शोषण को भी चित्रित किया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि अपनी दुष्ट प्रवृत्ति के कारण न सही, पर कभी-कभी भ्रमित होने के कारण अथवा कान भरावन के झाँसे में आकर भी इस पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों के साथ अन्याय हो जाता था। **‘सोफुन्यो’** (पाठक, 2010) की कथा के अनुसार, कोहिमा जिले के **रुकेहामा¹** नामक गाँव में जेन्युए नाम की सुन्दर युवती रहती थी, जो स्त्रियोचित सर्वगुण संपन्न होने के साथ-साथ अत्यंत सुन्दर भी थी। गाँव तथा आस-पास के सभी युवक उससे ब्याह करना चाहते थे। परन्तु कहा जाता है कि कोसोहो नामक एक व्यक्ति सुदूर देश से आया और उसे ब्याह कर ले गया। कुछ वर्षों तक जेन्युए एवं कोसोहो का जीवन सुख एवं आनंद के साथ बीता, पर बाद में पति ने जेन्युए

¹ यह गाँव आज भी रूसोमा के नाम से विद्यमान है और इस कथा को सत्य कथा माना जाता है।

एवं उसके नवजात पुत्र को घर से निकाल दिया। जेन्युए अपने नन्हे बच्चे के साथ पैतृक गाँव को लौट रही थी, लेकिन रास्ते में ही उन दोनों ने दम तोड़ दिया। कहा जाता है कि मरने के बाद दोनों माता-पुत्र के शरीर पत्थरों में परिवर्तित हो गए, जिन्हें गाँव वालों ने एक प्रतीक के रूप में उन्हें गाँव लाकर रख दिया, जो आज भी यथावत है।² इस कहानी से स्पष्ट है कि समाज में स्त्री-सौंदर्य के प्रति लोलुपता भरी हुई थी तथा उसे पाने के लिए लोगों में होड़ लगी रहती थी। जेन्युए के पिता कभी नहीं चाहते थे कि उसकी बेटी सुदूर माओ देश में ब्याही जाए, परंतु जब दूसरी बार कोसोहो ने स्वयं आकर जेन्युए का हाथ माँगा, तब वे उसे मना न कर सके। इससे यह तथ्य उभरकर आता है कि यदि कोई पुरुष किसी युवती का हाथ बार-बार माँगे तो माता-पिता उसे नहीं टालते थे। इससे स्पष्ट होता है कि जेन्युए जैसी सुशील युवतियाँ माता-पिता की इच्छानुसार ही अपने जीवन साथी का वरण करती थीं। इस प्रकार, लड़कियों की अनिच्छा अथवा इच्छाओं का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता था। कहा जाता है कि वस्त्रों की बुनाई एवं कृषि कार्य में निपुण होने के साथ-साथ वह गृह-संचालन के कार्य में भी दूसरों से अधिक कुशल थी, जिससे कोसोहो का परिवार शीघ्र ही संपन्न हो गया और परिणामस्वरूप गाँव की औरतों की आँखों में जेन्युए खटकने लगी थी। कोसोहो के कान भरे जाने लगे। इस तरह की झूठी अफवाहों ने उसके मन में अपनी पैठ बना ली तथा उस निरीह स्त्री को पुत्र सहित बेघर कर दिया गया। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस लोक कथा में पुरुषों के मन में जहाँ रूप-लालसा है, वहीं स्त्रियों में गुण एवं शील में यदि कोई उनसे आगे बढ़ जाए, तो उसके जीवन को बर्बाद करने को तत्पर रहती हैं। एक तरफ जहाँ पुरुषों में स्त्रियों के प्रति लगाव दैहिक वासना तक ही सीमित प्रतीत होता है, वहीं स्त्रियों में परस्पर ईर्ष्या विशेष रूप से किसी अन्य स्त्री की प्रगति एवं संपन्नता को देख त्रिया मन जनित कोप की भावनाएं लक्षित होती हैं। कुल मिलाकर, स्त्री जाति के प्रति अन्याय एवं शोषण ही इस कथा का प्रतिपाद्य है। लेकिन प्रकारांतर से आज की पीढ़ी को यह कहानी इस उद्देश्य के साथ सुनाई जाती है कि जो कुछ जेन्युए तथा उसके पुत्र के साथ हुआ - वैसा किसी अन्य माँ या बेटे के साथ न हो। समाज में किसी जेन्युए को भोग की वस्तु न समझी जाए, उसके कला-कौशल तथा जीवन-व्यापार के कार्यों की निपुणता को पुरुषों के दासत्व के रूप में चित्रित न किया जाए तथा परिवार में सभी परस्पर ऐसा प्यार करें कि अन्य लोगों की बातों में आकर कोसोहो जैसे लोग भ्रमित न हों।

3.1.2 : आओ

आओ-नागा लोक में ऐसी अनेक कथाएं प्रचलित हैं, जिनमें स्त्रियों की मर्यादा को महत्त्व देते हुए उन्हें घर की लक्ष्मी मानकर पुरुषों से भी उच्च-पदस्थ स्थान दिया जाता है। ऐसी मान्यता है कि जिस घर

² आज भी लोग इन पत्थरों को ऐतिहासिक धरोहर मानते हुए उन्हें देखने के लिए जाते हैं और कहा जाता है कि बच्चे के प्रतीक छोटे पत्थर का आकार आज भी बढ़ता जा रहा है।

की स्त्री गृह कार्यों में निपुण होने के साथ-साथ सुशील एवं बड़ों का आदर करने वाली होती है, वह उस घर में संपन्नता लाती है। इसलिए यहाँ की कथाओं में नारी सौंदर्य एवं उसकी महत्ता को स्थापित करते हुए प्रायः सुन्दर एवं सर्व-गुण संपन्न लड़की को धनवान पिता की बेटी तथा कथा के पुरुष पात्र को निर्धन या अनाथ युवक के रूप में प्रस्तुत करने की परंपरा रही है। ऐसी कथाओं में जब किसी धनवान की बेटी को अनाथ युवक से प्रेम हो जाता है, तब ऐसे में प्रायः लड़की के पिता के द्वारा निर्धन युवक के समक्ष ऐसी शर्तें रखी जाती हैं, जिन्हें पूरा करना या तो असंभव होता है या अत्यंत कठिन होता है। जब ऐसी शर्तें युवक के द्वारा पूरी की जाती हैं, तब कथा सुखांत हो जाती है और जब वह असफल रहता है, तब कथा दुखांत हो जाती है। **‘जिना और एतिबेन’** (Bose, 2019, page-57) की कहानी में मोपुंग्चुकेट नामक गाँव में लेम्तुर नामक खानदान के किलिंग्संग एवं सोइना के पुत्र जिना एक होनहार, मेहनती परन्तु निर्धन परिवार का लड़का था। एतिबेन अपने गाँव की सबसे सुंदर लड़की थी। वह ‘ओची’ नामक खानदान की थी, जो एक संपन्न दंपत्ति कबीर एवं वारोला की बेटी थी। वह अपने सुंदर वर्ण एवं आकर्षक आँखों के लिए जानी जाती थी। उसे अपने आभूषणों से बहुत लगाव था। दोनों में परस्पर असीम प्रेमथा, परंतु वे यह भी जानते थे कि पारिवारिक प्रतिष्ठा को ध्यान में रखते हुए एतिबेन के माता-पिता उसका हाथ जिना को नहीं देंगे। इसलिए वे छुप-छुप कर अपने गाँव से दूर लोंगुखुम नामक गाँव में जाकर मिलते थे। फिर भी अंततः लोगों को इस बात की भनक लग ही गई। एतिबेन के माता-पिता नहीं चाहते थे कि उनकी शादी हो। इसलिए उन्होंने वसापोंग नाम के एक प्रतिष्ठित परिवार के लड़के से उसकी शादी तय कर दी। लेकिन एतिबेन ने इस रिश्ते को ठुकरा दिया। इसके बाद उसके माता-पिता ने सुंग्रत्सु गाँव के संभ्रांत परिवार के वारिस तेन्यूर से उसकी शादी तय कर दी। लेकिन उनकी बेटी ने उसे भी मना कर दिया तब उसके पिता ने यह शर्त रखी कि यदि जिना या कोई भी लड़का उसके लिए सात गाएं लाकर दे दे, तो वह एतिबेन को अपनी पत्नी बना सकता है। एतिबेन को पता था कि यह जिना के परिवार वालों के वश की बात नहीं है। इसलिए उसने अपने सभी आभूषण उतारे और जिना को देते हुए कहा, “जिना जाओ, मैदानी क्षेत्र से गाएं खरीदकर लाओ, ताकि हमारी शादी हो सके और हम हमेशा के लिए एक हो जाएं।” जिना ने जाकर गाएं ले ली, लेकिन तेन्यूर ने उसके वापस आने के पहले ही एतिबेन के पिता को गाएं देकर लड़की को प्राप्त कर लिया।

एतिबेन ने बड़ी अनिच्छा के साथ तेन्यूर से विवाह कर लिया। लेकिन उस दिन से उसने खाना-पीना छोड़ दिया, जिससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ता चला गया। इस बात से चिंतित होकर तेन्यूर ने उसे अपने मायके पहुँचा दिया। जिना ने माता-पिता से छुप-छुपकर खुद को स्वस्थ बनाने का बहुत प्रयास किया, लेकिन सब व्यर्थ रहा और एक दिन वह चल बसी। इस प्रकार एतिबेन एवं जिना के प्रेम का

दुखांत हुआ। कहा जाता है कि जब एतिबेन की मृत्यु हुई, तभी से जिना ने बाँसुरी बजाना आरंभ कर दिया और तब तक बजाता रहा, जब तक उसके प्राण-पखेरू उड़ न गए, "But the two lovers did not let the people forget them. They left their footprints on stones to be together eternally." (Baruah, 2009)

इस कहानी के माध्यम से पता चलता है कि नागा समाज में एतिबेन एवं जिना जैसे प्रेमी युगलों का स्वच्छंद प्रेम प्राचीन काल से विद्यमान रहा है। स्त्री जाति की महत्ता को स्वीकारते हुए दहेज़ भी दुल्हन के परिवार वालों को ही दिया जाता था। यह भी स्पष्ट होता है कि अपनी बेटी के भावी जीवन के प्रति संवेदना के कारण ही माता-पिता इस प्रकार की शर्तें रखते थे कि यदि कोई लड़का इतना भी सक्षम न हुआ तो उसकी बेटी भविष्य में कैसे सुखी रहेगी। इसके विपरीत तेन्पूर जैसे लोग भी समाज में होते थे, जो अपने धन-बल से किसी के प्रेम को छीन लेने से भी नहीं हिचकते थे। प्रकारांतर से, समाज में धन-बल एवं अनैतिकता के सामने कभी-कभी नैतिकता एवं प्रेम बौने पड़ जाते हैं। यह बात इस समाज के लिए भी अक्षरशः सच रही है। हालांकि सकारात्मक बात यह है कि जिना ने एतिबेन के पिता की चुनौतियों को स्वीकार किया और भरसक प्रयास किया कि वह उन शर्तों को पूरी करके एतिबेन को पत्नी के रूप में प्राप्त करे। मगर होनी को कुछ और ही मंजूर थी। फिर भी, यह कहानी एक अमरप्रेम के रूप में आज भी समाज में प्रचलित है। उनके संबंध में यह कथन प्रसिद्ध है, 'Etiben and Jina, two lovers separated by a huge wealth gap and family objection. They could never come together as a married couple, but for Aos, they are the symbol of unshakeable love.' (360, India, 2020)

3.1.3 : चखेसांग

'क्रूर भाभी' (The Cruel Sister in Law) (Baruah, 2009, page-80) चखेसांग जनजाति की एक लोक कथा है। इस कथा के अनुसार, प्राचीन काल में अविनो नाम की एक लड़की अपने बड़े भाई के साथ रहती थी। जब वह बहुत छोटी थी, तभी उसकी माँ चल बसी थी। कुछ दिनों बाद उसके पिता व्यापार के लिए समुद्री यात्रा पर निकल गए। परंतु वे भी कभी लौटकर फिर न आए। बड़े भाई ही अब अविनो के लिए माता-पिता दोनों थे। उसने बड़े लाड़-प्यार से अपनी छोटी बहन का पालन-पोषण किया। अविनो को अपने माँ-बाप की कमी का कभी अनुभव ही नहीं हुआ। कुछ वर्षों बाद बड़े भाई ने भी पिता की तरह ही अपना व्यापार आरंभ किया। धीरे-धीरे उसने भी समुद्री मार्ग से सुदूर स्थानों तक अपना व्यापार फैलाने का निश्चय किया।

जब वह परदेश के लिए समुद्री यात्रा पर निकलने वाला था, तभी उसने अपनी छोटी बहन को ध्यान में रखते हुए एक धनवान व्यक्ति की पुत्री से विवाह कर लिया ताकि उसकी अनुपस्थिति में बहन को किसी प्रकार की असुविधा न हो। प्रस्थान के समय उसने अपनी पत्नी से कहा, "अविनो का अच्छी तरह से ध्यान रखना, क्योंकि उसने कभी किसी प्रकार की परेशानियों का सामना नहीं किया है।" पति के निकलते ही भाभी ने ननद के साथ अपना असली रंग दिखाना आरंभ कर दिया। उसने अविनो के साथ कभी अच्छा व्यवहार नहीं किया। वह स्वयं तो ऐशो-आराम के साथ जीती थी, पर अविनो का ध्यान रखना तो दूर, उससे घर का सारा काम कराने लगी। जब वह कार्यों को पूरा नहीं कर पाती तब उसके ऊपर हाथ उठाती और कभी-कभी तो उसे घर के भीतर भी आने नहीं देती। ऐसे में, बेचारी लड़की गाँव के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठी रोती-बिलखती रहती। अविनो की हालत देखकर पेड़ पर रहने वाले पशु-पक्षियों को उसके ऊपर दया आ गई। वे अविनो को कुछ खाने के लिए दे दिया करते। धीरे-धीरे बहुत सारे पशु-पक्षियों से उसकी दोस्ती हो गई।

अविनो के भाई यात्रा से जब भी लौटते, उसकी पत्नी का व्यवहार अविनो के साथ पूरी तरह से बदल जाता। वह अपने पति के सामने ऐसा दिखाती मानो अपना सारा प्यार अविनो पर ही न्योछावर करती हो। अपने पति की उपस्थिति में वह ननद को एक काम भी नहीं करने देती। पत्नी के इस व्यवहार से प्रसन्न एवं संतुष्ट होकर वह और भी लंबी समुद्री यात्रा के लिए निकल गया। उसके यात्रा पर निकलते ही भाभी का रवैया ननद के प्रति अचानक बदल गया तथा वह और भी क्रूरता के साथ अविनो से अलग-अलग प्रकार के कार्य कराने लगी। वह सोचा करती कि अविनो को ऐसा कौन-सा काम दिया जाए, जिसे वह पूरा न कर सके। उसके मन में छोटी-सी लड़की के प्रति ऐसी घृणा और क्रूरता भरी हुई थी कि वह उसे एक पल के लिए भी चैन से रहने देना नहीं चाहती थी। पति के निकलते ही अगली सुबह उसने अविनो को तीन छिद्रों वाला एक बड़ा-सा बर्तन देकर तालाब से पानी भर लाने को कहा। अविनो जानती थी कि यह संभव नहीं है, क्योंकि घर पहुँचने के पहले ही पानी को गिर ही जाना है। इसलिए वह पेड़ के नीचे फिरसे बैठकर रोने लगी। इस बार एक मेढक को उसपर दया आ गई। उसने बर्तन में कूदकर छेद को बंद कर दिया। अब अविनो ने अपना काम तत्परता के साथ कर लिया। इधर उसकी भाभी को आश्चर्य हुआ कि उसने इस बर्तन से पानी कैसे भर लिया! अब भाभी उसे और भी अधिक मुश्किल काम देने के लिए सोचने लगी।

अगले दिन उसने अविनो से आदेश भरे लहज़े में कहा, "अविनो ! जाओ, जंगल से जलाने के लिए लकड़ियाँ लेकर आओ। मगर ध्यान रहे कि उन्हें किसी रस्सी या कपड़े से बाँधना मत।" अविनो ने जंगल जाकर लकड़ियों को इकट्ठा किया और सोचने लगी कि इन्हें बाँधे बिना कैसे उठाया जाए, क्योंकि

ये तो गिरकर छितरा जाएंगे। वह सोच ही रही थी कि एक साँप ने आकर उसकी लकड़ियों को कसकर जकड़ लिया। अविनो ने लकड़ियों के बंडल को उठाया और घर ले आई। जब उसने बंडल को जमीन पर रखा तो साँप रेंगते हुए कहीं अदृश्य हो गया। इस प्रकार, अविनो को उसकी भाभी जितना भी काम देती, वह उसे किसी न किसी तरह से पूरा कर देती। अविनो की भाभी उसकी कार्य-कुशलता से और भी चिढ़ गई। उसने अब उसे खाना भी देना बंद कर दिया। एक दिन उसने बड़े-से पीतल के एक पतीले में धान और गेहूँ को मिलाकर अविनो से कहा कि वह उन्हें बीनकर अलग-अलग करे। यह काम अविनो के वश का नहीं था, इसलिए वह फिरसे रोने लगी। इस बार गौरियों के झुण्ड ने उसकी सहायता की और उन्होंने धान एवं गेहूँ को अलग कर दिया।

अविनो के इस कार्य को देखकर भाभी और भी झल्ला गई। आगे उसने एक बाल्टी लेकर अविनो से कहा कि जाकर वह सागर से पानी के सफेद झाग भरकर ले आए। बाल्टी लेकर वह रोते-रोते सागर के किनारे की ओर चल दी। यह स्थान उसके लिए नया और अनजान था। यहाँ उसका कोई पशु-पक्षी दोस्त नहीं था, जो उसकी सहायता कर दे। यहां उसे बहुत परेशानी हुई। एक तो उसे यहाँ पहुँचने में कई दिन लगे। दूसरे, जब भी वह पानी के झाग को उठाकर बाल्टी में डालती, वह पानी में परिवर्तित हो जाता। अंततः वह थककर समुद्र के किनारे ही गिर पड़ी और वहीं बेहोश हो गई। उसे पता नहीं चला कि कितनी देर तक वह वहीं पड़ी रही। परंतु दूर से आती कुछ आवाजों ने उसे जगा दिया। उसने करवट बदलकर आवाज़ की ओर दृष्टि डाली, तब देखा कि एक बड़े जहाज से बहुत-से लोग उतर रहे हैं। उन यात्रियों में एक उसके भाई भी हैं। भाई को देखकर वह फूट-फूटकर रोने लगी और उसने अपनी सारी आप-बीती उन्हें सुना दी।

घर पहुँचकर जब भाई ने अपनी पत्नी से अविनो के साथ हुई ज्यादतियों के बारे में पूछा, तब वह कुछ कह न सकी। पति ने उसे सबक सिखाने के लिए उससे वे सभी काम कराए जो उसने अविनो से कराए थे। अब भाभी को अपनी गलतियों का एहसास हुआ। उसने अपनी गलतियों के लिए पति एवं अविनो से माफ़ी माँगी। दोनों ने उसकी गलतियों को माफ़ कर दिया और सभी लोग प्रेम से एक साथ मिल-जुलकर रहने लगे। अब जब भी उसके भाई दूर समुद्री यात्रा पर जाते, तब भाभी-ननद दोनों मिलकर अपने सभी काम निपटाते और खुशी पूर्वक रहते।

उपर्युक्त लोक कथा में मानवीय मनोविकारों से ग्रसित एक भाभी का अपने ननद अविनो के प्रति क्रूरता को दर्शाया गया है। उसके साथ भाभी की क्रूरता को देखकर लोक में प्रचलित मनोहर विश्वासों को बल प्रदान करने के लिए कथाकार ने प्रकृति तथा पशु-पक्षी सभी को उसे केवल सांत्वना ही

नहीं देते, बल्कि उसकी हर कठिनाई में सहयोगी बनते और उसे जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देते दिखाया है। साथ ही, यह कथा लोक की उन मनोरम विश्वासों को भी पुष्ट करता है, जिनके बारे में कहा जाता है कि प्राचीन काल में परस्पर मानव में ही नहीं बल्कि मानवेत्तर प्राणियों के साथ भी उनका वार्तालाप अथवा विचारों का संप्रेषण होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार के द्वारा मनोरंजन को ही उद्देश्य मानते हुए कल्पना के आधार पर इस मनोरम कथा को गढ़ा गया होगा, जिन्हें लोक में दादियों के द्वारा बच्चों के समूह को सुनाया जाता रहा है। कल्पना के आधार पर रचित इस कथा में संघर्ष के माध्यम से जीवन के प्रति आशान्वित रहने का लोक का दृष्टिकोण भी प्रकट हुआ है।

इस कथा का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि इसमें सागर तथा समुद्री यात्रा का प्रसंग एक प्रकार से चखेसांग या नागा जनजाति को सागर के करीब ले जाता है। कथाकार के द्वारा वर्णित नदी-झरने, तालाब तो स्वाभाविक हैं, परंतु सागर-किनारा एवं समुद्री यात्रा के माध्यम से व्यापार का वर्तमान नागा समाज से कोई संबंध नहीं है। ऐसे में, प्रश्न उठता है कि क्या कथाकार ने कभी किसी सागर किनारे निवास या समुद्री यात्रा का अनुभव किया था अथवा यों ही कहीं से सुनी-सुनाई बातों के आधार पर कहानी में सागर का प्रसंग दे दिया है। वैसे, नागा जनजातियों के जनजीवन में सागर से उत्पन्न कौड़ी, शंख आदि के बने आभूषणों का सर्वसाधारण के द्वारा प्रयुक्त किया जाना इस बात की ओर संकेत भी है कि इन लोगों ने अपने प्रव्रजन काल में संभवतः कभी सागर किनारे अपना बसेरा बनाया हो। वर्तमान में यद्यपि चखेसांग या किसी नागा जनजाति का सागर से सीधा संपर्क नहीं है। फिर भी इनके पारंपरिक एवं सांस्कृतिक परिधानों में जड़ित कौड़ी अथवा इनके हारों में पिरोए हुए शंख के टुकड़े स्पष्ट करते हैं कि भूत में कभी न कभी इनका संबंध सागर से बहुत ही नज़दीक एवं गहरा रहा अवश्य है।

3.1.4 : चांग

चांग जनजाति के बीच प्रचलित **‘दो भाई’** (Baruah, 2009, page-138) कहानी के अनुसार, किसी जंगल के किनारे दो अनाथ भाई एक टूटे-फूटे घर में रहते थे। कुछ वर्षों बाद बड़े भाई ने एक सुंदर किंतु हृदयहीन लड़की से शादी की। घर आते ही उस औरत ने छोटे भाई को घर से निकाल फेंकने की जिद पकड़ ली। बड़े भाई ने बड़ी ही अनिच्छा से अपने छोटे भाई को घने जंगल में ले जाकर छोड़ दिया और स्वयं घर वापस आ गया।

इधर छोटा बालक जंगल में डर और भूख से परेशान हो उठा, तभी उसने एक गिद्ध को आसमान से अपने बसेरे पर उतरते देखा। उसने उस गिद्ध का पीछा किया और उस पेड़ पर चढ़ गया जहाँ उसने उड़ते-उड़ते उसे उतरते देखा था। जब बालक वहाँ पहुँचा तब गिद्ध वहाँ से उड़ चुका था,

परंतु अपने बच्चों के लिए मांस के कुछ टुकड़े छोड़ गया था। वह बहुत भूखा था। अतः उसने मांस के कुछ टुकड़े खा लिए और उसी घोंसले में गिद्ध के बच्चों के साथ सो गया।

जब मादा गिद्ध लौटकर आई, तब उसने मानव बच्चे को अपने बच्चों के साथ सोते पाया। उसे बालक के ऊपर दया आ गई और उसने अपने बच्चों के साथ-साथ उस मानव बच्चे का भी पालन-पोषण करना आरंभ किया। जब लड़का कुछ और बड़ा होकर किशोरावस्था में पहुँच गया, तब उसने बालक से कहा, “अब तुम्हें अपनी जाति के लोगों के पास वापस जाना चाहिए। मैं मनुष्यों का एक गाँव जानती हूँ, जहाँ सहृदयी एवं दयालु लोग रहते हैं। मुझे विश्वास है कि वे लोग तुम्हें अपना लेंगे।”

बालक ने मादा गिद्ध की सलाह मान ली और उस गाँव में जाकर मनुष्यों के साथ रहने लगा। उसने खूब मेहनत की और अंततः एक धनवान व्यक्ति बन गया। उसने गाँव की ही एक सुन्दर एवं सुशील कन्या से विवाह कर लिया और दोनों सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। उधर उसके बड़े भाई और दुष्ट भाभी कंगाली से बदहाल हो चुके थे तथा भूख के कारण इधर-उधर भटकते हुए छोटे भाई के गाँव तक पहुँच गए। वे दोनों इससे अब अनजान थे, पर छोटे भाई ने उन्हें पहचानकर वे जब तक चाहें तब तक उन्हें घर में रहने की अनुमति दे दी।

मुश्किल से कुछ ही दिन बीते थे कि बड़े भाई की पत्नी ने अपना रंग दिखाना आरंभ कर दिया। बात-बात पर वह छोटे भाई की पत्नी की कमियाँ निकालने लगी और उसपर झूठे आरोप लगाने लगी। उसकी इन करतूतों से छोटे भाई के सब्र का बाँध टूट गया और अपने भाई व भाभी पर बरस पड़ा। उसने अपनी पहचान बताते हुए भाभी से कहा, “तुम्हारे ही कारण मुझे जंगल में मरने के लिए छोड़ दिया गया था। मैं चाहता तो आप दोनों को भी वैसी ही कठिन परिस्थितियों से गुजरते हुए जीवन जीने को मजबूर कर देता। लेकिन मैं इतना निर्दयी नहीं हूँ, इसलिए मेरे पास वापस आने के लिए एक मौका और देता हूँ।”

ऐसा कहकर उसने स्वादिष्ट चिप-चिपे चावल की दो पोटलियाँ बनवाई और अपने भाई-भाभी से कहा, “आपको ये पोटलियाँ लेकर जंगल से गुजरना होगा। जब भी कोई जंगली जानवर आपके पीछे पड़े, उन्हें इसे खिला दें।” बड़े भाई ने वैसा ही किया, परंतु उसकी पत्नी ने पहले ही चावल को खुद खा लिया था। जब जंगली जानवर उनके पीछे पड़े, तब चावल खिलाकर बड़ा भाई तो बच निकला, मगर उसकी पत्नी को जंगली कुत्तों ने अपना आहार बना लिया। इस प्रकार, उसे अपने किए की सज़ा मिल गई।

इस कहानी में दोनों भाइयों के बीच दूरी उत्पन्न करने वाली औरत के लिए जैसी करनी, वैसी भरनी वाली कहावत को कृतार्थ किया गया है। यहाँ कथाकार यह भी संप्रेषित करता है कि स्त्री की महिमा से जहाँ परिवार में सुख-संपन्नता आती है, वहीं किसी बुरी औरत की छाया से परिवार टूटता भी है। पत्नी के आते ही बड़ा भाई अपने छोटे भाई से विमुख हो जाता है। त्रिया-चरित्र का ही प्रभाव है कि पुरुष को अपनी स्त्री के आगे तुच्छ एवं नगण्य हो जाना पड़ता है। प्रकारांतर से, कथाकार का समाज के प्रति सीख है कि जिस प्रकार का व्यवहार बड़े भाई ने अपने छोटे भाई के साथ किया, वह किसी भी परिस्थिति में किसी को भी नहीं करना चाहिए। बड़े भाई की पत्नी के चरित्र के आधार पर कथा का प्रतिपाद्य है कि किसी भी स्त्री के द्वारा अपने देवर अथवा सौतेली संतानों के प्रति अमानवीय व्यवहार नहीं करना चाहिए। इस तरह के व्यवहार को मानव समाज तो क्या प्रकृति के अन्य उपादानों यथा पशु-पक्षी भी नहीं स्वीकारते।

3.1.5 : ख्यम्युंडन

वर्तमान नोक्लक के पश्चिम की ओर यखाओ नामक पर्वत चोटी है, जिसे ख्यम्युंडन जनजाति की मिथ कही जाती है। इस जनजाति की लोक कथाएं इसी पर्वत चोटी के इर्द-गिर्द उत्पन्न बतायी जाती हैं। इस मिथ-कथा के अनुसार, इस पर्वत को महा-प्रलय से आज भी मानव जाति की रक्षा करने वाला पर्वत माना जाता है। लोक में प्रचलित 'महा बाढ़' (The Great Flood) (Baruah, 2009, page-124) कथा के अनुसार, एक बार धरती पर पाप एवं हिंसा इतनी बढ़ गई कि लोगों के बीच बंधुत्व तथा प्रेम की भावना पूर्णतया समाप्त हो गई। दया और आदर-सम्मान का नामोनिशान ही नहीं रहा। लोग परस्पर इतनी घृणा और वैमनस्यता के साथ रहते थे कि उन्हें इस बात का भी भान नहीं रहा कि हँसी-खुशी जैसी भी कोई चीज होती है।

ऐसी परिस्थिति में एक समय ऐसा भी आया, जब आसमान पर बैठे सभी देवतागण पृथ्वी पर व्याप्त इस अराजकता एवं पाप को और सह न सके। उन्होंने धरती के पाप, अनाचार एवं भ्रष्टाचार को मिटाने के लिए ऐसी भयंकर बारिश कराई कि संपूर्ण धरती जल-समाधिस्थ होने लगी। धीरे-धीरे पानी का स्तर बढ़ता गया और लोगों के गाँव-घर सभी जल में समाहित हो गए। लोग ऊँचाई की ओर भागने लगे और सूखे जमीन की तलाश में छोटे-बड़े पहाड़ियों पर चढ़ गए। लेकिन लगभग सभी पहाड़ पानी में डूब गए और बहुत सारे लोग मर गए। कुछ लोगों ने एक ऊँची पहाड़ी पर शरण ली, जो अब तक डूबने से बची हुई थी। इस संकट की स्थिति में सभी मनुष्य परस्पर घृणा एवं लड़ाई-झगड़े भूलकर एक साथ खाने की वस्तुएं तलाश करने लगे।

परंतु उस पर्वत चोटी पर सभी के लिए पर्याप्त खाद्य पदार्थ का मिलना मुश्किल था। जल-स्तर कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था। ऐसे में, लोगों ने सोचा कि जल-देवता को प्रसन्न करने के लिए किसी सुंदर, सुडौल एवं स्वस्थ शरीर वाले मानव की बलि देनी होगी। चोटी पर रह रहे लोगों में से सुगठित एवं स्वस्थ शरीर वाला कोई भी व्यक्ति नहीं था, जिसकी बलि दी जा सके। सभी लोग कई दिनों से भूखे थे और उनकी हालत बहुत ही बुरी थी, इसलिए वे सभी बलि के अयोग्य पाए गए। बहुत ढूँढ़ने के बाद लोगों ने देखा कि उनके बीच एक सुंदर औरत खड़ी है। पूछने पर उसने बताया कि वह लोगों की रक्षा के लिए खुद को बलिदान करने को तैयार है। लोग नहीं चाहते थे कि उसे खोया जाये, क्योंकि वह बला की खूबसूरत थी। बावजूद लोगों के न चाहते हुए भी उसे पर्वत चोटी से जल-देवता को समर्पित कर दिया गया। कहा जाता है कि वह औरत कोई और नहीं बल्कि उस पर्वत चोटी की रखवालन यखाओ थी। यखाओ के बलिदान से जल-देवता प्रसन्न हो गया और फिर धरती का जल-स्तर धीरे-धीरे उतरने लगा। बाढ़ का पानी खत्म हो जाने के बाद धरती फिर से हरियाली से पूर्ण तथा खुशहाल हो गई और सभी मनुष्य परस्पर प्रेम के साथ रहने लगे। इसीलिए ख्यम्युंडन जनजाति में आज भी यखाओ पर्वत चोटी को खुशहाली एवं संपन्नता का प्रतीक माना जाता है।

इस कहानी का लोक-विश्वास के अनुसार मुख्य प्रतिपाद्य यह है कि जब भी धरती पर पाप एवं अनाचार अपनी सीमा को पार कर जाता है, तब उस पाप को मिटाने के लिए सर्वशक्तिमान ईश्वर प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से अपने कोप को क्रियान्वित करता है। यह भी शिक्षा मिलती है कि ईश्वर पर विश्वास करके ही कठिन से कठिन परिस्थितियों से पार पाया जा सकता है। कथा में जिस महा बाढ़ की बात है, वह बाइबल में वर्णित नोहा की कथा या हिंदू पौराणिक कथाओं में विख्यात मनु-काल में घटित प्रलय से किसी भी दृष्टि से भिन्न नहीं है। ऐसे में, हम यह कह सकते हैं कि प्रलय से कभी न कभी नागा समाज प्रभावित अवश्य रहा होगा। यह अवश्य सच्चाई को इंगित करता है, क्योंकि लोक कथाएँ लोक की सुख-दुखात्मक अनुभवों की प्रतिध्वनि होती हैं।

ख्यम्युंडन तथा अन्य नागा जनजाति के लोगों में यह धारणा प्राचीन काल से ही रही है कि प्रकृति के प्रत्येक बिंब में परमेश्वर की विद्यमानता है। यहाँ जल को देवता मानकर उसे पूजा गया है और यखाओ को पर्वत की देवी माना गया है अर्थात् यहाँ नदी, पहाड़, वृक्ष, वन आदि सभी प्राकृतिक उपादानों में एक अदृश्य शक्ति की विद्यमानता को निर्विवाद रूप से स्वीकारा गया है। इस कथा के माध्यम से यह भी पुष्ट होता है कि ख्यम्युंडन समाज में बलि की भी प्रथा रही है।

3.1.6 : कोन्याक

कोन्याक जनजाति में प्रचलित 'अनो-चिंग्यू' (Baruah, 2009, page-150) कथा के अनुसार, प्राचीन काल में अनो-चिंग्यू नामक एक बहुत बड़ा एवं संपन्न गाँव था। गाँव के सभी लोगों का जीवन बड़ा ही सौहार्द्रपूर्ण एवं उल्लासमय था। युद्ध का मैदान हो, शिकार की कला हो या फिर गाँव में आयोजित बड़े भोज का कार्यक्रम - इस गाँव के लोग सभी कार्य अपने निराले अंदाज़ में विशेष पद्धति से करते थे। गाँव के लगभग सभी लोग संपन्न एवं खुशहाल थे, इसलिए दुःख एवं गरीबी के कष्ट का अनुभव बहुत कम लोगों ने किया था। गाँव के आखिरी किनारे छोर पर एक निर्धन विधवा अपने बच्चों के साथ रहती थी, जो गाँव के लोगों के द्वारा तिरस्कृत तथा लगभग बहिष्कृत थी। उसे किसी त्योहार-उत्सव में निमंत्रित करना तो दूर, लोग उसकी गरीबी का मज़ाक उड़ाया करते थे, न केवल सामान्य मौकों पर बल्कि विशेष मौकों पर भी। कुल मिलाकर, किसी ने कभी भी उसकी इज्जत न की थी।

गाँव के लोगों की संपन्नता एवं ऐशो-आराम की जिंदगी ने उन्हें इतना तामसिक बना दिया था कि वे सम्मानजनक मानव-जीवन की सीमाओं को लांघ गए थे। उनकी संपन्नता उन्हीं के सर चढ़कर बोलने व दिखने लगी थी। अब गाँव के लोगों ने अपनी आवश्यकताओं एवं भोजन के लिए नहीं बल्कि मनोरंजन एवं शौक के लिए वन्य पशु-पक्षियों का शिकार करना आरंभ कर दिया था। यह सिलसिला चलता रहा और एक दिन शिकारियों ने न्याम्यू नामक एक सींग वाले पशु का शिकार किया। इस पशु के बारे में मान्यता है कि वह पहाड़ी के अस्थिर ढलान पर निवास करता है। यदि इसका शिकार किया जाए तो उस क्षेत्र में भयंकर भू-स्खलन होता है। अपनी संपन्नता के मद में चूर गाँव के लोगों ने अपने पुरखों की बताई हुई इन बातों को भुला दिया और उस जानवर के मांस को पकाकर बड़ा भोज किया, जिसमें गाँव की विधवा परिवार को छोड़कर बाकी सभी लोग उपस्थित थे। उक्त भोज का आनन्द विधवा परिवार को छोड़कर सभी ने लिया। गाँव के सभी लोगों ने चठखारे ले-लेकर मांस का भक्षण किया।

इधर न्याम्यू की हत्या ने उसकी संरक्षक प्रेतात्मा को अत्यंत आहत किया। वह इतनी व्यथित एवं व्याकुल हुई कि गाँव वालों से बदला लेने की गंभीर दुर्भावना उसके मन में पैदा हो गई। परिणाम स्वरूप, उसने ऐसा भू-स्खलन का कहर बरपाया कि न्याम्यू का मांस खाने वाले सभी गाँव-वासी उसमें दबकर मर गए। लेकिन विधवा तथा उसके सभी बच्चे सुरक्षित एवं सकुशल रहे। उन लोगों को पूरा विश्वास था कि सर्वशक्तिमान ईश्वर 'योग्वान' की कृपा से ही उनकी जान बची है, अन्यथा प्रकृति के इस प्रकोप से बच निकलना मुमकिन न था। वे बच गए - यह किसी चमत्कार से कम न था। अनो-चिंग्यू की

इस घटना के बाद से कोन्याक जनजाति के लोगों में यह धारणा बनी कि अपनी आवश्यकता के अनुसार ही हमें प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करना चाहिए। उसी दिन से लोगों ने यह तय किया कि खाद्य पदार्थ के रूप में किन पशु-पक्षियों का शिकार किया जाए और किनके शिकार से दूर रहा जाए। उल्लेखनीय है कि कोन्याक लोग सभी प्रकार के जीव-जन्तुओं का मांस नहीं खाते।

कोन्याक जनजाति में प्रचलित यह लोक कथा अत्यंत प्राचीन काल से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही है। कथाकार ने समाज को अपने अनुभवों के आधार पर बताया है कि मानव समाज भौतिक संपदाओं अथवा धन-धान्य से चाहे जितना भी संपन्न हो जाए, यदि वह विवेक के साथ अपनी जीवन पद्धति को संयमित नहीं करता है तो उसका पतन अवश्य हो जाता है। इस कथा से इनके पुरखों ने बताने का प्रयास किया है कि जब तक प्राकृतिक संपदाओं का दोहन एक निश्चित सीमा के अंदर मानव जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है, तब तक वह अबाध रूप से हमें अपनी संपदा प्रदान करती है, पर जैसे ही उस दायरे के बाहर जाकर उसके स्रोतों का अपव्यय किया जाता है - उसके प्रकोप का भाजन बनना पड़ता है। अनो-चिंग्यू वालों के पतन के पीछे यही कारण था कि उन्होंने अपने भोजन की आवश्यक सीमा से आगे बढ़कर मनोरंजन की तुष्टि के लिए पशुओं का शिकार आरंभ कर दिया था। कथा में एक सींग वाले पशु न्याम्यू की संरक्षक-प्रेतात्मा के प्रसंग से यह भी पुष्ट होता है कि कोन्याक समाज में प्रेतात्मा, देवी-देवताओं या प्रकृति में एक अदृश्य शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया जाता है। यह कथा यह भी पुष्ट करती है कि एक सींग वाला पशु दुर्लभ या ईश्वरीय दूत होता है या वह अद्वितीय होता है। कोन्याक किसी प्राकृतिक आपदा को ईश्वरीय देन मानते हैं। वे प्राकृतिक आपदा में अदृश्य एवं असीम शक्ति का प्रकोप मानते हैं। कुल मिलाकर, यह कथा कोन्याक समाज के लोगों में ईश्वर की सर्व-व्यापकता की संकल्पना पर विश्वास को पुष्ट करती है।

यद्यपि नागा समाज के लगभग सभी लोग मांसाहारी होते हैं, परंतु यहाँ पारंपरिक रूप से कुछ विशेष पशु-पक्षियों को मारने तथा उनका आहार करने से माना किया जाता है। इन पशु-पक्षी विशेष को न खाने के पीछे का तर्क किसी अनहोनी की आशंका रहती है, चाहे वह अनिष्ट वैयक्तिक स्तर पर हो या फिर पारिवारिक अथवा सामाजिक। कहीं-कहीं किसी पशु-पक्षी के मांस का आहार-निषेध के पीछे उनकी मानव जाति के साथ विशिष्ट संबद्धता भी है। उदाहरण के लिए, धनेश पक्षी की उत्पत्ति ही एक मनुष्य से हुई है, इसलिए लोग आज भी धनेश तथा इसकी अन्य प्रजातियों को आहार-निषेध मानते हैं। इस कहानी के आधार पर अनो-चिंग्यू में भू-स्खलन को न्याम्यू नामक पशु की आत्मा का प्रकोप माना गया है। इस प्रकार, लोक कथाओं के माध्यम से पशु-पक्षी एवं मानव पुरखों के विशेष संबंध को स्पष्ट किया गया है।

3.1.7 : लोथा

लोथा नागा जनजाति में प्रचलित एक लोक कथा के अनुसार, 'लंकोंगहोनी' (Baruah, 2009, page-130) नामक एक माँ अपने बेटे अरिलौ के साथ किसी गाँव में रहती थी। अरिलौ अत्यंत सुंदर एवं आकर्षक व्यक्तित्व वाला था, जिससे गाँव की सभी लड़कियाँ उसे पसंद करती थीं। यह देखकर उसकी माँ सोचती थी कि यह उसके बेटे के लिए बड़ी मुसीबत बन सकती है।

माँ का सोचना सही साबित हुआ। गाँव के सभी युवक अरिलौ से ईर्ष्या करने लगे और उन्होंने उसे मार डालने की योजना बनाई। गाँव के लोगों ने सामूहिक मछली मारने की योजना बनाई और अरिलौ को भी उसमें आने का न्योता दिया गया। माँ ने उसे जाने से मना किया, पर उसने माँ की बात काटते हुए कहा, "माँ, अब मैं बड़ा हो गया हूँ और मैं स्वयं अपनी रक्षा कर सकता हूँ।" इस प्रकार, सभी युवकों के साथ वह भी खुशी-खुशी नदी की ओर चला। नदी पहुँचकर गाँव के युवकों ने अपनी योजनानुसार अरिलौ को ज़हरीली लताओं से बाँध दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। उसके मर जाने के बाद युवकों ने उसके शव को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट डाला और टुकड़ों में विभक्त उसके मांस को मछलियों को खिला दिया गया। उन्हीं युवकों में से एक ने अरिलौ की एक अंगुली का नाखून अपने पास रख लिया। अपनी योजना में सफल सभी युवक अपने गाँव वापस लौट आए।

जब अरिलौ लौटकर नहीं आया, तब लंकोंगरोनी ने अपने बेटे के बारे में युवकों से पूछा। उसने इधर-उधर जाकर बेटे को तलाशा भी, पर वह उसे कहीं न मिला। वह बहुत परेशान हो गई, तब अंत में एक युवक ने अरिलौ का नाखून दिखाते हुए उसे बताया कि वह तो नदी के पानी में पिघल गया था। सो, वह उसका बचा हुआ नाखून ले आया है। अरिलौ की माँ को अब यकीन हो गया कि उसका बेटा अब वापस नहीं आयेगा। गाँव के सभी लोग सच्चाई को छुपा रहे हैं। परंतु उसने अपने दुःख अथवा क्रोध को गाँव वालों के सामने प्रकट होने नहीं दिया। उसने अपने बेटे की मृत्यु का बदला लेने के लिए एक दिन गाँव के सभी बच्चों को दावत पर बुलाया। सभी बच्चों को बुलाकर उसने अपना सबसे बड़ा सूअर काटकर पकाया और सबको खूब खिलाया। जब सभी बच्चे खाना खा चुके तब उसने कहा, "बच्चों ! मेरी आँखें कमजोर हो गई हैं, इसलिए मेरे घर में अगर कोई छेद हो तो उसे बंद कर दो।" बच्चों ने बड़ी तत्परता से घर के सभी छिद्रों को बंद कर दिया।

इसके बाद लंकोंगरोनी चुपके से घर के बाहर निकल आई और उसने किवाड़ को बाहर से बंद करके उसमें आग लगा दी। सभी बच्चे उस आग में जलकर राख हो गए। इस घटना के बाद

लंकोंगरोनी फिर कभी उस गाँव में नहीं दिखी। इससे गाँव के युवकों ने अपनी गलती का एहसास किया। शेष बचे युवकों ने प्रण किया कि फिर कभी किसी माँ का दिल नहीं दुखाएंगे।

प्रस्तुत लोक कथा में जिस प्रकार अरिलौ के प्रति गाँव के अन्य लड़कों में ईर्ष्या एवं दुर्भावना उत्पन्न हुई, उससे स्पष्ट है कि लोथा जनजाति में भी अन्य नागा जनजातियों की तरह ही स्त्री-सौंदर्य के प्रति लोभ, उन्हें प्राप्त करने की लालसा इत्यादि भावनाएं रही हैं। इस लालसा की पूर्ति के लिए समाज में कुचक्र एवं षड्यंत्र भी रचने की परंपरा रही है। साथ ही, यह भी सच है कि उसकी माँ लंकोंगहोनी को समाज में व्याप्त इन बुराइयों का भलीभाँति ज्ञान था। इसलिए उसने अपने बेटे को भरसक यह समझाया कि वह समूह में मछली मारने न जाए। अगर अरिलौ ने सामाजिक जीवन में अनुभवी अपनी माँ का कहना मान लिया होता तो उसके साथ अनपेक्षित दुर्घटना न हुई होती। इसलिए इस कथा का प्रतिपाद्य यह है कि जब भी कोई बड़ा-बुजुर्ग कुछ कहता है या किसी निषेध की बात की जाती है, तब उन बातों की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। इस कथा को यदि लंकोंगहोनी की दृष्टि से देखा जाए, तो उसने अपना जवान बेटा खोया था, पर वह न तो गाँव वालों के सामने बिलखकर रोई और न ही अपने क्रोध को प्रकट होने दिया, बल्कि अपने पुत्र की मृत्यु का बदला लेने की योजना में लग गई। यह एक माँ के धैर्य की असीमता थी। यद्यपि अपने पुत्र की मृत्यु का बदला गाँव के सभी बच्चों को मारकर लिये जाने को आज के सभ्य समाज में कहीं भी तर्क-संगत नहीं ठहराया जा सकता, फिर भी यह एक माँ के द्वारा अपने पुत्र के प्रतिशोध की क्षमता को अभिव्यंजित करता है। इस कथा से यह तथ्य भी उभरकर आता है कि लोथा नागा समाज में नदी में जाकर सामूहिक रूप से मछली मारने की परंपरा रही है, जिसमें प्रायः गाँव के सभी पुरुषों की उपस्थिति अपेक्षित रहती है।

3.1.8 : फोम

फोम जनजाति में प्रचलित 'अपीसांग्बा और अंग्यादांग्यु' (Baruah, 2009, page-180) की कथा के अनुसार, जब अपीसांग्बा बहुत छोटा था तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई थी। उसका लालन-पालन माँ ने बड़े ही लाड़-प्यार से किया था। बड़ा होकर वह वीर योद्धा बना और देखने में भी सुंदर एवं आकर्षक था। गाँव के एक धनवान व्यक्ति की पुत्री अंग्यादांग्यु से वह प्रेम करता था, इसलिए उसके घर वालों ने लड़की का हाथ माँगने के लिए अपने रिश्तेदारों को भेजा। अंग्यादांग्यु के पिता नहीं चाहते थे कि उसकी बेटी का विवाह उससे कम ओहदे वाले परिवार में हो। इसलिए उन्होंने इसे टालने के उद्देश्य से अपीसांग्बा के लिए अनेक शर्तें रखीं, जिसे पूरा करना उसके लिए असंभव-सा हो गया।

अंग्यादांग्र्यु के पिता की पहली शर्त यह थी कि उसके घर के सामने के बड़े वृक्ष को अपीसांग्बा एक निश्चित समय के अंतर्गत काटकर गिराए, वह भी एक गंडासे से। अपीसांग्बा जानता था कि यह संभव नहीं है, इसलिए उसने पेड़ को गिराने के लिए दिन में गंडासे से और रात को अपनी कुल्हाड़ी से काटना आरंभ किया और दिए गए समय सीमा के अंदर ही उसने पेड़ को गिरा डाला। लड़की के पिता को यह बड़ा ही आश्चर्यजनक लगा। वह अपीसांग्बा से पीछा छुड़ाने के लिए अंग्यादांग्र्यु के नाम पर शर्त पर शर्त लगाता चला गया। अपीसांग्बा उसकी सभी शर्तों को पूरा करता चला गया परंतु वह इतने में रुकने वाला नहीं था। उसने एक नई शर्त के अंतर्गत अपीसांग्बा को एक 'खांग'³ देते हुए कहा, "यदि तुम अंग्यादांग्र्यु को अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करना चाहते हो तो इस खांग को पक्षियों के कलेजों से भरकर लाना होगा। इसके बाद मेरी बेटी तुम्हारी पत्नी हुई।" अपीसांग्बा के लिए यह शर्त बड़ा कठिन हो गया, परंतु उसने हार न मानते हुए गाँव की सभी मुर्गियों को मारकर उनके कलेजे एकत्र किया। फिर उसने जंगल के बहुत सारे पक्षियों को भी मारा, परंतु उन सभी के कलेजों से भी खांग भर न सका। इस बार वह शर्त पूरी करने में हार गया। अब वह अपनी हार मान चुका था। शर्त पूरी करने में असफल उसने लड़की के घर आना-जाना छोड़ दिया।

अब अपीसांग्बा अपनी हार तथा प्रेमिका को पत्नी न बना पाने के कारण व्यथित और दुखी रहने लगा। उसने सोचा कि यदि वह उसकी न हुई तो उसे किसी और को भी न होने देगा। इस विचार से उसने एक दिन अंग्यादांग्र्यु के पास जाकर बताया कि वह उसे गाँव के जंगल के उस पार फूलों की घाटी दिखाना चाहता है, जहाँ विभिन्न प्रकार के फूल खिलते हैं। अपीसांग्बा के मंतव्य से अनजान वह उसके साथ जंगल के लिए निकल पड़ी। वन में पहुँचकर उसने अंग्यादांग्र्यु से कहा कि पेड़ पर चढ़ने पर ही उसे फूलों की घाटी दिखेगी। इस प्रकार, दोनों एक-दूसरे को सहारा देते हुए पेड़ पर चढ़ गए। ऊपर जाने के बाद अचानक अपीसांग्बा पेड़ से हड़बड़ी में उतरते हुए कहा, "इतना सुंदर शरीर है, यदि इसे कोई पशु-पक्षी न खाए तो किस काम का?" यह कहकर वह गाँव की ओर चला आया।

इधर अंग्यादांग्र्यु पेड़ से उतर न पाई और उसी पेड़ पर तड़प-तड़पकर मर गई। जब कई दिनों तक उसका पता न चला तब उसके घर वाले उसे खोजते हुए जंगल पहुँचे। उन्होंने देखा कि अंग्यादांग्र्यु मरकर कंकाल बन चुकी है, जिस पर ढेरसारे कवक (मशरूम) उगे हुए थे। उसके माता-पिता को अपीसांग्बा पर संदेह था, परंतु प्रमाण के बिना वे कुछ कह न सकते थे। उन्होंने कंकाल पर उगे हुए मशरूम को उठा लिया और घर ले जाकर उसे इतना सुखाया कि ढेर सारा मशरूम बहुत छोटा एवं

³ बाँस या बेंत की बनी बड़ी टोकरी, जिसका उपयोग सामान ढोने के लिए किया जाता है।

कम दिखने लगा। गांव में धीरे-धीरे यह बात भी स्पष्ट हो गई थी कि अपीसांग्बा ने ही उसकी बेटी को जंगल ले जाकर मारा है, इसलिए उन्होंने अपनी बेटी की मौत का बदला लेने का निश्चय किया।

अंग्यादांग्यु को मरे हुए काफ़ी समय बीत चुका था। अब तक अपीसांग्बा भी लगभग उसे भूल चुका था। एक दिन लड़की के पिता ने उसे खाने पर आने का निमंत्रण दिया। दावत में उसका खूब स्वागत-सत्कार हुआ। उसे मधु के साथ सूखे मशरूम की चटनी खूब खिलाई गई। जब वह खाकर संतुष्ट हो गया और चलने लगा तब अंग्यादांग्यु की माँ ने उससे कहा, “बेटा! मशरूम की चटनी को पचाने के लिए पानी खूब पीना।” अपीसांग्बा ने घर आकर खूब पानी पीया। धीरे-धीरे उसका पेट फूलने लगा। मशरूम पचने के बजाय पेट में फूल रहा था। उसे अज़ीब-सा लगने लगा। वह गाँव के पुरुष मोरुंग में जाकर लेट गया। उसका पेट इतना फूल गया था कि वह एक गोलाकार बन गया। गाँव के सभी बच्चे उसे देखकर हँसते रहते। जब वह लेटा रहता, तब बच्चे उसके ऊपर से कूद-कूदकर इस पार से उस पार कर खेलते रहते थे। ऐसे में, किसी बच्चे का नाखून उसके पेट से लग गया और फिर वह ऐसा फटा कि उसके चीथड़े-चीथड़े उड़ गए। अंग्यादांग्यु के माता-पिता ने अपनी पुत्री की मौत का बदला ले लिया।

इस कथा से मिलती-जुलती ‘सलोनारो की याद में’ नाम से किसी अन्य जनजाति में कहानी कही जाती है, जिसमें लड़के का नाम ‘रंग्चिंग’ और लड़की का नाम ‘सलोनारो’ है। इस कहानी के अनुसार रंग्चिंग का चरित्र अच्छा नहीं था, इसलिए सलोनारो के माता-पिता ने उसे अपनी बेटी देने से मना कर दिया। इससे नाराज़ होकर उसने सलोनारो को जंगल बुलाया तथा उसे पहाड़ से खाई में ढकेल दिया। लड़की के माता-पिता उसकी याद में रोते रहते। इसीलिए संभवतः इस कथा का नामकरण ‘सलोनारो की याद में’ किया गया है। इस कथा में भी रंग्चिंग से वैसा ही बदला लिया जाता है, जिस प्रकार अपीसांग्बा को मशरूम खिलाकर मारा जाता है।

एक प्रकार से यह कथा एकतरफा प्यार को दर्शाता है, जिसमें लड़का किसी भी प्रकार से अपने प्यार को पाने का असफल प्रयास करता है। दूसरी ओर, अंग्यादांग्यु की तरफ से किसी भी प्रकार का पहल नहीं किया जाना, यह दर्शाता है कि उसके मन में अपीसांग्बा के लिए कोई प्रेम नहीं था या फिर उसके ऊपर पिता का इतना आतंक था कि वह कुछ भी कहने-करने से डरती थी। इस संदर्भ में यह कहना भी उचित होगा कि उन दिनों फोम समाज में संभवतः लड़कियों अथवा स्त्रियों की आवाज़ को कोई महत्त्व न दिया जाता रहा हो। पर हर संभव प्रयास करने के बाद भी जब अपीसांग्बा अपने उद्देश्य

में असफल रहता है, तब कुंठित मन के साथ वह बदला लेने पर उतारू हो जाता है, जो एक प्रकार से मानव मन की स्वाभाविक परिणति है।

3.1.9 : पोचुरी

पोचुरी जनजाति में प्रचलित 'चेखरा' (Baruah, 2009, page-166) की कथा के अनुसार, चेखरा किसी गाँव का मुखिया था, जो अत्यंत स्वार्थी, लालची तथा अशिष्ट व्यक्ति था। वह गाँव वालों को किसी न किसी तरह से परेशान करते हुए उनसे कर के रूप में कुछ न कुछ उगाही करता रहता था। एक दिन उसने सोचा कि गाँव वालों के ऊपर कोई नया कर लगाया जाए। उसने अपने अंगूठे की परिधि को एक रस्सी से मापा तथा उस परिधि का छल्ला बनाकर गाँव वालों को दिखाते हुए कहा, "तुम सभी को इस छल्ले के बराबर का चाँदी अथवा मोती का एक-एक सिक्का मुझे कर के रूप में देना होगा।" गाँव वाले इस तरह का कोई कर देना नहीं चाहते थे, पर उनके पास और कोई चारा भी नहीं था। सो, सभी ने अपने-अपने सिक्के उसे दिए। कुछ दिनों बाद चेखरा के मन में और भी लालच बढ़ी। उसने अपने गले की माप ली और गाँव वालों को बुलाकर कहा कि उस माप का एक-एक हार सभी को लाना होगा। गाँव वालों को बहुत बुरा लगा। सभी गाँव वालों ने आपस में इस संदर्भ में चर्चा भी की, पर वे मुखिया से कुछ कह न सके। आखिरकार, सभी ने जैसे-तैसे करके हार बनवा लाकर उसे दे दिया।

इस प्रकार, दिन पर दिन मुखिया चेखरा का स्वार्थ एवं दुस्साहस बढ़ता चला गया। गाँव वालों की चुप्पी ने भी उसे और प्रोत्साहित किया। इस बार उसने अपने कमर की माप ले ली और सब से कमरबंद की माँग कर डाली। अब गाँव वालों की समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए, क्योंकि कमरबंद बनाकर देना सभी के वश की बात न थी। गाँव के सभी लोगों की एक गुप्त बैठक हुई। बैठक में दुष्ट मुखिया से छुटकारा पाने के लिए उन्होंने एक तरकीब निकाली। शाम के समय सभी लोग मुखिया के पास गए और कहा कि हम सभी निश्चित रूप से आपके कर की अदायगी करेंगे। परंतु हम चाहते हैं कि इसके पहले आप हमारे महाभोज को स्वीकार करें, जिसे हमने खास आपके लिए तैयार किया है। यह सुनकर वह और भी प्रसन्न हो गया और सोचने लगा कि ये लोग मेरे अंदाज़ से कहीं अधिक संपन्न हैं।

मुखिया ने खुशी-खुशी दावत को स्वीकार लिया। इधर गाँव के लोगों ने उसके लिए महाभोज की तैयारी आरंभ की। उधर मुखिया सोचने लगा कि ये लोग कर देने के साथ-साथ मेरा आदर-सत्कार भी कर रहे हैं। इसका मतलब है कि ये और भी अधिक कर दे सकते हैं। इसलिए उसने मन ही मन कर बढ़ाने का निश्चय किया। गाँव के लोगों ने उसके लिए चावल से शराब बनाया। उसे अधिक से अधिक

नशीली तथा प्रभावी बनाने के लिए बीसों दिनों तक उसका किण्वन तैयार किया। इस प्रकार जब सभी तैयारियाँ मुकम्मल हो गईं, तब निश्चित की गई तिथि पर मुखिया को बुलाया गया। लोगों ने उसे खूब खिलाया-पिलाया। बाँस के प्यालों में मधु (शराब) लबालब भर-भरकर परोसा गया और वह भी पीता चला गया। इस प्रकार, उसने इतना अधिक मधु पी लिया कि वह नींद से बेहाल हो गया। उसके बाद वह ऐसा सोया कि फिर कभी उठ न सका।

जब लालची मुखिया सदा के लिए सो गया, तब गाँव के लोगों ने अपने बीच से ही नए मुखिया का चयन किया, जो अपने उत्तरदायित्व के प्रति अत्यंत संवेदनशील था। इसके बाद गाँव वालों ने मधु पीना भी सीमित कर दिया, ताकि उस लालची मुखिया की तरह सदा के लिए सो न जाएं।

यह कहानी आज लोगों को इसलिए सुनाया जाता है, ताकि लोग उस मुखिया की तरह लालच को मन में न पालें और जो भी अपने पास उपलब्ध है, उसी में संतुष्ट रहें। पोचुरी नागा जनजाति की इस लोक कथा सेपता चलता है कि प्राचीन काल में किसी भी गाँव का मुखिया अपने गाँव की परिसीमा में एक राजा की ही तरह रहता था। एक गाँव में ही सही, पर कर लगाना, उनसे अपने ऐशो-आराम के साधनों का संकलन कराना आदि सामान्य बातें थीं। कथा के माध्यम से यह भी स्पष्ट होता है कि इन लोगों के खान-पान में मांस-मछली के साथ-साथ चावल के किण्वन से बने मादक पेय का बहुतायत में प्रयोग होता था, जिसे स्थानीय बोली में मधु कहा जाता है। ये लोग किण्वन-विधि से इस मधु को आवश्यकतानुसार अधिक या कम मादक बनाने की क्षमता रखते थे। उन्होंने अपने लालची मुखिया के लिए इतना नशीला पेय तैयार किया कि वह उसे पीकर सदा के लिए सो गया। मादक पदार्थ अधिक नशीला या कम नशीला हो या बनाया जाये- वे बखूबी जानते थे।

इस कहानी से पता चलता है कि आभूषणों के लिए कौड़ी, शंख, सीपी इत्यादि के साथ-साथ पोचुरी लोगों में प्राचीन काल से ही चाँदी एवं मोती जैसे बहुमूल्य पदार्थों का भी प्रयोग होता था। इन लोगों में बाँस के घर बनाने से लेकर अन्य घरेलू वस्तुओं को बनाने में धातु से बने हथियारों के प्रयोग का भी प्रचलन था। मधु के सेवन के लिए बाँस के बने प्यालों का प्रयोग होता था। बाँस के बड़े-बड़े पोरों का उपयोग जल-संग्रह के लिए तथा कहीं-कहीं मधु के किण्वन के लिए भी होता था। इस प्रकार, प्रस्तुत कथा में पोचुरी नागाओं के जनजीवन का बड़ा ही स्पष्ट चित्रण अभिव्यंजित हुआ है।

3.1.10 : रेंग्मा

रेंग्मा जनजाति में प्रचलित लोक कथा 'काशो-कप्फु' (Baruah, 2009, page-90) के अनुसार, होकेफु एक महान योद्धा था और वह चाहता था कि उसका पुत्र काशो उससे भी वीर और महान बने।

वह हर तरह से अपने पुत्र को योग्य बनाने, उसे युद्ध-कला में प्रशिक्षित करने तथा मानवीय सद्गुणों से परिपूर्ण बनाने में प्रयासरत रहता था। अपने पुत्र की बहादुरी, कुशलता तथा बौद्धिक विकास में योगदान दे सके, ऐसे किसी भी मौके को वह हाथ से जाने नहीं देता था। इस प्रकार, हर कदम पर अपने पुत्र का मार्गदर्शन करते हुए उसने उसके पालन-पोषण में किसी भी प्रकार की कमी न आने दी।

जब काशो जवान हुआ और अपने पिता के बिना घर-गृहस्थी एवं खेती का कार्य करना आरंभ किया तब होकेफु ने सोचा कि यद्यपि वह बड़ा हो गया है, फिर भी देखना चाहिए कि मैंने इसे जो प्रशिक्षण दिया है, उनमें से इसने कितना ग्रहण करके आत्मसात किया है। एक दिन काशो बाँस काटने के लिए जंगल की ओर निकल गया। पिता ने चुपके से उसका पीछा किया और अपने पुत्र की कार्य-कुशलता देखकर उसे आत्मसंतुष्टि मिली। काशो बाँसों को काटकर उसकी रस्सी बनाने के लिए बड़ी कुशलता से उन्हें छिल रहा था। बीच-बीच में वह बाँसों को काटना तथा छीलना बंद करके जंगल से आने वाली ध्वनियों को सुनने का प्रयास करता था, ताकि कोई शत्रु अथवा जंगली हिंसक पशु उसपर झपट न पड़े। प्राचीन काल में यह सामान्य बात थी कि जंगल में किसी को अकेले पाकर हिंसक पशु उसे मारकर खा जाता था या कोई शत्रु गाँव का 'हेड-हंटर' ही उसे मारकर उसका सर ले जाता था। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए वह बार-बार किसी की आहट को सुनने का प्रयास कर रहा था।

यह देखकर होकेफु की खुशी का ठिकाना न रहा और अपनी परवरिश पर उसे आत्म-गौरव की अनुभूति हुई। फिर भी वह चाहता था कि एक बार अपने पुत्र की योग्यता की परीक्षा ले ली जाए। इसी उद्देश्य से उसने थोड़ी दूर पर झाड़ियों के नीचे छिपकर शेर के दहाड़ने की आवाज़ निकाली। यह सुनते ही काशो ने तुरंत उस ओर अपना भाला फेंका। वह पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अपने शिकार की ओर झपटा। परंतु वहाँ जो कुछ था, उसे देखकर वह भौंचक्का रह गया। उसके भाले से आहत उसके पिता खून से लथपथ जमीन पर पड़ा हुआ था। वह डर गया कि उसके हाथों पिता की हत्या हो गई है। परंतु होकेफु ने उसे अपने पास इशारे से बुलाया और कहा, "दुखी मत हो मेरे वीर पुत्र! मैं शांति से मर रहा हूँ, क्योंकि मुझे इस बात की खुशी है कि अब तुम मुझसे कुशल और वीर योद्धा बन गए हो। मेरे भाग्य में ऐसे ही मरना लिखा था और मैं किसी पक्षी योनि को प्राप्त होकर किसी दिन फिरसे खेतों में बीजों की बोआई के समय तुम्हें सूचित करने आऊंगा। ऐसा कहकर उसने अपने प्राण त्याग दिए।"

कुछ समय बाद जब काशो अपने मित्र योद्धाओं के साथ शत्रुओं से लड़ाई के लिए निकला ही था कि गाँव के मुख्य द्वार को पार करते ही एक छोटी-सी चिड़िया ने 'काशो कप्फु- काशो कप्फु' की आवाज़ करते हुए गाना आरंभ कर दिया। काशो को अपने पिता की कही बातें याद आ गईं और उसने

समझ लिया कि अब खेतों में बीज बोने का समय आ गया है। वह वहीं से वापस घर लौट आया और अगली सुबह ही उसने बीज लेजाकर अपने खेत में बो दिया। कुछ महीनों बाद जब फसल की कटाई हुई तब उसे सबसे अधिक अनाज प्राप्त हुए, जबकि गाँव के अन्य योद्धागण अपने खेतों से खाली हाथ लौटे। इसके बाद से गाँव के लोगों ने 'काशो-कप्फु' नामक चिड़िया के गाने की आवाज़ को सुनने के बाद ही खेतों में बीज बोने की प्रथा आरंभ की।

इसी कथा का थोड़ा-सा परिवर्तित रूप अन्य नागाजनजातियों में भी मिलता है। सुमी जनजाति में 'काशो' नाम के व्यक्ति को गाँव के लोग बीज की बोआई के लिए बुलाते हैं। परंतु वह तब तक नहीं जाता है, जब तक कि उसके मृत पिता ने एक पक्षी के रूप में 'काशो-पापु, काशो-पापु' कहकर उसे यकीन नहीं दिलाता कि खेतों में बीज बोने का समय आ गया है। इस प्रकार की कहानियों से स्पष्ट होता है कि नागा समाज में लोगों को यह ज्ञात था कि प्रकृति के नियमों का पालन करते हुए उसे संतुलित रखकर ही मानव-जीवन सुचारू रूप से संचालित हो सकता है। यही कारण है कि नागा समाज में प्राचीन काल से ही प्राकृतिक संकेतों को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। वे इस बात पर पूर्णतया विश्वास करते थे कि यदि प्रकृति के नियमों के विरुद्ध कुछ भी किया जाता है तो उसके दुष्परिणाम हमें ही भुगतना पड़ेगा।

इस कहानी में रेंग्मा जनजाति के सामान्य जनजीवन का चित्रण अत्यंत ही मार्मिक ढंग से हुआ है। जिस प्रकार से होकेफुने अपने पुत्र काशो को युद्ध-कला के साथ-साथ भावी जीवन संबंधी ज्ञान प्रदान किया, उससे स्पष्ट है कि इन लोगों में युद्ध-कला सामान्य जीवन का अंग था, क्योंकि हर किसी को स्व-रक्षा के लिए किसी न किसी मोड़ पर इस कला का प्रयोग करना ही होता था। युद्ध कला में निपुणता प्राप्त किए बिना पुरुषों का जीवन अधूरा माना जाता था। ऐसे पुरुषों को अन्य योद्धाओं के समक्ष हीन भाव से देखा जाता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उन दिनों वन में जाते हुए अथवा खेतों में कार्य करते हुए वन्य हिंसक पशुओं तथा शत्रुओं का हमेशा खतरा बना रहता था। इसलिए काशो जैसे निपुण योद्धा अपने कार्यों को करते हुए भी सदैव उन खतरों के प्रति सतर्क रहते थे। काशो के हाथों पिता होकेफु की मृत्यु एक दुखद घटना थी, पर अपना बलिदान देकर भी पुत्र की कुशलता देखकर वे प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन त्याग देते हैं, जो इस बात का संकेत है कि अपने संतानों की खुशहाली तथा उनके भावी जीवन के लिए माता-पिता अपने जीवन तक न्योछावर करने से भी पीछे न हटते थे। युद्ध कला की निपुणता के संदर्भ में एक तथ्य यह भी निकलकर आता है कि जिस प्रकार शब्द-भेदी वाण की बात कही जाती है, उसी प्रकार काशो एवं होकेफु जैसे योद्धा ध्वनि को सुनकर उनपर भाले से

सटीक प्रहार करने की क्षमता रखते थे। दूसरे शब्दों में, शब्द-भेदी भाला-प्रहार की क्षमता यहाँ के लोगों को थी।

प्रस्तुत कथा के आधार पर रेंग्मा जनजीवन के संदर्भ में यह बात पक्की है कि ये लोग बाँस को छीलकर उसकी रस्सी बनाने तथा उनके उपयोग करने में निपुण थे। वैसे तो, नागा समाज के अधिकांश जनजातियों में बाँस तथा बेंत को छीलकर रस्सी के रूप में उनका उपयोग करने तथा विभिन्न प्रकार की घरेलू वस्तुएं, टोकरी इत्यादि बनाने की परंपरा प्राचीन काल से ही रही है। रेंग्मा समाज के संबंध में यह बात भी उभरकर सामने आती है कि ये लोग पुनर्जन्म पर भी विश्वास करते थे। उनका अटूट विश्वास था कि मृतक आत्माओं का पुनर्जन्म पशु अथवा पक्षी योनि में भी होता है। होकेफु के माध्यम से एक पक्षी-योनि में मानव-आत्मा के पुनर्जन्म का प्रसंग इस बात का द्योतक है कि यहाँ के लोग सभी जीवों में समान आत्मा की विद्यमानता को स्वीकारते थे। इसलिए ये लोग प्रकृति के सभी उपादानों को, उनके संकेतों को मानव जीवन के किसी न किसी संदर्भ से जोड़ते चलते हैं। उनका विश्वास है कि प्राकृतिक परिवर्तन तथा जलवायु चक्र के अनुसार ही वर्षभर के सभी कार्य संपादित किए जाने चाहिए, ताकि कृषि-कार्य हों या पर्व-त्योहार - किसी पर भी प्रकृति की प्रतिकूलता का प्रभाव न पड़े। इस कहानी में जिस प्रकार 'काशो-कप्फु' नामक पक्षी का प्रसंग आया है, उसी प्रकार से अनेक पशु-पक्षियों तथा कीट-पतंगों के बोलने तथा आवाज करने के साथ लोग यह समझ जाते थे कि खेतों में किस प्रकार के कार्य किए जा सकते हैं। जानकार लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि यदि इन कीट-पतंगों की गतिविधियों की निगरानी ध्यानपूर्वक की जाए, तो आने वाले कुछ दिनों के मौसम का भी पूर्वानुमान किया जा सकता है।

3.1.11 : सांग्तम

सांग्तम जनजाति में प्रचलित 'लंग्खोंग्ला' (Baruah, 2009, page-145) नाम की औरत की कथा मिलती है। इस कथा के अनुसार, उसकी बड़ी इच्छा थी कि वह भी औरों की तरह माँ बने, पर उसकी इच्छापूर्ति नहीं हुई। गाँव के सभी लोगों ने यह मान लिया था कि वह बाँझ है। उसने सभी आत्माओं एवं प्रेतात्माओं की प्रार्थना मन से की, ताकि किसी की तो उसपर कृपा हो जाए, पर कोई फल न मिला। अंत में, एक धनेश पक्षी को उसके ऊपर दया आ गई। लंग्खोंग्ला के ऊपर से उड़ते हुए उसने अपना एक जादुई पंख उसपर गिरा दिया। पर, जैसे ही उसने पंख को स्पर्श किया, वह एक पत्थर में परिवर्तित हो गया। निराश लंग्खोंग्ला ने उसे दूर फेंक दिया। वह पत्थर जाकर नर्म घास पर गिरा तथा एक नवजात बालक में परिवर्तित हो गया। गाँव की सभी माताओं ने उसे स्तन-पान कराने का प्रयास

किया, पर वह बालक रोता रहा और अंततः लंग्खोंग्ला की बारी आई। उसके पास आते ही बालक शांत हो गया और उसकी गोद में खेलखिलाने लगा। इस प्रकार, वह उसके पुत्र के रूप में बड़ा होने लगा। लंग्खोंग्ला ने उसका पालन-पोषण बड़े ही स्नेह एवं दुलार के साथ किया। कुछ ही वर्षों में वह बालक एक सुडौल शरीर वाला स्वस्थ तथा सुंदर नवयुवक बन गया, जिसे गाँव की सभी लड़कियाँ पसंद करती थीं। इधर गाँव में उसके हमउम्र लड़के उससे ईर्ष्या करने लगे। एक दिन मौका पाकर किसी ने उसके खाने में ज़हर मिला दिया। उसने जहर मिले खाने को खाया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई।

लंग्खोंग्ला को अपने पुत्र की मृत्यु का बड़ा सदमा लगा। इससे भी अधिक उसे गाँव के लड़कों पर क्रोध आया। परंतु वह सीधे-सीधे किसी को कुछ कर न सकती थी। अतः उसने गाँव वालों से बदला लेने के लिए अपने पुत्र के मृत शरीर को छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर उन्हें जादुई जल वाले तालाब में डाल दिया। कुछ ही दिनों में मांस का प्रत्येक टुकड़ा एक-एक हिंसक जंगली पशु बनकर बाहर आने लगे। इस प्रकार, शीघ्र ही सारा गाँव शेर, भालू, जंगली सूअर, भेड़िए तथा अन्य हिंसक पशुओं से भर गया। इन्हीं पशुओं ने उसके पुत्र के अधिकांश हत्यारों को मार डाला। बाक़ी बचे-खुचे लोग भी गाँव छोड़कर भाग गए।

सारा गाँव वीरान हो गया। लोंग्लोंग्ला ने अपना बदला ले लिया था। अंत में, उसने स्वयं को एक धनेश पक्षी के रूप में बदल लिया और सभी जंगली पशुओं का नेतृत्व करते हुए जंगल चली गई। सांग्तम नागाओं की मान्यता के अनुसार, जितने भी वन्य पशु-पक्षी हैं, वे सभी लोंग्लोंग्ला के पालतू पशु-पक्षी कहे जाते हैं। इस कहानी के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि सांग्तम लोगों में आत्माओं एवं प्रेतात्माओं के अस्तित्व पर विश्वास किया जाता है।

3.1.12 : सुमी

सुमी (सेमा) जनजाति में प्रचलित '**नृत्य की उत्पत्ति**' (Baruah, 2009, page-162) नामक कहानी के अनुसार, रोटोखी एक बहुत ही बहादुर शिकारी था। परंतु वह अपने पुत्र खुम्त्सा को अकेले में बाहर भेजने से बहुत डरता था। इसलिए वह सदैव उसे अपने साथ ही रखता था। एक दिन पिता-पुत्र चिड़ियों को पकड़ने हेतु जाल बिछाने निकले। वे जिस रास्ते से जा रहे थे, उस पर एक बड़ा-सा पेड़ गिरा हुआ था, जिससे रास्ता अवरुद्ध हो गया था। रोटोखी ने क्रोधकर उसे पार कर लिया और जब उसने खुम्त्सा को पार कराने हेतु सहारा देने के लिए हाथ बढ़ाया, तब वह अदृश्य हो गया। उसे आश्चर्य के साथ-साथ बड़ा दुःख भी हो रहा था। उसने आसपास सब जगह अपने पुत्र की तलाश की, परंतु सब

बेकार गया। अब शाम होकर रात ढलने लगी थी, पर बेटा न मिला। इसलिए भारी मन से वह अपने गाँव की ओर लौट आया।

उस रात सोते हुए रोतोखी ने स्वप्न में अपने पुत्र खुम्त्सा को देखा। वह कह रहा था, “मैं तो वहीं खड़ा था, जहाँ हमने गिरे हुए पेड़ को पार करने का प्रयास किया।” अगले दिन उसने अपने मित्रों एवं सगे-संबंधियों को लेकर जंगल का सारा कोना छान मारा, सभी पेड़ काटकर गिरा दिए गए, सभी पथरों को उलट-पलटकर देखा, पर खुम्त्सा का कहीं पता न चला। वह निराश होकर घर लौट गया। इसके बाद उसने अपने पुत्र को फिरसे देखने की उम्मीद ही छोड़ दी।

वर्षों बाद एक दिन एक किशोर युवक ने रोतोखी के द्वार पर दस्तक दिया, जो स्वयं को खुम्त्सा बता रहा था। उसने बताया कि दुष्टात्माओं के द्वारा उसे एक अनजान जगह ले जाया गया। रोतोखी को अविश्वास करते देख उसने कहा, “मुझे याद है कि मैं उस पेड़ को पार करने का प्रयास कर रहा था, परंतु उसी समय एक दुष्टात्मा ने मुझे अपने कब्जे में ले लिया।” यह सुनने के बाद रोतोखी को कुछ विश्वास होने लगा। युवक ने आगे बताया, “मैं कुछ समय के लिए दुष्टात्माओं के बंधन से स्वयं को किसी तरह छुड़ाकर भाग आया हूँ, ताकि गाँव वालों को यह बता सकूँ कि वे दुष्टात्माएं आज से ठीक सात दिनों के बाद इस गाँव को अपना बसेरा बनाने आ रही हैं। अपने घर के बाहर उनके लिए चावल, मांस तथा शराब आदि की व्यवस्था करके रखना होगा और स्वयं को घर के अंदर बंद रखना होगा, क्योंकि उन प्रेतात्माओं को जो भी देखता है - वह मर जाता है।” यह बताकर वह युवक फिरसे कहीं अदृश्य हो गया। रोतोखी ने उसे फिर कभी नहीं देखा, पर उसने इस बात को गाँव वालों को बता दिया।

जिन लोगों ने उस पर विश्वास किया, उन्होंने खुम्त्सा के कथनानुसार सभी प्रकार की तैयारियाँ कीं और जिन्हें विश्वास न था, वे प्रेतात्माओं को देखने की प्रतीक्षा करने लगे। ठीक सात दिनों के बाद एक रात को रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित प्रेतात्माओं ने गाँव में प्रवेश किया। वे रात भर आनंदपूर्वक गाते-नाचते रहे। जब प्रातः होने को आया, तब उन्होंने केले के पत्तों पर परोसे हुए मांस एवं चावल खाए, बाँस के बने बड़े-बड़े प्यालों से शराब पीया। जब भरपेट खा-पी लिया, तब वे गाँव से निकल गए। कहा जाता है कि गाँव के जिन लोगों ने उन्हें नाचते देखा था, वे इस लोक से ही गायब हो गए। रोतोखी ने भी उन्हें नाचते हुए देखा था, लेकिन बाँस की बनी छत्री से अपनी आँखों को ढककर उसने प्रेतात्माओं को देखा था, इसलिए वह बच गया। उसने नृत्य के सभी चरणों को याद कर लिया था। बाद में वही उसने गाँव वालों को सिखाया। इस प्रकार, सुमी जनजातियों ने प्रेतात्माओं से नृत्य करना सीखा तथा अन्य लोगों में इसका प्रसार किया।

प्रस्तुत कहानी में कथाकार ने नृत्य की उत्पत्ति की संकल्पना को मूर्तरूप दिया है। इसमें सुमी जनजाति के जनजीवन को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। कथा में चिड़ियों को फँसाने के लिए जाल बिछाने के प्रसंग से पता चलता है कि लोग अपने भोजन के लिए पशु-पक्षियों का शिकार किया करते थे। खान-पान में चावल, मांस तथा मधु का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था। भोजन परोसने के लिए केले के पत्तों तथा मधु पीने के लिए बाँस के प्यालों का प्रयोग होता था। इस कथा से यहाँ के लोगों में व्याप्त इस लोक-विश्वास की भी पुष्टि होती है कि किसी के प्रति अतिशय मोह उसके साथ वियोग का कारण होता है। रोटोखी का अपने पुत्र खुम्सा के प्रति अतिशय मोह के कारण ही वह प्रेतात्माओं के लिए भी प्रिय हो गया और उन्होंने उसे अपने बंधन में ले लिया। लोगों का यह भी विश्वास है कि यदि कोई सीधी आँखों से किसी भूत या प्रेतात्मा को देखता है, तो उसकी तत्काल मृत्यु हो जाती है। इसीलिए कथाकार ने रोटोखी को भूतों को देखने के लिए छत्री का प्रयोग करते दिखाया है।

3.1.13 : यिम्बुंग (यिम्बुंगर)

यिम्बुंग या यिम्बुंगर जनजाति में प्रचलित 'विलुप्त लंगा' (Baruah, 2009, page-176) नामक लोक कथा के अनुसार, प्राचीनकाल में लंगा नामक स्थान पर जोंगियिम्बू नाम का व्यक्ति राज करता था। लंगा को उसने बड़े प्यार एवं लगन से बसाया तथा उसका विस्तार किया था। उसके छौ पुत्र थे, जो बल में एक से बढ़कर एक थे। जोंगियिम्बू बहुत ही दयालु एवं सहृदयी राजा था। वह अपनी प्रजा के सुख-दुःख का हमेशा ध्यान रखता था। परंतु उनके सभी पुत्र उनके विपरीत अहंकारी एवं निर्दयी थे और वे जनता के साथ दासों जैसा व्यवहार करते थे। इसलिए जनता उनसे त्रस्त रहती थी। राजा की सज्जनता के कारण ही जनता उनके पुत्रों की उद्दंडता को भी सह जाते थे।

एक दिन राजा का बड़ा बेटा ग्रामीण क्षेत्र में जाते हुए किसी मुर्गी-पालक के घर से होकर गुजरा। एक मुर्गी उसके सामने आ गई और उसने उसे लात मार दी। मुर्गी को लात मारते ही एक मुर्गे ने झपटकर राजकुमार को चोंच मारा, जिससे वह इतना झल्लाया कि उसने मुर्गी-पालक पर ही जुर्माना लगा दिया। बेचारे गरीब आदमी को उसे एक मुर्गा देना पड़ा। ऐसे ही दूसरे पुत्र ने भी एक सूअर-पालक के साथ किया और उसका सबसे अच्छा सूअर उठा लाया। इसी प्रकार, अन्य भाई भी गाँव वालों के साथ आए दिन किसी न किसी प्रकार का जुर्माना लगाते और कुछ न कुछ उगाही करते रहते।

अब जोंगियिम्बू की प्रजा के लिए उनके पुत्रों का यह अत्याचार असहनीय हो गया। उन्होंने किसी अन्य गाँव में जाकर बसने का निश्चय किया। राजा ने अपनी प्रजा को किसी तरह से रोकने का प्रयास किया, अपने पुत्रों के करतूतों के लिए क्षमा-याचना की और उन्हें रोकने के लिए अपना सबसे

बड़ा मिथुन⁴ काटकर महाभोज कराया। लेकिन उनके पुत्र किसी भी तरह से सुधरने को तैयार न थे। प्रजा की तरफदारी करने और उनके सुख-दुःख का ध्यान रखने के कारण वे अपने पिता के ही खिलाफ चले गए, जिससे राजा को बड़ी निराशा हुई। उन्होंने प्रजा को बुलाकर कहा, “लंगा अब हमारे रहने के लिए उचित स्थान नहीं रहा। अब हमें किसी नए गाँव को बसाना होगा, जहाँ हम सभी शांतिपूर्वक रह सकें।” इस प्रकार, राजा अपने ही पुत्रों के हवाले लंगा को छोड़कर प्रजा के साथ नया गाँव बसाने के लिए चल दिया।

इधर पीछे छहों भाई आपस में लड़ते रहते। अब उनके साथ कोई ऐसा नहीं था, जिससे वे कुछ खाने को प्राप्त कर सकते। आपस में लड़ते हुए बड़े भाई ने अपने अन्य सभी भाइयों को मार डाला और उस लड़ाई के ज़ख्मों से ही उसकी भी मृत्यु हो गई। इस प्रकार, जोंगिम्क्यू के द्वारा बड़े प्यार से बसाएलंगा का नामोनिशान मिट गया और वह लुप्त हो गया। प्रस्तुत कथा से यह तथ्य निकलकर आता है कि यिम्बुंग लोगों में राजवंश की परंपरा थी। प्रायः गाँव के संस्थापक ही उस गाँव का राजा हुआ करता था। यहाँ के लोग कृषि कार्यों के अतिरिक्त अपने जीवन-यापन के लिए मिथुन, गाय, भैंस, सूअर, कुत्ता, मुर्गी आदि पशु-पक्षियों का पालन करते थे, जिनका मांस खाने में उपयोग होता था। इस कथा से इस बात का भी पता चलता है कि यदि किसी राजा या उनकी संतानों के द्वारा प्रजा के साथ अन्याय किया जाता था, तो पूरी प्रजा ही उन्हें छोड़कर अन्यत्र बसने के लिए चली जाती थी। इससे स्पष्ट है कि नए गाँव की स्थापना के लिए यहाँ खाली भूमि की कमी नहीं थी। प्रस्तुत कथा के माध्यम से कथाकार ने राजाओं अथवा शासकों को सचेत किया है कि यदि वे प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रखने में अक्षम हैं, तो उनके राज्य का विनाश हो जाएगा।

3.1.14 : जेलियांग (हामै)

जेलियांग जनजाति में प्रचलित ‘हैगुइंग (कैवींग)’ (Bower, 1940-42) की कथा के अनुसार, ज़्यम⁵ नाम के गाँव में दिमान्सारेग नामक एक योद्धा रहता था, जो अपनी वीरता के लिए गाँव में ही नहीं बल्कि आस-पास के सभी गाँवों में भी प्रसिद्ध था। उसका एकमात्र पुत्र हैगुइंग था। अभी हैगुइंग बहुत छोटा ही था कि एक शत्रु-गाँव ‘न्के’ के लोगों ने दिमान्सारेग की हत्या कर दी। कहा जाता है कि ज़्यम और न्के गाँवों के बीच घोर शत्रुता थी। यद्यपि दिमान्सारेग ऐसा वीर था कि कोई भी खुले द्वंद्व युद्ध में उसे हरा नहीं सकता। किंतु ज़्यम के सामने न्के वाले अधिक ताकतवर थे। एक दिन न्के वालों ने ज़्यम गाँव से कहा कि यदि वे दिमान्सारेग को उन्हें सौंप देते हैं, तो गाँव के बाक़ी सभी लोगों को सकुशल

⁴ एक विशालकाय पालतू पशु जिसका वैज्ञानिक नाम ‘बॉस फ़्रोटैलिस’ है।

⁵ मणिपुर के तमेगलोंग में स्थित एक प्राचीन जेलियांग गाँव, जो आज भी यथावत है।

रहने देंगे। न्के वालों के झाँसे में आकर अपने ही गाँव के लोगों ने दिमान्सारेग को धोखे से शत्रु-गाँव के हवाले कर दिया और उन सभी ने मिलकर उसकी हत्या कर दी।

हैगुइंग जब छोटा था, तब उसे अपने पिता की मृत्यु के बारे कुछ पता न था, पर जैसे-जैसे वह बड़ा हो रहा था, गाँव के अन्य लड़कों से पता चला कि उसके पिता शत्रु के हाथों मारा गया था। जब भी लड़कों में आपस में झगड़ा-फसाद होता, वे हैगुइंग को चिढ़ाने के अंदाज़ में कहते थे कि तुम्हारे पिता तो शत्रु-हाथों का शिकार हुआ था। इस बात से उसे बहुत दुःख होता था और चिढ़ भी होती थी। हैगुइंग का एक बुआ के सिवाय अपना कोई नहीं था और उसी के यहाँ वह रहता था। उसने अपनी बुआ से पिता के बारे कई बार पूछ-ताछ की, परंतु बुआ यह सोचकर कि वह अभी बहुत छोटा है, हर बार इस बात को टाल दिया करती। लेकिन जब एक दिन वह इस बात को लेकर अड़ गया, तब बुआ ने कहा कि अभी तुम बहुत छोटे हो। मगर इस बात को कभी मत भूलना कि अपने गाँव वालों ने ही धोखे से तुम्हारे पिता को न्के गाँव के हाथ सौंप दिया था और उन्होंने उनकी हत्या कर दी। हैगुइंग ने इस बात की गाँठ बाँध ली और सही समय आने की प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ वर्षों बाद जब वह किशोरावस्था में आ चुका था, एक शाम खंग्यूकी (पुरुष मोरुंग) की साफ-सफाई तथा अग्नि-प्रज्वलन के कार्य कर रहा था, तब न्के गाँव से आए कुछ पुरुष यात्री रात्रि विश्राम के लिए वहाँ आए। सभी लोग वहीं बैठे हुए थे कि उनमें से एक ने पूछा, "हैगुइंग नाम के लड़के का क्या हुआ? आजकल वह कहाँ रहता है?" हैगुइंग ने तुरंत उत्तर दिया, "वह मर चुका है।" उस व्यक्ति ने फिर कहा, "ऐसा ही होना था, क्योंकि जब हमने उसके पिता को मारा था, तब वह एक छोटा-सा बालक ही था।" यह सुनकर हैगुइंग ने उस व्यक्ति को बड़े ध्यान से देखा और उसका चेहरा-हुलिया उसके मस्तिष्क में छप गया। उसे पूरा विश्वास हो गया कि अब वह उस चेहरे को पहचानने में कभी गलती नहीं करेगा।

जब हैगुइंग कुछ और बड़ा हुआ और वह पूरी तरह से योद्धा बन गया तब अपने गाँव वालों से कई बार कहा कि न्के गाँव के साथ नदी में संयुक्त रूप से मछली पकड़ने का आयोजन किया जाए, पर गाँव वाले डरते थे कि कहीं न्के के लोग फिरसे उन्हें तंग न करने लगे। इसलिए इस आयोजन के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। इस पर हैगुइंग को क्रोध आ गया और उसने खंग्यूकी में बैठने के लिए लगे लकड़ी के सभी तख्तों को अपने दाव से काट डाला। उसने गाँव वालों से कहा कि यदि तुम लोग न्के वालों को मछली पकड़ने के लिए नहीं बुलाते हो तो मैं अपने ही गाँव वालों से युद्ध छेड़ दूँगा और उन धोखेबाजों को भी खोज निकालूँगा, जिन लोगों ने मेरे पिता को शत्रु-गाँव वालों को सौंप दिया था। हैगुइंग

की इन बातों को सुनकर गाँव के सभी युवक तथा प्रौढ़-पुरुष जन खंगचूकी से धीरे-धीरे खिसक गए और अपने-अपने घरों में जाकर दुबक गए। ऐसे में, उसका फूफा ही था, जिसने गाँव वालों एवं हैगुइंग के बीच सुलह कराया। उसी ने गाँव वालों को न्के वालों के साथ संयुक्त रूप से मछली मारने के लिए मनाया और एक निश्चित तिथि पर मछली पकड़ने की योजना बना ली गई।

दोनों गाँवों की ओर से यह तय हुआ कि कोई भी भाला या दाव जैसे हथियार नहीं लाएगा और मछली मारने में प्रयुक्त होने वाले पौधे की जलनशील खाल ही लेकर आना होगा। यद्यपि बात तय हो गई थी, पर हैगुइंग को तो अपने पिता के हत्यारे से बदला लेना था। अतः उसने अपने भाले की नोक को हथे से निकालकर उसका धार लगाया तथा उसे अपने झोले में छिपा लिया। दोनों गाँवों की ओर से वृक्ष की खाल लाकर नदी किनारे रखी गई और सभी लोग मिलकर उन्हें पत्थर से कूट-कूटकर नदी के पानी में बहाने लगे। धीरे-धीरे नदी के पानी का रंग भूरा पड़ने लगा और मछलियाँ उसकी जलन से तड़प-तड़पकर किनारे की ओर निकलने लगीं। सभी लोग मछलियाँ पकड़कर अपने-अपने **चेबेंग**⁶ में डालने लगे। इधर हैगुइंग का ध्यान उस व्यक्ति की ओर था, जिसने उसके पिता की हत्या की थी। वह उस व्यक्ति के पास गया और पानी के अंदर अपना पैर ऐसे दबाया, जैसे उसने पैरों के नीचे एक बड़ी मछली को दबाकर रखा हो। उस पुरुष को संबोधित करते हुए कहा, "अपौ!⁷ इधर आइए। यहाँ मैंने पैरों के नीचे एक बड़ी मछली को दबा रखा है।" उसने कहा, "अचापेउ!⁸ तुम अकेले पकड़ क्यों नहीं लेते? नहीं अपौ! यह बड़ी है और यदि मैं झुकता हूँ तो फिसलकर निकल जाएगी।" न्के गाँव का वह अधेड़-सा व्यक्ति उसके पास आया और जैसे ही मछली को टटोलने के लिए झुका, हैगुइंग ने अपने चेबेंग से भाले की नोक निकालकर उसके पीठ में घोंप दिया, जिससे उसकी मौत हो गई। उसने उस व्यक्ति का सिर काटा और उसे लेकर भागते हुए चिल्लाया, "न्के गाँव के पुरुषों का छलकपट अविश्वसनीय है, सभी लोग अपने-अपने गाँव की ओर भागो।" इतना सुनने के साथ-साथ लोगों ने देखा कि नदी का पानी भूरे से रक्त-रंजित होता जा रहा है। इसलिए मछली पकड़ना छोड़कर सभी लोग अपने-अपने गाँव की तरफ भाग आए। इस प्रकार, हैगुइंग ने अपने पिता के हत्यारे को मारकर अपना बदला पूरा किया। दरअसल, यह एक सच्ची कथा है, क्योंकि न्यम आज भी एक जेलियांग गाँव के रूप में विद्यमान है। आज भी हैगुइंग के द्वारा रचित कई गीत समाज में प्रचलित हैं।

हैगुइंग की इस कथा से पता चलता है कि जेलियांग जनजाति में भी वीरता एवं बहादुरी के किस्से सुने-सुनाए जाते थे। जहाँ किसी को मारकर उसका सर लाना गौरव की बात थी, वहीं किसी के

⁶ बाँस अथवा बेंत से बुना जालीदार टोकरा, जिसका प्रयोग पुरुष वर्ग मछली, केकड़ा आदि पकड़ते समय प्रयोग करते हैं।

⁷ मामा, दादा या नाना के लिए प्रयुक्त जेलियांग शब्द।

⁸ भानजे या पौत्र के लिए प्रयुक्त जेलियांग शब्द।

हाथों मारा जाना कमजोरी एवं बुज़दिली का प्रतीक भी था। इसलिए हैगुइंग के पिता की मौत को गाँव के बच्चे हीनता की दृष्टि से प्रकट करते थे और यह बात हमेशा उसके मन को कचोटती थी। दिमान्सारेग की हत्या से यह पता चलता है कि न केवल न्के गाँव के बल्कि उसी के गाँव के कुछ लोग उससे ईर्ष्या भी करते थे। यह उन दिनों की एक सामान्य बात थी कि अगर कोई अपनी वीरता के कारण विशेष ख्याति को प्राप्त कर लेता, तो उसके प्रति अन्य योद्धाओं में इस प्रकार की हीन भावनाएं उत्पन्न हो जाती थीं। दरअसल, दिमान्सारेग को न्के वालों के हवाले करने के पीछे गाँव की सुरक्षा तो बहाना मात्र था, वास्तव में न्यम के कुछ योद्धा ही उसे अपने रास्ते से हटाना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने इस कुकृत्य को अंजाम दिया था।

जेलियांग जनजाति के गाँवों में जब कोई परदेसी आता था, तब प्रायः वह अपने जजमानों या रिश्तेदारों के यहाँ खाना-पीना तो करता था, लेकिन सोने के लिए उसे खंग्यूकी में ही जाना पड़ता था। लेकिन महिला यात्री प्रायः अपने रिश्तेदारों के यहाँ रात्रि-विश्राम करती थी। इसी कारण घरों का छोटा होना तथा खंग्यूकी में सामूहिक विश्राम के लिए स्थान की उपलब्धता रहती थी। अपने अतिथियों के लिए रिश्तेदार के यहाँ से प्रायः कपड़े-लत्ते, कंबल आदि खंग्यूकी में पहुंचा दिए जाते थे। सामूहिक मछली मारने के संदर्भ में एक विशेष बात यह है कि जेलियांग जनजाति के किन्हीं दो गाँवों की सीमा किसी नदी से विभाजित होती थी, तो उस नदी में मछली मारने के लिए दोनों गाँवों का शामिल होना अपेक्षित माना जाता था। प्राचीन काल में मछली पकड़ने के लिए कोई विशेष साधन नहीं था। सो, ये लोग किसी जलन उत्पन्न करने वाले वृक्ष की खाल को कूट-कूटकर नदी में डालते थे, जिसके जलन से मछलियाँ किनारे पर चली आती थीं, तब उन्हें पकड़ा जाता था। इस प्रकार के आयोजन के लिए अधिक लोगों की आवश्यकता पड़ती थी। इसलिए भी इसमें दोनों गाँवों की भागीदारी होती थी।

नागा लोक कथाओं में मनुष्यों के साथ पशु-पक्षियों के परस्पर संबंध, वार्ता जैसे अनेक किस्से सुने और सुनाए जाते हैं, जो किंवदंतियों के रूप में आज भी समाज में प्रचलित हैं तथा लोक में विश्वास किए जाते हैं। **‘एक आदमी और चूहा’** (फिलिप, 2014, पृष्ठ-5) कहानी में एक मनुष्य और चूहे में मित्रता थी। एक बार दोनों ने एक झील के बीचों-बीच अनाज से लदे एक पौधा देखा। मनुष्य वहाँ नहीं पहुँच सकता था, इसलिए चूहों को वहाँ भेजा गया। चूहों ने अनाज के बीजों को लाकर मनुष्य को दिया। इसके बाद से मनुष्य ने अनाज खाना आरंभ किया। इस किस्से से पता चलता है कि मनुष्य ने चूहे से एक वादा किया था। वादा था कि जब भी वह अनाज पैदा करेगा, उसमें चूहे का भी भाग रहेगा। इसलिए यहाँ के कुछ जनजातियों में अन्नागार में पाए जाने वाले भूरे रंग वाले ‘चेम्पुजा’⁹ नाम के चूहे की

⁹ अर्थात्- धान का चूहा।

एक प्रजाति को मारते नहीं हैं। ऐसा माना जाता है कि इसी प्रजाति के चूहे ने पानी के बीच से अनाज के बीज लाकर मनुष्य को दिया था। इसी किस्से के साथ यह भी एक किस्सा प्रचलित है कि जब चूहे के बच्चे बढ़ने लगे तथा उसका परिवार इतना बड़ा हो गया कि सभी को अनाज दे पाना कठिन हो गया, तब उस व्यक्ति के बच्चों ने उन्हें अनाज देना बंद कर दिया, जिससे चूहे उनसे नाराज हो गए। इसके बाद चूहों ने मनुष्य की सभी वस्तुओं को नष्ट करना आरंभ कर दिया। यह लोक-विश्वास है कि अनाज का अपना भाग न मिलने के कारण ही अनाज, कपड़े एवं मनुष्य की अन्य उपयोग की वस्तुओं को चूहे कुतरते हैं।

नागा लोक कथाएं ही नहीं बल्कि सभी प्रकार की लोक कथाएं ऐतिहासिक होती हैं, जो कालांतर में मिथकीय बन जाती हैं। यहां भी यही चरितार्थ होता है। नागा लोक कथाओं के संबंध में प्रचलित अनेक लोक कथाएं मिथकीय होने के साथ-साथ कुछ हद तक ऐतिहासिक भी हैं, क्योंकि लिखित दस्तावेजों के अभाव में सच्ची घटनाएं समयांतराल के साथ मिथकीय कथाओं में परिवर्तित होकर लोक में प्रचलित होने लगती हैं। अंगामी समाज में प्रचलित 'सोप्फुन्यो' और आओ नागाओं में प्रचलित 'एतिबेन एवं जिना' जैसी कथाएं ऐतिहासिक प्रतीत होती हैं, जो कालांतर में मिथकीय लोक कथा का रूप ले चुकी हैं। अतः हम कह सकते हैं कि यहाँ की लोक कथाएं लोक जीवन से ही निर्मित होती हैं। इसीलिए इन्हीं कथाओं के समरूप कभी-कभी यहाँ के सामाजिक जीवन की घटनाओं में भी प्रत्यक्ष एकरूपता लक्षित होती है।

3.2 : नागा लोक गीतों में व्यक्त जीवन

जिस प्रकार नागा लोक कथाओं में लोक जीवन का व्यापक चित्रण हुआ है, उसी प्रकार, यहाँ के लोक-गीतों में भी जीवन की अनुभूतियों एवं कल्पनाओं के आधार पर विविध मानसिक स्थिति एवं शारीरिक कार्य-व्यापार के विविध रूप अभिव्यक्त हुए हैं। इन जनजातियों में लोक गीतों के विभिन्न स्वरूप एवं प्रकार देखे जा सकते हैं, जिन्हें गीत के आकार, गीतों के भाव, गायकों की अवस्था, गायकों की संख्या, गायकों के लैंगिक आधार, विविध आयोजनों के गीत आदि आधारों पर वर्गीकृत किए जा सकते हैं। इस आधार पर छोटे एवं लम्बे गीत, प्रेम के गीत (संयोग एवं वियोग के भाव), हर्षोल्लास के गीत, बच्चों, युवाओं एवं बूढ़ों के गीत, सामूहिक, युगल एवं एकल गीत, महिलाओं के गीत, पुरुषों के गीत, कृषि-कार्य के गीत, त्योहार-उत्सवों के गीत तथा शादी-ब्याह आदि के गीत आते हैं।

आकार के आधार पर लोक गीतों को छोटे एवं लम्बे -दो प्रकार के गीतों में विभाजित किए जा सकते हैं। यहाँ के लोक गीतों में प्रायः छोटे गीतों में ही विविधताएं अधिक पाई जाती हैं तथा उनके

गायन में भी आवृत्तियाँ पाई जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन लोक गीतों में मुखड़ा या अंतरा का भेद नहीं पाया जाता है। इसलिए गायक जन उसे बार-बार दोहराते हुए गाते हैं और इन्हें प्रायः सामूहिक रूप में गाते हैं। लोक में प्रचलित 'लुइ-थेंग' अर्थात् लम्बे गीत, आकार की दृष्टि से अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं, जिनमें कवि या गायक के जीवन की घटनाओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में वर्णन होता है। इस प्रकार के गीतों में वह अपने सुख-दुःख, सफलता-असफलता, आकांक्षाओं के साथ-साथ मृदु एवं कटु स्मृतियों को संजोते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। ऐसे गीतों में कवि अपनी प्रेम गाथा भी सुनाता है, तो कभी शत्रु-मर्दन में कलम किए गए शत्रुओं के सिरों को लेकर आत्म-प्रशस्ति भी करता है। कुछ गीतों में दैव के मारे प्रेम में असफल एवं पारिवारिक जीवन की निरीहता को व्यक्त करते हुए भी गीत गए जाते हैं। छोटे गीतों के विपरीत लुइथेंग प्रायः एकल में तथा कभी-कभी युगल में ही गाए जाते हैं। इन गीतों को एक ही आवृत्ति में गया जाता है।

गीतों में व्यक्त भावों के आधार पर स्त्रियों एवं पुरुषों के द्वारा अलग-अलग प्रकार के गीत गाए जाने की परंपरा रही है। यहाँ के गीतों में जीवन के प्रेम-प्रसंग व्यापक रूप में व्यक्त होते हैं, जिनमें संयोग एवं विरह दोनों ही भावनाएं प्रकट हुई हैं। शृंगारिक प्रेम के अतिरिक्त इनमें अपने गाँव, अपनी माटी अथवा अपने देश के प्रति प्रेम की भावनाएं भी प्रबलता से प्रस्फुटित हुई हैं। कुछ गीतों में प्रशस्ति के भाव भी पाए जाते हैं, जिनमें स्त्री-सौंदर्य प्रशस्ति तथा विशिष्ट-अनुष्ठानकर्ता जजमान की प्रशस्तियाँ होती हैं। स्त्री सौंदर्य के गीत प्रायः एकल या युगल में गाए जाते हैं, तो किसी जजमान की प्रशस्ति में जन-समूह के द्वारा हर्षोल्लास के गीत गाए जाते हैं। कुछ लम्बे गीतों – लुइ थेंग में आत्म-प्रशस्ति के भाव भी होते हैं। परंतु इस प्रकार के भाव बिरले ही होते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन में विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करता है या युद्ध में शत्रु को मारकर उसका सिर काट लाता है या फिर शिकार में भालू, शेर, जंगली सूअर जैसे हिंसक पशुओं का शिकार कर लेता है, तब वह अपनी गौरव-गाथा को लोगों के सामने प्रस्तुत करने के लिए लम्बे गीतों के माध्यम से आत्म-प्रशस्ति के गीत गाता है।

कुछ नागा जनजातियों में युद्ध से संबंधित गीत भी गाए जाते हैं, जिनमें युद्ध में वीरता दिखाने वालों की प्रशंसा तथा युद्ध से डरकर भागने वाले कायरों की खिल्ली उड़ाते हुए उनकी भीरुता का वर्णन किया जाता है। आओ जनजाति का एक कथित युद्ध गीत निम्नवत है-

Those who do not go to the battle

Do not touch the Dao's decorations

Lest the street feel shy

Oh! Those who do not cut the enemy's head in battle

Bind your hair in the likeness of a woman's kolang. (Imchasenla)

अर्थात- 'योद्धा लोग कायरों को चिढ़ाते हुए कहते हैं कि जो लोग युद्ध-भूमि में नहीं जाते हैं, उन्हें वीरों के 'दाव' को छूने का अधिकार भी नहीं है। उनकी कायरता को देखकर गाँव की गलियों में उनका मजाक उड़ाया जा रहा है। जो लोग युद्ध में शत्रु का सर कलम नहीं करते, वे औरतों की भाँति अपने बालों की चोटी बनाकर बैठे रहें।' एक अन्य गीत के अनुसार एक माँ के सपने में आकर मृत पुत्र बताता है कि उसके मित्र ने ही धोखे से उसका सर काट लिया-

My friend and I were at the enemies' Letenjang

Yet I was not killed by the enemies' Dao

My friend has no head

I plead not

To smear my flesh and face with Arojang at the Yimrong tree. (Imchasenla)

मृत योद्धा ने माँ से यह कहा कि मुझे मारना किसी शत्रु के वश का नहीं था और इसलिए मैंने उनसे कहा कि मेरे सर को 'यिमरोंग' पेड़ पर सजाकर न रखा जाए, क्योंकि मैं तुम्हारे द्वारा वध किया हुआ नहीं हूँ। परंतु इन्हें सीधे-सपाट में युद्ध-गीत कह देना अनुचित जान पड़ता है। युद्ध-गीत कहने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे गीत युद्ध के लिए सेना के द्वारा कूच करते समय वाद्य-यंत्रों सहित सैनिकों को उत्साहित करने के लिए गाए जाने वाले गीत होते हैं। परंतु गीतों के भाव से ऐसा प्रतीत नहीं होता है। इसलिए लोक में प्रचलित इन गीतों को युद्ध-गीत कहना अनुचित ही नहीं, बल्कि लोगों को भ्रमित करना भी है।

कुछ नागा जनजातियों में भक्ति-भावनाओं से परिपूर्ण गीत भी गाए जाते हैं, जिनमें वे अपने आराध्य से जीवन में सुख एवं संपन्नता की कामना करते हुए, जीवन में किसी प्रकार की विघ्न-बाधा न आए। यदि किसी प्रकार का संकट आ भी जाए, तो वे उन्हें दूर कर दें - इस प्रकार की भावनाओं को व्यक्त करते हुए प्रार्थना के गीत गाए जाते हैं। कृषि प्रधान समाज होने के कारण कृषि कार्यों को आरंभ करने के पहले अथवा कार्यों के समय भी बीजों की बोवाई के समय धरती की प्रार्थना की जाती है। इस प्रकार के गीतों को कुछ लोग कृषि-गीत कहते हैं। परंतु वास्तव में इसे भी एक प्रकार से प्रार्थना का गीत ही कहना चाहिए। कोन्याक जनजाति में कृषि-गीत के अंतर्गत बोआई के समय गाया जाने वाला एक गीत निम्नवत है (Bhalerao, Kumar, 2016, page-33)-

अइजू हामे मेइपु शिवांग वा ओह कोइ

(ईश्वर करे कि मेरे खेत में भरपूर फसल लगे, मित्र गण यह देखकर प्रसन्न हों)
 येह शोम मे लक वा ओकड़, मे रोंग एन को
 (एक भी बीज न सड़े, सभी बीज स्वस्थ पौधे बनकर उगें)
 को फेड़ फेरोंग मे नाह चाम
 (आज हम सभी यहाँ तुम्हारी देख-रेख के लिए हैं। अतः शीघ्र उगो और अच्छी फसल दो)

रेंग्मा जनजाति में प्रचलित निराई के समय गाया जाने वाला यह गीत निम्नवत है (Bhalerao, Kumar, 2016, page -21)-

एशे केत्सिन हि से आ त्सेगो नो (यह सच होने वाला है)
 केत्सिन अजुअ आ लोग्वा (हाँ, एक उत्सव मेरे लिए और मेरी माँ के लिए)
 केश्वु लेन्यु हि सेले। (हाँ, आज मेरे खेत में उत्सव है)
 लोग्वा लन्यु अजुअ ह्युदयु थ्यु (हे प्रिय! आज मेरी माँ को तुम्हें निहारने दो)
 एशे अजुअ नो अन्केन्यु कोन थ्यु (और मेरी माँ को तुम्हें पसंद करने दो)
 एशे न्हू अ-लो केन्सु शलो (हे मित्रों ! मेरे खेत के मान को बढ़ाओ और जोर से गाओ)
 लोग्वा लुन्यु हँकेलु न्युले। (ओह मेरे प्रिय! तुम सर्वोत्तम हो)

कोन्याक जनजाति में प्रचलित फसलों की कटाई के समय गाया जाने वाला गीत निम्नवत है (Bhalerao, Kumar, 2016, page-31)-

अन्यीह हौपक अमेइ तन्ये हन्यक (आज की प्रतीक्षा में हमने लंबा समय गुजारा है।)
 अलेक अमेइ लुक पेटे बिन शोंग पोइ (हम सभी आह्लादित होकर ईश्वर को धन्यवाद देते हैं।)
 कुलेम वेइ अशे वेइ हम मे वांगले, पोइ थ्राह अमेइ वेत लाह तौ।
 (आओ मित्रों, फसल काटो ताकि हम खुशखबर लेकर अपने गाँव वापस जाएं।)
 जेम्जु एइथ्रा थ्राह अमेइ हिन् हेइ तौ (आओ मित्रों! इन सुंदर अनाजों को उठाओ।)
 पोन्ला शइ ले वांगले हा। (चलो, मित्रों को देखने दो कि हम मेहनत कर रहे हैं।)

सुमी जनजाति में प्रचलित एक समूह गीत यहाँ प्रस्तुत है, जिसमें प्रेम की स्वच्छंद भावनाओं को पक्षियों पर आरोपित करके प्रकट किया गया है (Bhalerao, Kumar, 2016, page-43)-

ओहोइशे कुछो अघउना थोसु, लोजिलिमी ससु असु अकेलो किछेलु शि अये।
 (ओह! पक्षी भी अपने प्रेयसी के साथ है। सोचता हूँ कि उसके साथ पेड़ की चोटी पर बैटूँ।)
 तिमी कुखु खुनो हिलेनोखु, इपु-इज़ा घोशिखे लुमोये।

(हम प्रेमी माता-पिता का कहना कैसे मान लें! उनकी हर इच्छा पूरी करना असंभव है।)

अकिथी कुमा दोलो कुघुना निकेनो, चेजु प्वखो चेजु पिखी।

(बल्कि हमें जीवन-साथी का चयन स्वयं करना है, जीवन पर्यंत साथ रहना है।)

अघोनी अलोमी किलो वोनि थोनो।

(मैं उसके हर गुण को परखूँगा और सर्वोत्तम से ब्याह करूँगा।)

कृषिकार्य के गीतों में प्रायः प्रकृति के विभिन्न उपादानों, पशु-पक्षियों तथा मौसम-परिवर्तन के अनुसार आवाज़ करने वाले कीट-पतंगों आदि को उद्दीपन के रूप में प्रयोग करते हुए श्रृंगारिक भावनाओं से युक्त गीत गाए जाते हैं। कृषि जैसे श्रमपूर्ण कार्यों में भी इन्हीं गीतों के माध्यम से आनंद की अनुभूति करते हुए कृषक-जन अपने शारीरिक थकान का भी निवारण करते हैं। इनके अतिरिक्त, त्योहार-उत्सवों के गीत भी बड़े हर्षोल्लास के साथ गाए जाते हैं। जब किसी त्योहार अथवा उत्सव में कोई व्यक्ति गाँव की जजमानी करता है, तब उसे राजा की तरह सम्मानित करते हुए उसकी प्रशस्ति में कुछ इस तरह से गीत गाया जाता है -

चेवांग तू पिंग्संग,

मैकई तू रा पिन्मक,

मेनूबो ने चेवांग थ्यू

मैकई पुइने पत केहुम रैलुई ये। (Zeliang, 2017)

(लोग किसी महाराजा का ही सम्मान करते हैं और उसी से डरते हैं, सैकड़ों की भीड़ से नहीं। आज 'फलाना' हमारे राजा बने हुए हैं, इसलिए सभी उनको प्रणाम कर रहे हैं।)

विवाह के गीतों में कहीं वधू पक्ष के पुरुषों की ओर से वर को चुनौतीपूर्ण गीतों के माध्यम से ललकारा जाता है, तो कहीं वर पक्ष की महिलाओं के द्वारा हर्षोल्लास के गीत तथा वधू पक्ष की महिलाओं के द्वारा दर्द-भरे विदाई के गीत गाए जाते हैं।

नृत्य के गीतों में गतिशीलता होती है। जिस प्रकार नृत्य गतिशील होता है, उसी प्रकार उनमें गाए जाने वाले गीतों में भी पशु-पक्षियों अथवा कीट-पतंगों की गतिविधियों के माध्यम से जीवन की गतिशीलता को प्रदर्शित किया जाता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि नागा समाज का संपूर्ण लोक-गीत उनके जीवन की हर पहलू से आच्छादित है। प्रकारांतर से, यह कहा जा सकता है कि अपने जीवन की हर कड़ियों को इस समाज ने अपने गीतों में पिरोया हुआ है।

संदर्भ सूची :

- Baruah, Bhaskar Dutta (2009). (Edit.)-Fables from the Misty Mountains-Folklore of the Nagas, Dept of Art and Culture, Govt. of Nagaland. ISBN:81-85921-66-0. Guwahati: LBS Publications.
- Bose, Swapnaa (2019). A Multi-Skill Course in English. (For Nagaland Board of School Education). Noida: Headword Publishing Company Pvt. Ltd. ISBN:978-93-87744-82-0.
- Haokip, James Vungjangam (2010). Mythology of North-East India. Shillong: Don Bosco Centre for Indigenous Culture. ISBN: 81-85408-00-45.
- Zeliang, Dr. Tasile N. (2011). NDA RACHAM-Sat Khat (volume – 1). Guwahati: Asom Prakaashan Bharati.
- Zeliang, Dr. Tasile N. (2017). Liangmai Lui. Guwahati: Vidya Bharoti Purbottor Kshetra, Asom Prakashon Bhaarti.
- खुब्बे, ज़किएनी (2010). नागा त्योहार. कोहिमा: हिंदी अनुभाग, विद्यालयी शिक्षा निदेशालय, नागालैंड सरकार.
- गुप्ता, रमणिका (2018). (सं) – पूर्वोत्तर: आदिवासी सृजन स्वर. दिल्ली: अनन्य प्रकाशन. ISBN: 978-93-87145-65-8.
- डॉ. अनुशब्द (2017). (सं) - पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. ISBN: 978-93-5229-657-6
- पाठक, एस.के. (2009). (सं) - ज्ञान गंगा भाग- एक (ग्यारहवीं कक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक). कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा.
- पाठक, एस.के. (2010). (सं) - ज्ञान गंगा भाग- दो (बारहवीं कक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक). कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा.
- फिलिप, डॉ.बी.पी. (2014). (सं) - नागा लोक कथाएं. कोहिमा: नागालैंड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कोहिमा.

वेब ओपेक:

- Bhalerao, A.K., Kumar, Bagish (2016). Agricultural Folk Songs of Nagaland. Umiam: Indian Council of Agricultural Research (e-publication).

https://icarzcu3.gov.in/book_publications/6-Nagaland_Song.pdf.

Bower, Ursula Graham (1940-1942). Haiguing – Zeme Folktale.

<https://nagajournal.com/haiguing-zeme-folktale/>

360, India (2020). History Revisited: The Romance of Etiben and Jina- A Folktale of Ao Tribes.

<https://india360.theindianadventure.com/2020/05/15/history-revisited-the-romance-of-etiben-and-jina-a-folk-tale-of-ao-tribes/>

Imchasenla- Reading the Ao Naga Folksongs: Rewriting the Custom of Head Taking.

https://ntm.org.in/download/ttvol/volume10-12/Art_6.pdf

Nbung, Azanbo (2020). A Movie of Naga Folktale- Pepui Tenu (A Story of Step Son).

<http://www.youtube.com/@Azanbofilms>.

अध्याय-चार जेलियांग जनजाति – समाज और संस्कृति

4.1 सामाजिकसंरचना

- 4.1.1 परिवार
- 4.1.2 किखुन/किदुई (कुल/घराना)
- 4.1.3 खंग्चू (हंग्सेऊ)
- 4.1.4 ल्युच्यू (लेउसेऊ)
- 4.1.5 चेहुत (हेगुत)
- 4.1.6 सिन्कू (तिङ्कू) प्रणाली
- 4.1.7 चेवांग /हेग्वांग (राजा) का स्वरूप

4.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ

- 4.2.1 वैयक्तिक व्यवहार
 - 4.2.1.1 नामकरण
 - 4.2.1.2 विवाह
 - 4.2.1.3 मृत्यु
- 4.2.2 अन्य व्यवहार एवं परंपराएं

4.3 नए गाँव की स्थापना

4.4 ग्राम प्रवेश एवं गृह प्रवेश

4.5 राजनैतिक स्वरूप- ग्रामीण प्रशासन व्यवस्था

- 4.5.1 चेवांग/हेग्वांग प्रणाली
- 4.5.2 सिन्कू (तिङ्कू) प्रणाली
- 4.5.3 अपईमै/पेइ प्रणाली

4.6 आर्थिक जीवन

- 4.6.1 कृषि 4.6.2 बागवानी 4.6.3 पशुपालन 4.6.4 व्यापार
- 4.6.5 शिकार करना एवं मछली पकड़ना 4.6.6 आर्थिक विकास बनाम गाँव से नगर की ओर पलायन

4.7 धार्मिक विश्वास- इसाई, हेराका, पौपे चेंग

4.8 भाषा सर्वेक्षण एवं संरक्षण

4.9 समाज और शिक्षा

अध्याय-चार

जेलियांग जनजाति – समाज और संस्कृति

4.1 : सामाजिकसंरचना

जेलियांग पूर्वोत्तर भारत की एक प्रमुख नागा जनजाति है। यह वर्तमान में असम, मणिपुर तथा नागालैंड के संलग्न जिलों में निवास करती है। लगभग हजार वर्ष पूर्व नागा जनजातियाँ किसी अज्ञान जगह से प्रवर्जित होकर मखेल (मणिपुर) आये थे। यहीं से वे फिर अपने-अपने वर्तमान क्षेत्र की ओर फैलते चले गए। जेलियांगरोंग समुदाय का इतिहास है कि ये मखेल से निकलकर रामतिंग कबिन, चेवांग फुंगनिंग और मकुइल्वांग्दी होते हुए अपने वर्तमान क्षेत्र में आये। दरअसल, यहीं से जेलियांगरोंग संस्कृति का बीजवपन हुआ था। यहीं से जेमे, लियांगमै और रोंगमै अपनी-अपनी विशिष्टताओं के साथ अलग-अलग स्थानों की ओर चले गए। परन्तु प्रवर्जन की यह प्रक्रिया अचानक या तेजी से न होकर धीरे-धीरे हुई थी। इस संदर्भ में प्रो. गांग्मुमई कामै लिखते हैं, "It must have taken centuries for the ancestors of the Nagas including the Zeliangrong people to move down from and then moving into their present habitat." (Kamei, 2004, page-29) वर्तमान में ये पेरेन (नागालैंड), एन.सी. हिल्स. (अब दिमा हसौ) असम तथा तमेंगलोंग एवं सेनापति (मणिपुर) जिलों में निवास करते हैं।

‘जेलियांग’ शब्द दो शब्दों का संयुक्त रूप है, जो उसकी उपजातियों- जेमे तथा लियांगमै से बना है। यह संयुक्त नाम इनके लिए इसलिए प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इनके उद्भव, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भाषा-स्वरूप, सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक परंपराओं में समानता पाई जाती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये उप-जनजातियाँ स्वयं को एक पितृ-कुल से उत्पन्न भाई मानते हैं। यही कारण है कि इनमें आज भी अन्य नागा जनजातियों की अपेक्षा परस्पर अपनत्व की भावना अधिक है। इसके अतिरिक्त, इनके पारंपरिक त्योहार, सामाजिक संस्कार एवं जीवन-शैली में भी विशिष्ट साम्यता पाई जाती है।

जनसंख्या की दृष्टि से एक बड़ी जनजाति होते हुए भी इनका दुर्भाग्य यह रहा कि स्वतंत्र भारत में इन्हें असम, मणिपुर और नागालैंड, तीन प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया। नागालैंड के सिवाय अन्य दो प्रान्तों में ‘जेलियांग’ जनजाति के नाम से इन्हें मान्यता नहीं दी गयी। अलग-अलग प्रशासनिक इकाइयों के अंतर्गत रहने के कारण नागालैंड में रहने वाले जेमे एवं लियांगमै लोगों को ‘जेलियांग’, मणिपुर में ‘कचा नागा’ और असम के एन. सी. हिल्स में रहने वाले लोगों को ‘जेमे’ के नाम से मान्यता दे

कर इन्हें छोटे-छोटे समुदाय में विभाजित कर दिया गया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की सेनानी पद्मभूषण रानी गार्डिन्स ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में 'जेलियांगरोंग होमलैंड' के रूप में इनके लिए एक अलग राज्य की मांग की थी, परंतु राजनैतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण केंद्र सरकार की ओर से कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया। कुल मिलाकर, सांस्कृतिक विरासत की दृष्टि से एक होते हुए भी यह जनजाति भारत के तीन प्रान्तों में अलग-अलग नामों से बिखरी हुई है।

जेलियांग नागाओं में चिरकाल से कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाएं विद्यमान रही हैं, जो समय के प्रवाह के साथ-साथ कुछ तो धूमिल-सी हो गयी हैं, पर आज भी कुछ ऐसे तत्व हैं, जो समाज में अपनी जीवंतता के साथ मौजूद हैं। इस जनजाति के सामाजिक स्वरूप का सबसे बड़ा एवं स्वतंत्र इकाई गांव है। भारतीय लोकतान्त्रिक प्रशासन के अंतर्गत आने के पूर्व तक एक प्रकार से यहाँ का प्रत्येक गांव एक कबीला की तरह ही अपने अस्तित्व में था। भूमि-स्वामित्व, ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था, कृषि-क्षेत्र जैसे विषयों में हर गांव की अपनी संप्रभुता रही है। इस संदर्भ में William McCulloch का कथन उद्धरणीय है, "Their world view was confined to the village which was a geographical entity with social, cultural and political parameters." (Kamei, 2004, page-98) आज भी न्यायिक मामले एवं कुछ सरकारी परियोजनाओं के अतिरिक्त इनकी स्थिति यथावत बनी हुई है। अतः जेलियांग जनजाति के विभिन्न सामाजिक संस्थाओं की बात करते समय इन्हें एक गांव के अंतर्गत ही देखा जाना चाहिए। इनमें से प्रमुख आयाम निम्न रहे हैं, जो अब भी कुछेक गाँवों में विद्यमान हैं-

1) परिवार	2) किखुन/किदुई (कुल)
3) खंग्चू (हंग्सेऊ)	4) ल्युच्यू (लेउसेऊ)
5) चेहुत (हेगुत)	6) सिन्कू (तिन्कू) प्रणाली
7) चेवांग (हेग्वांग) का स्वरूप	

4.1.1 : परिवार

जेलियांग जनजाति के सामाजिक-संरचक तत्वों में परिवार सबसे छोटी तथा महत्वपूर्ण इकाई होती है। इस समाज में पितृ-सत्तात्मक तथा एकल परिवार की परंपरा रही है। इस संदर्भ में यह उद्धरणीय है, "Generally, most of the families (in Zeliang society) consisted of husband and wife, their unmarried and minor children." (Riamei, 2018) इस परंपरा के पीछे का बड़ा कारण यह रहा है कि यहाँ के लोग गाँवों में छोटे-छोटे तथा अस्थायी घरों पर ही निर्भर रहे हैं। गृह-

निर्माण लकड़ियों तथा एक विशेष प्रकार के घास, जिसे स्थानीय भाषा में 'खेर' (छप्पर) कहा जाता है, से किया जाता है। यह बहुत टिकाऊ नहीं होता। यही कारण है कि इन घरों को अधिक से अधिक पंद्रह वर्ष तक ही रखा जा सकता है। दस से पंद्रह वर्ष के बाद फिर से घर का निर्माण किया जाता है। एकल परिवार की परम्परा के पीछे का बड़ा कारण यह भी है कि सास एवं बहुओं के बीच किसी प्रकार का अनबन न हो। एक छत के नीचे न रहने पर गृह-प्रबंधन सम्बन्धी किसी प्रकार के टकराव की संभावना नहीं रह जाती है। दूसरे, एकल परिवार में सभी सदस्यों की जिम्मेदारी होती ही है। वह अपनी जिम्मेदारियों से भाग नहीं सकता। इसीलिए यहां एकल परिवार की परम्परा पहले से ही है।

यह समाज पितृ-सत्तात्मक है। परिवार के महत्वपूर्ण विषयों के निर्णय यहां घर के मुखिया अर्थात् पिता के द्वारा ही लिये जाते हैं। बावजूद इसके अर्थात् पुरुषों की अनुमति के बिना भी यहां की स्त्री स्वयं निर्णय ले सकती है। कुल मिलाकर, माँ एवं अन्य सदस्यों की निर्णयात्मक भागीदारी परिवार में महत्वपूर्ण रहती है। कृषि कार्यों में माता-पिता के साथ-साथ बच्चों की भी भागीदारी समान रूप से रहती है। यद्यपि, आज शिक्षा की ओर बढ़ने के कारण बच्चों एवं नौजवानों की भागीदारी कम हो गयी है, फिर भी गाँवों में रहने वाले युवक-युवतियाँ आज भी कृषि संबंधी कार्यों में समान रूप से भाग लेते हैं। झूम कृषि के लिए घने जंगलों को काटने तथा उसे जलाने के बाद बड़े-बड़े लट्टों को हटाने जैसे भारी शारीरिक कार्यों के सिवाय अनाज-बीजों की बोआई से लेकर फसल की कटाई तथा अन्न संग्रह करने तक के सभी कार्यों में स्त्री-पुरुष समान रूप से भाग लेते हैं। जब कृषि कार्य में सबसे अधिक व्यस्तता रहती है, तब परिवार के छोटे-छोटे बच्चों तथा उनकी देख-रेख के लिए किसी एक बुजुर्ग को छोड़ कर सभी लोग खेतों की ओर जाते हैं। त्योहारों एवं शीत के दो महीनों को छोड़ कर समाज के लोग वर्ष भर कृषि कार्य में व्यस्त रहते हैं।

कभी-कभी नए परिवार के लिए कृषि कार्य तथा बच्चों की देख-रेख एक समस्या बन जाती है। नया परिवार अर्थात् जब एक पुत्र के विवाह के उपरान्त दो या तीन बच्चे हो जाते हैं, तब पितृ-परिवार से अलग नए घर का निर्माण कर उसे एक नया परिवार बनाना पड़ता है। ऐसे में, जब हर परिवार कृषि कार्य में व्यस्त रहता है, तब बच्चों की देख-रेख के लिए पिता या माँ को घर में रहना पड़ता है। ऐसे में, पाँच लोगों के पेट के लिए एक ही व्यक्ति काम कर पाता है। नए परिवार के लिए यह सबसे विकट समस्या बन जाती है। ऐसी स्थिति में, ग्राम समाज एक वैकल्पिक व्यवस्था भी करता है। जिन परिवारों में छोटे-छोटे बच्चे होते हैं और माता-पिता को कृषि कार्य में लगाना होता है- ऐसे परिवारों के बच्चों की देख-रेख का दायित्व गांव की किसी बुजुर्ग महिला को दे दिया जाता है, जिससे उस परिवार के कृषि

कार्य में बाधा न पड़े। इस दृष्टि से, जहाँ परिवार समाज की सबसे छोटी इकाई होती है, वहीं पूरा गांव कभी-कभी एक परिवार की तरह दिखने लगता है।

4.1.2 : किखुन/किदुई (कुल/घराना)

परिवार से कुछ विस्तृत, परन्तु एक गांवके अंतर्गत कई किखुन/किदुई हुआ करते हैं, जिन्हें कुल या खानदान भी कहा जा सकता है। प्रत्येक किखुन एक पितृ-वंशावली से उत्पन्न माना जाता है। इनमें परस्पर अंतर्विवाह वर्जित है। इस सन्दर्भ में यह उद्धरणिय है, "Any clan could be traced back to a single family, which had multiplied into numerous families but stayed connected to each other." (Riamei, 2018) ध्यातव्य है कि जेलियांग जनजाति में दो मुख्य कुल हैं, जिन्हें न्यूमै एवं पामै के नाम से जाना जाता है और इनके अंतर्गत मेरियामै (रियामे), न्खांगमै (न्कामे), दाइमै, पान्मे जैसे उपकुल आ जाते हैं। सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से इन दोनों कुलों में किसी प्रकार का कोई अंतर नहीं किया जाता है, जैसा कि 'सोशल स्ट्रक्चर ऑफ़ ज़ेलियांगरोंग सोसाइटी' में लिखा है, "Though the Zeliangrong society is based on clanhood and kinship, it has no class or artificial distinction among the members of the society." (Riamei, 2018)

परन्तु व्यावहारिक रूप में यह देखा जाता है कि किसी गांव में जिस कुल की जनसंख्या अधिक होती है, उसका दबदबा अधिक रहता है। न्यूमै एवं पामै एक ग्राम सीमा से बंधा हुआ न होकर सम्पूर्ण जेलियांग जनजाति में व्याप्त है, परन्तु ग्राम विशेष में इन्हीं के कई किखुन हो जाया करते हैं। इससे स्पष्ट है कि समाज में लोग अपने पितृ-वंश की पीढ़ियों को जहाँ तक स्मरण रख पाते हैं, उस सीमा के अंतर्गत आने वाले लोगों को अपने किखुन के अंतर्गत मान लेते हैं। संपूर्ण ग्राम-भूमि में प्रत्येक किखुन का निश्चित भू-भाग होता है, जिनपर केवल कृषि-कार्यों की दृष्टि से उन्हीं का अधिकार होता था। मगर कालांतर के साथ अब लोगों ने प्राकृतिक संसाधनों पर भी आधिपत्य ज़मा लिया है। कतिपय गांवों में एक किखुन किसी एक कॉलोनी में ही रहकर उप-ग्राम का रूप बना लेते हैं, परन्तु अधिकांश में यह वृत्ति नहीं पाई जाती। ये किसी भी सामाजिक, धार्मिक या सांस्कृतिक अनुष्ठान या उत्सवों पर अन्य किखुन सदस्यों की अपेक्षा अपने कुल-परिवारों के साथ अधिक निकटता से जुड़े देखे जाते हैं। इस प्रकार, एकल परिवार की परंपरा में भी एक किखुन को वृहद्-परिवार के रूप में देखा जाता है।

4.1.3 : खंग्चू (हंग्सेऊ)

खंग्चू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेऊ)- जेलियांग समाज की ऐसी दो सामाजिक संस्थाएं रही हैं, जो समाज के युवक-युवतियों में जीवन के मूल्य संचारित करते आए हैं। यद्यपि आज धर्म-परिवर्तन एवं

तथाकथित आधुनिकता ने इन संस्थाओं को मृतप्राय-सा बना दिया है, फिर भी जहां पारंपरिक पैतृक धर्म के पालन करने वाले लोग अर्थात् पारंपरिक जनजातीय आस्था के अनुयायी हैं, वहाँ ये संस्थाएं आज भी जीवंत हैं। ये संस्थाएं युवक एवं युवतियों के शिक्षण-प्रशिक्षण के केन्द्र माने जाते हैं। खंग्चू अर्थात् युवकों के लिए वह स्थान, जहां गांव के सभी अविवाहित युवक अपनी रात बिताते हैं, उसी प्रकार ल्युच्यू युवतियों के लिए सोने का स्थान हुआ करता है। आज सामान्य भाषा में इसे 'मोरुंग' के नाम से जाना जाता है।

प्रत्येक गांव में प्रायः दो या अधिक खंग्चू हुआ करते हैं। 'खंग्चूकी' अर्थात् युवकों का घर, जिसमें दिनभर के अपने घर एवं कृषि कार्यों से निपटने के बाद रात्रि भोजन के पश्चात् सोने तथा सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए एकत्र होते हैं। इसलिए यह घर मात्र सोने के लिए नहीं होता, बल्कि इसकी अपनी कई परम्पराएं और विशेषताएं होती हैं। 'जेलियांगरोंग: सोशल स्ट्रक्चर' के अनुसार- "Khangchiu is one common and very important socio-cultural and political institution of the Zeliangrong. It provide as a communal sleeping hall for the boys and other members of the dormitory." (Kamei. 2015) इस तथ्य से यह स्पष्ट है कि केवल अविवाहित युवक ही नहीं बल्कि विवाहित पुरुष भी खंग्चू सदस्य होते हैं तथा वे भी अपने मोरुंग में सोते हैं। सामान्य रूप से जब युवकजन रात्रि भोजन के पश्चात् हंग्सेऊ में आते हैं, तब वहां जजमान (खंग्चू घर मालिक) या कोई दो-तीन बुजुर्ग अपने 'जौ' (मादक पेय) के प्याले लिए बैठे रहते हैं। सभी युवकजन उनसे सामाजिक रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं से सम्बंधित ज्ञान प्राप्त करते हैं, पुरानी तथा लोक-काथाएं सुनते हैं। वे लोकगीत सुन-सुनकर याद करते हैं। गीत ही क्यों, सभी प्रकार के मनुष्योचित व्यावहारिक ज्ञान मौखिक आधार पर ही सुनकर प्राप्त करते हैं। ये ज्ञान, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराएं इसी हंग्सेऊ के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती हैं, क्योंकि जेलियांग समाज में आज से चालीस-पचास वर्ष पूर्व तक लिखने एवं पढ़ने तथा अपने ज्ञान को किताबों में संरक्षित करने की परम्परा नहीं रही है। मौखिक ज्ञान परम्परा का परिणाम है कि समाज के युवकों की स्मरण-क्षमता बड़ी तीक्ष्ण होती है। प्रो. गांग्मुमई कामै लिखते हैं, "The past story of Zeliangrong people is narrated in their rich folklore, myths and legends, songs and ballads, religious hymns and oral traditions handed down from generation to generation." (Kamei, 2004, page-19) हंग्सेऊ या युवक-मोरुंग अपेक्षाकृत एक बड़ा घर होता है, जिसमें प्रायः दो प्रवेशद्वार होते हैं। मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही एक तरफ दस-बीस लोगों के सोने के लिए एक लम्बे तख्ते का बिस्तर होता है तथा उसके बगल में अग्नि का स्थान रहता है, जिसके चारों ओर बैठने के लिए तख्ते लगे होते हैं। रात को

इसी अग्नि के चारों ओर बैठकर युवक-जन बुजुर्गों से ज्ञान प्राप्त करते हैं। युवकों के लिए यह स्थान प्रवेशद्वार की ओर से घर के पहले कमरे में होता है। इसके भीतर घुसने पर दूसरा कमरा जजमान का रसोई होता है तथा इसके और भीतर तीसरा कमरा जजमान व उसके परिवार का शयन कक्ष होता है।

इन बातों के अतिरिक्त खंग्चू के प्रबंधन एवं परिचालन सम्बन्धी कुछ अन्य और भी बातें हैं, जो बड़े ही दिलचस्प हैं। जब युवक-जन कृषि कार्य में व्यस्त नहीं रहते हैं या ऐसे युवक, जिनके घर कृषि कार्य के लिए अन्य लोग पर्याप्त होते हैं, वे शाम के समय लगभग हर रोज़ जंगल से लकड़ियाँ लाते हैं। ऐसा इसलिए कि उन्हें बुजुर्गों के साथ बैठकर रात अँधेरे में न गुजारना पड़े। हंग्सेऊ अर्थात् पुरुष मोरुंग में विशेष रूप से अग्नि स्थान के चारों ओर लगे तख्तों पर प्रायः महिलाओं का बैठना वर्जित होता है। इसके पीछे की मान्यता है कि यदि उन पर महिलायें बैठती हैं, तब मोरुंग के सभी युवकों के लिए शिकार तथा युद्ध की दृष्टि से अशुभ होता है। इसके साथ ही मोरुंग परिचालन की यह भी परम्परा रही है कि जब भी कोई सदस्य किसी जानवर का शिकार करता है, तब उस जानवर के सर, हृदय और गुर्दे मोरुंग में लाये जाते हैं तथा उसे पका कर सभी सदस्यों को दावत दी जाती है। यदि जानवर छोटा हुआ तो भी उसे पका कर सब को चखाया जाता है। इसके पीछे यह धारणा है कि इसे खाने वाले व्यक्ति के लिए भविष्य में शिकार की दृष्टि से शुभ होता है। इसके साथ ही खंग्चू में बने जानवर के सिर का पकवान, महिलाओं के लिए खाना पूर्णतः वर्जित होता है।

हंग्सेऊ से जुड़ी गतिविधियों में शिकार-पूजा (तथ्युलेंग/ हेतेउले), पारंपरिक खेलों में भागीदारी तथा किसी विशेष आयोजन पर मिथुन को पकड़ने की प्रतियोगिता आदि गतिविधियाँ भी आती हैं। तथ्युलेंग, खंग्चू में एक प्रकार का आयोजन होता है, जो प्रायः वर्ष के प्रारंभ में किया जाता है। इसका आयोजन वर्ष भर सदस्यों के लिए शिकार की दृष्टि से अच्छा हो और अधिक से अधिक जानवरों के सिर मोरुंग में आएँ- इस हेतु किया जाता है। इस दिन पिछले वर्ष के जानवरों की सभी खोपड़ियों को मोरुंग में एक पंक्ति में छत से या दीवार के सहारे लटका दिया जाता है तथा नये खोपड़ियों को रखने के लिए अग्नि-स्थान के ऊपर लगे खूँटी को खाली कर दिया जाता है। त्योहारों में आयोजित पारंपरिक खेल यद्यपि सामूहिक न होकर वैयक्तिक होते हैं, परन्तु अपने मोरुंग के यश के लिए सभी सदस्य अपने मोरुंग के खिलाड़ियों को प्रोत्साहित करते हैं। जब कोई सदस्य खेल में जीतता है और उसे किसी जानवर का सिर या कुछ भी प्राप्त होता है, तब उसे वह घर नहीं ले जाता, बल्कि अपने हंग्सेऊ में ही ला कर रखता है, जिसे सभी सदस्य उसका दावत उड़ाते हैं। मिथुन-पकड़ प्रतियोगिता एक प्रकार से सामूहिक क्रीड़ा है। इसका आयोजन किसी दीर्घ-जीवी व्यक्ति द्वारा अपने जीवन की उपलब्धियों को जताने की खुशी में या फिर किसी मृतक की संतानों के द्वारा अपने पितरों की स्मृति में किया जाता है।

यह अनुष्ठान बहुत बड़ा होता है तथा इस मौके पर मिथुन को काटा जाता है। इस आयोजन के लिए बहुत बड़े मिथुन को चुना जाता है। वास्तव में, यह इतना बड़ा जानवर होता है कि एक अकेला व्यक्ति उसे पकड़ कर गिरा नहीं सकता। ऐसे में, सभी सदस्यगण मिलकर उसे पकड़ते हैं। दरअसल, ऐसे आयोजन बहुत ही बिरले होते हैं। इसमें एक बड़े-से मिथुन को जंगल में खुला छोड़ दिया जाता है। फिर गांव में जितने भी हंग्सेऊ होते हैं, उनके सभी सदस्य उसे दौड़ा कर पकड़ते हैं। जिस हंग्सेऊ का सदस्य मिथुन की पूँछ या गर्दन को पहले पकड़ लेता है, उसके सभी सदस्य उसका साथ देकर मिथुन को गिराते हैं। यदि एक मोरुंग का सदस्य उसे पकड़ कर रखता है, तब दूसरे मोरुंग के सदस्य मिथुन को हाथ नहीं लगाते। कभी-कभी दो मोरुंग मिल कर भी उसे पकड़ते हैं। इसी चक्कर में कभी-कभी दो मोरुंग के सदस्यों में झगड़े भी हो जाते हैं। मिथुन पकड़ कर गिराने वाले हंग्सेऊ को मिथुन के मांस का बड़ा भाग परम्परानुसार जजमान की ओर से दिया जाता है, जिसका सभी सदस्य गण दावत उड़ाते हैं।

4.1.4 : ल्युच्यू (लेउसेऊ)

जेलियांग नागा गांवों में जितने पुरुष मोरुंग होते हैं, लगभग उतने ही संख्या में युवती-मोरुंग अर्थात् ल्युच्यू की भी होते हैं। 'खंग्च्यूकी' के विपरीत प्रायः 'ल्युच्यूकी' में युवतियों के सोने का स्थान घर का सबसे भीतरी कमरा होता है। इसके पीछे का तर्क युवतियों की सुरक्षा को दिया जाता है। लेउसेऊकी या हंग्सेऊकी विशेष प्रकार के घर होते हैं। गांव के किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के परिवार को ही इनकी देख-रेख हेतु जजमान बनाया जाता है। यह घर अन्य सामान्य घरों से बड़ा होता है। इसलिए इसके बनाने में अधिक लोगों की जरूरत पड़ती है। यह जजमान का ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सदस्य-समाज का घर होता है, क्योंकि यह सभी सदस्य-युवतियों के शयन का स्थान होता है। कतिपय गांवों की परंपरा के अनुसार 'ल्युच्यू' किसी वृद्ध-विधवा के घर में भी होता था। लोगों का यह मानना था कि इससे एक तो युवतियाँ उनसे ज्ञान प्राप्त करतीं और इसके साथ ही वे उस वृद्धा की घर के कार्यों में सहायता कर दिया करती थीं।

जिस प्रकार हंग्सेऊ परिचालन की परम्पराएं हैं, उसी प्रकार लेउसेऊ परिचालन की भी कुछ विशेष परम्पराएं होती हैं। दिनभर के कृषि कार्य से निपटकर युवतियाँ रात्रि-भोजन के पश्चात अपने-अपने लेउसेऊ में सोने के लिए जाती हैं। परन्तु वे यों ही जा कर सो नहीं जाती हैं बल्कि वे एक साथ बैठकर गपशप-चर्चाएं करती हैं। इन्हीं बैठकों में वे मोरुंग माँ अर्थात् मालकिन से स्त्रीयोजित जीवन-व्यवहार का ज्ञान भी प्राप्त करती हैं। मालकिन ही एक प्रकार से उन्हें शिक्षा देती है। इसके अतिरिक्त, कुछ युवतियाँ अपने घरों से सूत कातने के लिए रुई ले कर आती हैं और दिनभर के कृषि कार्यों के बाद

देर रात तक सूत कातने में व्यस्त रहती हैं। ल्युच्यू के सम्बन्ध में यह कथन उद्धरणीय है, "Unlike the khangchiu, the category of membership of this dormitory (liuchiu) is only the unmarried girls." (Kamei, 2015) भले ही विवाहित महिलाएं ल्युच्यू की सदस्या न हों, फिर भी जिस प्रकार 'हंग्सेऊकी' में बुजुर्ग पुरुषों के आने तथा उन्हें गीत सुनाने व कहानियां सुनाने की परम्परा है, उसी प्रकार 'ल्युच्यूकी' में भी बुजुर्ग महिलाएं आती हैं। जब कोई न आये, तब मालकिन ही कहानियाँ सुनाती है।

'लेउसेऊकी' में युवकों के टहलने आने की परम्परा बड़ी ही दिलचस्प है। इस सन्दर्भ में William McCulloch का यह कथन उद्धरणीय है, "Young women have their places of resort and between them and young men intercourse is unlimited without leading to immorality, which is the exception." (McCulloch, 1859) जब अपने हंग्सेऊकी में आग बुझने लगती है, तब युवक-जन लेउसेऊकी के लिए टहलने निकल पड़ते हैं। जब भी कोई युवक लेउसेऊकी में आता है, तब युवतियाँ बड़े अदब तथा सम्मान के साथ बैठने को स्थान देती हैं। वे आपस में हास-परिहास और बातचीत करते हैं। कुछ युवतियाँ बड़ी खुली होती हैं, पर अधिकांश युवतियाँ उन युवकों के सामने घूँघट डाले, सर झुकाए सूत कातती रहती हैं। ऐसी स्थिति में, प्रायः युवकों के लिए यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि अमुक युवती कौन है। ऐसी परिस्थिति में, युवकजन युवतियों से गीतों में ही वार्ता करते हैं। एक दिलचस्प बात यह भी है कि यदि किसी युवती को अमुक युवक से गीत सुनाने के लिए निवेदन करना होता था, तब उस युवक की ओर एक लाठी बढ़ाकर उसे पकड़ा दिया जाता था। यह एक परम्परा रही है कि युवतियाँ अपनी पहचान छुपाये रखने के लिए युवकों के सामने मुँह खोलती नहीं थी। मगर बड़ी चतुराई के साथ उसे डंडा पकड़ा देती थीं। इसके बाद, उस युवक के सामने गीत सुनाने के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय न होता था। एक और रोमांचक बात यह है कि गाँव में लोग घर के पीछे गन्ने खूब लगाते थे। जाड़े के दिनों में जब कृषि कार्य की व्यस्तता का बोझ न होता था, तब युवकजन लोगों के घर से लगे बाग में चुपके से घुस कर ढेर सारे गन्ने उखाड़ लाते थे और लेउसेऊकी में आ धमकते थे। वहाँ देर रात तक युवक-युवतियाँ गन्ने का आनंद लेते हुए अपना समय व्यतीत करते थे। घूँघट में मुँह को छुपाकर चुपचाप रहने वाली युवतियाँ भी इस कार्य में बड़े उत्साह तथा निपुणता के साथ भाग लेती थीं। दरअसल, यह प्रेमालाप उन्हें भावी जीवन-साथी चुनने व विलासमय जीवन की ओर बढ़ने का आरम्भिक कदम था।

युवतियाँ हास-परिहास एवं आनंद उठाती हुई कभी-भी अपने दायित्व से मुँह न मोड़ती थीं। वे सुबह जल्दी उठ कर मालकिन के घर के लिए पानी उठा लाती थीं। वे फिर दुबारा जा कर अपने-अपने

घरों के लिए भी पानी लाती थीं। इस प्रकार, लेउसेऊकी, जो युवतियों के लिए एक शिक्षण-संस्था है, वहीं दिनभर के कार्यों की थकान को दूर करने तथा अपने हम-उम्र के लोगों के साथ आनंद उठाने का भी एक माध्यम था।

4.1.5 : चेहुत (हेगुत)

जेलियांग समाज में हेगुत या चेहुत कृषि कार्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण आयाम है। हेगुत का अर्थ है- युवक एवं युवतियों का वह समूह, जो बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में जा कर काम करते हैं। वे कृषि कार्य-व्यवस्था में एक-दूसरे का साथ देते हुए जीवन-व्यापार को आगे बढ़ाते हैं। एक हेगुत प्रायः एक हंग्सेऊ एवं एक लेउसेऊ के सदस्य मिलकर बनाते हैं। परन्तु कभी-कभी अपनी संगति की सुविधानुसार अपने हंग्सेऊ अथवा लेउसेऊ से बाहर के लोगों के साथ भी मिलकर अपना समूह बना लिया जाता है, जिसमें एक बुजुर्ग या वरिष्ठ व्यक्ति का होना अनिवार्य माना जाता है। वरिष्ठ व्यक्ति के द्वारा हेगुत के तौर-तरीकों तथा कार्य का निर्देशन होता है। ये किसी कार्य में गाये जाने वाले गीतों के प्रशिक्षण तथा अगुवाई के कार्य भी करते हैं। एक प्रकार से वह व्यक्ति उस समूह का अभिभावक होता है। वह यह भी तय करता है कि अमुक दिन किसके खेत में कार्य करने हेतु जाना होगा। यह एक ऐसी प्रणाली है, जिससे कृषि कार्य में अपेक्षाकृत कम क्षमता रखने वाले व्यक्ति के खेत में भी समान श्रम-क्षमता के साथ कार्य हो जाता है। अतः सामाजिक सहयोग की दृष्टि से इसे अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इसके माध्यम से परस्पर सहयोग के कार्य- जंगल की कटाई, उसे जलाकर साफ़ करने, बीज लगाने और निराई करने से लेकर फसल की कटाई तक निरंतर चलते रहते हैं। कभी-कभी यह चेहुत बिना किसी सदस्य परिवर्तन के वर्षों तक बना रहता है।

हेगुत का कार्य केवल कृषि कार्य में परस्पर सहयोग तक ही सीमित नहीं है। समूह में रहने वाले सभी सदस्यों के खेत में कृषि कार्य हेतु जाने का एक चक्र पूरा करते ही वे दैनिक मजदूरी के आधार पर अन्य लोगों के खेतों में जाते हैं। श्रम के बदले किसी से रुपये लिए जाते हैं और किसी से पशु अथवा धान लिया जाता है। इन कार्यों से एकत्र धन का उपयोग फुर्सत के दिनों में सम्पूर्ण गांव को दावत देने के काम में किया जाता है। परन्तु इसमें केवल खाना-पीना न होकर एक प्रकार से इसे उत्सव के रूप में मनाया जाता है। वास्तव में, यह एक युवा-उत्सव है, जिसे स्थानीय बोली में 'अथौ-सक' या 'कडे' कहा जाता है। गांव के सभी युवक-युवतियाँ अपने पारंपरिक रंग-बिरंगे परिधान में सज-धजकर गीत-संगीत एवं नृत्य का आनंद उठाते हैं। गांव में जितने भी चेहुत होते हैं, वे मिलकर तय करते हैं कि किन तिथियों को यह आयोजन किया जाए। प्रत्येक चेहुत का अपना-अपना जजमान होता है, जिसे 'प-केजीकी' कहा

जाता है। दरअसल, यह समूह के सबसे वरिष्ठ व्यक्ति का घर होता है। कभी-कभी यदि उस वरिष्ठ व्यक्ति की पारिवारिक स्थिति अच्छी न हो तो चेहुत के किसी ऐसे युवती के घर को जजमानी के लिए चुना जाता है, जिसके घर की आर्थिक स्थिति ठीक-ठाक हो और कार्यों में सहयोग हेतु उसकी और बहनें भी हों। जब कभी एक चेहुत इस प्रकार के आयोजन अथवा अनुष्ठान के लिए अपर्याप्त होता है, तब दो या अधिक चेहुत मिलकर एक साथ इस अनुष्ठान को सम्पादित करते हैं। यदि अलग-अलग चेहुत अपने-अपने स्तर पर यह आयोजन करता है, तो ग्रामवासियों को भोज देने के अतिरिक्त ये लोग व्यक्तिगत तौर पर भी भोज्य वस्तुओं का आदान-प्रदान करते हैं। यह दावत ऐसे समय पर दिया जाता है, जब नए खेत में अनाज अथवा फल-सब्जियों के आने में देर हो, जिसके कारण कुछ निर्धन परिवारों में खाने-पीने के लाले पड़े होते हैं। इसप्रकार के आयोजन से एक-दो दिन के लिए ही सही, खाद्यान्न की तंगी से जूझ रहे लोगों को भरपूर खाना मिल जाता है। इस प्रकार, हेगुत समाज के भूखे लोगों को भोजन प्रदान करके समाज-कार्य में भी अपनी भूमिका का निर्वहन करता है।

4.1.6 : सिन्कू (तिङ्कू) प्रणाली

जेलियांग नागा गांवों में पुरोहित के रूप में कार्य करने वाले को 'सिन्कू' या 'तिङ्कू' कहा जाता है। वह गांव का सबसे आदरणीय व्यक्ति माना जाता है। प्रत्येक गांव में एक मुख्य सिन्कू होता है और एक या दो उसके सहायक होते हैं, जो पहले की अनुपस्थिति में घरों में अथवा गांव के लिए पूजा-अनुष्ठान के कार्य सम्पादित करता है। अंग्रेजों के आने अथवा भारतीय प्रशासन के पूर्व तक अधिकांश गांवों में ग्राम पंचायत की प्रणाली नहीं थी। इसलिए कुल मिलाकर, सिन्कू ही मुखिया की तरह कार्य करते थे। वे ही सम्पूर्ण गांव के लिए घोषणाएँ करते थे और सूचनाएं भी उन्हीं के माध्यम से लोगों तक पहुँचती थी। कृषि-संबंधी कार्य को आरम्भ करना हो, किसी त्योहार की तिथि तय करनी हो या फिर त्योहारों का आरम्भ आदि, सभी कार्य इनकी घोषणा के बिना न होता था। इसलिए मुख्य सिन्कू हो या उसका सहायक- अपना जीवन अत्यंत संयमित ढंग से जीते थे। सिन्कू प्रणाली के बारे में डॉ. आर. ब्राउन लिखते हैं, "Each (Zeliangrong) village has a priest who directs the sacrifices and also acts as the physician, performing sacrifices and incantation for the recovery of the sick." (Brown, 1874) इससे साफ है कि सिन्कू का काम केवल पूजा-अर्चना तक ही सीमित नहीं था, बल्कि वह गांव में बीमार व्यक्ति का इलाज भी करता था।

मुख्य सिन्कू की मृत्यु के बाद उसके किसी एक सहायक को मुख्य सिन्कू बनाया जाता था। यह प्रणाली पिता से पुत्र को विरासत के रूप में नहीं, बल्कि ग्राम समाज ही यह तय करता था कि अगला

मुख्य सिन्कू कौन बनेगा। इस प्रकार, जेलियांग समाज में सिन्कू प्रणाली को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। आज भी आदिधर्मी गांवों में इसका अनुपालन किया जाता है।

4.1.7 : चेवांग /हेग्वांग (राजा) परम्परा

जेलियांग गांवों में 'चेवांग' की भी परम्परा रही है। परन्तु यह सिन्कू प्रणाली से पूर्व की है। किसी-किसी गांव में तिन्कू प्रणाली एवं चेवांग या हेग्वांग की परम्परा समानांतर रूप से चलती रही है। गांव में राजा होते थे, परन्तु उनका ग्रामीण जीवन-व्यापार में ज्यादा हस्तक्षेप नहीं होता था। प्रो. गांगमुमई कामै लिखते हैं, "An elder who led the people in the migration and settlement at the new site was made the Chief." (Kamei, 2004) इससे स्पष्ट है कि एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर प्रवर्जन के समय अथवा किसी ग्राम-भूमि की खोज के समय कोई एक व्यक्ति जन-समूह का नेतृत्व करता था। प्रायः गांव की स्थापना का नेतृत्व करने वाला स्वतः ही उस गांव का राजा कहलाता था। यह स्वाभाविक है कि किसी नए गांव की स्थापना के लिए जमीन की खोज का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति साहसी, पराक्रमी एवं नेतृत्व-कुशल होता होगा। इसीलिए उनके साथी उन्हें अपने राजा के रूप में स्वीकार कर लेते थे। एक प्रकार से वही गांव की संपूर्ण भू-भाग का मालिक होता था। उल्लेखनीय है कि उसकी मृत्यु के बाद उसकी संतानों को यह अधिकार स्वतः ही प्राप्त हो जाता था। जब कोई व्यक्ति बाहर से आकर उस गांव में रहने लगता था, तब ग्राम संस्थापक अर्थात् चेवांग की अनुमति से वह ग्राम-भूमि के किसी हिस्से का अधिग्रहण अपने लिए करता, जो कालांतर में उसके किखुन का हो जाता था। यद्यपि चेवांग सम्पूर्ण जमीन पर अपना आधिपत्य नहीं जमाता था, फिर भी सम्मान के तौर पर ग्रामीणजन उसे भेंट के रूप में प्रतिवर्ष अनाज देते थे। किसी-किसी गांव में जब किसी को शिकार के रूप में जंगली जानवर मिलता, तो राजा को भेंट के रूप में उस जानवर की 'टांग' दी जाती थी। यह परम्परा आज भी कहीं-कहीं विद्यमान है। जब कोई शिकारी किसी बहुत बड़े जानवर को मार लेता या किसी हिंसक पशु- भालू, शेर आदि का शिकार करता था, तब वह उस पशु को सम्पूर्ण गांव को समर्पित करता था। ऐसे में, उस जानवर के शरीर को पूरे गांव के लोग मिलकर उठाते तथा राजा के घर ले जाकर रखते थे। उसके मांस को सभी लोगों में बाँटा जाता था। ऐसी स्थिति में भी जानवर का सिर, हृदय एवं गुर्दे को शिकारी के खंगचू की में दे दिया जाता था।

इस प्रकार, चेवांग की परम्परा जेलियांग समाज में रही है और भले ही वह एक निरंकुश शासक की तरह पेश न आता हो, फिर भी नाम के लिए ही सही, राजा अवश्य हुआ करता था। परन्तु यदि ग्रामीणजन के बीच किसी प्रकार की लड़ाई, भूमि सम्बन्धी झगड़े या अन्य कारणों से किसी समस्या का

हल नहीं निकलता, तब राजा ही इसका निर्णय करता था, अर्थात- न्याय प्रणाली प्रायः राजा के ही अधीन रहता था।

4.2 : सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराएं

जेलियांग जनजाति के लोगों में सामाजिक ढाँचे के साथ-साथ कुछ ऐसी सांस्कृतिक परंपराएं विद्यमान रही हैं, जिनका विवरण दिए बिना इनके समाज-विषयक अध्ययन अपूर्ण रहेगा। इनमें कुछ तो वैयक्तिक संस्कार के अंतर्गत आते हैं, तो कुछ को सामाजिक रीति-रिवाजों के अंतर्गत देखा जा सकता है। संस्कारों के अंतर्गत नामकरण, विवाह तथा मृत्यु को महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य माना जाता है। इनके अतिरिक्त *खंग्चू-ल्युच्यू सदस्य निर्धारण, विवाह में वर-वधू चयन संबंधी परंपराएं, चेमन-चपौलुत, पैतृक-संपत्ति का उत्तराधिकार, चेमौ-चमेंग, चेहुत-चेकू कूबो, रम्बौ मेज्वक्बो, अजन ल्यूबो तथा रिमन पत्बो (Newmai, 2021)* इत्यादि अनेक रीति-रिवाज वैयक्तिक तथा पारिवारिक जीवन में निभाए जाते हैं।

4.2.1 : वैयक्तिक व्यवहार

जेलियांग समाज में वैयक्तिक व्यवहार के अंतर्गत नामकरण, विवाह तथा मृत्यु महत्वपूर्ण माने जाते हैं, जो अनिवार्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में संपादित किए जाते हैं। यद्यपि *का-अलौबो (अन्न प्राशन), चेकुन-बुंगबो (कर्ण-भेदन) एवं चेपी-गुत्बो (मुंडन)* इत्यादि व्यवहार भी बच्चों के लिए क्रियान्वित किए जाते हैं। फिरभी समय परिवर्तन तथा बहुसंख्यक समाज के द्वारा अपने पुराने धर्म को छोड़ ईसाईयत को अपनाने के बाद से ये व्यवहार धूमिल होकर अब लुप्तप्राय-से हो गए हैं।

4.2.1.1 : नामकरण

जेलियांग परिवार में किसी शिशु का जन्म लेना ईश्वर की बड़ी कृपा मानी जाती है। परंतु एक प्रकार से किसी के जन्म के लिए निश्चित तिथि तय नहीं होती है। इसीलिए जन्म लेते ही उसका उत्सव मनाया जाना या उस खुशी में बड़ा आयोजन किया जाना परंपरा में नहीं है। जन्म के बाद किया जाने वाला नामकरण जीवन का महत्वपूर्ण व्यवहार माना जाता है। वैसे तो पुत्र या पुत्री के जन्म पर कोई विशेष अंतर नहीं किया जाता है। फिर भी जिस माँ के कोख से पहली संतान के रूप में बेटी का जन्म होता है, उस माँ को सौभाग्यशाली माना जाता है। इसके पीछे समाज की मान्यता है कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियाँ स्वभावतः गृह-संचालन संबंधी कार्यों में शीघ्र ही निपुण हो जाती हैं, जिससे माता-पिता को गृहकार्यों से जल्दी राहत मिल जाती है और वे सुकून के साथ स्वयं को कृषि-कार्यों में केन्द्रित कर

लेते हैं। यही कारण है कि जब भी पहली संतान के रूप में बेटी का जन्म होता है, तब समाज एवं परिवार दोनों में बड़े हर्षोल्लास के साथ उसका स्वागत किया जाता है। दूसरी ओर, जब पुत्र-रत्न के रूप में संतान की प्राप्ति होती है, तो यह माना जाता है कि घर में एक योद्धा का जन्म हुआ है, जो परिवार के वंश को आगे बढ़ाते हुए समाज के लिए उन सभी कार्यों को करेगा, जिन्हें वृद्ध, कमजोर एवं लाचार लोगों के लिए कर पाना मुनासिब नहीं होता है।

जेलियांग समाज में किसी बच्चे के जन्म के पाँच दिन बाद उसका नामकरण किए जाने की परंपरा रही है। ऐसा माना जाता है कि पाँच दिन पूरे होने के पहले किसी शिशु में सभी मानवीय गुण या अंग अपनी पूर्णता में नहीं होते हैं, जिसमें बाहरी लक्षणों में से नाभि से लगे माँ के अंग के गिरने को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। पाँच दिन बाद लगभग सभी लक्षण साफ तौर पर प्रकट हो जाते हैं, इसीलिए नामकरण व्यवहार को जन्म के पाँच दिनों बाद ही संपन्न किया जाता है। यहाँ ध्यातव्य है कि पुराने दिनों में नवजात शिशुओं की मृत्यु दर अधिक थी। यह मान्यता थी कि नामकरण जैसे व्यवहार किए जाने के बाद यदि किसी शिशु की मृत्यु हो जाए, तो उस परिवार के लिए अशुभ होता है। यहाँ की परंपरा के अनुसार, यदि किसी शिशु के नामकरण के पहले ही मृत्यु हो जाती है, तब उसके साथ मृत्यु-व्यवहार में किया जाना वाला किसी भी प्रकार का कर्मकांड नहीं किया जाता। उसे सामान्य रूप से घर के भीतर ही किसी कोने में मिट्टी दे दी जाती है। यहाँ मान्यता है कि किसी संतान का प्राप्त होना ईश्वर की कृपा पर निर्भर होता है। यदि उसकी इच्छा हुई, तो वे उसे पुनः वापस ले भी सकते हैं। इसीलिए नियति को परखने या उसकी इच्छा को समझने की दृष्टि से भी जन्म के तुरंत बाद किसी का नामकरण नहीं किया जाता।

जब नवजात बच्चे का जीवन पाँच दिन पूरा हो जाता है, तब उसके संबंधी, रिश्तेदार तथा गांव के बुजुर्ग एकत्र होते हैं और उसके लिए एक अच्छा-सा व सुंदर नाम सुझाया जाता है। कई सुझावों में से सबसे अच्छा नाम शिशु के लिए चुन लिया जाता और तभी से वह एक पूर्ण मानव के रूप में स्वीकृत हो जाता है। समाज की मान्यता है कि जिस व्यक्ति का नाम जिस प्रकार का होता है, उसका चरित्र एवं व्यक्तित्व भी उसी के अनुरूप ढल जाता है। इसीलिए लोग अपनी संतान में अपेक्षित गुणों के आधार पर ही उसका नामकरण करते हैं। किसी-किसी परिवार में नवजात शिशु का नामकरण अपने दादा-परदादा के नाम पर भी किया जाता है, ताकि उन नामों को दीर्घकालिक बनाया जा सके। ऐसा करके अपने पूर्वजों की स्मृति को लम्बे समय तक जीवित रखते हैं। कभी-कभी यदि किसी व्यक्ति ने अपने जीवन में कोई विशेष कार्य करके ख्याति प्राप्त की हो, तो उसकी संतान अथवा परसंतानों का नामकरण उसके कृत्य के आधार पर भी किया जाता है। नामकरण के दिन ही शिशु को पहली बार

प्रकाश भी दिखाया जाता है, जिसे स्थानीय बोली में 'कजेंग पुन्यत्बो' या 'केबा पोपत्बे' कहा जाता है। पाँचवें दिन ही उसे घर से बाहर निकालकर सूरज की रोशनी दिखाई जाती है और सर्वसाधारण के द्वारा देखने के लिए उसे प्रस्तुत किया जाता है। जिस प्रकार यह मान्यता है कि पाँच दिन पूर्ण होने के पूर्व तक शिशु में मानवोचित सभी गुण विकसित नहीं होते हैं, उसी प्रकार यह भी माना जाता है कि उसकी आत्मा भी पूर्णतया सशक्त तथा लोगों के मनोविकारों का सामना करने में सक्षम नहीं होती है। इसीलिए सर्वसाधारण के समक्ष उसे प्रस्तुत करने के लिए आरंभ के पाँच दिनों तक वर्जित किया जाता है, ताकि किसी की बुरी नज़र या उसके प्रति लोगों के मन में उत्पन्न लोभ-मोह तथा अन्य विकारक भावनाओं से वह प्रभावित न हो। कुल मिलाकर, उसे इस तरह के कुप्रभावों से बचाया जाता है।

4.2.1.2 : विवाह

जेलियांग जनजातीय समाज के वैयक्तिक व्यवहारों में विवाह को एक महत्वपूर्ण व्यवहार माना जाता है। पुराने दिनों में विवाह के लिए निम्नतम आयु-सीमा निश्चित नहीं थी। फिरभी जब युवक तथा युवतियाँ शारीरिक रूप से अपने यौवन को पूर्णतया प्राप्त कर लेते हैं और पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभाने में सक्षम हो जाते हैं, तब परिवार की सहमति से उनका विवाह करा दिया जाता है। इस समाज में बाल-विवाह जैसी कोई प्रथा नहीं रही है। यहां प्रायः सम आयु-वर्ग के युवक एवं युवती में विवाह किया जाता है। कभी-कभी वर की आयु कुछ अधिक हो, तो भी अपेक्षाकृत कम आयु वाली लड़की से उसका विवाह कराया जा सकता है। इसके पीछे यह मान्यता है कि लड़कियाँ शारीरिक एवं मानसिक रूप से पुरुषों की अपेक्षा जल्दी परिपक्व हो जाती हैं तथा गृह-संबंधी, सामाजिक तथा कृषि-कार्यों में पुरुषों की अपेक्षा कम उम्र में ही हाथ बँटाने लगती हैं। वे अपने से अधिक आयु के पुरुष वर्ग के साथ एक ही चेहुत के अंतर्गत कृषि एवं अन्य कार्य करने लगती हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनके साथ ही विवाह-बंधन में भी बंध जाने के आसार बन जाते हैं।

पितृ-सत्तात्मक समाज होने के कारण विवाह के बाद पति का घर ही विवाहिता के लिए जीवन भर का घर हो जाता है अर्थात् उसकी उपस्थिति से ही घर को परिवार की संज्ञा प्राप्त होती है। सामान्यतः समाज में एक विवाह की परंपरा रही है। परंतु किसी-किसी पुरुष के जीवन में बहु-पत्नियाँ भी मिल जाती हैं। यद्यपि एकल विवाह को ही उत्तम माना जाता है। फिरभी कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि विवाहित पुरुष को किसी अन्य लड़की या औरत से पुनः विवाह करना पड़ता है और वह एक से अधिक पत्नियों के साथ अपना जीवन व्यतीत करता है। ऐसी परिस्थिति या तो किसी विवाहित पुरुष एवं लड़की के बीच गलत संबंध स्थापित हो जाने के कारण बनती है या फिर किसी

परिवार में संतानाभाव, परिवार की आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति इत्यादि के कारण विवाहित पुरुष को पहली पत्नी के होते हुए भी पुनर्विवाह करना पड़ता है। वैसे, समाज में बहु-पत्नी प्रथा को सुखद एवं सार्थक जीवन का पर्याय नहीं माना जाता। इसीलिए एकल विवाह को ही सामाजिक मान्यता प्राप्त है। आदर्श परिवार के रूप में स्थापित होने के लिए सभी से एकल विवाह की ही अपेक्षा की जाती है।

जेलियांग समाज में विवाह की परंपरा के अनुसार जब कोई युवक विवाह योग्य हो जाता है, तब उसका परिवार अपने सगे-संबंधियों से सलाह-मशवरा करके किसी लड़की के परिवार से उसका हाथ माँगता है। यह प्रायः एक बार की बात से तय नहीं हो जाता है, बल्कि लड़के वालों को लड़की के घर कई बार जाना पड़ता है, तभी बात बनती है। सबसे पहले लड़के की बुआ या मामी जैसी औरतों के माध्यम से लड़की के यहाँ चुपके-से संदेश भेजा जाता है, ताकि उसके परिवार में भी सलाह-मशवरा की जा सके। इसके बाद लड़की के परिवार वाले आपस में इसकी चर्चा करते हैं। विवाह के लिए लड़की की इच्छा को भी जाना जाता है। रिश्तों की बात करते हुए पहली मुलाकात में लड़की के घर वाले कभी-भी हामी नहीं भरते, पर जब उनकी ओर से कोई नकारात्मक सन्देश नहीं आता है, तब यह मान लिया जाता है कि बात सकारात्मक है। यदि किसी लड़की या उसके परिवार को रिश्ता स्वीकार नहीं है, तो लड़के वालों को मना कर दिया जाता है। मगर यह इतना गुप्त ढंग से होता है कि समाज में किसी को इस बात की भनक तक नहीं लगती है। इसे गुप्त रखने के पीछे लड़के तथा उसके परिवार की इज्जत को बनाए रखना तथा बदनामी से बचाना होता है। ऐसा माना जाता है कि यदि लड़के को किसी लड़की या उसके परिवार ने मना कर दिया, तो सभी लोग यह मानने लगते हैं कि उसमें कुछ तो कमी होगी ही। ऐसे में, उसका विवाह करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। जब लड़की के परिवार की ओर से मना नहीं किया जाता, तब दूसरी बार लोगों को बात करने के लिए भेजा जाता है। इस बार एक व्यक्ति के बजाय दो या तीन लोगों को भेजा जाता है और दोनों पक्ष मिलकर विवाह के प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं। जब लड़की वालों की ओर से पूरी तरह हरी झंडी मिल जाती है, तभी इस बात को सार्वजनिक किया जाता है। मगर इसके बाद भी बातचीत का एक और दौर चलता है, जिसमें वर एवं वधू पक्ष के साथ गांव के बुजुर्ग, सिंकू, अपड़मै इत्यादि लोग आकर लड़की का *चेमन/हेमी*¹ तय करते हैं। इस चेमन में नकद के साथ-साथ पशुधन तथा आभूषण इत्यादि दिए जाते हैं। चेमन के अतिरिक्त दोनों पक्षों के सामने सिंकू तथा अपड़मै गांव की रीति-रिवाज के अनुसार विवाह संपन्न कराने, पारिवारिक जीवन को निभाने और यदि कभी किसी कारण वश तलाक की नौबत आ जाए, तो संपत्ति

¹ विवाह के समय अथवा उसके ठीक पूर्व वर पक्ष की ओर से वधू पक्ष को दिया जाने वाला धन

के बटवारे इत्यादि की बातें रखते हैं। सबकी सहमति के साथ ही दोनों पक्षों के सुविधानुसार विवाह समारोह की तिथि तय की जाती है।

जेलियांग समाज में **चेमन** की परंपरा को एक प्रकार से वर पक्ष के द्वारा होने वाली बहू तथा उसके परिवार के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए पूरा की जाती है। इससे यह बात निकलकर आती है कि परिवार के निर्माण तथा उसके संचालन में स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा पुरुषों से कहीं अधिक रही है। कभी-कभी चेमन लिए जाने को समाज में बेटी को बेचने जैसे घिनौने आरोप भी लगाए जाते हैं। परंतु यह सच नहीं है। वास्तव में यह इस भाव को व्यक्त करता है कि आपने हमारे परिवार तथा वंश की अभिवृद्धि के लिए अपनी पुत्री के रूप में हमें एक माँ दी है। इसलिए हम आपके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि वह हमारी बहू बनकर हमारे परिवार में समृद्धि लाएगी। इधर लड़की के घर में भी चेमन के रूप में आया हुआ धन उसके माता-पिता स्वयं नहीं रख लेते, बल्कि जो नकद आता है, उसमें से कुछ भाग लड़की के चाचा, मामा, फूफा जैसे सगे-संबंधियों में वितरित कर दिया जाता है। इसके पीछे यह मंतव्य रहता है कि हम सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं। यदि कभी किसी कारणवश बेटी पर किसी प्रकार की आँच आती है, तो उसके सम्मान की रक्षा के लिए सभी लोग तत्पर रहेंगे। एक प्रकार से यह पारिवारिक एकता को दर्शाने का भी माध्यम है ताकि उसके पति के घर वाले उसे या उसके परिवार को किसी भी तरह से कमजोर न आँकें।

विवाह की निश्चित तिथि आने पर दोनों के घरों में बड़े धूम-धाम से तैयारियाँ की जाती हैं। अपने-अपने सगे-संबंधी यदि दूर के गाँवों में रहते हैं, तो उन्हें पहले ही बुलवा लिया जाता है। गांव के सभी लोगों को न्योता दी जाती है। "If a marriage is between two different villages then the groom's family will find a home in the bride's village in advance and vice versa. This newly found home will become their guardian away from home." (Dr. Newme, 2019) यदि एक ही गांव में दोनों परिवार हों तो वर अपने घर से सीधे सगे-संबंधियों के साथ वधू के घर पहुँच जाता है। वधू तथा वर दोनों के घरों में अनेक रीति-रिवाज निभाए जाते हैं। "At nuptial night, all the elders of the groom's family shall assemble at the house of bridegroom and then leave for the bride's place carrying a *Hetiakuak* (पीतल की थाली) and *Hemi/Cheman*. (Dr. Newme, 2019) वास्तव में, विवाह के महत्वपूर्ण धार्मिक रस्में वधू के घर पर ही निभाए जाते हैं, जिनमें *समहत*, *हेतिअ-कुअक* एवं *पैस्वा पेइबे* आदि आते हैं। "The *Hetiakuak* is placed upon the *Nreu/Nriukuang* (सूप) and upon it the right face of the plantain leaf and ginger alongwith bride price shall be placed. It is prohibited to stepped or walk over the

Nreu in which the bride price is placed. (Dr. Newme, 2019) लड़की के घर सभी रस्मों को पूरा करने के बाद सभी लोग वर-वधू को लेकर लड़के के घर के लिए प्रस्थान करते हैं। धार्मिक रीति-रिवाजों के साथ जहाँ वधू के घर विदाई के गीत बड़े ही मार्मिक स्वर में गाए जाते हैं, वहीं वर के घर परिवार की नई सदस्या के स्वागत में खुशियों से भरे उल्लास के गीत गाए जाते हैं।

4.2.1.3 : मृत्यु

जेलियांग समाज में मृत्यु को जीवन के एक भयावह एवं दर्दनाक अंत के रूप में माना जाता है। इसलिए जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है, तब परिवार के लोग ही नहीं बल्कि संपूर्ण ग्राम-समाज उसके अंतिम संस्कार में अपनी संवेदना व्यक्त करने हेतु उपस्थित रहते हैं। यहाँ के लोगों में शव को भूमि के अंदर दफनाकर उसका क्रिया-कर्म किया जाता है। प्राचीन काल से ही किसी भी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसे उसी के आँगन में दफनाए जाने की परंपरा रही है। यद्यपि यह प्रथा आज भी विद्यमान है, फिर भी, बहुत-से गाँवों ने शवों को गाड़ने के लिए एक निश्चित स्थान पर कब्रिस्तान बना लिया है, ताकि जिन लोगों के घर-परिसर में खाली भूमि की कमी है, उन्हें भी अपने मृत-जनों के अंतिम व्यवहार में किसी प्रकार की कोई कठिनाई न हो।

जेलियांग समाज में प्राचीनकाल से ही मृत्यु को एक निश्चित एवं असामान्य घटना के रूप में विश्वास तो किया ही जाता था, साथ ही यह भी मान्यता है कि भू-लोक में मृत्यु को प्राप्त होकर प्रत्येक व्यक्ति मृत्यु-लोक में अपने अगले जीवन के लिए प्रस्थान करता है। इसलिए इनकी परंपरा के अनुसार मृत व्यक्ति के शव के साथ खाने-पीने की वस्तुएं, इस विश्वास के साथ रखी जाती थीं कि जब तक वह मृत्यु लोक न पहुँचे, तब तक उसे भूख से तड़पना न पड़े। आज भी शव के साथ उसके वस्त्र तथा उसकी अन्य प्रिय वस्तुएं भी कब्र के अंदर रख दी जाती हैं। ऐसा माना जाता है कि यदि उसकी कोई प्रिय वस्तु छूट जाती है, तो मृतात्मा उस वस्तु की अपेक्षा में मृत्यु-लोक के लिए आगे बढ़ नहीं पाती। वह पृथ्वी-लोक के लोगों को किसी न किसी प्रकार से संकेत देती रहती है, जिसे यहाँ के लोग भूत या प्रेतात्मा मानते हैं। मृत्यु व्यवहार के अंतर्गत उसके साथ धान, मक्का, बाजरा, तिल तथा कोदो जैसे अनाजों के बीज भी इस मान्यता के साथ रखा जाता है कि वह मृत्यु-लोक में जाकर कृषि-कार्य भी करेगा और ऐसे में, उसे इन बीजों की भी आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार, जेलियांग समाज में जहाँ मृत्यु को इस लोक में मानवजीवन का अंत माना जाता है, वहीं इस बात पर भी दृढ़ विश्वास किया जाता है कि मृतक की आत्मा किसी अज्ञात लोक में जाकर फिर से अपने अगले जीवन का आरंभ करती है, जिसे लोक में 'चेरुइदी' या 'हेरुइदेइ' अर्थात् मृत लोगों का लोक के नाम से अभिहित किया है।

जेलियांग समाज में मृत्यु को उसके घटित होने वाली प्रवृत्ति एवं परिस्थिति के अनुसार अलग-अलग दृष्टिकोण से देखा जाता है। यदि किसी नवजात शिशु के जन्म के पाँच दिन पूर्ण होने के पहले ही मृत्यु हो जाती है, तो उसे घर के भीतर ही छोटा-सा कब्र खोदकर दफ़न कर दिया जाता है। इनकी मान्यता के अनुसार, ऐसा शिशु सभी मनुष्योचित गुणों एवं मनोविकारों से पूर्ण नहीं होता है। चूँकि उसने इस लोक में अपना जीवन जीया ही नहीं है तथा जीवन के अन्य व्यवहार संपन्न ही नहीं हुए हैं, अतः ऐसी परिस्थिति में, मृत्यु-व्यवहार से संबंधित वे क्रिया-कर्म नहीं किए जाते हैं, जो एक सामान्य व्यक्ति की मृत्यु पर संपन्न किए जाते हैं। दुर्भाग्यवश यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु दुर्घटना, पेड़ या पहाड़ से गिरने अथवा किसी हिंसक पशु के द्वारा हो जाती है, तब उसे '*तेसित कसाबो*' अर्थात् अस्वाभाविक मृत्यु नाम दिया जाता है। पुराने जमाने में माना जाता था कि इस प्रकार की मृत्यु को प्राप्त होना मृत व्यक्ति एवं परिजनों के लिए अत्यंत अशुभ संकेत होता है। यही कारण है कि ऐसी मृत्यु को प्राप्त शवों को दफनाते समय भी मृत्यु व्यवहार के वे सभी क्रिया-कर्म नहीं किए जाते, जो एक व्यक्ति के सामान्य मृत्यु पर किए जाते हैं। समाज में प्रायः किसी प्रसव-पीड़ित औरत की मृत्यु को अत्यंत भयानक माना जाता है। प्राचीनकाल में जब किसी स्त्री की प्रसव के दौरान मृत्यु हो जाती थी, तो उसे अत्यंत अशुभ माना जाता था। यह भी माना जाता था कि यदि कोई अन्य औरत उसके मृत शरीर को छू ले, तो उसके साथ भी ऐसा ही होता है। इसीलिए ऐसी मृत्यु-प्राप्त शव का अंतिम व्यवहार भी सामान्य तरीके से नहीं किया जाता था। किसी विशेष अस्वाभाविक मृत्यु के इतर बाक़ी सामान्य रूप से मरने वालों के अंतिम व्यवहार में प्रायः सभी लोग शरीक़ होते हैं। यदि मृतक कोई वृद्ध व्यक्ति हो तो उसके अंतिम व्यवहार में गांव के ही नहीं, बल्कि दूसरे गाँवों से भी लोग आते हैं तथा सभी लोग शोक-संतप्त होकर बड़े ही भाव-विह्वल एवं सम्मान के साथ उसका अंतिम व्यवहार करते हैं। अगर पुराने दिनों की बात की जाय, तो यदि मृतक पुरुष हुआ, तो उसके कब्र में अन्य वस्तुओं के साथ-साथ भाला, दाव तथा कभी-कभी बंदूक इत्यादि भी रखे जाते थे। मृतक के स्त्री होने पर सूत कातने, वस्त्र बुनने के सामान तथा वस्तुओं को ढोते समय प्रयुक्त होने वाले बाँस एवं बेंत के बने *कल्वांग*, *न्खा* इत्यादि को अन्य वस्तुओं से भरकर कब्र में रख दिया जाता था। इस प्रकार, यहाँ के लोग मरणोपरांत भी अपने परिजनों के शव को बड़े ही आत्मीयता के साथ विदाई देते हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि मृत्यु-लोक में जाकर अपने परिवार के सभी लोगों से पुनः मिलना होता है और वहाँ भी एक ही परिवार के रूप में जीवन व्यतीत किया जाता है। अंततः यह कहना अनुचित न होगा कि इस लोक की मृत्यु को दूसरे लोक के लिए प्रस्थान का पर्याय माना गया है। इस घटना से सभी मनुष्यों को होकर गुजरना है। इसीलिए हर कोई चाहता है कि अपने परिजन को विदाई इस प्रकार दी जाए कि मृत्यु-लोक में पहुँचने पर उसके पास किसी चीज़ की कमी न रहे। जेलियांग लोक में ऐसा भी विश्वास है कि जब कोई मृतक, मृत्यु-लोक में पहुँचता है, तब उसके पूर्व

में मृत्यु को प्राप्त उसके परिजन उसका बड़े हर्षोल्लास के साथ ठीक उसी प्रकार स्वागत करते हैं, जिस प्रकार इस लोक में हम अपने घर किसी नए शिशु के जन्म लेने पर खुशियाँ मनाते हैं।

4.2.2 : अन्य व्यवहार एवं परंपराएं

जेलियांग समाज में मानव जीवन के अनिवार्य वैयक्तिक व्यवहारों के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे व्यवहार या परंपराएं भी हैं, जिन्हें सामाजिक जीवन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इनमें मुख्यतः किसी बालक या बालिका का *खंग्च्यू-ल्युच्यू* सदस्य निर्धारण, विवाह हेतु वर या वधू के चयन की परंपरा, *चेमन-चपौलुत* संबंधी जिम्मेदारियाँ, पैतृक घर एवं उसकी संपत्ति का अधिकारी, *चेमौ-चेमोंग* के अंतर्गत ग्राम से निष्कासन, कृषि-कार्यों के अंतर्गत *चेहुत एवं चेकू-कुबो*, शिकार में प्राप्त मांस-मछलियों या उत्सवों में काटे गए पशु-मांस का परिजनों में वितरण के अंतर्गत *अलान-थक-थ्युबो*, *मदोम्बो*, *गन्जन ल्युबो*, विवाहित बहन-बेटियों को विशिष्ट त्योहारों पर मायके से खाद्य वस्तुओं एवं मांस-मछलियों का भेंट *चेमी-मै-दम या चेमी मताई*, नवजात शिशु की माँ को दिया जाने वाला *मना-थिन्बो*, किसी खेल-कूद या शिकार में विशेष उपलब्धि पाने वाले योद्धा के द्वारा गांव को दिया जाने वाला *रिमन* इत्यादि आते हैं।

जेलियांग समाज में किसी बालक या बालिका के *खंग्च्यू/ल्युच्यू सदस्य निर्धारण* भी महत्वपूर्ण सामाजिक परंपराओं के अंतर्गत आता है। प्रत्येक खंग्च्यू-ल्युच्यू में यह होड़ लगी रहती है कि उसके अधिक से अधिक सदस्य हों। इसलिए जब किसी घर में नवजात शिशु का जन्म होता है, तो सभी लोगों का यह प्रयास रहता है कि सबसे पहले उस बच्चे के घर पहुँचें और उसे अपना सदस्य बनाएँ। इसके लिए खंग्च्यू/ल्युच्यू का कोई सदस्य उसके नाम पर मुर्गी या कुछ अन्य वस्तु ले जाकर उसके परिवार को देता है और इस तरह उसे अपने खंग्च्यू/ल्युच्यू का सदस्य बना लेता है। "When a child is born in a village, member of the Khangchiu/Liuchiu brings a cock/hen or even dried fish to the parents and would announce the baby as their Akhangnah (member of the male dormitory) or Athenah (member of the girl dormitory)." (Pamei, 2017) पुराने दिनों में, जब किसी खंग्च्यू/ल्युच्यू के पास कुछ न हो और उन्हें जल्दी में नवजात शिशु के घर जाना हो, तो जलाने की एक लकड़ी, जिसे '*देइजी प्यक*' कहा जाता है, ले जाकर दे दिया जाता था और उसे अपने सदस्यों में शामिल मान लिया जाता था। इस प्रक्रिया में मुर्गी या लकड़ी ले जाने के प्रति किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जाता, बल्कि जिस मोरुंग का सदस्य पहले पहुँचता था, बच्चे की सदस्यता उसी मोरुंग को मिल जाती थी। यदि किसी दूसरे मोरुंग को यह पता चल जाता था कि पहले ही अमुक मोरुंग के द्वारा

उस बच्चे की सदस्यता के लिए भेंट दे दी गई है, तो वह प्रायः उस घर में नहीं जाता था। यह परंपरा खंग्चू एवं ल्युच्यू दोनों के लिए समान रूपसे लागू होती थी। प्रायः सदस्य निर्धारण में परिवार या किखुन की कोई विशेष भूमिका नहीं होती थी। इसीलिए एक ही परिवार की युवक-युवतियाँ अलग-अलग खंग्चू/ल्युच्यू के सदस्य हुआ करती थीं। किसी-किसी गांव में अपने-अपने किखुन के अनुसार खंग्चू/ल्युच्यू होते थे। गांव में जितने किखुन होते थे, उतने ही खंग्चू/ल्युच्यू भी होते थे। ऐसे गांवों में किसी बच्चे के जन्म लेने पर उसकी सदस्यता अपने-आप ही अपने किखुन के मोरुंग को मिल जाती थी।

समाज में प्रचलित 'चपौलुत' का तात्पर्य किसी लड़की की शादी पर लड़की के परिवार के द्वारा उसके मामा के परिवार को दी जाने वाली धनराशि से है। इस भेंट के माध्यम से वधू के परिवार वाले यह अपेक्षा रखते हैं कि भविष्य में यदि उसकी बेटी पर पति के घर वालों की ओर से किसी प्रकार की ज्यादाती होती है या अन्याय होता है, तो मामा का परिवार भी उसका साथ देंगे। वे बेटी के प्रति किए जाने वाले अन्याय का प्रतिरोध करेंगे। जेलियांग समाज में पैतृक संपत्ति अर्थात् पिता के घर या बाग-बगीचे पर घर के सबसे छोटे पुत्र का अधिकार होता है। परंतु यदि छोटा लड़का किसी बड़े भाई के पहले घर बसाकर अलग परिवार बसा लेता है, तो पिता के घर पर उस लड़के का अधिकार स्वतः ही खत्म हो जाता है। बाद में शादी करने वाले का ही पिता के द्वारा बनाये गये घर पर अधिकार होता है। *चेमौ-चेमेंग* का अर्थ अपराध से है और इसके अंतर्गत विशेष रूप से जब गांव में किसी व्यक्ति के हाथों जाने-अनजाने में किसी की हत्या हो जाती है, तब उस व्यक्ति को गांव छोड़कर चला जाना होता है। इसके लिए प्रत्येक गांव के कुछ निश्चित नियम होते हैं, जिसके अंतर्गत गांव के बाहर रहने की अवधि निश्चित होती है। हत्या के अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति किसी स्त्री के साथ जबरन दुष्कर्म करता है, तब भी उसे ग्राम-निष्कासन की सज़ा मिलती है। जेलियांग समाज में मुख्यतः हत्या एवं बलात्कार को ही *चेमौ-चेमेंग* कहा जाता है। यद्यपि गांव में अन्य छोटे-मोटे झगड़े भी होते हैं, तथापि उन्हें गांव के भीतर ही सुलझा लिए जाते हैं। समाज में कृषि-कार्यों के अंतर्गत चेहुत/हेगुत की परंपरा तो है ही, यदि कोई व्यक्ति अपने कार्यों को संपन्न करने में खुद को अक्षम पाता है, तो वह गांव के सभी लोगों को बुलाकर अपने खेती के काम को पूरा करता है, जिसे *चेकू-कुबो* कहा जाता है। किसी व्यक्ति के ऊपर ऐसी परिस्थिति तब आती है, जब उसने औसत से अधिक बड़ी खेती की हो। त्योहार-उत्सव के निकट आ जाने पर उसके पहले ही अनाज का संग्रह कर लेना आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी किसी को जब ऐसा लगता है कि वह ही गांव में सबसे अधिक अनाज प्राप्त करने वाला है, तब वह 'चेकू' के माध्यम से अपना अन्न-संग्रह करता है। कृषि कार्य के अंतर्गत *चेकू-कुबो* मुख्यतः चेलू-गे (धान की कटाई), कसई-

ब्यू (धान को भूसे से अलग करना) या तेस्यू-सी (धान की ढुलाई) के दौरान आयोजित किए जाते हैं। कसई-ब्यू के दिन यदि कोई गांव के लोगों को बुलाकर काम करवाता है, तो वह एक सूअर ले जाकर खेत में ही पकाता है और सभी आमंत्रित लोगों को भोजन कराता है। जेलियांग सामाजिक परंपरानुसार, शिकार में प्राप्त मांस-मछली तथा उत्सवों में काटे गए पशु-मांस का भी अपने सगे-संबंधियों में वितरण किया जाता है, ताकि जिन परिवारों में इनका अभाव है, वे भी त्योहारों में स्वादिष्ट भोज्य-व्यंजनों का आनंद ले सकें। इस प्रकार के वितरण में जब किसी परिवार को एक बार के भोज के लिए पर्याप्त मांस दिया जाता है, तो उसे *अलान-थक-थ्युबो*, जब थोड़ी कम मात्रा में या मांस का एक-एक टुकड़ा परिवारों को दिया जाता है, तो उसे *मदोम्बो* और जब मांस-मछली के पकवान ही लोगों में बाँटे जाते हैं, तब उसे *गन्जन त्युबो* कहा जाता है। जब किसी विवाहिता को अपने मायके तथा मायके के अन्य सगे-संबंधियों से त्योहारों में विशेष रूप से मांस या पशु आदि दिए जाते हैं, तब उसे *चेमी-मै-दम या चेमी-मताई* कहा जाता है। यह परंपरा विवाहिता को सदा के लिए अपने मायके तथा अन्य रिश्तेदारों से बाँधे रखती है। जेलियांग परंपरानुसार, जब कोई माँ बच्चे को जन्म देती है, तो उसे मुर्गी दी जाती है। एक संतान को जन्म देना माँ के लिए संघर्षमय होता है। इसलिए जब भी वह किसी बच्चे को जनती है, तब गांव के सभी लोग उसके अच्छे स्वास्थ्य की कामना करते हुए मुर्गी एवं चावल भेंट के रूप में प्रदान करते हैं, जिसे *मना-थिन्बो* कहा जाता है। मुर्गी के साथ चावल देने की परंपरा के पीछे यह मान्यता है कि कभी-कभी स्त्री के प्रसव की तैयारी में होने पर, उसके परिवार में धान कूटने वाला कोई नहीं होता है और घर में संचित चावल कम पड़ने लगता है। इसलिए प्रसव-कष्ट से निपटने के तुरंत बाद उसे धान कूटना न पड़े, इस मंशा के साथ लोग उस परिवार को सब्जी के रूप में मुर्गी और चावल दोनों देते हैं।

4.3 : नए गांव की स्थापना

जेलियांग जनजाति के सामाजिक जीवन में नए गांव की स्थापना तथा उसमें क्रियान्वित किए जाने वाले कर्मकांड अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। यह परंपरा उन दिनों से चली आ रही है, जब ये बंजारों की तरह भ्रमणशील जीवन व्यतीत कर रहे थे। ऐसे में, जब भी लोगों को ऐसा स्थान मिलता कि अमुक जगह गांव बसाने योग्य है, तब वे अपनी परंपरा के अनुसार, उस स्थान को साफ करके ग्राम-स्थापन की प्रक्रिया को आरंभ करते थे। नए गांव को बसाने के लिए स्थान का चयन कई बातों को ध्यान में रखकर किया जाता था। तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ग्राम-स्थल के चयन में सुरक्षा को सबसे अधिक महत्व दिया जाता था। उन दिनों अन्य जनजातियाँ भी कबायली जीवन जीते हुए अपने निवास के लिए नए स्थान की खोज में लगे रहते थे। ऐसे में, जब कोई समूह अपने से कमज़ोर लोगों के द्वारा बसाए हुए गांव को देखता, तब वे उस पर धावा बोल देते और उस पर अधिकार कर लेते

या उन्हें लूट लेते थे। इसलिए जेलियांग परंपरा के अनुसार, गाँवों को ऐसे स्थान पर बसाया जाता था, जहाँ से आने वाले खतरे को आसानी से भाँपा जा सके। इसीलिए इनके प्रायः सभी प्राचीन गांव किसी पहाड़ी श्रृंखला के शिखर पर बसे होते थे, जिसके एक तरफ खाई होती थी, तो दूसरी ओर ढलान या कतिपय गांव का मैदानी क्षेत्र भी होता था, "The site of the village was normally located on the hilltops on the consideration of defense, security and health." (Kamei, 2004, page-336) गाँवों को अपेक्षाकृत ऊँचे स्थानों पर बसाने के संबंध में एक तथ्य यह भी हो सकता है कि लोग जमीन के जल-मग्न होने या बाढ़ जैसी स्थिति से बचने के लिए भी इस परंपरा के पीछे चल पड़े होंगे क्योंकि अधिकांश नागा-जनजातियों के संबंध में यह धारणा रही है कि अपनी सभ्यता के किसी न किसी चरण में ये लोग सागर तट या जलीय परिवेश में भी रहे थे, जिसके कारण इनके आभूषणों एवं सजावट की वस्तुओं में शंखों एवं कौड़ियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है। ऐसे में उन्हें निचली भूमि पर बसने से होने वाली परेशानियों तथा प्राकृतिक आपदाओं के बारे में भलीभाँति जानकारी रही होगी और इसलिए संभव है कि उन्होंने अपने प्रवजन के अंतिम चरण में ऊँचे स्थानों को अपने निवास के लिए चुना हो।

नए गांवकी स्थापना में इस बात का भी ध्यान रखा जाता था कि आसपास जल का कम से कम एक अच्छा-सा स्रोत हो। सुरक्षा को अधिक महत्त्व देते हुए जब गांव को पहाड़ी के शिखर पर बसाया जाता था, तब गांव के बीचों-बीच जल के स्रोत का होना असंभव-सा हो जाता था। अतः ढलान की ओर नीचे ऐसी जगह देखी जाती थी, जहाँ गांव के सभी लोगों के लिए पर्याप्त जल की प्राप्ति हो सके तथा गांव से उतनी ही दूरी पर हो, जहाँ औरतें तथा बच्चे जल-संग्रह एवं स्नानादि के लिए सुगमतापूर्वक पहुँच सकें। गांव की स्थापना के साथ ही यह भी परंपरा रही है कि रिहायशी क्षेत्र एवं जल-स्रोत के आसपास वृक्षों का संरक्षण होता रहे, जिसे स्थानीय बोली में 'रम्बौ मज्वक्बो' कहा जाता है, "Katingmai niu kiluang khen ga singbang-singnui majuakjiu namlun pi kam mawi khai bambo setu Rambow Majuokbo chiu kuhweh." (Dr. Newmai, 2021, page-10) अर्थात्- पुरखों के द्वारा गांव की परिसीमा में पेड़ों को संरक्षित करते हुए उसे शोभायमान बनाए रखने को 'रम्बौ मज्वक्बो' कहा जाता है। गांवके आसपास वृक्ष-संरक्षण के पीछे यह धारणा रही है कि आँधी-तूफान एवं झूम-कृषि को जलाते समय निकलने वाली आग की तेज लपटों से गांव की रक्षा यही वृक्ष करते हैं तथा जल-स्रोत के आसपास घने वन को बनाए रखने के पीछे हमारे बुजुर्गों को उन दिनों भी इस बात की भलीभाँति जानकारी थी कि वन के कारण ही उन स्रोतों के जीवन की निरंतरता बनी रहती है। ग्राम-स्थापना के संबंध में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि जब भी जेलियांग समाज के किसी गांव से कुछ लोग नए गांव

बसाने के लिए अपने पैतृक गांव से निकलते थे, तो उसमें प्रायः तीन किखुन अर्थात् तीन कुल के लोग होते थे। इसके पीछे लोगों की यह मान्यता रही है कि यदि किसी कारण वश किन्हीं दो कुल के लोगों में झगड़ा, मनमुटाव अथवा मतभेद हो जाता है, तब उनके बीच मध्यस्थता के लिए तीसरे परिवार की आवश्यकता पड़ती है, "Usually, the (new village) settlers consisted of two or more exogamous clans. They were related by marriage." (Kamei, 2004, page-324) तीन कुल के होने से गांव के भीतर ही परस्पर शादी-ब्याह की सुविधा भी होती है, क्योंकि जेलियांग समाज में विवाह के अंतर्गत 'नौख्यक'² को अनुचित माना जाता है। यदि किसी गांव में केवल दो ही परिवार होते थे, तब ऐसे में न चाहते हुए भी नौख्यक करने पड़ते थे। उत्तर कछार के जेमे लोगों के गाँव-स्थापना के बारे में उर्सुला ग्राहम बावर लिखती हैं कि किसी एक गांव को बसाते समय एक मुखिया के साथ उसका एक सहायक भी होता था। अधिकांश परिस्थितियों में दोनों ही अलग-अलग कुल से तथा जीजा-साले का संबंध रखने वाले होते थे। ये दोनों ही स्वतः उस गांव की संपूर्ण भूमि के स्वामी होते थे। कालांतर में उनके वंश से ही मुखिया भी चुने जाते थे, "These hereditary landowners were called *kadeipeo* (*kelodeipeu*), 'man of the soil', and rarely, when there was no candidate of suitable age, did an outsider rise to leadership." (Bower, 2002, page-72) जेलियांग समाज के प्रत्येक गांव में मुख्य द्वार- 'रेंमुन या करेकी' तथा 'तज्वंग-तकुंग' महत्वपूर्ण स्थान होते हैं। हर गांव में दो मुख्य द्वार होते हैं, जो प्रायः उत्तर एवं दक्षिण दिशा में स्थित होते हैं। गांव का विस्तार रेखीय रूप में प्रायः उत्तर-दक्षिण दिशा में फैला होता था। यदि गांव का विस्तार उत्तर-दक्षिण न होकर पूरब-पश्चिम होता था, तो उसमें पूर्वी एवं पश्चिमी द्वार होते थे। दोनों द्वारों को सुरक्षा की दृष्टि से विशेष रूप से बनाए जाते थे और संकटकाल में इन पर गांव के लोग पहरा देते थे। गांव के एक ओर खाई होती थी और दूसरी ओर घरों को इस तरह से बसाया जाता था कि दोनों मुख्य द्वारों के अतिरिक्त बहुत रास्ता न बचे। बाहरी व्यक्ति गांव में न घुस सके, इसके लिए जगह न के बराबर छोड़ी जाती थी। किसी गांव का जल-स्रोत जब गांव से दूर होता था, तब संकटकाल में उस जल-स्रोत तक गांव के युवकों का पहरा रहता था। तज्वंग-तकुंग गांव के भीतर रखे एक विशेष पत्थर को कहा जाता है। जेलियांग परंपरा के अनुसार, यह पत्थर गांव के लिए स्थायी रूप से बने लंबी-कूद प्रतियोगिता स्थान के पायदान पर रखा जाता है। इसी पत्थर पर पैर रखकर लंबी-कूद कूदी जाती है।

4.4 : ग्राम प्रवेश एवं गृह प्रवेश

ग्राम-स्थापना के लिए स्थान चयनित हो जाने तथा उसमें मुख्य-द्वार एवं तज्वंग-तकुंग जैसे स्थानों को निश्चित करने के पश्चात ग्राम-प्रवेश की प्रक्रिया आरंभ की जाती है। इस प्रक्रिया में सबसे

² विवाह में दो परिवारों के बीच लड़कियों का आदान-प्रदान होना

पहले सूखी लकड़ियों एवं पत्तियों को एकत्र करके आग प्रज्वलित की जाती थी। ऐसा माना जाता था कि यदि आग से निकलने वाला धुआँ सीधे आकाश की ओर जाता है, तो उसे गांव बसाने के लिए शुभ-संकेत माना जाता था। शगुन अच्छा होने पर लोग पहली रात गांव के मुख्य द्वार पर बिताते थे। किसी-किसी परंपरा के अनुसार, जिस व्यक्ति का मुर्गा सुबह के समय सबसे पहले बांग दे देता था, वही उस गांव का मुखिया चुन लिया जाता था।

अगली सुबह गांव के लोग मुर्गे, सूअर या किसी अन्य पशु की बलि देकर फिरसे शगुन का परीक्षण करते थे। मुर्गे को गला दबाकर मारा जाता था। यदि मरते हुए मुर्गे का दायाँ पैर बाएं पैर के ऊपर पड़ जाता, तो उसे शुभ संकेत माना जाता था। सूअर या किसी अन्य पशु की बलि दी जाने पर उसके अग्न्याशय को निकालकर उसका निरीक्षण-परीक्षण किया जाता था। ऐसा माना जाता है कि यदि उसके अग्न्याशय का आकार सामान्य रूपसे ठीक-ठाक है अर्थात् उसमें कोई निशान न हो अथवा वह कटा-फटा न हो, तो वह गांव के लिए शुभ होता था, "If there was no crack or breach of the boiled egg or if the right leg of the fowl fell on the left leg or if there was no blemish on the pancreas of the pig, it was all regarded as a good omen." (Kamei, 2004, page-324) इसके बाद गांव का होने वाला मुखिया, जिन्हें नम्पौ या कलोदेइपेउ कहा जाता है, सबसे पहले उस स्थान में प्रवेश करता, जहाँ मुख्यद्वार बनाया जाना होता था। वह उस स्थान पर अपने भाले को खड़ा कर देता था, जिसे जितने भी लोग ग्राम-प्रवेश कर रहे होते, वे सभी शुद्धीकरण की प्रक्रिया के रूप में छूकर अन्दर प्रवेश करते।

इसके बाद, वे सभी लोग तज्वंग-तकुंग या 'तुखुन'³ के पास जाकर विशिष्ट घर्षण-प्रक्रिया से आग को प्रज्वलित करते थे। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिए बाँस के रेशे, लकड़ी तथा एक विशेष शुष्क रस्सी का प्रयोग किया जाता है, जिनके घर्षण से अग्नि उत्पन्न होती है। सामूहिक रूप से प्रज्वलित इस अग्नि को सभी लोग लेकर अपने-अपने अस्थायी घर की ओर जाते थे। उल्लेखनीय है कि इसी से घर के चूल्हे में आग जलाई जाती थी और हरसंभव यह प्रयास रहता था कि उसे कभी बुझने न दिया जाए। जेलियांग जनजाति में घर के चूल्हे में अग्नि-शमन हो जाने को अपशकुन माना जाता है। इसलिए आज भी रात्रि को सोने से पहले अच्छी लकड़ी को जलाकर उसे राख के अन्दर घुसेड़ दिया जाता है और सुबह उठने पर उसी चिंगारी से पुनः आग जलाई जाती है। इस प्रकार, ग्राम-प्रवेश के दिन जिस घर्षण प्रक्रिया से आग उत्पन्न की गई थी, जीवन-पर्यंत उसी आग से घर प्रज्वलित रहता है। इसी प्रकार जब कोई नया परिवार अपने पितृ-परिवार से अलग होकर नए घर का निर्माण करता है, तब भी या तो

³ पत्थरों को रखकर बनाया गया चबूतरा।

घर्षण से अग्नि उत्पन्न की जाती है या फिर पितृ-परिवार के घर से ही प्रज्वलित मशाल लाकर नए घर में आग जलाई जाती है। प्राचीनकाल में ऐसा इसलिए किया जाता था, क्योंकि उन दिनों माचिस जैसी चीजें उपलब्ध न थीं। आज भी यह विश्वास किया जाता है कि पितृ-घर में प्रज्वलित आग उसी अग्नि का अंश है, जिसे ग्राम-प्रवेश के दिन उत्पन्न किया गया था। इसी अवधारणा के साथ लोग आज भी गृह प्रवेश के समय माचिस या लाइटर से नहीं, बल्कि किसी पुराने घर से अग्नि मांगकर आग जलाना आरंभ करते हैं।

4.5 : राजनैतिक स्वरूप- ग्रामीण प्रशासन व्यवस्था

प्राचीनकाल से ही जेलियांग समाज की प्रशासनिक व्यवस्था एक गांव तक ही सीमित रही है, जिसके अंतर्गत आर्थिक, कृषि, सामाजिक एवं यहाँ तक कि व्यवहारों की परंपरा भी प्रत्येक ग्राम-प्रशासन के अंतर्गत अपनी विशिष्टताओं के साथ अद्वितीय रही हैं, 'The political, social, economic and religious life is strictly regulated by the village polity.' (Kamei, 2004, page- 321) इस तथ्य के आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि जेलियांग समाज का गांव ही अपनी संप्रभुता की दृष्टि से एक पूर्ण इकाई होता था, जिसकी प्रशासनिक व्यवस्था में चेवांग/हेग्वांग, सिंकू तथा अपईमै की प्रणाली महत्वपूर्ण रही है।

4.5.1 : चेवांग/हेग्वांग प्रणाली

प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से चेवांग अर्थात् राजा की परंपरा बहुत महत्वपूर्ण रही है। यह व्यवस्था अनेक गाँवों में एक अहम भूमिका निभाती थी, जिसमें एक निश्चित परिवार का व्यक्ति ही उस गांव का मुखिया या राजा होता था। इस संदर्भ में यह तथ्य है कि जिस व्यक्ति ने गांव की स्थापना में अपनी मुख्य भूमिका निभाई हो अर्थात् जिस व्यक्ति के नेतृत्व में वह गांव बना हो, वही स्वतः उस गांव का स्वामी या राजा बन जाता था, 'The first settler who performed the *kelua gutbe* (village entry) ceremony for settlement in the new village became the Chief.' (Kamei, 2004, page- 324) एक अन्य संदर्भ के अनुसार, गांव के मुखिया का चयन उसके पशु-पक्षियों के शगुन के माध्यम से भी किया जाता था अर्थात् जब किसी गांव की स्थापना में किसी एक व्यक्ति का पूर्ण वर्चस्व नहीं होता था, तब या तो लोकतांत्रिक प्रणाली से या फिर भाग्य आजमाकर राजा या मुखिया का चयन किया जाता था। जब कोई व्यक्ति अपने वर्चस्व के आधार पर किसी गांव का राजा बनता था, तब प्रायः उस गांव की संपूर्ण सीमा के अंदर उस व्यक्ति तथा उसके परिवार का ही अधिकार रहता था। ऐसे में, वह व्यक्ति ही भूमि तथा उसमें उपलब्ध सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों लकड़ी, पशु-पक्षी तथा जलस्रोत इत्यादि का अधिकारी होता था। गांव के लोग राजा या उसके परिवार को भूमि-कर के रूप में

अपने कृषि-उत्पादों में से वर्ष भर में कुछ न कुछ देते ही रहते थे। यह एक प्रकार से उस भू-स्वामी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का एक तरीका भी था। दूसरे शब्दों में, राजा का कृपापात्र बने रहने का एक तरीका था। कृषि उत्पादों के अतिरिक्त जब भी उस गांव के किसी व्यक्ति को शिकार में कोई बड़ा जानवर मिलता था, तब राजपरिवार के लिए शिकार के पिछले पैर का जाँघ निकालकर दे दिया जाता था। हालांकि, आरंभ में यह परंपरा शिकारियों के द्वारा अपने राजा या मुखिया के प्रति सम्मान एवं कृतज्ञता प्रकट करने के लिए आरंभ की गई थी, जो कालांतर में 'कर' के रूप में परिवर्तित हो गया। कुछ गाँवों में चेवांग या हेग्वांग को 'केलोदेइपेउ' अर्थात् गांव की भूमि का मालिक; के नाम से भी जाना जाता है। वर्तमान में कर के रूप में कृषि उत्पाद देने की परंपरा लगभग समाप्त हो चुकी है, परन्तु, कतिपय गाँवों में गांव के राजवंशी परिवार को अपने शिकार में से मांस का कुछ भाग देने की प्रथा अब भी विद्यमान है।

किसी गांव का चेवांग या केलोदेइपेउ केवल कर संग्राहक या उपहार ग्राहक ही नहीं बल्कि गांव की प्रशासनिक व्यवस्था में भी उसकी अहम् भूमिका होती थी। किसी विकसित राजतंत्र के स्वामी की तरह उसकी अपनी सेना तथा मंत्री-परिषद् नहीं होते थे। परंतु न्यायिक व्यवस्था, कृषिकारी-नियमन तथा धार्मिक कर्मकांडों के विधान में भी उसके निर्देशों का पालन किया जाता था, हालांकि धार्मिक मामलों में सिन्कू के निर्णयों को ही प्राथमिकता दी जाती थी। सुरक्षा की दृष्टि से, वह एक प्रकार से सभी ग्रामीण-जनों का अभिभावक होता था। किसी बाहरी संकट की स्थिति में सीमा-सुरक्षा आदि के लिए गांव के लोगों को वही निर्देशित करता था। न्यायिक व्यवस्था के अंतर्गत लोगों के बीच किसी प्रकार के झगड़े, कृषि-भूमि-विवाद अथवा पारिवारिक कलह आदि में वह यथासंभव सभी के साथ न्याय करने का प्रयास करता था। परंतु यदि किसी मानवीय त्रुटि के कारण कोई पक्ष उसके निर्णय से निराश होता था, तब कभी-कभी वह पक्ष गांव छोड़कर किसी अन्य गांव की ओर प्रस्थान कर जाता या फिर ऐसी स्थिति में किसी नए एवं अनधिकृत भूमि में जाकर वह नए गांव की स्थापना कर लेता था। कृषि-कार्यों के नियमन के अंतर्गत झूम-कृषि के लिए प्रतिवर्ष निश्चित क्षेत्र को निर्धारित करने में भी चेवांग की इच्छाओं का ध्यान रखा जाता था। इन बातों के अतिरिक्त, जब कोई व्यक्ति शिकार में किसी हिंसक पशु शेर, भालू, हाथी या जंगली मिथुन (अमंगबुई/हेमंगबुई) इत्यादि का शिकार कर लेता और वह अकेले खाने के बजाय संपूर्ण गांव को दावत के रूप में उसे खिलाने का इच्छुक होता, तब गांव के सभी लोग मिलकर उस पशु के अविच्छिन्न शरीर को 'चेवांगकी' अर्थात् राजा के घर पर ले आता था। कुछ विधि-विधान करने के पश्चात् राजा की अनुमति से उसे काटकर गांव के सभी परिवारों में बराबर बाँट दिया जाता। इस विधान में शिकारी को गांव के लिए अपने शिकार के साथ-साथ एक अन्य पालतू पशु सूअर,

गाय या भैंस प्रदान करना होता था, ताकि गांव की स्त्रियाँ एवं बच्चे, जिन्हें हिंसक पशुओं का मांस वर्जित था, वे भी इस दावत का आनंद उठा सकें।

4.5.2 : सिन्कू (तिङ्कू) प्रणाली

जेलियांग जनजातीय समाज के विकास क्रम में चेवांग परंपरा के उत्तरार्ध में ग्रामीण प्रशासन की दृष्टि से सिन्कू या तिङ्कू अर्थात् पुजारी का प्रभुत्व बढ़ने लगा था, क्योंकि चेवांग या हेग्वांग वैसा राजा नहीं होता था, जो गांव के लोगों पर अपना आधिपत्य जमाकर उनसे अपनी जीविका के लिए साधनों का उपार्जन करता बल्कि इसके विपरीत उसे अपनी शान-शौकत को बनाए रखने के साथ-साथ कई अन्य कार्य करने पड़ते थे। ऐसे में, यदि गांव के लोगों में उसके प्रति श्रद्धा या सम्मान भाव न रह जाता था, तो प्रजा निरंकुश हो जाती थी तथा राज-परंपरा को बनाए रखना असंभव-सा हो जाता था। यही कारण है कि धीरे-धीरे इस परंपरा का भी अंत हो गया। हालांकि, इसी शोध-कार्य के सिलसिले में एक बार *बुइ*⁴ (यन्खुलेन) नामक गांव जाना हुआ, जहाँ आज भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में ही सही, राजा तथा उसकी परंपराएं बरकरार हैं। वहां आज भी श्री हेइजेतिंग गांव के राजा कहलाते हैं। वैसे, यह कहना संगत नहीं है कि सभी गाँवों में चेवांग की परंपरा के बाद ही सिन्कू प्रणाली आई, क्योंकि अनेक ऐसे प्राचीन जेलियांग गांव हैं, जिनमें किसी चेवांग या हेग्वांग के होने की कथा नहीं मिलती, बल्कि वे आरंभ से ही सिन्कू-तंत्र के अंतर्गत ही ग्रामीण प्रशासन को चलाते रहे। वैसे, जहाँ चेवांग हुआ करता था, वहाँ सिन्कू भी होता था, क्योंकि उन दिनों में भी धार्मिक कर्मकांड तथा तीज-त्योहारों के मामलों में राजा का नहीं बल्कि सिन्कू के निर्देश का ही पालन होता था। उसी के निर्देशानुसार सभी कार्य क्रियान्वित किए जाते थे। गांव के धार्मिक मुखिया होने के साथ-साथ वह प्रायः वैयक्तिक एवं सामूहिक पूजा-अर्चना तथा अनुष्ठानों में पुरोहित के कार्य भी करता था। कालांतर में, जब चेवांग की परंपरा कमजोर होकर धूमिल होती चली गई, तब गांव के लोगों ने सिन्कू को ही अपना मुखिया मान लिया और स्वतः उसी के ऊपर न्याय व्यवस्था, ग्रामीण सुरक्षा तथा कृषिकार्य-नियमन आदि की जिम्मेदारियां भी आ गई, 'The priest-administrator occupies a high position and this ecclesiastical functionary control the whole administration of the village.' (Kamei, 2004, page- 322) हालांकि, वह किसी भी कार्य में प्रत्यक्ष रूप से निरंकुश होकर शासन व्यवस्था नहीं चलाता था, फिर भी वे सभी कार्य उसी के निर्देशन में संपादित होने लगे, जो पूर्व में चेवांग करते थे।

⁴ जेलियांग जनजाति के सबसे प्राचीन गाँवों में से एक

4.5.3 : अपईमै/पेइ प्रणाली

चेवांग तथा सिन्कू प्रणाली के समय से ही कुछ गाँवों में प्रशासनिक व्यवस्था को संचालित करने के लिए एक समिति हुआ करती थी, जिसे अपईमै या पेइ अर्थात् बुद्धिजीवियों का समूह कहा जाता है। इसमें गांव के सभी कुल के लोगों का प्रतिनिधित्व रहता था। इसी संरचना को कुछ गाँवों में 'सम्काकीबे' के नाम से भी जाना जाता था, जिसका तात्पर्य 'बात-चीत' होता है। उल्लेखनीय है कि गांव से संबंधित कोई भी चर्चा-निर्णय इसी सभा में होते थे, इसीलिए इस समिति को यह नाम दिया गया था। वर्तमान तक आते-आते प्रशासन की इसी व्यवस्था ने चेवांग की परंपरा को तो पूरी तरह से विस्थापित कर दिया और सिन्कू को केवल धार्मिक मामलों तक संकुचित कर दिया। वर्तमान में जेलियांग ही नहीं बल्कि अधिकांश नागा जनजातियों में निर्मित ग्राम परिषद (village council) इसी रचना पर आधारित है, 'The pei is not only a council of elders but also the collective supreme body in which all the heads or representatives of the clans, lineage or sub lineage are presented and the Pei is represented by the chief of the village, or the founder of the particular village.' (Kamei, 2004, page-325) इससे स्पष्ट पता चलता है कि कहीं-कहीं पूर्व में चेवांग या सिन्कू की भूमिका में रहा व्यक्ति ही 'अपईमै' परिषद् की अगुआई भी करता था अर्थात् नाम परिवर्तन के सिवाय प्रशासनिक अधिकार उसी व्यक्ति के हाथ में रहने दिया गया। दूसरे शब्दों में, उसने अपने प्रभुत्व के प्रयोग से किसी अन्य के वर्चस्व को नकार दिया। द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व-काल में जेमे लोगों के बीच अंग्रेजी प्रशासन की प्रतिनिधि रही उर्सुला ग्राहम बावर लिखती हैं कि उस समय तक उत्तर कछार के जेमे लोगों में पारंपरिक जनजातीय व्यवस्था अपनी पूर्णता के साथ विद्यमान थी, 'Each community was ruled by a village council with *kadepeo* as its head. He was, in effect, its president. He convened it; and with the help of the village priest, the other permanent members chose elders to sit on it at any given meeting.' (Bower, 2002, page-72) इस प्रकार, जेमे लोगों में जहाँ कदेपेउ या कलोदेइपेउ के नेतृत्व में ग्राम-परिषद् होती थी, वहीं लियांगमै गाँवों में इन्हीं को 'नम्पौ' कहा गया, जिसका अर्थ भी भूमि का स्वामी होता है। इस प्रकार, सभी जेलियांग गाँवों में कलोदेइपेउ, नम्पौ या सिन्कू के नेतृत्व में अपईमै अर्थात् ग्राम-परिषद् कार्य करती थी। इसी अपईमै अथवा पेइ की परंपरा के आधार पर जेलियांग समाज में आज के ग्राम-पंचायतों की स्थापना हुई है। 'The Pei or Samkakibe is the most powerful body in the village polity. Its existence was based on age-old customs and traditions of the zeliangrong people.' (Bareh, 1970, page-186)

जेलियांग समाज में स्थान एवं कालांतर के साथ ग्रामीण प्रशासन के उपर्युक्त तीनों रूप विद्यमान रहे हैं। परंतु तीनों ही रूपों में प्रायः प्रशासन के लोकतांत्रिक स्वरूप को अधिक महत्त्व दिया गया अर्थात् किसी को भी निरंकुश होकर मनमानी करने की छूट नहीं होती थी। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती थी, तो समाज उसे अपदस्थ कर देता था, 'The zeliangrong system was also democratic in form. The *Hangkia* who was a president of village council like Angami Pehumia was circumscribed in his power.' (Bareh, 1970, page- 186) लोकतांत्रिक स्वरूप में होने के साथ-साथ प्रथागत विधि-विधान कई मामलों में सख्त होते थे, जिसमें चोरी, हत्या तथा व्यभिचार जैसे कुकृत्य करने वालों के साथ बड़ी सख्ती के साथ पेश आया जाता था। चोरी के मामले में यदि कोई पकड़ा जाता तो उसे चोरी के सामान का कई गुना दाम लौटाना पड़ता था। उल्लेखनीय है कि यह एक प्रथा बन गई थी। व्यभिचार के संबंध में नियम था कि यदि कोई पुरुष किसी विवाहित महिला के साथ व्यभिचार करते पकड़ा जाता है, तो उस महिला के पति या उसके किसी सगे को यह अधिकार होता था कि उसी समय दोनों को मार डाले। यदि उन्हें छोड़ भी दिया जाए तो व्यभिचारी औरत को खाली हाथ अपने पति के घर से निकल जाना होता था। यदि आपसी झगड़े या शिकार करते हुए, किसी के हाथों जाने-अनजाने में किसी की हत्या हो जाती थी, तो हत्यारे को अपने परिवार सहित गांव छोड़कर चले जाना होता था। ऐसे में, उसका घर तथा उसकी सारी संपत्ति नष्ट कर दी जाती थी, अन्नागार को चीर दिया जाता था, जिसमें से धान तथा अन्य अनाज गिरते रहते थे। जनसामान्य लोग उसे हाथ नहीं लगाते थे और मृतक के परिवार के लोग तो पास भी नहीं फटकते थे। लेकिन कुछ लोग ऐसे होते थे, जिनके पास अन्न की कमी होती थी, तो ऐसे लोगों के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा से अधिक बच्चों एवं स्वयं का पेट भरना अधिक आवश्यक होता था। अतः वे अन्नागारों से गिरते अनाज उठाते और अपने अन्नागार भर लेते थे। परंतु ऐसी मान्यता थी कि जिस अन्नागार पर मृतक के सगे-संबंधियों ने अपना क्रोध प्रकट करते हुए हाथ लगा दिया हो, उसका अनाज खाना पाप होता है। उसके खेत को कोई हाथ नहीं लगाता था। कुल मिलाकर, उसके खेत को जानवरों के खाने के लिए छोड़ दिया जाता था। मगर यहाँ भी वही लोग सेंध लगाते थे, जो अन्नागारों से अनाज उठाते थे, 'The zeliangrong customary law is more severe because of the murderer is liable to exile for a period of seven years alongwith his close relatives.' (Bareh, 1970, page- 183)

4.6 : आर्थिक जीवन

जिस प्रकार से प्रत्येक जेलियांग नागा गांव प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से स्वतंत्र इकाई हुआ करता था, उसी प्रकार कुछेक बातों को छोड़कर आर्थिक दृष्टि से भी वह आत्मनिर्भर होता था।

इनकी अर्थ व्यवस्था, उनकी भूमि तथा वन्य उत्पादों पर निर्भर थी। ये लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए मुख्यतः कृषि-कार्य करते थे। साथ ही, ये पशुपालन, बागवानी, शिकार तथा कुछ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यापारिक लेनदेन भी करते थे। समय के साथ-साथ, व्यवसाय के इन रूपों में भी बदलाव आए हैं, परंतु अधिकांश गाँवों में आज भी पारंपरिक कृषि अर्थात् 'झूम-कृषि' पद्धति को जीविकोपार्जन के प्रमुख साधन के रूप में देखा जाता है।

4.6.1 : कृषि

सामान्यतः जेलियांग गांव घने जंगलों के बीच बसा हुआ होता है, जिसके चारों ओर कृषि योग्य भूमि होती है। एक गांव से दूसरे गांव की सीमा प्रायः छोटे-बड़े नदी-नालों के माध्यम से रेखांकित होती हैं। इसीलिए अंतर्ग्रामीण भूमि-विवाद की समस्या नहीं होती है। जनसंख्या की विरलता तथा पर्याप्त क्षेत्र में ग्रामीण भूमि होने के कारण प्राचीनकाल से ही सभी लोग झूम पद्धति पर ही कृषि करते आए हैं। इस पद्धति में कृषि-भूमि योग्य वन के एक निश्चित एवं परिपक्व क्षेत्र को चुनकर उसी क्षेत्र-सीमा में ही गांव के सभी लोग अपने-अपने खेत के लिए वन की कटाई करते हैं। सभी गाँवों में कृषि कार्य के लिए भूमि उपयोग के कुछ निश्चित नियम होते हैं, जिसके अंतर्गत गांव की भूमि भी कई क्षेत्रों तथा इकाइयों में विभाजित होती है। एक निश्चित समय अथवा वर्ष पर खेती के लिए ग्राम-प्रशासन की ओर से किसी एक ही क्षेत्र को घोषित किया जाता है। गांव की वन संपदा के संबंध में उल्लेखनीय बात यह है कि प्राचीनकाल से ही आवासीय क्षेत्र के चारों ओर घने वन तथा बड़े-बड़े वृक्षों को यथावत बनाए रखने की परंपरा रही है, जो सामूहिक रूप से सभी लोगों की संपत्ति होती है तथा जिन्हें कभी-भी खेती करने के उद्देश्य से काटा नहीं जाता। गांव के चारों ओर इस प्रकार फैले हुए सदाबहार वृक्षों के समूह को *रम्बौ* कहा जाता है, जो सुरक्षा की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं। यह दावानल या किसी अन्य बाहरी संकटों से गांव के आवासीय क्षेत्र को सुरक्षित रखता है, 'Every village has a tree grove (*Rambou*) around the village, which is a forest fire protection belt, and sometimes, the village gates, which are fortified, are located in the grove. The community lands are not to be utilized for cultivation.' (G.Kamei, 2002) इस प्रकार, यह कहना अनुचित न होगा कि गांव का रम्बौ अपनी सघनता के कारण कभी-कभी गांव के मुख्य द्वार और किलेबंदी के रूप में भी प्रयुक्त होता था तथा इस क्षेत्र को छोड़कर गांव की शेष भूमि पर खेती की जाती थी। वर्ष के आरंभ में अर्थात् जनवरी तथा फरवरी के महीनों में खेती के लिए जंगल को काटा जाता है और लकड़ियों के सूख जाने पर मार्च या अप्रैल में उन्हें अग्नि दी जाती है। आग से जलाने के बाद भूमि की सफाई करके उसमें बीज बोए जाते हैं। इस कृषि परंपरा में सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं होती है और यह पूर्णतया बरसात पर निर्भर होता

है। इसीलिए यदि किसी वर्ष समय पर बारिश न हो या फिर आवश्यकतानुसार बरसात न हो तो अकाल पड़ना तय हो जाता है। पुराने जमाने में, जब ऐसी स्थिति उत्पन्न होती थी, तब गांव के लोगों का जीवन बड़ी विपन्नता के साथ बीतता था, क्योंकि उन दिनों आज की तरह बाहर से अनाज की आपूर्ति नहीं की जाती थी। इसीलिए जेलियांग समाज में, कोई भी परिवार चाहे जितना अधिक धान की फसल प्राप्त कर ले, उसे कभी बेचा नहीं करता था, ताकि संकट के समय अपनों तथा अन्य जरूरतमंदों की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

जेलियांग जनजाति के लिए धान की फसल ही खेती का पर्याय है। यद्यपि इसके साथ ही मक्का, बाजरा, ज्वार, तिल तथा कोदो जैसे अन्य फसल भी उगाए जाते हैं, पर परिमाण की दृष्टि से धान की तुलना में अन्य फसलें बहुत कम लगाई जाती हैं। उनके लिए धान के बिना खेती की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती, क्योंकि चावल के बिना इनका भोजन पूरा नहीं होता। धान के फसल की अपनी महत्ता होते हुए भी इनके जीवन में अन्य फसलों को कम महत्त्व वाला नहीं माना जाता। वैसे, धान के फसल को प्राप्त करने के लिए एक लंबी प्रक्रिया से गुजरना होता है, जिसे *तेतिन (बुआई)*, *अमातिंग (निराई)*, *चेलुरितिंग (पशु-पक्षियों से रखवाली)*, *चेलुगेतिंग (कटाई)*, *कसईब्यू (पिराई)* तथा *तेस्यूसी (ढुलाई)* कहा जाता है। उल्लेखनीय है कि जब खराब मौसम अथवा किसी अन्य प्रकोप के कारण धान की फसल नहीं होती थी, तब बाजरे (*Foxtail Millet*) को उसके विकल्प के रूप में प्रयोग किया जाता था। मक्का ऐसा अनाज है, जो किसी अन्य फसल के पहले ही तैयार हो जाता है। इसलिए जिन घरों में धान के नए फसल के आने से पहले पिछले फसल के धान के समाप्त हो जाने की संभावना होती थी, वे मक्के के फसल पर ही गुजारा करते थे तथा उसी से अपना पेट भरते थे। वे ऐसा इसलिए करते थे, ताकि बचा हुआ धान कुछ दिन और चल जाए। इन फसलों के साथ-साथ, लोग अपने खेतों में कद्दू, अरबी, बैंगन, करेला, चुकंदर, मिर्ची, टमाटर, लहसुन, अदरक, हल्दी जैसी सब्जियाँ तथा खीरा, तरबूज, खरबूजा इत्यादि फल अपने उपयोग के लिए लगाते थे। समय और जरूरत के हिसाब से आज इसके परिमाण में वृद्धि करके लोग व्यापार करने के लिए भी इनका उत्पादन करते हैं।

4.6..2 : बागवानी

खेती के साथ-साथ जेलियांग समाज में लोग बागवानी को भी महत्त्व देते हैं। हालाँकि, यह परंपरा बहुत प्राचीन नहीं है। फिर भी, अंग्रेजी शासन के समय जब लोगों का संपर्क बाहरी लोगों से हुआ और विभिन्न वस्तुओं के आदान-प्रदान के परिणामस्वरूप इन्हें फलों तथा कई प्रकार की सब्जियों का ज्ञान हुआ, तब घर के निकट ही बागवानी करके उन्हें उगाना आरंभ किया, 'Horticulture

development took place in the colonial period. Earlier the horticultural products were confined to bananas and sweet potato.' (Kamei, 2004, page- 344) प्रो. गांग्मुमई के अनुसार, आर्थिक दृष्टिकोण में बदलाव तथा मुद्रा एवं सिक्कों के प्रचलन ने यहाँ के लोगों को अपनी आय के लिए फलों एवं सब्जियों को उगाने के लिए प्रोत्साहित किया और वे गोभी, आलू, सेम, सोया, विभिन्न प्रकार की दालें एवं गन्ने आदि को उगाकर उन्हें बेचने लगे तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का क्रय करने लगे। बागीचे में लगाए जाने वाले फलों में केले, संतरे, अमरुद, नासपाती, अनन्नास इत्यादि आते हैं। उल्लेखनीय है कि संतरा यहाँ का मूल फल नहीं है। इसे पश्चिमी क्षेत्र अर्थात् वर्तमान मेघालय से लाया गया था। मगर इसकी फसल बहुत अच्छी होती है। कुछ दशक पहले तक यातायात के साधन न होने के कारण इससे कोई आर्थिक लाभ नहीं मिलता था। लेकिन आज जहाँ भी रास्ते बन चुके हैं, वहाँ के लोगों को इस फल से काफ़ी आय प्राप्त हो जाती है।

4.6.3 : पशुपालन

जेलियांग जनजाति की अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आयाम पशुपालन है। गाँवों में, यहाँ के प्रायः सभी लोग मुर्गी तथा सूअर अनिवार्य रूप से पालते हैं, क्योंकि इन्हें पालना बहुत मुश्किल नहीं होता है। कुछ दशक पूर्व तक तो सूअरों को खुले में रखा जाता था। वह स्वयं ही कूड़े-कचरों से अपना दाना खोजकर खा लेता था। हाँ, सुबह के समय उसका पालक एक बार अवश्य उसे दाना दे देता था। इसी एक समय के भोजन के आधार पर उसका अपने स्वामी के साथ संबंध बना रहता था। समय परिवर्तन के साथ-साथ स्वच्छता को ध्यान में रखते हुए अब लगभग सभी लोगों ने उन्हें एक घेरे में अथवा अलग आवास में रखकर पालना आरंभ कर दिया है, जिससे यह कार्य अब थोड़ा मुश्किल हो गया है। मुर्गियों को तो आज भी खुले में रखा जाता है। घर की मालकिन सुबह एक बार दाना दे देती है। रात को मुर्गियों को सोने के लिए एक छप्पर लगा दिया जाता है। इसके साथ ही, मुर्गियों के अंडे देने तथा उसे सेने के लिए उसी छप्पर वाली झोपड़ी में स्थान बना दिया जाता है। कुछ लोग बत्तखों को भी पालते हैं, पर जल की कमी वाले स्थानों पर इसे पालना कठिन होता है। इनके अतिरिक्त, मिथुन, गाय, भैंस, कुत्ते, बिल्ली तथा बकरियों को भी पालने की परंपरा रही है। पुराने जमाने में मिथुन का पालन करने वाले लोग गांव के सबसे धनाढ्य व्यक्ति माने जाते थे, क्योंकि इस पशु का आर्थिक महत्व अधिक होता है। वैसे, यहाँ के लोग किसी भी पशु-पक्षी का पालन मांस को प्राप्त करने के उद्देश्य से ही करते हैं, पर अब लोगों ने गाय तथा भैंस से दूध भी लेना आरंभ कर दिया है। इस प्रकार, जेलियांग समाज के आर्थिक जीवन में पशु-पालन का महत्वपूर्ण स्थान है।

4.6.4 : व्यापार

यद्यपि जेलियांग समाज में आज लगभग सभी प्रकार के व्यापारिक प्रतिष्ठान प्राप्त होते हैं। परंतु ब्रिटिश शासन के पूर्व तक, एक गांव अपने भीतर ही अपने जीवन की लगभग सभी आधारभूत आवश्यकताओं को उत्पन्न करने में सक्षम था। वे व्यापार के नाम पर केवल नमक तथा कृषि-कार्य एवं शिकार के लिए औजारों की खरीद-बिक्री करते थे। इसके अतिरिक्त, धातु के बने बर्तन एवं आभूषण ऐसी दो वस्तुएं थीं, जिन्हें कभी-कभार लोग क्रय करते थे। घर बनाने के लिए वन से बाँस तथा पर्याप्त लकड़ियाँ प्राप्त हो जाती थीं तथा खाने-पीने के सामान वे स्वयं उगा लेते थे। कपास को उगाकर लोग स्वयं ही सूत कातते और वस्त्र बुनते थे। इसलिए उन्हें वस्त्र खरीदने की आवश्यकता नहीं होती थी। हस्त-कला का प्रयोग करके अन्नागार के लिए वे बड़े-बड़े टोकरे, घरेलू उपयोग के लिए सूप एवं छोटी-छोटी टोकरियाँ, डिब्बियाँ स्वयं बना लेते थे। अनाज कूटने के लिए पेड़ काटकर ओखली तथा जल-संग्रह के लिए बड़े-बड़े बाँस के पोरो का प्रयोग करते थे। इस प्रकार, गांव के लोग सीमित साधन में ही सही, पर एक प्रकार से आत्मनिर्भर थे। हाँ, गांव के अंदर जो लोग इन्हें नहीं बना पाते थे, वे किसी अन्य वस्तु, अनाज अथवा पशुओं के आदान-प्रदान से उन्हें प्राप्त करते थे। आरंभ में, लोगों के पास मुद्रा एवं सिक्कों का अभाव था। इसलिए वस्तुओं के विनिमय से ही व्यापार करते थे, पर जब से मुद्रा का प्रचलन आरंभ हुआ, तब से लोगों ने दूर-दूर तक जाकर क्रय-विक्रय का कार्य आरंभ कर दिया है, 'The barter system was conducted between the zeliangrong people with the Angamis, Cacharis and the Meiteis in the neighborhood.' (Kamei, 2004, page- 339) लोग नमक एवं लौह-औजारों को प्राप्त करने के लिए अपने उत्पादों शहद, मोम इत्यादि को ढोकर असम के मैदानों तक जाते थे और वस्तुओं का विनिमय करते थे। इसमें पद-यात्रा करते हुए उन्हें महीनों लग जाते थे। बुजुर्गों का कहना है कि ये लोग अपने क्षेत्र से निकलकर उत्तरी कछार में माहुर होते हुए लम्डिंग एवं रंगा पहाड़ तक पद-यात्रा करके नमक लेने के लिए जाते थे। इन परिस्थितियों में, गांव के बहुत सारे परिवार ऐसे भी होते थे, जो या तो धनाभाव के कारण या फिर शारीरिक अक्षमता के कारण नमक के लिए इतनी दूर नहीं जा पाते थे और वे अपने गांव के लोगों से ही ऊँचे दाम पर नमक खरीदते थे। इसी प्रकार, संपन्न एवं क्षमतावान लोग ही औजार एवं आभूषण-गहने भी दूर से लाते और गांव के लोग उन्हीं से पुनः क्रय किया करते थे। आभूषणों के अंतर्गत शंख, कौड़ी, पीतल एवं तांबे के बने कंगन तथा अन्य कीमती पत्थर क्रय-विक्रय किए जाते थे।

4.6.5 : शिकार करना एवं मछली पकड़ना

जेलियांग समाज में प्राचीनकाल से ही शिकार करने तथा सामूहिक एवं व्यक्तिगत रूप से मछली पकड़ने की परंपरा रही है। यद्यपि शिकार से प्राप्त पशुओं के मांस तथा मछली को आर्थिक सम्पन्नता के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, फिर भी, इतना अवश्य है कि जहाँ पर चावल के अतिरिक्त अन्य खाद्यान्न की प्रचुरता न हो- पौष्टिक भोज्य पदार्थ के रूप में मांस-मछली का कोई विकल्प न था। इसीलिए ये इनके जीविकोपार्जन के अभिन्न अंग हैं, 'Fishing and hunting were an important means of livelihood. The zeliangrong people did fishing in the nearby streams, rivulets and even in the big rivers.' (Kamei, 2004, page- 338) ये लोग मछली पकड़ने के लिए बाँस की बनी टोकरी एवं जाली का प्रयोग करते हैं। सामूहिक रूप में जब पूरे गांव के लोग मछली पकड़ने जाते थे, तब जलन उत्पन्न करने वाली वस्तुएं जैसे- पत्ते अथवा पेड़ की छालों का प्रयोग करते थे। इन जलन-उत्पादक पदार्थों को कूटकर नदी में डालने पर उनके जलन से मछलियाँ किनारे की ओर आ जाती हैं और फिर उन्हें हाथों या टोकरियों से उठाते हैं। वैसे तो लगभग सभी पशु-पक्षियों का शिकार किया जाता है, मगर पारंपरिक रूप से हाथी, शेर, बाघ, भालू, जंगली सूअर एवं जंगली मिथुन के शिकार को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। इनके अतिरिक्त, यहाँ के लोगों द्वारा अजगर का भी शिकार किया जाता था, जिसे रोचकपूर्ण ढंग से जिंदा उठाकर गांव लाया जाता और राजा अथवा मुखिया के द्वार पर रखा जाता था। यदि कोई शिकारी किसी शेर, भालू, हाथी जैसा बड़ा हिंसक पशु मार लेता था, तब वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के उद्देश्य से उसे अकेले न खाकर गांव के सभी लोगों को समर्पित कर देता था। इस विधान के पीछे लोग यह मानते हैं कि चूंकि मारा हुआ शिकार भी ईश्वर की ही रचना है और इतना बड़ा जानवर है, तो उसका प्रेत भी शक्तिवान होगा ही। ऐसे में, शिकारी पर किसी अनिष्ट की आशंका न रहे, इसलिए वह अकेले उस जानवर को नहीं खाता था। जब सामूहिक रूप से संपूर्ण गांव मिलकर ऐसे किसी जानवर को गांव लाते थे, तब विशेष आयोजन करके बड़े धूम-धाम से उसे उत्सव का-सा रूप दे देते थे। यह प्रथा आज भी कहीं-कहीं प्रचलन में है।

4.6.6 : आर्थिक विकास बनाम गांवसे नगर की ओर पलायन

समय के साथ सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप गाँवों में रहने वाले अधिकांश लोग यह सोचते हैं कि ग्रामीण जीवन की अपेक्षा शहरी जीवन आरामदायक एवं सुविधाजनक है। इसीलिए अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के सपने संजोए वे गांव छोड़कर शहरों की ओर पलायन भी करते जा रहे हैं। वास्तव में, यह बात कुछ हद तक सच भी है, क्योंकि गाँवों में रहकर

पारंपरिक झूम-कृषि तथा वन्य-उत्पादों के आधार पर जीविकोपार्जन करना आज की पीढ़ी के लिए आसान नहीं रहा है। वर्तमान पीढ़ी के लोग अपने पूर्वजों की तरह न तो मेहनती रह गए हैं और न ही उनकी ऐसी शारीरिक क्षमता है कि धूप-बरसात को सहकर वे अपने पुरखों की तरह स्वस्थ और सानन्द रह सकें।

पलायन करने वाले लोगों में से अधिकांश तो वे होते हैं, जो सरकारी नौकरी करते हुए स्वयं को उसके अनुरूप ढाल लेते हैं और स्थाई रूप से वहीं के हो जाते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो सरकारी नौकरी की तलाश या किसी अन्य निजी संस्थाओं में आजीविका की उम्मीद लिए हुए नगरों की ओर आ जाते हैं। इस वर्ग के अतिरिक्त एक वर्ग ऐसा भी है, जिन्होंने व्यापार करने के उद्देश्य से गांव छोड़कर शहरों को अपना बसेरा बना लिया है। अनेक लोगों ने इसमें सफलता भी प्राप्त कर ली है और उन्होंने ग्रामीण जीवन की तंगहाली को बहुत पीछे छोड़ दिया है। मगर उपर्युक्त दोनों वर्गों के अतिरिक्त एक ऐसा वर्ग भी है, जो लोगों की देखा-देखी में बिना किसी ठोस आधार के गांव छोड़कर नगरों में आते जा रहे हैं। जब यहाँ उनकी दाल नहीं गलती, तब वे न तो नगरों में रहकर अपने जीवन को सुचारू रूप से चला पाते हैं और न ही गांव वापस जाकर कृषक-जीवन ही जी पाते हैं। कुल मिलाकर, दोनों ही परिस्थितियों में नुकसान इस तीसरे वर्ग का ही होता है।

4.7 : धार्मिक विश्वास

जेलियांग समाज में प्राचीनकाल से जिस धार्मिक विश्वास को लोग मानते आए हैं, उसे *पौपेचेंग* या *पौपइसे* अर्थात् पुरखों का धर्म के नाम से जाना जाता है। यद्यपि आज बहुसंख्यक समाज ने ईसाई पंथ को अपना लिया है, फिर भी कुछेक स्थानों पर आज भी इस आस्था को मानने वाले लोग विद्यमान हैं। पौपेचेंग की जटिलताओं एवं संकीर्णताओं के चलते मतांतरित होते लोगों को अपनी संस्कृति एवं पारंपरिक आस्था से जोड़े रखने के लिए बीसवीं सदी के आरंभ में 'हेराका' नाम से एक धार्मिक-सामाजिक आंदोलन चला, जिसके अनुयायी आज भी इस समाज में पाए जाते हैं। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में ईसाई पंथ के प्रवेश के पूर्व तक जेलियांग समाज में सभी लोग पारंपरिक धर्म पौपेचेंग को मानते थे। इस आस्था के अनुसार, सर्वशक्तिमान ईश्वर ही इस सृष्टि के रचनाकार हैं, जिन्हें 'अपौ चवांग' के नाम से जाना जाता है। लोगों में यह भी विश्वास था कि प्रकृति के हर तत्त्व पहाड़, नदी, जंगल इत्यादि में किसी न किसी प्रकार की दैवी शक्ति होती है। इसीलिए लोग इन्हें किसी न किसी रूप में पूजते हैं। जब कभी किसी प्रकार की प्राकृतिक आपदा- भूकंप, भू-स्खलन, आँधी-तूफ़ान, अतिवृष्टि, ओलावृष्टि या अनावृष्टि जैसी घटनाएँ घटती हैं, तब उन्हें प्रकृति का प्रकोप मानकर संबंधित प्राकृतिक उपादान को

प्रसन्न करने के लिए अलग-अलग प्रकार के विधि-विधान एवं कर्मकांड किए जाते थे, 'They also worshiped the elements of nature, the wind, the fire, the earth; and they propitiate other spirits dwelling in mountain, river, fields and gorges.' (Gangmumei, 2002) जब कोई बीमार होता या किसी की मृत्यु हो जाती, तब उसे प्रकृति या देवी-देवताओं का प्रकोप मानकर उनके नाम पर मुर्गा, बकरी, सूअर, गाय, भैंस और मिथुन जैसे जानवरों की बलि दी जाती थी। इन बलि-प्रथाओं के पीछे लोगों की यह धारणा रही है कि जब कोई प्राकृतिक उपादान या उसमें व्याप्त दैवीय शक्ति किसी कारणवश मनुष्य से अप्रसन्न होती है, तब उसके प्रकोप से मनुष्य को बीमारियों एवं अन्य परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लोग यह विश्वास करते थे कि जिन अनुचित व्यवहारों के कारण उस प्राकृतिक शक्ति या उसमें व्याप्त संतुलन को मनुष्य ने तोड़ने का प्रयास किया है, उसे दूर करने के लिए उस शक्ति को प्रसन्न किया जाए। इन्हीं विश्वासों के आधार पर आरंभ में विभिन्न प्रकार की बलि-प्रथाओं का आरंभ हुआ। ऐसा भी विश्वास है कि यदि किसी दैवीय प्रकोप के कारण किसी व्यक्ति, परिवार विशेष या गांव-विशेष के ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति आती है, तब उस दैवीय शक्ति के नाम पर पूजा-अनुष्ठान करके किसी जानवर को जंगल में छोड़ दिया जाए तो उस विपत्ति से मुक्ति मिल जाती है। किसी देवता के लिए छोड़े जाने के कारण उस पशु को काटकर खाना वर्जित होता है। यदि अनजाने में किसी व्यक्ति के द्वारा उसे काटकर खा लिया जाता है, तब उसके ऊपर वे सभी विपत्तियाँ आती हैं, जिनके निवारण के लिए उस पशु को छोड़ा गया था। धीरे-धीरे समाज में अनेक ऐसे कर्मकांड एवं विधि-विधान पनपते गए, जिन्हें विभिन्न प्रकार की बीमारियों, प्राकृतिक आपदाओं एवं दैवीय प्रकोपों से मुक्ति पाने के साधन माने गए। इन विधि-विधानों एवं कर्मकांडों की उत्पत्ति के पीछे समाज के एक वर्ग की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है, जिन्हें स्थानीय शब्दावली में *फइम्यूमै* या *कमेउमे* कहा जाता है और ऐसे लोग प्रार्थना, मंत्र-तंत्र अथवा स्वप्न-दर्शन के माध्यम से विभिन्न प्रकार की विपदाओं से छुटकारा पाने के उपाय बताते थे। एक समय तक के लिए ये विधि-विधान समाज के लोगों के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होते रहे। लेकिन कालांतर में इनकी उपादेयता धीरे-धीरे घटने लगी। *फइम्यू* या *कमेउ* के नाम पर अनेक क्रिया-कर्म बढ़ते चले गए, जिन्होंने धीरे-धीरे रूढ़िवादिता एवं अंधविश्वास का रूप ले लिया। धार्मिक क्रिया-कर्मों की संख्या इतनी बढ़ गई कि हर एक विपदा, छोटी-छोटी बीमारी आदि पर निरीह पशु-बलि को अनिवार्य कर दिया गया। यह मानव के डर का ही परिचायक है।

उल्लेखनीय है कि मणिपुर के तमेंगलोंग में स्थित कम्बीरोन गांव के मनीषी हाइपौ जादोनांग ने जेलियांगरोंग समाज में 'हेराका' नाम से धार्मिक सुधार का एक आंदोलन आरंभ किया, जिसने इनके

धार्मिक स्वरूप को पूरी तरह से बदलकर रख दिया, 'He started his activities as a *Mhu*⁵ in the interpretation of dream and acting as the medium between Tingkao Ragwang and human beings.' (Gangmumei, 2002) प्रो. कामै के अनुसार, इन्होंने भी फइम्यू के रूप में अपनी धार्मिक गतिविधियों को आरंभ किया था। लेकिन जब उन्हें यह लगने लगा कि समाज में व्याप्त धार्मिक कर्मकांडों की जटिलताओं के कारण लोगों को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है, तो उन्होंने हेराका आन्दोलन की शुरुआत की। समाज में बलि-प्रथा एवं अंधविश्वास इतना बढ़ गया था कि किसी भी फइम्यू के कहने पर किसी भी प्रकार की बलि देना अनिवार्य हो जाता, जो जनसामान्य के लिए बहुत बड़ा बोझ था। इसलिए उन्होंने धार्मिक सुधार आंदोलन के माध्यम से समाज का मार्गदर्शन करते हुए 'हेराका' नामक पंथ को जेलियांगरोंग समाज में स्थापित किया, जिसे बाद में पद्मश्री रानी गाइदिन्ल्यू ने आगे बढ़ाया। इस पंथ के अनुसार, इस संसार की रचना 'तिंग्वांग' ने की है और संसार के सभी प्राकृतिक उपादान तथा सजीव एवं निर्जीव सभी की रचना व विनाश उन्हीं के हाथों में है। इसीलिए जादोनांग ने कहा कि प्रकृति के विविध उपादानों की तुष्टि के लिए बलि प्रथा एवं कर्मकांडों का परित्याग करके केवल परमपिता परमेश्वर तिग्वान्ग की आराधना करनी चाहिए। इस प्रकार, इनके इस आंदोलन ने एक प्रकार से समाज में व्याप्त कर्मकांडों की जटिलता, धार्मिक संकीर्णता एवं रूढ़िवादिता को दूर करते हुए सामाजिक बोझ को कम किया। हेराका धार्मिक आंदोलन के पीछे एक कारण यह भी था कि उस समय तक जेलियांगरोंग समाज में ईसाई पंथ का प्रवेश हो चुका था। पौपेचेंग की धार्मिक जटिलताओं को मिशनरियों के द्वारा नकारात्मकता के साथ लोगों के सामने रखा जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप लोगों के मन में ईसाई पंथ में प्रचारित स्वर्ग की परिकल्पना के प्रति आकर्षण बढ़ा और धीरे-धीरे वे इस पंथ में मतान्तरित होने लगे। इस प्रकार, यहाँ की धार्मिक आस्था के साथ-साथ यहाँ की संस्कृति, जीवन पद्धति एवं जीवन-मूल्यों का भी लोग परित्याग करके पाश्चात्य जीवन दर्शन की ओर उन्मुख होते चले जा रहे थे। इसीलिए इन लोगों ने यह नारा दिया, 'Loss of Religion is Loss of Culture and Loss of Culture is Loss of Identity.'⁶ इन लोगों ने यह कहा कि धार्मिक आस्था एवं संस्कृति परस्पर अंतर्संबंधित हैं और किसी भी समाज की संस्कृति उसकी धार्मिक आस्था के आधारभूत ढाँचे पर ही निर्मित होती है। आज भी यह पंथ जेलियांगरोंग हेराका एसोसिएशन के नाम से जेलियांग समाज की पारंपरिक आस्था को बनाए रखने के लिए प्रयासरत है।

जेलियांग समाज में पौपेचेंग एवं हेराका धर्मावलंबियों के अतिरिक्त यहाँ के बहुसंख्यक लोगों ने ईसाई पंथ को अपनाया हुआ है। इस धार्मिक परिवर्तन ने जहाँ समाज में आधुनिक शिक्षा का प्रचार-

⁵ धार्मिक गुरु या पुरोहित (फइम्यू या कमेउ) के लिए मणिपुरी शब्द

⁶ Zeliangrong Heraka Association, NEI

प्रसार किया, वहीं लोगों के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन स्तर को बढ़ाने में मत्वपूर्ण भूमिका निभाया है। यहाँ इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि ईसाईकरण एवं पाश्चात्य जीवन के प्रभाव में यहाँ के सामाजिक एवं पारंपरिक धार्मिक ढाँचे धूमिल-से हो गए हैं, परंतु यह भी उतना ही सच है कि ईसाई मिशनरियों ने ही इन लोगों में आधुनिक शिक्षा का बीजारोपण किया, जिससे लोग शिक्षित हुए और उस पंथ को अधिक गौरवान्वित एवं आकर्षक बनाते चले गए। परिणामस्वरूप, जहाँ आज जेलियांग समाज ही नहीं बल्कि बहुसंख्यक नागा समाज भी इस पंथ का अनुयायी है, वहीं इन लोगों ने अपने आदिम पारंपरिक जीवन के उन मूल्यों में से बहुत कुछ खो दिया है जो इनकी अस्मिता के मूल तत्त्व कहे जा सकते हैं।

4.8 : भाषा सर्वेक्षण एवं संरक्षण

जेलियांग समाज में प्रचलित भाषा/बोली को जनजाति के नाम पर 'जेलियांग' भाषा के नाम से जाना जाता है। जिस प्रकार, इस जनजाति में लियांग्मै एवं जेमे दो समुदाय के लोग आते हैं, उसी प्रकार, इनकी भाषा को भी दो उप बोलियों के रूप में देखा जाता है। यद्यपि इन दोनों बोलियों के मूल शब्दों एवं वाक्य-रचना में कोई मूलभूत अंतर नहीं है और ये अपनी-अपनी बोलियों को बोलते हुए परस्पर एक-दूसरे की बातों को पूरी तरह समझ सकते हैं, फिर भी शब्दों तथा वाक्यों के सुर, आरोह-अवरोह में पर्याप्त अंतर अवश्य पाए जाते हैं। इन्हीं सुर व तान-अनुतान में भेद के कारण दोनों बोलियों को आसानी से पहचाना जा सकता है। इन्हीं सुर व तान-अनुतान में भेद के कारण कभी-कभी लोग परस्पर बातों को नहीं समझ पाते हैं। इनकी अपनी-अपनी बोली में अनेक नये शब्दों का ईजाद हो चुका है। इन्हीं नई शब्दावलियों के कारण कई बार बातों को समझना काफी कठिन हो जाता है। यदि जेलियांग भाषा की समृद्धता को देखना हो तो यहाँ के लोक गीतों को देखना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि जो भाव लोक गीतों में व्यक्त हुए हैं और जिन शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है, वे सामान्य बोलचाल की भाषा में नहीं मिलते। लोक गीतों की परंपरा और उनमें उपलब्ध विचार-गुंठित शब्दावलियों के व्यावहारिक पक्ष को प्रोत्साहित करके ही भाषा की समृद्धि को बनाए रखा जा सकता है। भाषा की परिवर्तनशीलता के कारण भी पुरानी शब्दावलियाँ लुप्त होती जा रही हैं और नई परिस्थितियों की सुविधाओं के अनुसार नए शब्द निर्मित होते जा रहे हैं।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए जेलियांग स्तर पर तो नहीं, पर जेमे एवं लियांग्मै के स्तर पर भाषा संरक्षण एवं संवर्धन की दृष्टि से अलग-अलग साहित्यिक समितियों की स्थापना की गई है, जिन्हें 'जेमे लिटरेचर समिति' और 'लियांग्मै लिटरेचर समिति' के नाम से जाना जाता है। इन्हीं समितियों

के तत्वावधान में जेमे और लियांगमै - दोनों समुदायों के शब्द-कोशों का निर्माण किया गया है। भाषा के साथ-साथ साहित्य को संरक्षित करने के उद्देश्य को लेकर ही लियांगमै फाउंडेशन, ग्लोबल लियांगमै, लियांगमै फोक सोंग्स, निगिंग चाम, जेमे न्यूज जैसे अनेक मंच बने हैं और वे काम कर रहे हैं। कुछ लोग वैयक्तिक स्तर पर भी कार्य कर रहे हैं, जिन्हें यू-ट्यूब, फेस-बुक तथा संचार के अन्य माध्यमों पर देखा जा सकता है। भाषा संरक्षण एवं उसके संवर्धन के संदर्भ में सरकारी स्तर पर विद्यालयी शिक्षा विभाग द्वारा प्राथमिक कक्षाओं में भाषा-शिक्षण के लिए पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण किया जाता है। उल्लेखनीय है कि जेमे एवं लियांगमै दोनों समुदायों की भाषा और साहित्य की देखरेख के लिए एक-एक भाषा-सहायक नियुक्त किए गए हैं। जेलियांग भाषा अधिकारी की निगरानी में दोनों उप-भाषाओं के प्रतिनिधि भाषा-सहायक का कार्य करते हैं। सरकारी तथा गैर-सरकारी सगठनों के अलावा भी कुछ लोगों ने व्यक्तिगत स्तर पर साहित्य और भाषा को संरक्षित करने के उद्देश्य से जेलियांग भाषा में कुछ जीवनियाँ तथा लोक-कथाएँ लिखी हैं, जिनमें रानी गाइदिन्त्यू- पजत तिन थ्यू खइबो (जीवनी- डॉ. तसिले एन. जेलियांग), न्दा राचम (लोक कथा- डॉ. तसिले एन. जेलियांग) और जेमे हेरासम साद्यक्पे बेनइ नापोइने लेउ (लोक कथाएं एवं बच्चों के गीत- इग्यानेइंग दइमे) उल्लेखनीय हैं।

4.9 : समाज और शिक्षा

जेलियांग समाज के लोगों में आज आधुनिक शिक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरी एवं अन्य गैर सरकारी प्रतिष्ठानों में कार्य करने वाले लोग पर्याप्त तादाद में मिलते हैं। उल्लेखनीय है कि आज से सौ वर्ष पूर्व तक यहाँ आधुनिक या औपचारिक शिक्षा जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। यह समाज आधुनिकता से दूर अपनी पारंपरिक जीवन शैली के अंतर्गत ही व्यावहारिक शिक्षा का आदान-प्रदान करता था। ईसाई मिशनरियों के आगमन के साथ ही औपचारिक शिक्षा के केंद्र आरंभ हुए। यह बात भी उल्लेखनीय है कि वे केवल प्राथमिक शिक्षा अर्थात् अक्षर-ज्ञान तक ही सीमित थे। लेकिन आधुनिक शिक्षा-पद्धति की शुरुआत अंग्रेजों के कारण ही हुई। जेलियांग समाज की अपनी पारंपरिक शिक्षा, सामाजिक शिक्षा केवल व्यावहारिक पक्ष तक ही सीमित थी, जिसके अंतर्गत कृषि कार्य, शिकार, युद्ध-नीति, सामाजिक व नैतिक नियम आदि आते थे। व्यावहारिक शिक्षा अभ्यासी और प्रायोगिक थी। कृषि कार्यों के अंतर्गत विभिन्न स्तर पर बड़े-बुजुर्ग अपनी संतति को जंगल की कटाई, सूखने पर उसे अग्नि देने, साफ-सफाई करके उसमें बीज बोने, निराई, पशु-पक्षियों से रखवाली, फसलों की कटाई से लेकर अनाज को भूसों से अलग करके अन्नागार में संग्रह करने आदि की शिक्षा देते थे। बड़े-बुजुर्ग अपने से छोटे एवं युवा वर्ग को साथ रखते थे, ताकि वे उनका अनुसरण करते हुए कार्यों का सम्पादन कर सकें तथा वे उसे सीख सकें। यही शिक्षा का माध्यम था, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती-चली आ रही थी। इसी

प्रकार शिकार करने एवं मछली पकड़ने के भी विभिन्न तौर-तरीके होते थे, जिन्हें युवा पीढ़ी अपने बुजुर्गों से सीखती और उसी को अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करती रही है। प्राचीनकाल में जब एक गांव का दूसरे गांव के बीच या अन्य जनजाति के बीच परस्पर युद्ध होता था, तब भी बड़े लोग आगे-आगे चलकर छोटों को दिखाते थे कि शत्रु के ऊपर किस प्रकार हमला किया जाए या किसी के आक्रमण का बचाव और प्रतिकार किस प्रकार किया जाए। इस प्रकार, केवल खेती, शिकार या युद्ध में ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ये लोग व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर ही परस्पर शिक्षण-प्रशिक्षण का कार्य संपन्न करते थे।

उपर्युक्त व्यावहारिक पक्ष के साथ-साथ जेलियांग समाज में विद्यमान खंग्चू एवं ल्युच्यू ऐसी दो सामाजिक संस्थाएं थीं, जो यहाँ की सामाजिक-पारंपरिक शिक्षा के उत्तरदायित्व को निभाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। खंग्चू में जहाँ पुरुष वर्ग अपने भावी जीवन में आने वाले सभी प्रकार के संघर्षों का सामना करने के लिए शिक्षा प्राप्त करते थे, वहीं ल्युच्यू में लड़कियाँ 'ल्युच्यू केजीपुई' और अपने बड़ों से नैतिक शिक्षा के साथ-साथ जीवनोपयोगी वस्तुएं बनाने का प्रशिक्षण प्राप्त करती थीं। खंग्चू तथा ल्युच्यू दोनों में ही कहानी कथन-श्रवण के माध्यम से जहाँ युवकों एवं युवतियों में नैतिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाता था, वहीं उन्हीं लोक-कथाओं में व्याप्त जीवन-मूल्यों को आत्मसात करके वे अपने संस्कारों का परिशोधन करते थे। इन्हीं कथाओं के माध्यम से जहाँ लोग अपनी समझ को बढ़ाते थे और सामाजिक जीवन में अपनाए जाने वाले व्यावहारिक कुशलता को प्राप्त करते थे, वहीं लोक-गीतों को सुनकर अभ्यास तथा स्मरण करने के कार्य भी इन्हीं खंग्चू एवं ल्युच्यू में करते थे। लोक गीतों एवं नृत्यों का किसी विशेष अनुष्ठान या उत्सवों में प्रदर्शन के पूर्व इन्हीं खंग्चू और ल्युच्यू में वे इनका प्रशिक्षण प्राप्त करते थे। मोरुंग में कहानी कथन-श्रवण एवं गीत-प्रशिक्षण के समानांतर ही हस्त-कलाओं का प्रशिक्षण भी चलता रहता था। खंग्चू में जब कोई बड़ा-बुजुर्ग कहानी या गीत सुना रहा होता था, तब उसी समय युवकजन घरेलू उपयोग की वस्तुओं का निर्माण कर रहे होते थे। बाँस की रस्सी छीलना, बेंत को छीलकर उनसे टोकरियाँ बनाना और छोटे बालकों को सिखाने का कार्य देर रात तक चलता रहता था। पुरुष वर्ग घरेलू उपयोग की वस्तुओं के रूप में *केल्वांग*, *न्खा*, *मेर्यूकांग*, *तेथ्यू*, *अकुन*, *अखुन-रियू*, *चेलिन्गिंग*, *मेरुई-रियक*, *च्युसिंग* इत्यादि बनाते थे। यहाँ के लोगों में बाँस की रस्सी का बड़े पैमाने पर प्रयोग होता है। परिवार के नए घर का निर्माण करने के लिए उन्हें अधिक मात्रा में बाँस के रस्सी की आवश्यकता होती थी। ऐसी स्थिति में, वे इन्हीं खंग्चू में बाँस लाकर रख देते थे, जिसे खंग्चू के सदस्य छीलकर उन्हें रस्सी का रूप दे देते थे। खंग्चू में ही बड़े-बुजुर्गों से सुनकर युवक जन

⁷ जेलियांग घरों में प्रयोग किए जाने वाली हाथ से बनी विविध वस्तुएँ

ग्रामीण पारंपरिक रीति-रिवाजों को जानते-समझते थे। तेथ्यू लेंगबो खंग्चू परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है, जिसे शिकार-पूजा कहा जाता है। इसमें प्रत्येक खंग्चू अधिक से अधिक शिकार प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने आराध्य की पूजा करते हैं और विशेष अनुष्ठान करके सभी लोग एक साथ शिकार के लिए जंगल जाते हैं। इसी प्रकार, खंग्चू परंपरा के अंतर्गत केबुई हामिन्बो/केबुई हद्वाक्बो आता है, जिसमें किसी विशेष अनुष्ठान पर खंग्चू के सभी सदस्य मिथुन को पकड़ने के लिए निकलते हैं। जिस खंग्चू का सदस्य मिथुन को पकड़कर उसे जमीन पर लिटाने में सफल रहता है, उसे विजयी घोषित किया जाता है। इसी प्रकार, चेगंग्खे सिंग पुन्बो अर्थात् चेगंग्खे त्योहार के समय अपने खंग्चू के लिए लकड़ियाँ लाने की परंपरा भी महत्वपूर्ण रही है। सूखी लकड़ियों के साथ-साथ हरे पत्तों को भी लाकर प्रत्येक खंग्चू के लोग आग जलाते हैं। यहां इस बात की प्रतिस्पर्धा होती है कि किस खंग्चू के आग का धुआँ कितनी ऊँचाई तक जा रहा है। ल्युच्यूकी में लड़कियाँ अन्य शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ सभी सूत कातने का महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। विशेष रूप से जाड़े की रातों में, जब लोग कृषि कार्यों से फुरसत पा चुके होते थे, तब देर रात तक वे सूत कातने का कार्य करती रहती थीं। शाल बुनने के कार्य तो दिन में अपने घरों में करती थीं, पर रात के समय अपने ल्युच्यू में ही उसके किनारे बनाने का कार्य करती थीं। इस प्रकार, खंग्चू एवं ल्युच्यू सामाजिक शिक्षा के महत्वपूर्ण केंद्र रहे हैं।

जेलियांग समाज में पारंपरिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए खंग्चू एवं ल्युच्यू के अलावा ग्रामीण प्रशासन के अंतर्गत चलने वाली सभाओं में लोग शरीक होते थे। वैसे तो, जब किसी विशेष मसले पर बड़े-बुजुर्ग बैठते थे, तब तो उनमें जनसामान्य या युवकों का उठना-बैठना नहीं होता था, पर जब किसी मामले पर सार्वजनिक सभा बुलाई जाती थी, तब उसमें सभी लोग उपस्थित रहकर बड़ों की बातों को सुनते और समझते थे। इस प्रकार, लोग सिंकू, अपईमै और कभी-कभी चेवांग की बातों को सुनकर गांव के कायदे-नियमों को जानने-समझने के साथ अलग-अलग प्रकार के मामलों में किस प्रकार निर्णय दिया जाए, इन बातों को भी सीखते थे। इस प्रकार, पुराने दिनों में भले ही औपचारिक शिक्षा की परंपरा न रही हो, लेकिन समाज में शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष का अत्यंत प्रभावशाली तंत्र विद्यमान रहा है।

संदर्भ सूची

Bareh, Dr. Hamlet (1970). Gazetteer of India, Nagaland, Kohima District, Govt. of Nagaland. Calcutta: Sree Saraswatya Press Ltd.

Bower, Ursula Graham (2002). Naga Path. Guwahati: Spectrum Publications.

Kamei, Gangmumei (2002). JADONANG- A Mystic Naga Rebel. Imphal: By Author.

- Kamei, Gangmumei (2002). Tribal land system: The case of the Rongmei in Ethnicity and social change. Imphal: By Author.
- Kamei, Gangmumei (2004). A History of the Zeliangrong Nagas. New Delhi and Guwahati: Spectrum Publications.
- McCulloch, William (1859). Account of the Valley of Munnipore and it's Surrounding Tribes > Accounts of the Zeliangrongs. Calcutta.
- Newme, Dr. Widonlule (2019). Tingwang Hingde. Guwahati: Zeliangrong Heraka Association, Northeast India.
- Newme, Dr. Widonlule (2022). Heraka Cuistomary Law. Haflong: Zeliangrong Heraka Association, Northeast India.
- Zeliang, N.C. (1998). Zeliangrong Heraka Preacher Handbook. Dimapur: Zeliangrong Heraka Council, Nagaland.
- परमार, वीरेन्द्र (2021). नागालैंड: लोकजीवन और संस्कृति. नई दिल्ली: मित्तल पब्लिकेशन.

पत्रिका:

- Dijinbou, Ab. ALIUH NAIH PAWAN- Annual Magazine: Liangmai Foundation. (December- 2021, Vol. 3). Pajeng Lura Npeng Phenjiu Kadenbo. 21-26.
- Newmai, Dr. Hunibou. ALIUH NAIH PAWAN- Annual Magazine: Liangmai Foundation. (December- 2021, Vol. 3). Liangmai Chengh. 1-13.

वेब ओपेक:

- Kamei, Budha (2015). Zeliangrong : Social Structure.
<http://indpeadia.com/ind/index.php/Zeliangrong: Social structure>
- Pamei, Kendy (20-Jun-2017). Khangchiu-Liuchiu: Traditional Institution of Liangmai, Part-1.
<http://e-pao.net>epSubPageExtractor>.
- Riamei, Dr. Gaikhamsin (2018). Social Structure of Zeliangrong Society, part-1.
<https://rongmeiencyclopedia.wordpress.com/2018/08/03/social-structure-of-zeliangrong-society/>

अध्याय-5

जेलियांग जनजाति -लोक गीत एवं नृत्य

5.1 स्वरूप या आकार पर आधारित लोकगीत : लुइथेंग (लम्बे गीत) एवं छोटे गीत

5.2 गाए जाने के समय/आयोजन पर आधारित लोकगीत:

5.2.1 कृषिकार्य आधारित गीत

5.2.2 त्योहार-उत्सवों के गीत

5.2.2.1 मेतुईलूई (हर्षोल्लास के गीत)-चेबमदुन्सलुई, रडालुई

5.2.2.2 चेक्यूलूई (यजमान प्रशस्ति के गीत)

5.2.2.3 केनूई लूई या रमालूई (विदाई के गीत)

5.2.2.4 केल्वांग रुन लूई (गाँव भ्रमण गीत)

5.2.3 विवाह के गीत

5.2.4 प्रार्थना गीत (कहुम-लुई या ककेलुम-लेउ)

5.2.5 चेलिन लुई (नृत्य के गीत)

5.3 भाव-आधारित लोकगीत

5.3.1 मेराई थ्यू लुई (प्रेम गीत)

5.3.2 चेगेंग/तेथुन लुई (प्रशस्ति के गीत)

5.3.3 वीर भावों से युक्त गीत

5.3.4 मौसम को दर्शाने वाले भावों के गीत

5.3.5 चुन्सित लुई (शोक गीत)

5.3.6 भक्ति परक भाव के गीत

5.4 गायकों की संख्या पर आधारित गीत

5.4.1 एकल गीत

5.4.2 युगल गीत

5.4.3 सामूहिक गीत

5.5 गायकों की अवस्था(आयु) आधारित गीत

5.5.1 सर्वसामान्य के गीत

5.5.2 वृद्धों के द्वारा गाए जाने वाले गीत

5.5.3 बच्चों के लिए/बच्चों के द्वारा गाए जाने वाले गीत

5.6 गायकों के लैंगिक आधारित गीत: पुरुष गीत एवं स्त्रियों के गीत

5.7 जेलियांग लोकगीतों के गायन के विविध रूप

5.7.1 कामेतुइबो / कडेबो / कामेथाबो / चेलिन लुइथ्यू

5.7.2 चेहुत लुइथ्यू

5.7.3 लइसुन्बो

5.7.4 चेलुइ ज्याबो

5.7.5 चेलुइ का-अबीबो

5.7.6 चेर्यू तौबो लुइथक

5.8 जेलियांग लोक-नृत्य

5.8.1 उत्पत्ति

5.8.2 नृत्य के प्रकार

5.8.2.1 मेतुई लिन/रडा लिन

5.8.2.2 कहुम लिन (चेरा लिन)

5.8.2.3 चेर्यू तौबो

अध्याय-5

जेलियांग जनजाति - लोक गीत एवं नृत्य

लोकगीतों को लोकसाहित्य का प्राण कहा जाए, तो अतिशयोक्ति न होगी, क्योंकि जिस प्रकार की भाव-प्रगाढ़ता एवं भाव प्रवणता लोक गीतों में अपने गहराई एवं विस्तार के साथ पाई जाती है, उसी प्रकार किसी अन्य विधा में नहीं पाई जाती है। जेलियांग जनजाति में लोककाथाएं पर्याप्त संख्या में कही-सुनी जाती रही हैं। फिर भी जिस भाव-गंभीरता को गीतों में व्यक्त किया गया है, उसी प्रकार की गहराई लोक-कथाओं में नहीं मिलती है। लोकगीतों की दृष्टि से जेलियांग लोकसाहित्य अत्यंत समृद्ध एवं संपन्न माना जाता है। इनमें एक ओर जहां भावगांभीर्य की महत्ता है, वहीं अत्यंत विस्तृत क्षेत्र में जीवन के अनेक अनुभवों को लोक ने पिरोया हुआ है। गीतों को गाते हुए लोग अपने जीवन के अनेक अछूते पहलुओं को अनुभव करने लगते हैं। जेलियांग जनजाति के लोकगीतों को विभिन्न आधारों पर कई प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, जिन्हें निम्न स्तरों पर देखा जा सकता है –

- स्वरूप या आकार के आधार पर
- गाए जाने के समय / आयोजन के आधार पर
- भाव के आधार पर
- गायकों की संख्या के आधार पर
- गायकों की अवस्था के आधार पर
- गायकों के लैंगिक आधार पर

जेलियांग जनजाति में गाए जाने वाले विभिन्न गीतों को उपर्युक्त ढंग से अथवा अन्य किसी भी प्रकार से कभी किसी ने वर्गीकृत करने का प्रयास किया हो, ऐसा आज तक पता नहीं चला है। अतः उपर्युक्त वर्गीकरण को परंपरागत रूप से क्रमबद्ध एवं सटीक वर्गीकरण तो कहा नहीं जा सकता है, परंतु शोधकर्ता को लोगों से साक्षात्कार के दौरान जिस प्रकार का अनुभव प्राप्त हुआ है या कुछेक पुस्तकों के आधार पर जो गीत प्राप्त हुए हैं, उन्हें ही आधार मानकर गीतों के वर्गीकरण का स्वरूप तैयार किया गया है। डा. तासीले जेलियांग के द्वारा 'लियांग्मै लुई' अर्थात् 'लियांग्मै' लोगों के गीत में गीतों के कुछ प्रकार को उद्धृत किया गया है, परंतु उसमें सभी गीत नहीं हैं। उसमें गीतों के सीमित एवं कुछ वर्ग को ही लिया गया है। अतः इस शोध में शोधकर्ता का यह प्रयास रहा है कि जेलियांग जनजाति में गाए जाने वाले सभी लोकगीतों को कुछ उदाहरणों के माध्यम से समावेशित किया जाए। अतः इनके लोकगीतों की समृद्धि को जानने के लिए उपर्युक्त बिंदुओं के आधार पर निम्न रूप में व्याख्यायित किया जा सकता है –

5.1 : स्वरूप या आकार पर आधारित लोकगीत :

गीतों के स्वरूप या आकार से यहां तात्पर्य गीतों की लंबाई से है। जेलियांग लोकगीतों में आकार के आधार पर लघु एवं लंबे गीत प्राप्त होते हैं। यहां ध्यातव्य है कि लोक में गाए जाने वाले अधिकांश गीत छोटे ही होते हैं। इसलिए इन्हें छोटे गीत या इसके विशेषण युक्त कोई नाम प्राप्त नहीं है। दूसरी ओर, लंबे गीतों को लोक ने विशिष्ट नाम 'लुईथेंग' से अभिहित किया है, जिसका शाब्दिक अर्थ भी 'लंबागीत' ही होता है। यही कारण है कि जब इन्हें आकार के आधार पर लुईथेंग या लंबा गीत नाम दिया हुआ है, तो शेष गीतों को 'छोटे गीत' नाम क्यों न दे दिया जाए। यद्यपि इन छोटे गीतों को आकार के आधार पर नाम भले न दिया गया हो, पर वर्गीकरण के अन्य आधारों पर इनके विविध नाम देखे जा सकते हैं, जिनसे विशेष गीतों की पहचान हो सकती है। सच कहा जाए तो इन्हीं छोटे गीतों के कारण जेलियांग लोकगीत इतनी समृद्धि व प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं। यहां यह भी स्पष्ट कर देना उचित होगा कि जब तक किसी भी गीत के उदाहरण में 'लुईथेंग' नाम न दिया जाए, वे सभी छोटे गीतों के अंतर्गत ही माने जाएंगे।

जेलियांग जनजाति के लोकगीतों में प्रचलित 'लुईथेंग' अर्थात् 'लंबे गीत' भी कुछ तो अतिदीर्घ होते हैं और कुछ आकार में अपेक्षाकृत लघु होते हैं। परंतु जिन गीतों के लिए छोटे या लघु गीत नाम दिये गये हैं, उन्हें गायन के समय कई बार उनकी आवृत्तिकी जाती है, क्योंकि एक बार के गायन से उनमें जो भाव प्रवणता होती है या उनमें जोश होता है- वह उत्पन्न नहीं होता है। गीतों की आवृत्तिके संदर्भ में यहां, यह स्पष्ट कर देना अपेक्षित होगा कि जिस प्रकार हिन्दी प्रदेशों के फगुआ या होली के गीतों में गीत के किसी पंक्ति विशेष को ही बार-बार दोहराया जाता है, वहीं जेलियांग गीतों में पूरे गीत को बार-बार गाया जाता है। इसके विपरीत भले ही अपेक्षाकृत अन्य गीतों की तुलना में आकार में छोटा हो, गायन में लुईथेंग कहे जाने वाले गीतों की आवृत्ति बार-बार नहीं की जाती है। गायन में लुईथेंग एवं लघुगीतों के गायन पद्धति में यही सबसे बड़ा अंतर है। छोटे गीत जहां विभिन्न अवसरों पर अलग-अलग ढंग के आयोजनों में गाए जाते हैं, वहीं लंबे गीत प्रायः शांत होकर इत्मीनान से बैठकर उनका रसास्वादन करते हुए सुने-सुनाए जाते हैं। ऐसे सुनने- सुनाने पर ही उनमें व्याप्त भावगांभीर्य तथा रसत्व का साधारणीकरण हो पाता है। लंबे गीतों अर्थात् लुईथेंग की यह भी विशेषता है कि इनके आदिगायक प्रायः निश्चित होते हैं अर्थात् ये गीत किसी एक गायक के नाम से प्रचलित होते हैं। उल्लेखनीय है कि उसी ने अपने जीवन में घटित घटनाओं को आधार बनाकर उसमें अपनी कल्पना शक्ति के प्रयोग से गीतों की रचना की है। इन गीतों में वह प्रायः अपना नाम भी कहीं न कहीं जोड़ देता है, ताकि वह गीत किसी अन्य के नाम से प्रचलित न हो जाए। ग्रामान्तर एवं क्षेत्रान्तर के साथ-साथ किसी एक गीत में भी

भेद पाया जाता है। परंतु इन भेदों के होते हुए भी आदिगायक का नाम हमेशा प्रत्येक संस्करण में प्राप्त होता है, हालाँकि कभी-कभी उस नाम में भी स्थानीय प्रभाव के कारण कुछ बदलाव देखा जाता है। ग्राम एवं क्षेत्र के बदलने के साथ गीतों में भेद पाए जाने के पीछे यह माना जाता है कि किसी गीत को गाते हुए जब कोई व्यक्ति बीच की कड़ी को विस्मृत कर जाता था, तो वह अपनी ओर से उस कड़ी को पूरा करने के लिए कुछ अलग ही पंक्तियाँ उसमें जोड़ देता था। इन 'लुईथेंग' के बारे में चर्चा करते हुए यह भी ध्यान में आता है कि किसी-किसी आदि गायक ने अपने जीवन के एक विशिष्ट अंश को विशेष ध्यान देकर उक्त गीत की रचना की है, तो किसी ने अपने जीवन के कई प्रसंगों को जोड़ कर उसमें विविध गतिविधियों का भी वर्णन करते हुए अपने गीतों की रचना की है। ऐसे में, इन गीतों को हिन्दी प्रदेशों में प्रचलित 'गाथाओं' के समीप देखते हुए लोक गाथा या आख्यानक गीति का नाम भी दिया जा सकता है। साथ ही, कुछ विशिष्ट प्रसंगों पर आधारित गीतों को खण्ड काव्य के जैसा नाम भी दिया जा सकता है। जेलियांग लोक में प्रचलित लुईथेंग के आदि गायकों में गाइरियम्रांग, कइवींग, जेंगलिनांग एवं चौगाइंग जैसे अत्यंत प्रचलित नाम हैं, जिन्होंने अपने जीवन पर आधारित गीतों की रचना की है। कइवींग के बारे में तो यह कहा जाता है कि उसने एक शतक लुईथेंग की रचना की थी। आज भी मौखिक रूप में ही सही, लोक में इनके दर्जनों गीत प्रचलित हैं। उदाहरण के रूप में, इन्हीं का एक अपेक्षाकृत छोटे गीत को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है-

अरम न्यम निंग तू सौजे रल्यू मी, संगलम केवांग मैफौ साये,
 तेसंगल्यू अरम मी केवांग मैफौ वी ये।
 तेसिंग-तेदुई-चेगन-चेगुम, म्पुईमै तिन जेंगलि ना जे लू रैनू,
 रेंगुंग पेबम केजिंग तु सौजे, जाइरिंग खा चपेउ लुंगबाम लाक,
 वांग न्चुन खाय, केथ्यू कुम्मे सइने आलम रचुंग कबलौ।
 कइवींग खिन नीये केबुइ हाये जे मीमेंग काम नेई।
 न्मुइ-प्यू ने चेखौचुन फुंग, आमेरइ वांगरौ जे लिन खाय,
 न्दा नांग रल्यू लुंग केबुइ हाये, नांग कामेराइबो की,
 मीनी कुम्सई, अख्वा लेइपुइ चुन्तम ये।
 तुनौ पा रमिंग सिङ्गिन म्वांगज्यू वांग आलुंगसीये,
 चेर्यू पुमिन तिगबांग केबिन रित ले,
 न्गा ले लौ ल्युना मै।
 चलात मेनुन नाजे ह्याम, नबुम्कक न्जुंग्या है डुत लाक ये,
 जे दिन रगी केबम तु अलुंग सी।

न्बीन चेमासुन खाक ये मेखेउ ये मैतु दीतू,
 न्खीन-नरीन थ्यू नांग नबुम तु दीनी सै, तेम्यू साइने दीलौ,
 रखांग न्बीन मेखेउ ये साये।
 रम्तिंग तेम्यूलुंग नबुम्दी बाम्जे डौमक ये अलुंगमाक,
 मेराइ नबुम्तू पी कुइहु जुत ये, इने गाइ, आमेसिन थ्यू
 केकिन लुंग देदौगा दीलौ।
 अलुंग माक जुजे, तेतू केदी ह्यूगा आमेक दुइ न्काइ,
 देदौगा दीलौ अचुंग काब।
 हाइ जुत-जुत जे ता लुइमा, सिंग्खुन लाम वांग केरा माई गु दीये।
 न्युन-न्या सौ न्वांवांग केकिन नालुंग गाइजीये जे,
 आहू कामेजिन्ये तू मेंग पुइ रुन जे रम्नान्ये,
 अल्यु हाइलाम मेरीवांग राइ लौ।(Liangmai Foundation)

प्रस्तुत गीत कइवींग के द्वारा अपनी प्रेयसी की स्मृति में रचित माना जाता है। गीत में उसने अपना नाम तो जोड़ दिया है, परंतु प्रेयसी का नाम कहीं नहीं आया है। संभवतः लोक-लाज से अपनी प्रेयसी को बचाने के लिए ही उसने केवल अपने नाम का उपयोग किया हो, ऐसा लगता है। गीत के आरंभ में उसने अपने गांव 'न्यमनिंग' की प्रशस्ति में कहा है कि हमारा गांव जलवायु की दृष्टि से हो या फिर खाद्य वस्तु शाक-सब्जियों की दृष्टि से- किसी भी अन्य गांव से अच्छा है। पानी लाना, लकड़ियाँ एकत्र करना एवं जंगल से शाक-सब्जियों को एकत्र करने की दृष्टि से इसके जैसा कोई अन्य गांव नहीं है। इसलिए जो भी लड़की मेरे गांव 'न्यम' को छोड़कर अन्य गांव में ब्याही जाती है, उसके भाग्य फूटे हुए हैं और जिस लड़की का ब्याह इस गांव में होता है, वह सबसे सौभाग्यशाली है। जो भी लड़की यहां से जाकर किसी अन्य गांव में शादी करके बसती है, उसकी हालत ठीक उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार मछली को तालाब से निकालकर बाहर फेंक देने पर होता है। इसलिए वह अपनी प्रेयसी से कहता है कि तुम ब्याह कर यहां से जा तो रही हो, पर जब तुम्हें पीड़ा होगी, तभी मुझे याद करोगी। दूसरे अंतरे में उसने एक प्रकार से लड़की की माँ को ताना मारते हुए कहा है कि कइवींग निर्धन है, इसलिए 'मिथुन' के लिए अपनी बेटी को पराये गांव में ब्याह रही हो। अपनी जवानी के उन दिनों को याद करो, जब बिना मिथुन लिए ही तुम भी अपने प्रेमी के साथ जीवन बिताने के लिए तैयार थी। इसलिए अपनी बेटी के मन की बात को जानो और उसे दूसरे गांव में मत ब्याहो। इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कइवींग की प्रेयसी भी चाहती थी कि उसका ब्याह गांव में ही उसी के साथ हो जाए, पर माता-

पिता चाहते यही हैं कि उसकी बेटी सम्पन्न परिवार में ब्याही जाए। इसलिए कइवींग को अपनी प्रेयसी से बिछुड़ना पड़ा। गीत के पहले अंतरे में जल, लकड़ी, शाक-सब्जियों की उपलब्धता वाली बातों से स्पष्ट है कि जेलियांग समाज में लड़कियाँ या औरतें ही घर में पानी लाने, जलाने की लकड़ियों को एकत्र करने तथा जंगलों से शाक-सब्जियों को खोजने का कार्य करती हैं। यदि किसी गांव में इन चीजों की कमी हो तो उनके जीवन का गुजारा मुस्किल माना जाता है।

प्रस्तुत गीत के बीच की अंतराओं में गायक ने अपनी प्रेयसी के साथ गांव में बिताए हुए दिनों का बड़ा ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया है। इन्हीं पंक्तियों में कुछ ऐसी पंक्तियाँ भी हैं, जिनमें दोनों के एकांतवास तथा प्रणय संबंधी बातों का उल्लेख किया गया है। इन्हें यदि सीधे-सीधे वाक्यों में बोला जाए, तो अश्लील माना जाएगा। परंतु ध्यान देने की बात यह है कि जेलियांग जनजाति के अधिकांश लोक गीतों में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग एक सामान्य-सी बात होती है। फिरभी गीतों में अभिव्यक्त इन भावों को समस्त समाज की मानसिकता के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए क्योंकि अधिकांश गीतकार या आदिगायक मनोरंजन के उद्देश्य से ही अपने गीतों में ऐसे रसिकपूर्ण बातों का उल्लेख कर जाते हैं। अपने गीत की अंतिम पंक्तियों में कइवींग कहता है कि वह तो यह मान बैठा था कि इन मेल-मिलाप से परिपूर्ण दिनों के साथ ही जीवन बिता दिया जाएगा, पर अंत में पता चला कि वह तो किसी परदेशी के जीवन को सँवारने के लिए चल दी है। इस प्रकार, यह एक अपेक्षाकृत छोटा लुईथेंग है, जिसके आदि गायक या रचनाकार मणिपुर के तमेंगलोंग जिले में स्थित 'न्नयम' गांव का माना जाता है। गीत के आकार के आधार पर लंबे एवं छोटे गीतों की बात हो गई है, पर यहां छोटे गीतों के बारे में अलग से चर्चा न करते हुए गीतों के वर्गीकरण के अगले आधार पर चर्चा करते हैं। जैसा पहले कहा जा चुका है कि छोटे गीत, गीतों के हर प्रकार में आएंगे, अतः उनकी चर्चा उन बिंदुओं के आधार पर की जाएगी।

5.2 : गाए जाने के समय/आयोजन पर आधारित लोकगीत

जेलियांग जनजाति में प्रचलित लोक गीत विभिन्न अवसरों एवं समय के अनुसार भी अपनी विशिष्टताओं के साथ गाए जाते हैं। जीवन के विविध आयामों के अनुसार अलग-अलग समय पर या विभिन्न क्रिया-कलापों पर आधारित लोकगीत गाए जाते हैं। इस आधार पर यहां प्रायः छोटे गीतों को ही लिया जाता है। वैसे तो, लंबे गीतों को गाने के लिए आराम से बैठकर इत्मीनान से सुनने-सुनाने की बात कही जाती है। इस दृष्टि से यह कहा जाना उचित है कि लंबे गीत किसी विशिष्ट क्रिया-कलापों से युक्त न होकर बैठे-बिठाए सुने-सुनाए जाते हैं। इसके विपरीत, जब विविध अवसरों पर गाए जाने वाले छोटे गीतों की बात हो, तो उन्हें गाने के लिए या गाते समय जीवन की किसी न किसी क्रियाशीलता का होना

अपेक्षित माना जाता है। इसलिए इस आधार पर यदि गीतों का वर्गीकरण किया जाता है, तो उनके नामकरण भी उन्हीं गतिविधियों या क्रियाशीलता पर आधारित होते हैं। उपर्युक्त आधार पर यदि गीतों को विभाजित किया जाता है, तो प्रमुख रूप से इनके निम्न प्रकार हो सकते हैं-

- कृषिकार्य आधारित गीत – बोवाई गीत (तेतिनलूई), निराई गीत (अमालूई)
- त्योहार-उत्सवों के गीत – हर्षोल्लास (मेतुईलूई), यजमान प्रशस्ति (चेक्यूलूई), विदाई गीत (केनुईलूई)
- विवाह के गीत – चुनौती भरे गीत, हर्षोल्लास के गीत, विदाई के गीत
- प्रार्थना गीत (हेरालेऊ या कहूम लुइ)
- नृत्य के गीत – चेलिनलूई

5.2.1 : कृषिकार्य आधारित गीत :

कृषिकार्य करते हुए गाए जाने वाले गीतों को कृषि-गीतों के अंतर्गत रखे जाते हैं। जेलियांग जनजाति की सामाजिक-संरचक तत्वों में चेहुत या हेगुत कृषि-कार्यों पर आधारित एक महत्वपूर्ण सामाजिक अंग है। जब कृषि-कार्यों में चेहुत सक्रिय होता है, तो लोग कार्य के साथ-साथ गीत के लय को मिलाते हुए सामूहिक रूप में ऐसे गीत गाते हैं। कृषि-कार्य के साथ-साथ गीतों को गाने के पीछे सबसे महत्वपूर्ण कारण यह है कि इनके गायन से कार्य की नीरसता को दूर किया जाता है और कार्य करते हुए लोगों में और भी उत्साह एवं जोश आ जाता है। इसके साथ ही, यह भी महत्वपूर्ण है कि यदि कृषिकार्य करते हुए सामूहिक रूप में गीत गाए जाते हैं, तो उसमें थकान का भी अनुभव नहीं होता है, क्योंकि गीतों में व्यक्त भाव एक प्रकार से कृषकों को रोमांचित करने वाले होते हैं, जिनके अनुभव से शारीरिक एवं मानसिक सहनशक्ति प्राप्त होती है। जेलियांग समाज में प्रचलित झूम-कृषि पद्धति के अंतर्गत जंगल की कटाई, उन्हें आग देकर सफाई करना, बीजारोपण, निराई, फसलों की कटाई एवं अनाज को भूसे से अलग कर ढुलाई करना आदि विभिन्न चरण होते हैं। परंतु जहां तक कृषि-गीत गाए जाने की बात है, वे मुख्य रूप से दो चरणों- बीज की बोवाई एवं निराई के समय ही गाए जाते हैं। वास्तव में, चेहुत या हेगुत कहा जाने वाला कृषक- युवक-युवतियों का समूह भी इन्हीं दो चरणों में अधिक सक्रियता से भाग लेता है। यही कारण है कि सामूहिक रूप में होने के कारण इन चरणों में गीत अधिक गाए जाते हैं। इन दो चरणों में गीत गाने के पीछे एक कारण यह भी है कि बोवाई एवं निराई में गीतों के लय एवं गति के अनुसार जोश भरते हुए कार्यों की गति को भी बढ़ाया जाता है, जबकि जंगल की कटाई, फसल की कटाई या अनाज की ढुलाई जैसी प्रक्रियाओं को गीतों के लय के साथ समंजित नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि जेलियांग कृषि-गीत प्रायः बोवाई (तेतिन लुई) एवं निराई

(अमा लुई) के ही गीत होते हैं। वैसे तो गांवों में कृषि कार्य के इन दो चरणों में गाए जाने वाले अलग-अलग एवं निश्चित गीत होते हैं। परंतु गीतों के भाव के अनुसार, उन्हें बोवाई या निराई के गीतों के रूप में विश्लेषित करना मुश्किल होता है। किसी-किसी गीत में जलवायु-परिवर्तन, मौसम के अनुसार प्रकृति के रूपों में बदलाव तथा प्रकृति में कीट-पतंगों एवं पशु-पक्षियों के बोलने आदि के वर्णन से कुछ हद तक यह पता लगता है कि अमुक गीत बोवाई के समय का है या निराई के समय का। इस प्रकार, गीतों में व्यक्त भावों के आधार पर बोवाई या निराई के गीतों का वर्गीकरण तो नहीं किया जा सकता है, पर इतना तो स्पष्ट है कि दोनों ही प्रकार के गीतों के लय कृषि कार्य में हाथों की क्रियाशीलता के अनुकूल होते हैं। यहां कृषिकार्य संबंधित कुछ गीतों के उदाहरण के माध्यम से इन्हें और स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है—

आराम मैना यो लुतिन तू मेरन लौ,
लुतिन थ्यू केमक बोराम इ वांग लुंग या,
तेसांग अवन्जेंग, न्की खौलम, नीन लम प्यू मेंग दे,
लुतिन थ्यू मक्को केत्यू बोराम हा दी ये।¹

अर्थ- हे मेरे देशवासियों (ग्राम वासी)! कृषि-कार्यों पर जोर दो। यदि कोई यह सोचता है कि ऐसे जगह जाकर रह लेगा, जहां खेती जैसे मेहनत के कार्य न हों, तो वह भ्रम में है, क्योंकि हमारे गांव के बाहर पड़ोसी गांवों न्कीमै, खौमै या फिर नीनमै, कहीं भी खोजते हुए जाओगे, तो भी कहीं भी ऐसी जगह नहीं मिलेगी, जहां बिना खेती किए लोग खाते हों।

कृषि कार्य से संबंधित इस गीत में खेती के कार्यों पर जोर देने या मेहनत को महत्व देने की बात कही गई है। यहां जेलियांग से इतर अन्य तीन उप जातियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें **न्कीमै** (मणिपुरी), **खौमै** (मैदानी लोग) एवं **नीनमै** (अंगामी) का नाम आया है। इससे यह पता चलता है कि प्राचीन काल से ही जेलियांग जनजाति के लोगों के संपर्क में ये तीन उप जातियाँ भी रही हैं। इसलिए गीतकार ने इन लोगों के नाम का हवाला देते हुए यह कहा है कि यदि इनके यहां भी चले जाओ, तो भी बिना खेती किए खाने वाला कोई भी देश नहीं मिलता। उपर्युक्त तीन उप जातियों के प्रसंग के साथ यहां यह भी उद्धरणिय है कि प्राचीनकाल से ही अंगामी लोग जेलियांग क्षेत्र में कभी व्यापार के लिए या कभी उन पर आक्रमण आदि के लिए आते-जाते थे। उल्लेखनीय है कि अंगामी आक्रमण से ही जेलियांग लोग सबसे अधिक डरे हुए रहते थे। इसी प्रकार 'न्कीमै' अर्थात् मणिपुरी लोग अपने राजवंश की परंपरा के कारण जेलियांग लोगों तक उनकी प्रसिद्धि पहुँची थी। 'खौमै' का अर्थ उन सभी लोगों से लगाया

¹Azanbo Films, You tube. गायक- अज़न्बो न्बुंगा।

जाता है, जो नागा जनजाति के न होकर मैदानी क्षेत्रों में रहने वाले कछारी, असमिया जैसे लोग होते हैं। गीतों में इनके प्रसंग से यह पता चलता है कि बहुत पुराने दिनों से ही किसी न किसी व्यापारिक या आर्थिक लेन-देन के कारण ये परस्पर संपर्कित थे।

अराम मैना यो, संग्पूचेंग थिन्लुंग ला साई,
केवी मेनिंग दौलाक,
तेसंग-सिंखुन मैपू केदीमा ल्यक केत्यू मैचेंग हाइ तम ये,
न्मुइ-पू चेंग हाइ खोइ तेन्या थिन केदात मक्जे लुंग लौ,
अराम मै केसा जू डौ चेंग माक गैइ।²

अर्थ- हे मेरे देशवासियों ! अगर पराए परंपरा को अपनाकर अपनी खेती की परंपरा को छोड़कर जीवन जीने की सोचते हो, तो अपने लिए भला न होगा। उन लोगों की रीति एवं परंपरा बिल्कुल अलग है और वे तो दूसरों को ठग कर खाने वाले लोग हैं। इसलिए अपने पुरखों की परंपरा पर जीते हुए उन्हें जीवित रखो, तभी तो हमारे देश (गांव) का भला होगा।

इस कृषि गीत के माध्यम से लोक ने या गीतकार ने अपने लोगों को कृषि-कार्यों से पलायन को रोकने की बात कही है। कभी-कभी गांवों में ऐसी परिस्थितियाँ भी बनती है कि लोग गांव के पारंपरिक खेती-कार्य को छोड़कर नगरों की ओर मजदूरी करने या व्यापार आदि करने के उद्देश्य से चले जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में, अपने गांव के प्रति लगाव को बनाए रखने के लिए लोक ने इसकी रचना की होगी। उसने यह भी कहा है कि व्यापार का अर्थ ठगने का धंधा है और यह हमारी पारंपरिक रीति-रिवाज में नहीं आता। इसलिए हम इस प्रकार की ठगी के कार्यों से अपने जीवन को सुचारु रूप से नहीं चला सकते। इस प्रकार, इस गीत के माध्यम से पुराने जमाने के लोगों के आदर्शपूर्ण जीवन और ईमानदारी को गीतकार ने दर्शाया है।

इ लू केनी तू पुई, बुइजाइनिंग पुन,
अराम न्फूल्वांग वांग न्खांग,
न्पी पिन दन्थिन अल्यू यो,
केजीहा ल्यक येइजे पिजे,
अखांग चेलिन तू लौ,
अगुन सुदौ मेखा ये।³

² Azanbo Films, You tube. गायक- अज़न्बो न्बुंग।

³ Azanbo Films, You tube. गायक- पिंद्दीन न्बुंग।

अर्थ- अपनी प्रेयसी के संग गांव के बुड़ाइनिंग पार करते हुए गांव के निकट न्फूल्वांग तक आते ही 'न्पी' का फूल दिखाई दिया। मैंने उसे तोड़कर प्रेयसी से कहा, लो प्रिय ! यह 'केजीहा' का चावल है । यह सुन प्रेयसी ने कहा, हे प्रिय ! उपहास मत करो। अभी इसका समय नहीं हुआ है।

इस कृषि-गीत में कृषि कार्य का जिक्र तो नहीं है, पर इसमें युवकों एवं युवतियों के मनोविनोद को दर्शाया गया है। यहां कृषि-कार्य के बाद जब घर लौटते हैं, तब किसी युवक के द्वारा अपनी प्रेयसी से राह में मनोविनोद को दर्शाया गया है। यहां बुड़ाइनिंग अर्थात् वह स्थान, जिसके तालाब में मिथुन पानी पीते हैं, न्फूलवांग अर्थात् न्फूबांग (एक विशेष प्रकार का स्थानीय वृक्ष) से भरा हुआ पहाड़ का जिक्र लोक में प्रचलित स्थान विशेष को दर्शाता है। साथ ही, न्पीपिन (अर्थात् न्पी का फूल) जो दूर से देखने में चावल के सफेद दाने-से दिखते हैं, उन्हें दिखाते हुए युवक प्रेयसी से कहता है कि लो, नये फसल का यह चावल है। इस पर प्रेयसी उससे कहती है कि परिहास मत करो, अभी उसका समय आया ही कहाँ है! यहां ध्यातव्य है कि लोक में 'केजीहात्यक' अर्थात् जल्दी परिपक्व होने वाले धान की एक नस्ल का भी प्रयोग होता था। जिन परिवारों में बीते वर्ष सामान्य धान की उपज कम होती थी और यह चिंता रहती थी कि वर्ष भर वह धान उनके लिए पर्याप्त न होगा, ऐसे लोग धान की इस नस्ल को बोते थे, ताकि जब वह फसल जल्दी पककर तैयार हो जाए तो घर के लोगों के लिए अन्न प्राप्त किया जा सके। परंतु उल्लेखनीय है कि इस धान को अधिक दिनों तक संग्रह करके रखा नहीं जा सकता। इसलिए सामान्यतः इसका प्रयोग लोग कम ही करते हैं।

तिंग नैमिक जे कलिए,

अरम मैष्यू लुंग यौ, लुतिन तिंग हा न्ता ये,

कदी मलइ मा, तिंग कू जे कली लौ,

अल्यू थुम्लुम लुलाक त्रेइ,

लापुई तिंग रा थेंग ये, केसा कीरा मितू लौ।⁴

अर्थ- हे मेरे गांव के लोगों, सूरज अपनी स्थिति बदल रहा है और ऐसा लगता है कि बीजों के बोने का समय अब जा रहा है। धरती ने अपनी जगह बदल ली है या फिर आसमान साफ हो जाने के कारण सूरज का तपन बढ़ गया है। इसलिए मेरे चेहुत की युवतियों, सोच-समझकर अपना जीवनसाथी चुनो, क्योंकि 'लापुई तिंग' अर्थात् औरत का जीवन काल बहुत लंबा होता है।

प्रस्तुत कृषि गीत बोआई के समय गाया जाने वाला गीत है। गीत के भाव से पता चलता है कि बोआई के अंतिम दिनों में इसे गाया जाता है, क्योंकि इसमें गर्मी के अधिक बढ़ जाने के कारण लोगों

⁴ कृषि गीत , न्वांगराम गांव के लोगों द्वारा प्रस्तुत।

को जल्दी से खेतों में बीज बो देने का आह्वान किया गया है। अधिक स्पष्टता के लिए यहां यह भी उल्लेख किया जाना अपेक्षित है कि जेलियांग समाज में जब झूम-कृषि की जाती है, तब उसमें बरसात आरंभ होने के पहले बीजारोपण कर दिया जाता है, ताकि बरसात की बूँदें पड़ते ही वे अंकुरित हो जाएँ। यहां का मौसम ऐसा है कि गर्मी आई नहीं कि बरसात आरंभ हो जाता है। इसलिए जब लोगों को सूरज की तपती धूप का एहसास होने लगता है, तब वे समझ जाते हैं कि अब बरसात दूर नहीं है। गीत की अगली पंक्तियों में चेहुत की युवतियों को यह हिदायत दी गई है कि वे अपने जीवन के गृहस्थाश्रम में सोच-समझकर पैर रखें, क्योंकि एक औरत का जीवन काल बहुत लंबा एवं अत्यंत बोझिल होता है। गीत की इस पंक्ति से कई अर्थ अभिव्यंजित होते हैं, यथा गीतकार ने यह सोचा होगा कि किसी स्त्री का यौवन काल मातृत्व काल की तुलना में अत्यंत ही क्षणिक होता है। इसलिए इस पंक्ति के माध्यम से उन्हें अपने यौवन को भरपूर तरीके से जीने का संदेश देता प्रतीत होता है। इस पंक्ति में यह भाव भी निहित है कि विवाहित स्त्रियों के जीवन में वह स्वच्छंदता नहीं रह जाती है, जो 'ल्युच्यू' की सदस्या के रूप में अपने सखियों के साथ समय बिताने में रहती हैं। हमजोली गण उनसे कहते हैं कि 'लापुई' जीवन में प्रवेश करने के बाद पत्नी-धर्म, बहू-धर्म, मातृ-धर्म जैसे अनेक दायित्वों के साथ कृषिकार्य का बोझ भी हमेशा बना रहता है। इसलिए अपने जीवन के यौवन काल को संपूर्णता के साथ बिताने के बाद ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त पंक्ति से यह भी अभिव्यंजित होता है कि जब चेहुत के कुछ युवकजन किसी युवती के प्रति मोहित रहते हैं लेकिन वह उनकी पहुँच के बाहर रहती है, तब भी वे इस प्रकार के गीत की पंक्तियों के माध्यम से उसे रिझाने का प्रयास करते प्रतीत होते हैं।

अनाई चेकिन्दौ मेजांग जे, दुइलिन कामेसिंग तू जुन्वांग,

अल्यू न्मीन राइलौ, ई न्तू जुन्वांग, अनाइ न्ख्यूजे,

अग्वांग दुइ अगी ये, बुन्फ्यांग पिंग ये,

आमेराइ अतू रू, न्दा अकिन रा वी ये।

अर्थ- शिशिर ऋतु के दिनों (मैं और प्रेयसी) हम दोनों परिहास करते हुए स्वच्छ झरने की ओर चलते हैं। प्रेयसी आगे-आगे और मैं उसके पीछे-पीछे चलते हुए वहां जाकर नहाते हैं। 'अग्वांग' के झरने का जल इतना ठंडा है कि मैं उसमें नहाने से कतराने लगता हूँ। ऐसे समय मेरी प्रेयसी अपनी प्रेम-भावनाओं से युक्त होकर मुझे डाँटती रहती है। उन दिनों की बात ही कुछ और थी।

प्रस्तुत गीत में शिशिर ऋतु के समय का वर्णन है। यह कृषि कार्य के दिनों में भी गाया जाता है, परंतु विषय-वस्तु के रूप में शीत ऋतु के समय फुर्सत में युवक-युवतियों के द्वारा स्नान के लिए झरने में

जाने के प्रसंग को लिया गया है। इस प्रकार के गीतों को कृषि-कार्यों के समय गाए जाने या कृषि-गीतों में शामिल करने के पीछे यह कारण है कि चेहुत के सदस्यगण अपने फुरसत के दिनों में बिताए हुए पलों को याद करके कृषि-कार्य में भी उल्लसित होते हैं और अधिक जोश के साथ अपने कार्यों को संपादित करते हैं। इस गीत के माध्यम से यह बात निकलकर आती है कि जाड़े के दिनों में जब कृषि संबंधी सभी कार्य समाप्त करके त्योहार-उत्सवों के दिन होते थे, तब प्रायः गांव के युवक-युवतियां अपने-अपने समूह में गांव से दूर झरने-जैसे जल स्रोतों की ओर नहाने जाते थे। उल्लेखनीय है कि जेलियांग गांव प्रायः पहाड़ी पर बसे होते थे, तब गांव के निकट के पनघट या जल-स्रोत सूखने लगते थे। ऐसे समय पर उन सूखते हुए जल-स्रोतों में जो थोड़े जल बचे होते थे, उन्हें घरेलू उपयोग एवं वृद्ध महिलाओं के लिए छोड़कर युवक-युवतियाँ गांव से दूर अच्छे जल-स्रोतों में नहाने-धोने के लिए निकल जाया करते थे। इस प्रकार, इन गीतों में लोक-जीवन को बड़े ही सूक्ष्म ढंग से दर्शाया गया है।

अतः यहां यह निष्कर्ष निकलता है कि कृषि कार्य के गीत सामूहिक रूप में कार्य करते हुए लोगों के मन को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ शारीरिक-श्रमजनित थकान का भी शमन करते हैं। गीतों में लोक-जीवन के अनेक प्रसंगों एवं पहलुओं का भी वर्णन किया गया है, जिनसे लोक जीवन को अधिक निकटता के साथ समझा और जाना जा सकता है। इन गीतों के माध्यम से जेलियांग लोक में प्रचलित जीवन के प्रति दृष्टिकोण को और अधिक स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है। कृषि कार्यों में गाए जाने वाले ये गीत केवल कृषि-कार्य की गतिविधियों से ही संबंधित नहीं हैं, बल्कि इनमें इनका जीवन-दर्शन भी समाया हुआ है।

5.2.2 : त्योहार-उत्सवों के गीत

जेलियांग लोक गीतों की परंपरा में गाए जाने के समय या किसी विशेष आयोजन के आधार पर गाए जाने वाले गीतों के अंतर्गत- त्योहार एवं उत्सवों के गीत बड़े ही मशहूर हैं। जेलियांग जनजाति में पारंपरिक लोक त्योहार एवं उत्सवों में चेगांन्खे, चेगागादी, न्तुइडी, चेक्क एवं अथौसक (कडे) मुख्य रूप से आते हैं और अंतिम को छोड़कर प्रायः अन्य सभी त्योहार संपूर्ण समाज के द्वारा मनाये जाने वाले त्योहार होते हैं, जिसमें सभी लोग मिलकर बड़े ही मनोयोग से लोक-गीतों के गायन का आनंद लेते हैं। 'अथौसक' युवक एवं युवतियों के एक विशेष समूह चेहुत के द्वारा मनाया जाने वाला हर्षोल्लास का आयोजन होता है, जिसमें केवल गीत ही नहीं बल्कि नृत्यों का भी प्रदर्शन किया जाता है। उपर्युक्त सामूहिक त्योहारों के अतिरिक्त कुछ आयोजन वैयक्तिक स्तर पर भी होते हैं, जिनमें चेम्पू लेंग बो, जौ हू बो, केर्यू दुंगबो आदि आते हैं। इनका आयोजन गांव में सबसे अधिक धान या अन्न संग्रह करने वाले

व्यक्ति द्वारा किया जाता है। इन सभी आयोजनों में गाए जाने वाले लोकगीतों को त्योहार-उत्सवों के गीत नाम दिया जा सकता है। इन गीतों को भी यदि सूक्ष्मता के साथ देखा जाए तो अलग-अलग रूपों में फिर से वर्गीकृत करके निम्न रूप में विश्लेषित किया जा सकता है -

- मेतुईलूई (हर्षोल्लास के गीत) – चेबन्दुन्सलूई, रडालुई
- चेक्यूलूई (यजमान प्रशस्ति के गीत) – यजमान की संपन्नता एवं घर की विशालता आदि की प्रशस्ति
- केनूई लूई या रमालूई (विदाई के गीत)
- केल्वांग रुन लूई (गांव भ्रमण गीत)

5.2.2.1 : मेतुईलूई (हर्षोल्लास के गीत)

उत्सव के गीतों में मेतुईलूई अर्थात् हर्षोल्लास के गीतों का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हीं गीतों के गायन से वास्तव में किसी उत्सव या त्योहार के आनंद को प्राप्त किया जा सकता है। किसी भी त्योहार के दिन किसी एक घर या खंग्चू में एकत्र होकर सबसे पहले 'चेबन्दुन्सलूई'⁵ गाते हैं, जिन्हें सुनकर धीरे-धीरे लोगों की भीड़ एकत्र होती जाती है और उसमें प्रतिभागियों की संख्या बढ़ती जाती है। जब लोग पूरी तरह एकत्र हो जाते हैं, तब रडालूई अर्थात् हर्ष एवं उल्लास से परिपूर्ण गीतों का गायन आरंभ हो जाता है। कभी-कभी तो रात भर जगकर सुबह तक लोग गीत गाते रहते हैं। इन गीतों को गाते समय गांवों में आग जलाने की प्रथा बहुत पुरानी है। वैसे, आज लगभग सब जगह बिजली है, जिससे प्रकाश के लिए आग जलाने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी, परंपरागत रूप से इन गीतों को गाते समय पुराने जमाने में प्रायः प्रकाश के लिए भी और ठंड से बचने के लिए भी आग जलाते थे और उसके चारों ओर बैठकर इन गीतों को गाते हुए आनंदित होते थे। यहां इस प्रकार के कुछेक गीतों का उदाहरण देना अपेक्षित है-

हे ! चेबन्दुन्सून्बाम ये अथिन मैना,

कडेक्यू नबुम जौ साक

अथिन मैना मिकांग जान्

हंगकत् पुई जौ न्ब्यू दुइदे ल्यमलाक ये। (Pau-Pai Lui, 2003, page-2)

अर्थ- हे ! मेरे हमजोलियों, आ जाओ, सभी के लिए बैठने की व्यवस्था हो गई है। ऐसे में जब हम गीत गाते हुए, जौ (मादक पेय) पीयेंगे, तब और भी आनंद आएगा। हम सभी आपस में मांस बाँटकर खाएंगे

⁵ उत्सवों में लोगों को बुलाने हेतु आरंभ में गाए जाने वाले गीत।

और 'हंग्कत्पुई' का जौ पीयेंगे, क्योंकि इनके पास इतना अधिक 'जौ' है कि बराक नदी का पानी इसके सामने कुछ भी नहीं है।

इस गीत को प्रायः किसी उत्सव या त्योहार के सामूहिक गीत-गायन के कार्यक्रम को आरंभ करते समय गाया जाता है। जब अपने उत्सव को मनाते खाते-पीते लोक-रंजन के लिए एकत्र होने लगते हैं, तब सभी लोगों को बुलाने के लिए भी यह गीत गाया जाता है, जिसे स्थानीय भाषा में चेबम्दुन्सलुई अर्थात् बैठने के आरंभ का गीत कहा जाता है। इस गीत में एक शब्द 'जौ' का प्रयोग चावल के किण्वन से बना शराब-जैसा मादक पेय के लिए किया गया है। इससे यह तथ्य निकलकर आता है कि जेलियांग समाज में किसी भी उत्सव या त्योहार में मांस खाने के साथ-साथ इस मादक पेय का प्रचलन भी प्रचुर मात्रा में था। यहां 'हंग्कत्बो' की माँ के 'जौ' को इतना अधिक मात्रा में बयाँ किया गया है कि उसके सामने बराक-जैसी विशाल नदी का पानी भी कम पड़ जाता है। वास्तव में, यहां अतिशयोक्ति का प्रयोग हुआ है। परंतु जेलियांग लोकगीतों में इस प्रकार की अतिशयोक्तियों का प्रयोग सामान्य रूप से देखने को मिलता है।

संग्बिन मैखांग न्जइपुइकान मेलान्लुजे,

अल्यू मै चाप ल्यांग लौ मेंगखुन अदौ खै,

अथिन मैना जन रौ जेमा, अथिन मै अलुई जन रीये त्यूमा,

अथिन मै क्कांग खई करा, बुइची हवांग न्बाम ये। (Zeliang, 2017, page-21)

अर्थ- परदेशी लोग 'न्जइना' के पंखों से बने अपने कर्ण-आभूषण पहने, सज धज कर आए हुए हैं। हे! युवतियों चलो, एक पंक्ति में खड़े होकर उनका स्वागत करते हैं। लेकिन हमारे अथिनमै (हमजोली युवतियाँ) भैंस का मांस नहीं खातीं। इसलिए वे सामने नहीं आ रही हैं। इसलिए अथिन मै लोगों के भोज के लिए एक बड़ा-सा मिथुन लाया हुआ है।

यह गीत भी उत्सव के आरंभ में गाया जाने वाला प्रतीत होता है। इस गीत के माध्यम से यह पता चलता है कि जेलियांग गांवों में त्योहार-उत्सव के दिनों पास-पड़ोस के गांवों से सगे-संबंधी लोग भी आते रहे होंगे। इसलिए यहां परदेशी पुरुषों/युवकों की चर्चा के साथ गांव की युवतियों को उनके साथ खड़े होकर नृत्य प्रस्तुत करने का आह्वान किया गया है। इस गीत में प्रयुक्त 'न्जइना' शब्द हरे-नीले रंग के एक पक्षी का स्थानीय नाम है, जिसके पंखों से बने आभूषण पुरुष वर्ग के लोग अपने कानों में पहनते हैं। अतः यह कहना अनुचित न होगा कि लोग पशु-पक्षियों से प्राप्त सुंदर दिखने वाले उनके अंगों का भी प्रयोग अपने आभूषण के लिए करते हैं। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि जेलियांग लोग नृत्य करते समय अपने हाथों में धनेश पक्षी के परों को लिए हुए रहते हैं। यह भी उनके सौंदर्यीकरण का एक

साधन है। इतना ही नहीं, लोग आभूषण के रूप में हाथी दांत, जंगली सूअरों के नुकीले दांत, भालू के काले बाल इत्यादि भी प्रयोग करते हैं। इस गीत में प्रयुक्त भैंसा एवं मिथुन सरीखे पशुओं के नाम से यह पता चलता है कि लोग मिथुन के मांस को अधिक महत्त्व देते हैं। यह सच इसलिए भी है, क्योंकि पुराने समाज में धनवान एवं प्रतिष्ठित लोग ही मिथुन जैसे भारी-भरकम पशु को पालने या उसे खरीदने की क्षमता रखते थे।

संगमै अकिन् तुडौ लुजेन्स्या वांग्सू नि माकगे।

संग्बिन मैयो पौमैंग तांग्लौ,

अरम् ल्यू सिंखुन लाम केमी मैयौ,

आमेचिन् दिन्तांग पिलौ। (Zeliang, 2017, page-39)

अर्थ- परदेशी लोग हमारे इस त्योहार-उत्सव को देखकर ललचाए हुए हैं और वे हमारे यहां से निकल जाने के इच्छुक नहीं हैं। इसलिए हे परदेश जाने वालों ! हमारे गांव की जो परदेश में ब्याहताएँ हैं, उन्हें हमारे बारे में बताओ।

प्रस्तुत गीत में एक प्रकार से अपने गांव/देश के प्रति प्रेम की भावना को दर्शाया गया है। इसलिए गीतकार ने कहा है कि परदेश से आए हुए लोग हमारे गांव/देश की इस पीढ़ी, उनके उत्सव एवं मनोरंजन को छोड़ कर निकल नहीं पा रहे हैं। इसलिए जो लोग परदेश जा रहे हैं, उनके माध्यम से अन्य गांवों में ब्याही गई औरतों को यह संदेश भेजते हैं कि अपने गांव का जीवन कितना आनंदमय है, जिसे तुम लोगों ने त्याग दिया है। यहां एक प्रकार से उन औरतों को ताना मारा गया है, क्योंकि जिस प्रकार गांव में आनंदोत्सव मनाया जा रहा है, उसे सुनकर संभवतः उन औरतों के मन में भी ऐसी भावनाएँ उत्पन्न हों कि काश हम भी अपने गांव में ही होते।

अथिन मैकिन पौरुन लौ,

अवन्जैंग लाम केताद मैयौ,

केहुइ दिनतांग, मेकी-खौलाम पौरुन लौजे,

न्जैंग्रींग पौतांग, मेलान वांग,

हंगकत्पू खू पौतांग लौ।

अर्थ- हे हमारे पास-पड़ोस के गांवों में जाने वालों, हमारे अथिनमै अर्थात् इस पीढ़ी की बातें चारों ओर फैलाओ कि हम उत्सव मना रहे हैं। इस बात को केहुइ (कोहिमा), मेकीदी (मणिपुरी लोग) तथा खौलाम (मैदानी लोगों) तक फैलाओ। इसके बाद न्जैंगनींग तक जाते हुए वापस 'हंगकत्पू' के पास फिर से बताओ।

इस गीत के माध्यम से गीतकार ने यह स्पष्ट किया है कि प्राचीन काल से ही जेलियांग लोगों के संपर्क में अंगामी और मणिपुरी लोग तो थे ही, साथ ही अन्य ऐसे लोग भी थे, जो जनजाति नहीं थे तथा जिनका रंग-ढंग बिल्कुल जेलियांग लोगों से अलग था, जिन्हें स्थानीय लोगों ने 'खौमै' या चरामै नाम दिया है। प्रायः यह शब्द मैदानी क्षेत्र के लोगों के लिए प्रयोग किया जाता है। जब उत्सवों में लोग इतने मग्न हो जाते हैं, तो उन्हें लगता है कि पूरी दुनिया में वे ही सबसे अधिक खुश हैं। इसलिए अपनी खुशी का ठिकाना न होने के कारण ये लोग सभी तरफ इस खुशी को फैलाने की बात करते हैं। गीत में प्रयुक्त 'हंकल्बो' एक अनुमानित नाम है। जब किसी यजमान के घर पर कोई आयोजन या उत्सव होता है, तब इस अनुमानित नाम के स्थान पर उस यजमान के वास्तविक नाम को प्रक्षेपित करके गीतों को गाया जाता है।

हंगकत बोप्पूकिजेंग गै, चेरेंगदुंग पेंखांग,
अल्यू पेंगला सुजे पेंग दौ लाक,
मेगा रुइने खांग तौ जे,
ल्यरीये पेंग दौ लाक गै।

अर्थ- 'हंकल्बो' के पिता के आंगन में धनेश पक्षियों का झुंड आया हुआ है। इसलिए हम लोग यहां से प्रस्थान नहीं कर पा रहे हैं। इस पर मेगा रुइ (पक्षी विशेष) आकर यहां झूम रहे हैं। इसलिए हमारा इस घर से कभी भी जाना न होगा।

प्रस्तुत गीत में 'धनेश' पक्षियों के झुंड का प्रयोग यजमान के आँगन में गीत एवं नृत्य का प्रदर्शन कर रहे युवक-युवतियों के लिए किया गया है। जेलियांग पारंपरिक मान्यता के अनुसार, चेरेंग अर्थात् धनेश पक्षी अपने सौन्दर्य एवं शालीनता के लिए एक गौरवमयी पक्षी माना जाता है। जब वे अपने झुंड में आकाश में उड़ते हैं, तब एक सीधी पंक्ति या धनुषाकार में उड़ते दिखते हैं। इसलिए जब कभी किसी उत्सव-त्योहार में युवक-युवतियाँ अपने नृत्य का प्रदर्शन करती हैं, तब उनके सौंदर्य की तुलना धनेश पक्षियों के झुण्ड से की जाती है। इसके साथ ही, 'मेगारुई' एक और पक्षी होता है, जिसका उड़ना एक प्रकार से अपने लय में झूमते हुए चलने के-जैसा है। इसलिए अथिन्मै अर्थात् गांव की युवक-युवतियों के नृत्य को इस पक्षी के झूमने-जैसा भी गीत में वर्णित किया गया है।

अल्यू अथिन मैना मेतुई केरा रांग,
चेप्वांग तु खाम न्बामये।
पेराने अथिन मैना जी न्वयप लुजे,
पेहिन ने अखुम थ्युलुजे,

पेगी बिन जी लुई ये। (Zeliang, 2017, page-16)

अर्थ- हम सभी अथिन्मैना (युवक-युवतियों) ने उत्सव मनाने हेतु एक हाथी को रोक कर रखा हुआ है। उसकी हड्डियों से हम अपने पलंग के पाँव बनाएंगे, उसके दाँत से तकिया बनाएंगे और उसके चमड़े की ओढ़नी बनाएंगे।

प्रस्तुत गीत में प्रयुक्त 'चेप्वांग' शब्द का अर्थ हाथी होता है। यहां की परंपरा के अनुसार, कोई भी उत्सव या त्योहार हो मांस खाना और 'जौ' पीना होता था। ऐसे में, इन लोगों के संज्ञान में हाथी ही सबसे विशाल जानवर होता है। अतः इसे काटकर खाने की बात कही गई है। वैसे, यह एक कल्पित बात है, क्योंकि जेलियांग समाज में कभी-भी हाथी को पालने-जैसी बात सुनी नहीं गई है। हालाँकि, ऐसा सुना जाता है कि पुराने जमाने में लोग हाथी का भी शिकार किया करते थे। साथ ही, उसकी हड्डी, उसके दाँत, खाल आदि के विभिन्न उद्देश्यों में उपयोग करने की बात से कुछ हद तक वीभत्सता उत्पन्न होती है। परंतु यह कहना अनुचित न होगा कि ये जेलियांग समाज की पुरानी परंपरा के अनुसार सामान्य बातें थीं।

5.2.2.2 : चेक्यूलूई/जौहुतलुई (यजमान प्रशस्ति के गीत)

जेलियांग समाज में चेक्यूलूई या जौहुतलुई उन विशिष्ट गीतों को कहा जाता है, जिन्हें विशेष व्यक्ति के द्वारा अपने घर पर चम्यूलेंग, जौहू, केर्युदुंग, करिंगिन आदि अनुष्ठान करने पर गाए जाते हैं। इनमें से प्रथम तीन अनुष्ठान उन लोगों के द्वारा आयोजित किए जाते हैं, जिन्होंने अपने गांव/समाज में किसी एक वर्ष में सबसे अधिक अन्न उत्पन्न किया हो। इसके भी अलग-अलग स्तर होते हैं। इसलिए इन्हें अलग-अलग नाम दिए गए होते हैं। परंतु चूंकि यहां गीतों की चर्चा होनी है। इसलिए इसके विस्तार में न जाते हुए इन दिनों गाए जाने वाले गीतों को उदाहरण सहित विश्लेषित किया जाना अपेक्षित होगा। 'करिंगिन' से तात्पर्य उस अनुष्ठान से है, जो किसी दीर्घजीवी वृद्ध पुरुष के द्वारा अपने जीवन में प्राप्त किए गए उपलब्धियों को दर्शाने तथा इसके लिए एक प्रकार से ईश्वर के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए किया जाता है। ऐसे सभी अनुष्ठानों में यजमान के द्वारा संपूर्ण ग्राम समाज के लिए खाने-पीने की भरपूर व्यवस्था की जाती है। इसी उपलक्ष्य में ग्राम समाज उसके घर एकत्र होकर चेक्यूलूई या जौहुतलुई गाते हैं। इन गीतों में प्रायः यजमान की उदारता, उनके द्वारा प्रदान किए गए खाद्य, पेय वस्तुओं, उनकी पशु-संपत्ति एवं घर की विशालता आदि से संबंधित प्रशस्ति के गीत गाए जाते हैं। ऐसे गीतों में लोक द्वारा अनेक ऐसे अतिरंजित गीतों की रचना हो जाती है, जिनमें यजमान की वास्तविक

सत्ता से अधिक बढ़ा-चढ़ाकर उसकी प्रशंसा की गई होती है और उन्हें किसी राजा-महाराजा के रूप में प्रतिस्थापित करने के प्रयास किए जाते हैं। कुछ गीतों के उदाहरण से इन्हें समझा जा सकता है। यथा—

हंकतबोपू की जेंगै, तेतू मेनू हैदे लौ,

तेतू मक्को, बक्पू ये,

बुइप्वांग स्वांग दे डौ मेगेंग ये जेलौ। (Pau-Pai Lui, 2003, page-17)

अर्थ- हंकबोपू अर्थात् अमुक के पिताजी के घर के आँगन में पत्थर है या कुछ और है, जो विशालकाय पड़ा हुआ है ? नहीं, पत्थर नहीं है बल्कि यह एक बड़ा-सा सूअर है, जो एक बड़े मिथुन से भी विशाल दिख रहा है।

यह गीत किसी बड़े अनुष्ठान को आयोजित करने वाले व्यक्ति की प्रशंसा में गाया जाने वाला चेक्पू गीत है, जिसमें उसके द्वारा भोज के लिए लाए गए एक बड़े सूअर को कुछ लोगों ने पत्थर समझ लिया था। ऐसे में, लोग कहते हैं कि जिसे पत्थर समझ रहे हो, वह पत्थर नहीं बल्कि एक विशाल सुअर है, जो देखने में मिथुन से भी बड़ा लग रहा है। उल्लेखनीय है कि सूअर जब अत्यधिक बड़ा हो जाता है, तब वह माटी में लोट-लोटकर मटमैला, पत्थर-जैसा दिखता है। इसलिए लोगों ने उसे पत्थर समझ लिया। इस गीत में 'बुइप्वांग' शब्द का प्रयोग उस मिथुन के लिए किया जाता है, जो अपनी विशालता के कारण हाथी जैसा दिखने लगे। यहां 'बुइ' मिथुन के लिए और 'प्वांग' हाथी के लिए प्रयोग किया गया है। बुइप्वांग शब्द का प्रयोग करके यजमान के सूअर की विशालता को उस मिथुन के समकक्ष बताया गया है, जो हाथी के समान बड़ा हो चुका है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि प्रशस्ति गीतों में किसी सूअर को भी हाथी के समान बताकर उस यजमान की संपन्नता को बढ़ा-चढ़ाकर बताने का प्रयास किया गया है।

अमांग बुइ दुंग स्वांगकेंग,

मेरिन तुसुम ज्युगा, मेरुइ द्यक बाम ये,

अवुन्जेंग मै मेंगथून्जाम लौ,

बुइप्वांग मेरुई निसाइ, इने जन्पी लुई ये। (Zeliang, 2017, page-49)

अर्थ- अमांग के मिथुन के झुंड से भी अधिक 'मेरिन' नामक गांव में जितने पत्थर गाड़े गए हैं, उतनी ही संख्या में मिथुन पाल रखे हैं। हे मेरे आस-पास के लोगों, सभी आकर उसमें से एक-एक लेकर जाओ। यदि पालना चाहते हो, तो सभी को दिया जा सकता है।

इस गीत में यजमान के यश को बढ़ाने के लिए लोगों से कहा गया है कि इनके पास इतने अधिक मिथुन हैं कि आप सभी के लिए पर्याप्त है। इस गीत में प्रयुक्त 'अमांग' एक प्रसिद्ध कहानी के पात्र का नाम है, जिसका लोक-कथा वाले अध्याय में सविस्तार वर्णन किया गया है। उल्लेखनीय है कि

उसके पास बहुत अधिक मिथुन थे। 'मेरिन' शब्द स्थानवाचक शब्द है। यह भी उल्लेखनीय है कि 'जेलियांगरोंग' लोग प्राचीनकाल में इसी गांव में रहते थे और जब उनकी संख्या बढ़ती गई, तब सभी लोग अपनी-अपनी निशानी के तौर पर एक-एक पत्थर गाड़कर वहां से निकल गए तथा अलग-अलग स्थानों पर जाकर बस गए। इस प्रकार, अनुष्ठानकर्ता की प्रशंसा में गीतकार ने जेलियांग समाज की पुराकथा 'अमांग' के साथ-साथ इनकी ऐतिहासिक भूमि 'मेरिन' गांव का भी जिक्र किया है।

केहू जेंग बोये, केख्यू जेंग बोये जे,
हंकत्युकी मिकांग चेप्वांग पालांग-लांग,
मैपुन्सु केलइलक,

हंकत्यु ने बुइची पिजे हवांग बाम ये। (Zeliang, 2017, page-53)

अर्थ- हंकत्वोपू अर्थात अमुक के पिता के वीरता की बात है, उसकी संपन्नता की बात है। इनके मांस का टुकड़ा भी हाथी के पद-चिह्नों के बराबर है और उन्हें उठाने में कठिनाई हो रही है। इन्होंने भोजन के लिए एक बड़ा-सा 'नर मिथुन' हमें दिया हुआ है।

जेलियांग गीतों में जब किसी व्यक्ति के द्वारा भोज या बड़ा अनुष्ठान किया जाता है, तब उन दिनों गाए जाने वाले गीतों में खाद्य-पदार्थों की अधिकता को दर्शाने की परंपरा रही है। इस गीत में किसी यजमान की वीरता एवं उदारता-संपन्नता को वर्णित किया गया है और कहा गया है कि उनके द्वारा गांव के लोगों में वितरित करने के लिए जो मांस के टुकड़े निकाले गए हैं, वे भी हाथी के पद-चिह्नों के बराबर बड़े हैं। जानवरों में हाथी सबसे बड़ा होने के कारण उसके पद-चिह्नों को भी यहां उपमान के रूप में प्रयुक्त करते हुए मांस के टुकड़ों की तुलना इससे की गई है। साथ ही, इस गीत से यह भी पता चलता है कि जब कोई धनाढ्य व्यक्ति कोई बड़ा अनुष्ठान करता था, तब भोज के अतिरिक्त उसमें शामिल होने आए सभी लोगों को उपहार के रूप में मांस भेंट में दिया करते थे।

मेकीदी चवांग दी बामये, हंकत्वो पौ,
अरामल्वांग हेकत्वोपौ दिबाम ये जे,
अली तुलौ-अली तुलौ,

अली तांग लु लक गै। (Zeliang, 2017, page-48)

अर्थ- 'न्कीदी' अर्थात मणिपुरियों के देश में जिस प्रकार चवांग अर्थात राजा का मान-सम्मान है, उसी प्रकार हमारे गांव/देश में हंकत्वो पौ अर्थात अमुक के दादाजी का भी मान है। कोई भी इनका अनुकरण करना चाहे, तो भी वह इनकी बराबरी नहीं कर सकता है।

जेलियांग समाज में न्कीमै अर्थात मणिपुरी लोग, उनके राजे-महाराजे, उनके ठाट-बाट की बातें प्रायः प्रचलित थीं। इसलिए जब किसी व्यक्ति की महानता या उसके बड़प्पन की चर्चा होती थी, तब लोक में उस व्यक्ति की तुलना मणिपुरी राजा से करना सामान्य बात थी। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि पुराने जमाने में यद्यपि जेलियांग गांवों में चवांग अर्थात राजा हुआ करते थे, मगर उनकी स्थिति या उनके ठाट-बाट वैसे नहीं होते थे, जिस प्रकार मणिपुर में प्रचलित मेइतेइ राजवंश के राजाओं की होती थी। इसके साथ ही, यह भी कहना उचित है कि लोक गीतकारों ने शायद ही कभी किसी मेइतेइ राजा, उसके दरबार या उसकी शान-शौकत को प्रत्यक्ष रूप में देखा हो। फिर भी, सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ही सही, वे इतना तो जानते थे कि मणिपुरी लोगों में बड़े-बड़े राजे-महाराजे होते थे। यही कारण है कि यहां के अनेक गीतों में इन राजाओं या राजवंशों के नाम आ ही जाते हैं।

हे, रामजेंग निंग चेवांग कैरा,

हइल्या लामौ हंकत्बोप्पू कैरा लुजे,

हे! रामजेंगनिंग लाम,

अनाइ रून्थुई वांगनी ये। (Pau-Pai Lui, 2003, page-16)

अर्थ- 'रामजेंगनिंग' अर्थात मैदानी क्षेत्रों में जहां राजा को गद्दी पर बिठाकर घुमाया जाता है, उसी प्रकार यहां (हमारे गांव में) 'हंकत्बोप्पू' को सिंहासन पर बिठाकर हम भी रामजेंगनिंग होते हुए पूरी दुनिया में घुमाना चाहते हैं।

जेलियांग जनजाति में प्रयुक्त रामजेंगनिंग एवं खौमै या चरामै उन लोगों के लिए प्रयुक्त होता है, जो रंग-रूप में मंगोलियन या पहाड़ी लोगों से अलग दिखते हैं। इसलिए इस गीत में प्रयुक्त राजा या उसकी राजगद्दी इत्यादि की बातें मैदानी क्षेत्रों में राजाओं की विलासिता एवं शान-शौकत को सुनकर या देखकर अपने गांव के धनी व्यक्ति की तुलना उनसे की गई प्रतीत होती है। साथ ही, समाज के लोग जब किसी यजमान से खुश होते हैं, तब उनकी इच्छा यही होती है कि वे भी उसे गद्दी पर बिठाकर दुनिया की सैर कराएँ।

तेजौर्वांग लिन्खई,

हंकत्पुइ जौ सक वी,

केफुप केर्यू पुन, मैतू ल्याम नेइजे,

केफुप केर्यू पुन, अहांग दुइ स्वांग केंग,

मैरा ल्याम लाक ये। (Zeliang, 2017, page-48)

अर्थ- यदि सभी लोगों के 'जौ' (मादक पेय) की तुलना की जाए, तो हंकत्पुइ अर्थात् अमुक की माताजी का 'जौ' सबसे अधिक नशीली है और मात्रा में भी सबसे अधिक है। दसों-बीसों 'केफुफ' निकाल लेने के बाद भी इसकी मात्रा में कमी नहीं आई है और 'अहांग' नदी के पानी से भी अधिक है।

जब किसी अनुष्ठान में कोई यजमान समाज के लोगों को खूब खिलाता-पिलाता है, तब उसके खाने-पीने की वस्तुओं की भी खूब प्रशंसा की जाती है। वैसे ही, इस गीत में यजमान के 'जौ' को खूब बढ़ा-चढ़ाकर वर्णित किया गया है। इस गीत में प्रयुक्त 'केफुफ' जौ रखने के लिए पेड़ के खोखले भाग से बना बड़ा-सा संग्राहक होता है, जिसमें चावल के किण्वन से बनी शराब को संग्रहित किया जाता है। इससे यह तथ्य निकलकर आता है कि पुराने जमाने में जब लोगों के पास धातु या प्लास्टिक के बने बड़े-बड़े बर्तन नहीं होते थे, तब वे लकड़ी एवं बाँस इत्यादि से बने संग्राहकों में अपने खाद्य एवं पेय पदार्थों का संग्रह किया करते थे। इस गीत में प्रयुक्त शब्द 'अहांग' एक नदी का नाम है। यह सामान्य-सी बात है कि जब किसी के घर के पेय पदार्थ (जौ) की मात्रा की अधिकता को वर्णित करना होता था, तब लोग अहांग, बराक जैसी यहां की बड़ी-बड़ी नदियों के जल की मात्रा की तुलना उनसे कर जाते थे। ऐसे ही संदर्भ में, इस गीत में भी अहांग नदी का नाम प्रयुक्त हुआ है।

चेक्यू या जौहुत के गीतों में अनेक विषयों के माध्यम से यजमान की प्रशस्ति के गीत गाए जाते ही हैं, मगर गीतों में कभी भी उसका या उसकी गृहिणी का नाम सीधे-सीधे नहीं लिया जाता है। किसी भी गीत को गाते समय उनके पुत्र-पुत्री या पोता-पोतियों के नाम के प्रयोग से ही उनकी ओर संकेत किया जाता है। इसलिए इन गीतों में प्रयुक्त हंकत्बोप्पू अर्थात् अमुक के पिता, हंकत्बोपुई अर्थात् अमुक की माता, हंकत्बोपौ अमुक के दादा, हंकत्बो पे अमुक की दादी इत्यादि शब्दों का प्रयोग हुआ है। जब वास्तव में, किसी विशिष्ट व्यक्ति के घर इन गीतों को गाया जाता है, तब 'हंकत्बो' के स्थान पर यजमान के वास्तविक पुत्र-पुत्री, पोता-पोती आदि का नाम प्रक्षिप्त करके उन्हें गाया जाता है। इन गीतों में सीधे-सीधे यजमान या उसकी गृहिणी का नाम न लेने के पीछे उनके प्रति सम्मान एवं आदर-सत्कार का भाव छिपा होता है, क्योंकि यहां की सामाजिक रीति-रिवाजों के अनुसार, किसी बड़े व्यक्ति को संबोधित करने के लिए भी उनका नाम न लेकर अपौ, अनाई, अची जैसे सत्कारात्मक शब्दों के प्रयोग करने की परंपरा रही है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जेलियांग समाज में प्रचलित चेक्यू/जौहुत गीतों का अपना एक अलग ही महत्त्व है। जब भी किसी के घर पर इस प्रकार का आयोजन होता है, इन्हीं गीतों के गायन से संपूर्ण समाज उल्लसित होता है। समाज में इस प्रकार के बीसों गीत गाए जाने की परंपरा है, जिनसे यहां की सामाजिक रहन-सहन, खान-पान से उनके सामाजिक जीवन-मूल्यों का हमें ज्ञान प्राप्त होता है।

5.2.2.3 : केनुई लुई /रम्पालुई (विदाई के गीत)

जेलियांग समाज में त्योहार-उत्सवों अथवा वैयक्तिक अनुष्ठानों में गाए जाने वाले गीतों में केनुई/रम्पालुई का भी महत्वपूर्ण स्थान है। ये गीत किसी त्योहार के अवसान के समय गाए जाते हैं। इन गीतों में प्रायः एक-दूसरे से बिछुड़ जाने के भाव, बिछुड़ने के बाद भी यादों में रहने के भाव तथा किसी यजमान एवं उसके परिवार के लोगों के लिए शुभकामनाएँ इत्यादि भाव व्यक्त होते हैं। जब किसी उत्सव के दौरान समाज के लोग दिन-रात आनंद के साथ मेतुई लुई या चेक्यू लुई गाते-गाते इस उत्सव के अंत का समय आता है, तब परस्पर एक-दूसरे से अलग होने, उससे उत्पन्न मन में दुःख के भाव आते हैं, तब ये गीत गाए जाते हैं। इन गीतों का भाव कभी-कभी विवाह के समय गाए जाने वाले विदाई के गीतों से भी मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं। वास्तव में, इन गीतों में विरह या विरह की संभावनाओं के कारण मन में उत्पन्न व्यथा को जिस मार्मिकता के साथ व्यक्त किए जाते हैं, वे भाव अन्य गीतों में देखने को कम ही मिलते हैं। इन गीतों के गायन में चेक्यू लुई या मेतुई लुई जैसे हुड़दंगता एवं अल्हड़पन नहीं पाए जाते हैं, बल्कि इन गीतों में लोग बड़े शालीनता के साथ बुझते आग के चारों ओर बैठकर तल्लीन हो जाते हैं, जिन्हें देख-सुनकर सभी लोग भावुक हो उठते हैं। इन गीतों को कुछ उदाहरण के माध्यम से अधिक स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है-

अथिन्मैतू रम्पा केरा है सौने दिनद्यक लौ?

हंकल्बोप्पू यो।

हंकत्पू यो मेकीतूम खुम्वांग लौ,

मेथिन सुन्ना रेखै।

मेथिन सांग-मेथिननजिंग बामखै,

अथिन मै प्यक लाक गै। (Zeliang, 2017, page-57)

अर्थ- हे! हंकल्बो के पिता! अथिन्मै अर्थात् हम सभी (युवक-युवतियों) को किसने विदा होने के लिए कहा है? हंकल्बो के पिताजी, जाकर मेकीतूम अर्थात् मणिपुरियों के गायों के झुंड लाओ, हम अभी भी हर्षोल्लास के साथ उत्सव मनाते रहना चाहते हैं। आपके आंगन में हम दिन-रात इस प्रकार से गाते-नाचते रहना चाहते हैं और आप हम सब को अलग नहीं कर सकते।

यह गीत किसी उत्सव के अवसान पर गाया जाता है। इस गीत के माध्यम से किसी यजमान के घर उत्सव मना रहे युवक-युवतियों के द्वारा यह इच्छा प्रकट की गई है कि हम अभी अलग नहीं होना चाहते हैं। इस उत्सव को और आगे बढ़ाने के लिए मणिपुरियों से गायों के झुंड को खरीद कर लाओ।

उन्हें हम पकाकर खाते हुए और जश्न मनाएंगे। इस प्रकार, यह गीत दर्शाता है कि लोग जल्दी से रम्मा अर्थात् विदा होना नहीं चाहते हैं। इस गीत में प्रयुक्त मणिपुरी गाय के बारे में यह कहा गया है कि जेलियांग लोगों के स्थानीय देसी गायों की अपेक्षा ये बड़े आकार की होती हैं। इसलिए उन्हें लाने के लिए यजमान से मांग की गई है। इसके साथ ही, यह भाव भी बिंबित होता है कि उस यजमान के पास किसी चीज की कमी नहीं है और वे इन्हें आराम से खरीद कर ला सकते हैं।

तिबांग लाम्मौ चेह्यू ना नीये,

मेराइले तू थिन-आज्यू जे पुइबाम त्रीये,

तिंगबिन त्रेइ अल्यू सुलौ,

तिबांग लाम्मौ तिगबिन किन्ये,

फुत-सू मैलुंग माक्को,

मेराइले है तिगथेग किन नीये। (Zeliang, 2017, page-64)

अर्थ- क्षितिज पर चाँद और धरती की तरह मैं अपनी प्रेयसी से मिलन चाहता हूँ। हे प्रेयसी! भोर हुआ जाता है, क्षितिज पर प्रकाश फैल रहा है। तुमसे विदा होना नहीं चाहता हूँ और दीर्घ काल तक तुम्हारे सानिध्य में रहना चाहता हूँ।

यह एक अत्यंत मार्मिक एवं प्रेमभाव से परिपूर्ण गीत है। इस गीत को लोग रात भर उत्सव में भाग लेकर भोर के समय जब अलग होने लगते हैं, तब गाया जाता है। प्रायः उत्सवों में युवक-युवतियों का समूह पूरी रात गीत गाते-नाचते बिता देते हैं और जब भोर होने लगता है, तब वे विदा होते हैं। ऐसे समय में ही गाया जाने वाला यह गीत है, जिसमें गीतकार ने क्षितिज पर चाँद को डूबते देखकर एक प्रेमी के मन की बात को इस प्रकार व्यक्त की है कि जिस प्रकार चाँद क्षितिज पर जाकर धरती की गोद में समा रहा है, उसी प्रकार वह प्रेमी भी अपनी प्रेयसी से आलिंगन करना चाहता है। जिस प्रकार चाँद क्षितिज पर धरती से मिलकर एक होता हुआ दिखता है, उसी प्रकार प्रेमी भी अपनी प्रेयसी के साथ हमेशा के लिए रह जाना चाहता है। इस प्रकार, इस गीत में गीतकार की परिकल्पना एवं तात्कालिक गीत रचना-क्षमता भी स्पष्ट झलकता है, क्योंकि जिस किसी ने भी इसे पहली बार गाया या उसकी रचना की, उसने उस तात्कालिक परिदृश्य को देखते हुए अपनी कल्पनाओं के पुट से इस गीत की रचना की होगी।

अथिन्मै तू केनुई जे, चेर्वगै कब-रौजे,

मिकदुई चुंगरिंग बाम ये।

अथिन मैना मिकदुइ ल्वांगक्यू

पेपी तेकुम फैमांग जुगुम,

मैंग डौ लुजे इदे कब नीये जेलौ। (Pau-Pai Lui, 2003, page-22)

अर्थ- अथिन्मै अर्थात हमजोलियों से विदा लेते हुए सबके सामने रोना नहीं चाहते हैं, परंतु सबकी आँखें नम हो गई हैं। सभी की आँखों से आँसू बह रहे हैं और ऐसे में युवतियाँ अपनी ओढ़नी से सिर ढके अपने आँसुओं को छुपाती नजर आ रही हैं। इन्हें देख हमें भी रोना आ रहा है।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि जब किसी त्योहार के अंत में विदाई के गीत गाए जाते थे, तब विशेष रूप से अधिक भावुक होने के कारण युवतियाँ रोने-सिसकने लगती हैं, जिन्हें देखकर पुरुषों में भी जुदाई की संभावनाओं से दुःख उमड़ने लगता है।

इ वांग त्रेइ हंकत्पेबाम लौजे,

हे वांगसू रसै लुइर्वांग सौद्यक रैलो,

हैलाम मेरी लक्को तालुइ मा,

न्याइनैरा वांगसू खै,

न्सुन्नैने मेथिन्खै,

न्याइनैरा वांगसूखै।

अर्थ- मैं विदा हो रहा हूँ, हंकत्पे (दादी) खुशी से घर पर रहे,

अगर जाते हो, तो वो सभी गीत छोड़ जाओ, जिन्हें तुमने गाया है,

इधर मुड़ के देखते क्यों नहीं हो।

आज तो विदा होते हैं, कल फिर से उत्सव मनाएंगे,

आज तो विदा होते हैं।

यह केनुईलुई एक प्रकार से वार्ता के रूप में है। जब कोई युवक किसी यजमान से कहता है कि अमुक की दादी खुशहाल रहे, मैं तो विदा लेता हूँ। ऐसे में, यजमान की ओर से कहा जाता है कि उन सभी गीतों को हमारे यहां छोड़ जाओ, ताकि हम उन्हें सुनकर तुम्हें याद करते रहेंगे। वे यह भी कहते हैं कि इधर मुड़ के देखो, तुम्हारा मुख तो देखें। वास्तव में, तुम यहां से विदा लेना चाह रहे हो या यों ही कह रहे हो। पर वह युवक अपने दुखी चेहरे को छिपाते हुए, यह कहकर निकल जाता है कि कल फिर आयेंगे, आज तो जुदा होते हैं। इस प्रकार, इन केनुईलुई अर्थात विदाई के गीतों से स्पष्ट होता है कि लोक में त्योहार-उत्सवों का स्वरूप जितना लोकरंजक होता है, उसका अवसान उतना ही मार्मिक एवं भावुक होता है। लोग चाहते हैं कि यह उत्सव कभी समाप्त न हो।

हंकल्बोप्पू की इलुंगसाइ नीये,

अपुइ-प्युराम गमा, इलुंग बाम्लाक गै,
हंगकत्प्यु की चेवांग की स्वांग वी,
अपुइ त्यक-फुंग्लिन, तजौ-फुंग्लिन,

इत्यू मेनाइ बामनीये। (Pau-Pai Lui, 2003, page-12)

अर्थ- हंकत्बोप्यु की अर्थात् अमुक के पिता के घर जीवन पर्यंत रहने को जी चाहता है, पर यह मेरे माता-पिता का घर नहीं है। इनका घर राजमहल से भी अच्छा है। अगर मेरी माँ मुझे खाना-पीना यहीं भेजती रहे तो मैं अपना संपूर्ण जीवन यहीं बिता दूँ।

इस गीत में किसी यजमान के घर का गुणगान किया गया है और इसे राजमहल से भी सुंदर बताया गया है। युवकजन जब किसी उत्सव के लिए इस घर पर आते हैं और उत्सव के बाद वापस जाने का समय आता है, तब उनकी इच्छा होती है कि वे जीवन पर्यंत उसी घर में ही रहें। परंतु फिर सोचते हैं कि यह तो अपना घर नहीं है। काश! हमारे माता-पिता हमें खाद्य-पेय पदार्थ यहां भेजते रहते और हम यहीं बस जाते। इस प्रकार के बीसों गीत लोक में प्रचलित हैं, जिनमें किसी यजमान की उदारता के कारण लोगों को उनके घर से वापस जाने की इच्छा नहीं होती है और एक प्रकार से उस यजमान के घर-परिवार को हर प्रकार से गौरवान्वित करके उन्हें राजपरिवार का दर्जा तक दे जाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जेलियांग लोक में प्रचलित केनुई/रम्मा लुइ त्योहार-उत्सवों एवं वैयक्तिक अनुष्ठानों के वे विशेष गीत होते हैं, जिनके बिना उनके समापन की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है। प्रायः समाज में यह देखा जाता है कि इन गीतों को गाते हुए लोग उत्सव-त्योहारों के निश्चित तिथि एवं समय के पार भी उन्हें खींचते चले जाते हैं। वास्तव में, एक बार एकत्र होने के बाद जिस प्रकार युवक-युवतियों में परस्पर सानिध्य को बनाए रखने की इच्छा उत्पन्न होती है, उन्हीं भावों की मार्मिकता को इन गीतों में देखा जा सकता है।

5.2.2.4 : केल्वांग रून लुई (गांव भ्रमण गीत)

जेलियांग समाज के त्योहार-उत्सवों के गीतों में केल्वांग रून लुई अर्थात् गांव भर में भ्रमण करते हुए गाए जानेवाले गीत भी अपनी विशिष्टताओं के साथ महत्वपूर्ण गीतों के अंतर्गत आते हैं। किसी भी त्योहार-उत्सव में जब गांव के युवक-युवतियाँ तथा उनका नेतृत्व कर रहे प्रौढ़ पुरुषजन किसी एक स्थान पर गीत एवं नृत्य का आनंद ले रहे होते हैं, तब गांव के ऐसे लोग भी होते हैं, जो उन्हें देखने या सुनने के लिए उस स्थान पर एकत्र नहीं हो पाते हैं। इसलिए समाज में यह प्रथा भी प्रचलित है कि त्योहारों एवं उत्सवों में गीत एवं नृत्य का प्रदर्शन करते हुए युवक-युवतियाँ गांव का भ्रमण करते हैं तथा

कहीं-कहीं रुककर ग्रामीणजन को अपना नृत्य दिखाते चलते हैं। ऐसे समय गाए जाने वाले गीतों को 'केल्वांग रुन लुई' के नाम से जाना जाता है। इसका समय प्रायः शाम को सूर्यास्त के पहले या भोर के समय अंधेरा छटने के पहले होता है। शाम के समय ग्राम-भ्रमण के पीछे गांव भर के लोगों के सामने गीत एवं नृत्य का प्रदर्शन करना होता है। लेकिन भोर में ग्राम-भ्रमण पर तब जाया जाता है, जब लोग पूरी रात जागकर उत्सव का आनंद लेते हैं और भोर होने के पहले बैठे-बैठे लोग एक प्रकार से ऊबने लगते हैं, तब गीत गाते हुए पूरा गांव घूमने निकल जाते हैं। सुबह के समय गांव-भ्रमण के पीछे यह भी कारण है कि जब कुछ लोग उत्सव से रात को बीच में ही उठकर भाग जाते हैं, तब उन्हें पुनः जगाते हुए गांव भर घूमते हुए निकलते हैं। उन्हें यदि न जगाया जाए, तब भी यह जताने के लिए निकलते हैं कि हम तो पूरी रात जागकर उत्सव का आनंद लेते रहे, जिससे तुम वंचित हो गए। त्योहार-उत्सवों के इस वर्ग के गीतों की संख्या अन्य वर्ग की संख्या से अपेक्षाकृत कम ही पाया जाता है। परंतु इनके भाव बड़े ही मार्मिक होते हैं और प्रायः इस प्रकार के गीतों में गांव की विशेषताओं, उनमें उपलब्ध सुख-सुविधाओं इत्यादि का वर्णन मिलता है। कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं-

सांगमै प्युगा बिन-रुन मोंग, अराम डौलू जे फुत लकगे,

न्फौ चेगा ये, अपुइ-प्युराम मताइ नीये जे।

न्मुई-प्युराम सौजे वांग लुंग लौ,

चेवांग राम स्वांग वी।

मेताई-चेमी दुइलिन केपिन कुमये,

त्यु केलक बोराम ये वांग लौ। (Pau-Pai Lui, 2003, page-25)

अर्थ- एक परदेशी बाबू यात्रा पर हमारे गांव आए और छोड़ कर नहीं जा पा रहे हैं। वे कहते हैं कि इस गांव के लोगों का अहो भाग्य है। काश! यही मेरा गांव होता! (इस पर गांव वाले उनसे कहते हैं) अपने पुरखों के गांव को छोड़, यहां आकार बस जाओ, किसी राजनगरी से कम नहीं है। यहां नमक और मांस-मछली उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं, जिस प्रकार झरने से पानी बहते हैं और इनका उपभोग करते रहने पर भी कभी समाप्त नहीं होता है। आओ यहां आकर बसो।

प्रस्तुत गीत के माध्यम से गीतकार ने अपने गांव की खूबी का वर्णन किया है। वे अपने गांव के सौन्दर्य का वर्णन तो करते ही हैं, साथ ही यात्रियों के द्वारा उस गांव के प्रति लोभित हो जाने का भी वर्णन किया है। इस गीत में मांस-मछली की अधिकता का तो वर्णन है ही, विशेष रूप से 'नमक' की पर्याप्तता का भी जिक्र हुआ है। उल्लेखनीय है कि पुराने दिनों में लोग नमक खरीदने के लिए बहुत दूर, असम के मैदानों में पैदल ही जाते थे और जो जा नहीं पाते, वे कभी-कभी बिना नमक के भी रहते थे।

इसलिए इनके आर्थिक जीवन में नमक का अत्यधिक महत्त्व रहा है। ऐसे में, संयोग से किसी-किसी गांव में ऐसा भी स्थान मिल जाता था, जहां नमकीन पानी चूता था, जिसे लोग पकाकर नमक प्राप्त करते थे। जिस गांव में ऐसे ही प्राकृतिक नमक उपलब्ध होता था, उस गांव को लोग बहुत अधिक महत्त्व देते थे। इसलिए गीतकार ने नमक की अधिकता की बात करके अपने गांव को राजनगरी से भी उत्तम बताया है।

खै-राडा खै, अराम बाम तारा दे सीमक,
हैगा केबाम मै पेकी ल्यागंगांग इन्वुन रजे,
न्सून नै अकिन तु वी लौ,
नांग दे तेसांग मै पुइ थ्यू
इ दे सांग मैखांग इंरा दे सीमक,

न्याइ-ज्युरा हैफ्या रम्मा इंरा दे सीमक। (Pau-Pai Lui, 2003, page-25)

अर्थ- चलो उत्सव मनाएँ, क्या पता कल को हम यहां रहें या न रहें। जितने भी यहां हैं, कल को अपने-अपने घर चले जाएंगे, फिर भी हम अपनी इस पीढ़ी को याद करेंगे। क्या पता तुम भी परदेश में ब्याही जाओ या मैं ही परदेशी हो जाऊँ। आज की रात साथ है, कल का क्या पता! हो सकता है हम सभी जुदा हो जाएँ।

प्रस्तुत गीत में भी प्रेम की भावनाओं को ही व्यक्त किया गया है। परंतु इस प्रेम भाव में भी गांव का प्रसंग आया है। 'केल्वांग रुन लुई' के तर्ज पर ही इसमें गांव से जुदा हो जाने की संभावना, फिर एक-दूसरे से न मिल पाने की शंका आदि भावों को व्यक्त किया गया है। इसलिए गीतकार का यह भाव है कि जब तक इस गांव में हैं, तब तक आनंद के साथ उत्सव मनाते हुए अपने हमजोलियों के साथ आनंदित रहना चाहिए।

रम्तिंग गिनौ हैदे वीलौ,
तिंगसांग पुइ वी ये,
तिंगसांग पुइ स्वांग चह्यू वी,

चह्यू-नैमेक स्वांग अथिन मैवी ये जे लौ। (Pau-Pai Lui, 2003, page-26)

अर्थ- आकाश मण्डल में कौन-सी चीज सब से अच्छी दिखती है?

ध्रुवतारा सबसे सुंदर दिखता है,
ध्रुवतारा से अच्छा चाँद दिखता है,
चाँद एवं सूर्य से भी अच्छा अथिन्मै अर्थात् हमारा समूह है।

इस गीत की शब्दावली एक प्रश्नोत्तरी के रूप में है। भाव की दृष्टि से तिंसांगपुरई (ध्रुवतारा) को गीत में वर्णित करने के पीछे ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के गीत भोर होने के पहले रात के अंधेरे में जब लोग ग्राम-भ्रमण के लिए जाते हैं, तब गाए जाते हैं। उस समय आकाशीय पिंडों में सबसे चमकदार पिंड ध्रुवतारा होता है, पर बड़ा होने के कारण चाँद को उससे लुभावना बताया गया है। फिर चाँद एवं सूर्य को भी अपने युवक-युवतियों के समूह के सामने फीका बताया जाना एक प्रकार से अपने लोगों के सौंदर्य, उनके प्रति अपनापन की भावना को व्यक्त करना है।

इस प्रकार, यह कहना उचित है कि केल्वांग रुनलुइ केवल एक निश्चित एवं सीमित समय के अंतराल में ही गाए जाने के कारण संख्या में अन्य गीतों की अपेक्षा कम हो सकता है। परंतु उनमें व्यक्त भाव, मानवीय सौंदर्य को ही नहीं बल्कि ग्रामीण जीवन के नैसर्गिक सौंदर्य के साथ-साथ प्रकृति के विभिन्न बिंबों के माध्यम से मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं को अभिव्यंजित करने में सक्षम हैं।

5.2.3 : विवाह के गीत (चेमी लुई)

लोकगीतों की परंपरा में शादी-ब्याह के अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों का अपना अलग महत्त्व होता है। जेलियांग समाज में शादी-ब्याह हो या फिर त्योहार-उत्सव, हर अवसर पर गीतों को खूब गाया जाता है। प्रायः हर्षोल्लास के समय गाए जाने वाले गीतों में त्योहारों एवं शादी-ब्याह के गीतों में अंतर नहीं किया जाता है। फिर भी, कुछेक प्रकार के गीत ऐसे होते हैं, जिन्हें केवल शादी-ब्याह के दिन, वह भी दुल्हन को विदाई देते समय गाए जाते हैं। इन गीतों का अपना अलग महत्त्व होता है। वैसे तो, हर्षोल्लास के गीतों के साथ-साथ कभी-कभी दुल्हन पक्ष की ओर से दूल्हे को चुनौती देते हुए क्रोध का स्वांग रचते हुए नाटकीय अंदाज में कुछ गीत गाए जाते हैं। इन गीतों के माध्यम से दुल्हन पक्ष के पुरुष दूल्हे को ललकारते, कुछ इस तरह से कहते हैं कि आओ, हमसे दो-दो हाथ करो, फिर देखते हैं कि तुम हमारी बहन के योग्य हो या नहीं। इस प्रकार का स्वांग प्रायः जब कोई लड़की किसी दूसरे गांव में ब्याही जा रही हो, तो किया जाता है, ताकि दूल्हे को दुल्हन के भाइयों से परिचित होने का अवसर प्राप्त हो सके। साथ ही, जेलियांग समाज की परंपरा के अनुसार, ऐसा भी होता है कि जब कोई लड़की किसी अन्य गांव में ब्याही जाती है, तब गांव के लड़कों के मन में एक प्रकार की पीड़ा और टीस रहती है। इस कारण भी हंसी-मजाक में ही सही, दूल्हे के प्रति अपना क्रोध प्रकट करते हैं। इतना सब कुछ सहते हुए भी शादी के दिन दूल्हे को चुप-चाप रहना होता है। ऐसा इसलिए कि जेलियांग समाज के अनुसार, वैवाहिक संबंधों की शुरुआत में पहले लड़के की ओर से ही पहल की जाती है। एक बार में किसी लड़की वालों के द्वारा हामी भर देना उसके लिए बड़ी बात होती है। प्रायः शादी के दिन भी

दुल्हन के घर वालों की नाक ऊँची ही रहती है। इसलिए दूल्हा पक्ष की ओर के लोग बड़े अदब के साथ लड़की वालों से पेश आते हैं। विवाह के गीतों को जेलियांग भाषा में 'चेमी लुई' कहा जाता है। ये गीत प्रायः दुल्हन के ल्यूच्यू एवं खंगच्यू सदस्यों के द्वारा उसे विदाई देते समय गाए जाते हैं। इन गीतों में दुल्हन के द्वारा अपने ल्यूच्यू की सदस्यता को छोड़, अपने यौवन को छोड़ एक औरत बनने, उसके चले जाने से उसके ल्यूच्यू में सूनापन आ जाने आदि की बातों का बड़े ही मार्मिक ढंग से वर्णन किया जाता है। इन गीतों को सुनकर दुल्हन भी रोती-सिसकती अपने घर से विदा होकर जाती है। इन गीतों को गाते समय गीतों में सीधे दुल्हन का नाम नहीं लिया जाता है बल्कि उसे किसी की बुआ के रूप में इंगित करके गीतों को गाया जाता है। ऐसे में, यदि किसी दुल्हन के भाई का पुत्र या पुत्री है, तो उसके नाम के साथ 'बुआ' शब्द जोड़कर गीतों को गाने की परंपरा है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

न्याम बुन्-रूम लुजे नांग्मी दौ मेखांग,
 न्याम बुन्-रूम लुजे नांग मी मेंग,
 हंकतः नाइयो कबनी जू,
 कपौ कुम अल्यू लुंगसु कबजे रम्नात्रेई,
 मेलान लौ हंकतनाइयो, मेलान चेंग्मा हो रखांग्बो,

इन्-रिन जई म्मुइन्-रा दे सीमक। (Zeliang, 2017, page-68)

अर्थ- हे हंकतनाइ! अर्थात् अमुक की बुआ, अभी तो तुम्हारे बाल छोटे-छोटे हैं। अपने इन छोटे बालों में ही तुम ब्याही जा रही हो, यह देख रोना आया है। इसी वर्ष ही तो तुमने अपने यौवन को प्राप्त किया है और अभी रोती-रोती विदा हो रही हो। हे हंकत नाइ, वापस आओ। (इस पर ब्याहता कहती है) वापस आना रीति के विपरीत है, इसलिए मैं जा रही हूँ।

प्रस्तुत गीत में किसी दुल्हन को विदाई देते समय उसके ल्यूच्यू एवं खंगच्यू के सदस्यों द्वारा यह कहा गया है कि अभी-अभी ही तो जवान हुई हो और अभी ही ब्याही जा रही है। वे उससे कहते हैं कि हो सके तो वापस आ जाओ, अभी तो तुम्हें अपने मोरूंग(ल्यूच्यू) में अपने सहेलियों के साथ दिन बिताने हैं। वास्तव में, गीतकार के मन की कल्पित भावनाएं ये कह रही हैं कि चाहे जितने भी अधिक दिन अपने ल्यूच्यू में अपनी सहेलियों के साथ बिता लें, जब शादी का समय आता है, तब हर किसी को इस बात का दुःख होता है कि वह फिर से कभी उस ल्यूच्यू की सदस्या नहीं बन पाएगी। इसलिए कोई भी लड़की अपने यौवन को प्राप्त करके विवाह योग्य हो जाए, तब भी वह स्वयं को उन किशोरियों के साथ प्रेम-व्यवहार बनाए रखना चाहती है, जिन्होंने अभी ही 'ल्यूच्यूकी' में अपना कदम रखा है।

चेहयू साइ तिग्बांग मेलिन जे, पेकुम सौद्यक,

चेहयू पेबुम च्वांगलुन रैनु,
 'हंकत नाइ' रा लापुइ लुजे ल्युना,
 लुन लाक गै।

अर्थ- चाँद तो क्षितिज पर डूबने के बाद भी फिर से आसमान पर चमकते हुए पूर्णिमा को अपनी चाँदनी ऐसे बिखेरता है, जैसे वह अपनी केंचुली उतारकर आया हो, मगर हे हंकत नाइ! तुम तो अगर एक बार लापुई अर्थात् 'औरत' बन गई, तो पुनः अपने यौवन को प्राप्त न करोगी।

इस गीत में गीतकार ने चाँद की कलाओं के उदाहरण से यह भाव प्रकट किया है कि चाँद तो हर महीने अपना रूप बदलकर भी पुनः अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। परंतु मनुष्य के जीवन में ऐसा संभव नहीं है। इसलिए प्रकारांतर से लोक मानस यह कहता है कि अपने यौवन को उमंग पूर्ण अंदाज में जीना चाहिए। एक प्रकार से जब कोई लड़की अपने ल्युच्यू सदस्यों से अलग होकर ससुराल जाने लगती है, तब उसकी सहेलियाँ इस प्रकार के गीतों के माध्यम से उसे विदा करती हैं।

चेहयू लुंग-रा साइमेंग देतू,मेलान रैनू,
 हंकत नाइरा लापुइ लुजे, मेलान लक गै,
 चेहयू कम साइ मेलान लौ,

मेथिनुइ रैखै, हंकत नाइ। (Zeliang, 2017, page-59)

अर्थ- चाँद तो मरने के बाद भी फिर वापस आ जाता है, पर हंकतनाइ एक बार ब्याही जाने के बाद पुनः अपने ल्युच्यू-जीवन (यौवन) में वापस नहीं आ सकती है। फिर भी हे! हंकत नाइ, अगर हो सके तो उसी प्रकार वापस आओ, जिस प्रकार पंद्रह दिनों बाद चाँद अपनी पूर्ण कलाओं के साथ वापस आसमान पर आ जाता है।

इस गीत में भी लोक गीतकार के द्वारा चाँद के उदाहरण से किसी ब्याहता को विदाई दी गई है। यहां चाँद के मरने से तात्पर्य कृष्ण पक्ष के उन दिनों से है, जब चाँद आसमान में नहीं दिखता है। जेलियांग समाज में चाँद के बारे में यह परिकल्पना है कि शुक्लपक्ष के आरंभ होते ही चाँद का जन्म होता है और अमावस्या की रात को उसका मरण होता है। इसी परिकल्पना के आधार पर ही गीतकार ने ल्युच्यू की लड़कियों के मन में अपनी ब्याहता सहेली से अलग होते समय उत्पन्न मानसिक पीड़ा को व्यक्त किया है। इसलिए कोई युवती भले ही ब्याही जा रही हो, पर सहेलियों की यह इच्छा रहती है कि किसी प्रकार चाँद की तरह पुनः वह अपने यौवन की पूर्णता के साथ किसी दिन उनके पास वापस आ जाए।

अकील्यु मै कपौ मेंग,
 हंकत नाइ बाम, केख्रू बाम फ्यू दक नेइ,
 हंकतनाइयो लुंग वी ये बाम लौ,
 अकील्युमै तुरा नांगपुइ थिन्तू लौ
 न्मुइ-प्यूलाम मेरी वांग,
 चुन्सित न्युये हंकत नाइयो।⁶

अर्थ- अकील्यु मै अर्थात् हम सभी ल्युच्यू के सदस्यों ने हंकत नाइ (अमुक की बुआ) के लिए एक धनवान परिवार खोज रखा है। हे हंकतनाइ! खुशी पूर्वक जीवन बिताओ। हम सहेलियों को देख-देखकर तुम अपने यौवन को व्यर्थ न जाने दो तथा जाते-जाते पीछे माता-पिता की ओर मुड़कर देखना और दुःखी होना अशुभ होता है।

यह एक अत्यंत ही मार्मिक विदाई गीत है। जब किसी लड़की का विवाह हो जाता है, तब वह विदा होकर निकलते समय गाया जाने वाला यह गीत है। एक ओर उसकी सहेलियाँ कहती हैं कि तुम्हारे लिए अच्छा परिवार खोजा है, इसलिए जाकर अपना जीवन खुशी-खुशी बिताओ। इस शुभकामना के साथ वे यह भी कहती हैं कि यदि तुम भी बिनब्याही हमारी तरह ल्युच्यू की सदस्या बनी रहोगी, तो हम सभी की तरह बूढ़ी हो जाओगी। यहां बूढ़ी होने से तात्पर्य विवाह की अवस्था को प्राप्त होने के बाद भी कुछ युवतियों के अविवाहित रहने और कभी-कभी उम्र निकल जाने के बाद उनके शादी-ब्याह में अड़चनों के आ जाने से है। इसके साथ ही, इस गीत की अंतिम पंक्तियों में यह कहा गया है कि विदा होकर जाते-जाते पीछे मुड़कर मायके को नहीं देखना चाहिए और न ही रोते-बिलखते घर से जाना चाहिए। ये बातें जेलियांग समाज की पारंपरिक विश्वास पर आधारित है। उल्लेखनीय है कि यदि कोई लड़की विदाई के समय बार-बार पीछे मुड़कर अपने माता-पिता की ओर देखती है, तो उसका घर दीर्घकाल तक बसा नहीं रहता है और बीच में ही परिवार टूट जाता है। इन्हीं लोक विश्वासों को पिरोते हुए गीतकार ने इस गीत की रचना की है।

5.2.4 : प्रार्थना गीत (कहुम-लुई या ककेलुम-लेउ)

जेलियांग जनजाति के लोकगीतों की परंपरा में यद्यपि प्रार्थना गीत या कहुमलुई की परंपरा बहुत प्राचीन नहीं है। फिर भी आज के लगभग एक सौ वर्ष पूर्व जब जादोनांग एवं गाइदिन्ल्यू ने समाज में धार्मिक सुधार करके 'हेराका' नाम के पंथ की स्थापना की, तब ईश्वर की प्रेरणा से उन्हें अनेक गीत

⁶ तेनिंग गांव के युवक-युवतियों के द्वारा एक विवाह के अवसर पर गाया गया गीत।

प्राप्त हुए, जिनमें से कुछ प्रार्थना गीतों के अंतर्गत आते हैं। उल्लेखनीय है कि हेराका पंथ के प्रादुर्भाव के पहले जितने भी धार्मिक अनुष्ठान या पूजा-अर्चना होते थे, उनमें मंत्रों (तेथोई/हेतोई) एवं तांत्रिक विद्याओं का प्रयोग होता था। इसलिए उन दिनों प्रार्थना गीतों का प्रचलन न था। जेलियांग समाज में कृषि, विवाह एवं त्योहार-उत्सवों से संबंधित गीत सैकड़ों वर्षों से प्रचलित रहे हैं और समाज के बहुसंख्यक वर्ग के द्वारा विभिन्न आयोजनों में इनका गायन एवं श्रवण होता रहा है। परंतु जहां तक प्रार्थना-गीतों की बात है, एक पंथ विशेष के लोगों के बीच ही गाए जाने के कारण यह समाज के सर्वसाधारण तबके तक प्रचलित नहीं है। इन गीतों को देखने से हेराका पंथ के लोगों का ईश्वर एवं प्रकृति के प्रति धारणाओं का ज्ञान हमें प्राप्त होता है। कुछ उदाहरण यहां दिया जा रहा है -

राग्वांग कता थाइ ये जेलियांगरोंग हेइ,

चेराकिल्वांग कुम लुंग बाम नीये।

हेग्वांग तेऊ नेइसाइ कुन सत,

दिन्तांग ल्युदे,

हेग्वांग तेउ साइरा चेल्यू लक गे,

हुल्यांग पौपुइ गौ।

राग्वांग तालुम न बाम मेइ मू

राबान पन्खौ वांग डाम मो। (Newme, 2009, page-47)

अर्थ- सभी देवी-देवता जेलियांगरोंग लोगों को जानते हैं, हम सभी ईश्वर के निवास सरीखे सुंदर नगरी में रहेंगे। यदि राज करना चाहते हो, तो धरती के आठों दिशाओं में (यह बात) फैलाओ। हे हुल्यांग पौपुइ! हमारा राज आना निश्चित है। ईश्वर पर विश्वास करने वाले सभी लोग उसकी हथेली (शरण) में आ जाओ।

इस प्रार्थना गीत में भक्त-जनों से यह कहा गया है कि राग्वांग/तिंग्वांग अर्थात् ईश्वर की कृपा से सभी देवी-देवता जेलियांगरोंग लोगों को जानते हैं अर्थात् उनकी कृपा हम पर है। इसलिए यदि हम ईश्वर पर विश्वास करेंगे तो हमारे ऊपर किसी प्रकार की विपदा नहीं आएगी। ऐसे में, हम इस धरती पर ईश्वर की कृपा से सुखपूर्वक रहेंगे और राज करेंगे। ईश्वर की इन बातों को धरती की आठों दिशाओं में फैलाने का निर्देश दिया गया है, ताकि ईश्वर पर विश्वास करने वाले सभी लोग सुख-पूर्वक जीवन बिता सकें। इसीलिए कहा गया है कि ईश्वर पर विश्वास करने वाले सभी लोग उसकी हथेली अर्थात् शरण में आ जाएँ।

राग्वांग नांग्कै गइये,

नांग्लुन गइ चुइ ये,

मनशेइ तदम मे, मनशेइ तदम मे।

रांग्वांग कैकू मे गोइ मे थेइ,

मक डा गइ रुन नेइ,

मनशेइ खंग गइये, मनशेइ खंग गइये। (Newme, 2023, page-68)

अर्थ- हे ईश्वर! तुम्हारा घर उत्तम है, इसके ऊपर तुम्हारा स्वरूप और भी सुंदर है, (उसी अनुरूप) मनुष्य की रचना की है। ईश्वर के घर आने वाले सभी लोग पुनः मृत्यु को प्राप्त न होंगे। मनुष्य के लिए अच्छा है, मनुष्य के लिया अच्छा है।

इस प्रार्थना के आधार पर हेराका अनुयायियों की यह स्पष्ट धारणा है कि ईश्वर का घर अर्थात् परमधाम जितना सुंदर है, उससे हजारों गुना सुंदर उसका स्वरूप है। ईश्वर ने कृपा करके मनुष्य को अपना ही स्वरूप दिया है अर्थात् अपने स्वरूप के आधार पर ही उसने मनुष्य की रचना की है। इसलिए जो भी ईश्वर की आस्था में उसके द्वार पर आता है, उसे कभी दुःख नहीं होता है और मनुष्य के लिए यही सर्वोत्तम उपाय भी है। हेराका अनुयायियों का यह विश्वास है कि तिग्वंग/राग्वंग ने इस सृष्टि की रचना की है और सभी प्राणियों में मनुष्य को सर्वोत्तम बनाया तथा उसने उसे विवेक दिया ताकि वह अच्छे-बुरे को समझ सके। उसने मनुष्य को भक्ति दी ताकि वह उन्हीं के आश्रय में आकर सुख-शांति को प्राप्त करे।

इस प्रकार भक्ति भाव, प्रार्थना या उपदेश के कुछ गीत जेलियांग समाज के पारंपरिक पंथ 'हेराका' अनुयायियों के बीच गाए जाने की परंपरा है। एक प्रकार से इन गीतों को लोक गीतों के अंतर्गत रखा जाए या नहीं, यह तो निश्चय नहीं किया जा सकता है। परंतु लोक में प्रचलित होने, उनके विश्वासों पर आधारित भावों की अभिव्यक्ति प्रतिबिंबित होने के कारण इन गीतों को भी यहां स्थान दिया गया है। इन गीतों की परंपरा से यह भी स्पष्ट होता है कि जेलियांग समाज में ईश्वर की धारणा अर्थात् आस्था कही जाने वाली वस्तु भी पुराने जमाने से ही विद्यमान रही है। जहां तक नागालैंड की बात है, वर्तमान में जेलियांगरोंग समुदाय के अतिरिक्त किसी अन्य नागा जनजाति में इस प्रकार के गीत या इन भावों को अभिव्यक्ति देने वाले पद्य-पंक्तियों के होने का पता नहीं चलता है। इसलिए जेलियांग जनजाति की विशिष्टता यह भी है कि इन लोगों ने अपनी पुरानी परंपराओं के साथ-साथ प्राचीन आस्था को भी जीवित बनाए रखा हुआ है।

5.2.5 : चेलिन लुई (नृत्य के गीत)

गाए जाने के समय या आयोजन आधारित गीतों के अंतर्गत नृत्य करते समय गाए जाने वाले गीतों को चेलिन लुई (नृत्य के गीत) कहा जाता है। जेलियांग लोक गीतों में चेलिन लुई अन्य गीतों से इस बात में अलग एवं विशिष्ट है कि इनमें नृत्य की क्रियाशीलता को दर्शाया जाता है। इन गीतों की क्रियाशीलता के अंतर्गत नर्तकों के सौंदर्य को दर्शाने का प्रयास किया जाता है और पशु-पक्षियों एवं कीट-पतंगों की क्रीड़ा-लीला को भी माध्यम बनाकर नृत्य के स्वरूप को प्रस्तुत किया जाता है। इन गीतों को निम्न उदाहरणों के माध्यम से स्पष्टता के साथ जाना जा सकता है-

हंकल्बोप्पू की केकू खांग्ल्यू है वांग्सौ निमाक,
 न्यू जाइ केदी रिगा, तेपेंग बो किन का-आ-रिकुम,
 रम्टिंग गिन डोइना किन का आ-रिकुम,
 मेंडौ लौ आवुन्जेंग मैतू थ्यूलिन राइलुई ये।

अर्थ- हंकल्बोप्पू (अमुक के पिता) के घर हम युवक-युवतियाँ कभी आना बंद न करेंगे। बराक नदी के ऊपर तितलियों के मंडराने-जैसा और आकाश पर बाज के उड़ने के जैसा हम सभी नाचते हैं। इसलिए सभी लोग आओ और हमारे नृत्य को देखो, क्योंकि यह सभी को दिखाने योग्य है।

इस गीत में युवक-युवतियों के नृत्य को बराक नदी के भँवर के ऊपर तितलियों के झुंड के मंडराने से तुलना की गई है। साथ ही, डोइना (Amur Falcon) के झुंड जब आकाश में उड़ते हैं, तब बड़े मनोहर एवं आकर्षक होते हैं। इस गीत में नृत्य करने वालों की तत्परता को इन पक्षियों की क्रियाशीलता के साथ समता दिखाई गई है।

चेरेंग किल्यू सुलिन लौ,
 माइकइ डौनी जे मेंग बाम्ये।
 मैकी खांग रा लिन बाम जे,
 मैफुई पेनिंग माक।
 अकी खांगलिन सिजे,

चेमाइ कैपुइ फुइबाम नीये। (Pau-Pai Lui, 2003, page-28)

अर्थ- हे धनेश के समूह, अपना नृत्य दिखाओ। सैकड़ों लोग देखने के लिए आए हैं। दूसरे खंग्च्यू के लोग नाचते हैं, तो भी लोग देखना पसंद नहीं करते हैं, पर हमारे खंग्च्यू के लोग जब नृत्य करते हैं, तो सैकड़ों लोग देखते रहते हैं।

इस गीत में गीतकार अपने खंग्चू की प्रशंसा में यह कहता है कि अन्य खंग्चू की अपेक्षा जब हमारे खंग्चू के लोग नाचते हैं, तब शोभा कुछ और ही होती है। इस आकर्षक दृश्य को देखने के लिए सभी लोग हमारे खंग्चू की ओर दौड़े चले आते हैं। इस गीत में चेरेंग अर्थात् धनेश को उपमान के रूप में प्रयुक्त करके अपने खंग्चू के लोगों को धनेश के समान उदात्त एवं गौरवमय बताया गया है। इस गीत के माध्यम से यह भी पता चलता है कि समाज में अपने-अपने खंग्चू (मोरूंग) को अन्य खंग्चू से श्रेष्ठ दिखाने की परंपरा सामान्य रूप से प्रचलित थी।

हे! इरा लिन्सी माक गे,
तेसांग खांग ने लांग जे,
कडाम साजे लिन बाम ये।
लिन केसी मै डुत लिन लौ,
इरा लिन्सी माक गे,

मेरौ जे चाप बाम ये। (Zeliang, 2017, page-129)

अर्थ- मुझे तो नाचना नहीं आता है। परदेशी के कहने पर इसे टाल नहीं पाई हूँ। जिसे नाचने आता हो, वह आकर मेरी जगह ले ले। मुझे तो नाचना नहीं आता है, न चाहते हुए भी खड़ी हूँ।

इस गीत में नाचने वालों में किसी प्रकार का अहंकार नहीं है और उनके मन में यह भाव नहीं है कि मुझे नृत्य अच्छी तरह से आता है। 'परदेशी बाबू' के प्रयोग से यह तथ्य भी सामने आता है कि यह गीत या नृत्य युवतियों के द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है, जिन्हें किसी परदेश से आए लोगों के अनुरोध पर नृत्य प्रस्तुत करने के लिए विवश भी किया जा रहा है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि जेलियांग लोकगीतों में समय अथवा आयोजन के आधार पर विभिन्न प्रकार के गीत गाए जाते हैं, जिन्हें गाने के लिए अलग-अलग प्रकार के आयोजन की आवश्यकता पड़ती है या यों कहना चाहिए कि इस समाज के लोक गीतों की विविधता उनके आयोजन के आधार पर अनेक रंग-रूपों में प्रतिबिंबित होती हैं।

5.3 : भाव-आधारित लोकगीत

जेलियांग लोक गीतों में जीवन के विविध आयामों के समावेशन के साथ-साथ परिस्थितियों एवं आयोजनों के अनुसार उनमें विभिन्न भावों को अभिव्यक्ति मिली हुई है, जिनमें कहीं लोक को उल्लसित करके संपूर्ण समाज को लोक-रंजित कर देने के भाव होते हैं तो कहीं लोक-जीवन से पलायन तथा लोक-संस्कारों के विलुप्त होते परिदृश्य को देख लोगों के मन में उत्पन्न पीड़ा एवं तड़प के कारण विरह

की भावनाओं को व्यंजित किए गए हैं। इसके साथ ही, इन गीतों में जहां अपने देश एवं गांव के प्रति प्रेम, उसकी सांस्कृतिक परंपराओं को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए संपूर्ण लोक-भूमि को किसी सम्राट के ऐश्वर्यपूर्ण दरबार की संज्ञा दे दी गई है, वहीं प्रेमी-युगलों के अगाध प्रेम में संयोग-वियोग के अत्यंत मार्मिक भाव अभिव्यक्त हुए हैं। इतना ही नहीं, इनके लोक गीतों में किसी यजमान को गौरवान्वित करते हुए उसे किसी सिंहासन पर बिठा देने की क्षमता है तो इन्हीं गीतों के माध्यम से आत्म-प्रशस्ति में स्वयं को किसी राजकुमार के रूप में प्रतिस्थापित करने के भाव भी इनमें गुंठित हैं। इन्हीं भावों के आधार पर गीतों को वर्गीकृत करके देखना चाहिए, जिनमें निम्न भावों को मुख्यतः लिया जा सकता है-

- मेराई थू लुई (प्रेम गीत)
- चेगेंग/तेथुन लुई (प्रशस्ति के गीत)
- वीर-भावों से युक्त गीत
- मौसम को दर्शाने वाले भावों के गीत
- शोक गीत (चुन्सित लुइ)
- भक्ति परक भाव के गीत

5.3.1 : मेराई थू लुई (प्रेम गीत)

जेलियांग लोक गीतों में भाव की दृष्टि से सबसे अधिक संख्या में गाए जाने वाले गीत- प्रेम गीत होते हैं, जिनमें प्रेम के विविध पक्ष आते हैं। यहां के लोक गीतों में वैयक्तिक प्रेम को सबसे विशद विषयवस्तु के रूप में देखा जा सकता है। वास्तव में, श्रृंगारिक प्रेम-भावनाओं से युक्त इन्हीं गीतों में जेलियांग लोक की सजीवता का सबसे सशक्त प्रस्तुतीकरण हुआ है। इन गीतों में प्रेमी युगलों के बीच परस्पर सानिध्य में रहने पर संयोग से उत्पन्न उल्लास के भाव तथा परस्पर दूर हो जाने पर विरह के भाव अत्यंत ही मार्मिक रूप में व्यक्त हुए हैं। परंतु देश प्रेम या अपने गांव के प्रति प्रेम की भावना दर्शाने वाले गीत भी पर्याप्त संख्या में प्राप्त होते हैं। इन गीतों में अपने गाँव को अन्य स्थानों की तुलना में धन-धान्य से परिपूर्ण, प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर दिखाने के साथ ऐसा दिखाया जाता है कि गीतकार का गांव/देश ही इस धरती के बीचों-बीच पड़ता है तथा शेष जगह किनारे पर पड़ता है। यहां गांव या देश दोनों के लिए अलग-अलग संज्ञा प्रयुक्त नहीं है। इसलिए दोनों के लिए एक ही शब्द 'अराम' का प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ मेरा गांव या मेरा देश होता है। स्वदेश-प्रेम से संबंधित निम्न गीत को उदाहरण के रूप में समझा जा सकता है-

वी-केंग-लम लुंग केमी मै;
अकिन राज्य लौ, न्दा नैकिन स्वांगवी,

तेसांग लम लुंग अपुइ-प्यू राम गमा,

हैगा मेलान वांग लुंग लौ,

मेकी-खौलाम स्वांग वीये। (Pau-Pai Lui, 2003, page-6)

अर्थ- हे, उस पार (परदेश जाकर) रहने वालों! हमारी आज की पीढ़ी को देखो, पिछली पीढ़ी से अच्छी है। परदेश जाकर तुम वहां बस तो गए हो, पर वह अपने पुरखों की धरती है नहीं। यहां वापस आकर बसो क्योंकि यह मणिपुरी और खौमै लोगों की धरती से भी अच्छी है।

प्रस्तुत गीत में लोक गायकों ने अपने गांव/देश को मणिपुरी और खौमै (मैदानी क्षेत्र) के चकाचौंध भरे बाजारों से भी उत्तम बताया है। उल्लेखनीय है कि जब कुछ लोग गांव के संघर्षपूर्ण जीवन से हारकर या जीविकोपार्जन के अन्य साधनों के लिए परदेश चले जाते हैं और वहीं बस जाते हैं, तब उनकी याद में इस प्रकार के गीत गाए जाते हैं। इसलिए गांव में रह रहे लोग कहते हैं कि हमारी इस पीढ़ी को देखो, पिछली पीढ़ी के लोगों से उत्तम जीवन जी रहे हैं। इस प्रकार के गीत उन आयोजनों में प्रायः गाए जाते हैं, जब किसी समारोह या उत्सव-त्योहार में गांव छोड़कर परदेशी बन चुके लोग आकर शामिल होते हैं, जिन्हें सुनकर वे भी अत्यंत भावुक हो उठते हैं। इसलिए गांव के लोग उनसे परदेश छोड़कर अपने पुरखों की भूमि अर्थात् गांव वापस आकर बसने के लिए कहते हैं। इन्हीं गीतों के माध्यम से उन्हें गांव की याद दिलाते हुए गांव के प्रति उनके मन में मोह उत्पन्न करने के प्रयास किए जाते हैं।

अल्यू यो नांग मेंगला सै, नबुम ल्वाद्यक लौजे,

न्याइ नाइ वांग जी या, अमीन फुई अल्यू बामलौ,

हो राल्यू ने न्युम्बुनौ ह्याफुंग, अखांग न्सामलेंग पी,

वांग केरु थ्यूलौ, न्फीन मैर्वांगै वीकेथूलेइने,

केतालाम सीजू ये, इ मेरुइ साइ केरा तिंथेंग किन्नीये,

अहू चाम जेंगवी, पिदुई वांग हौ रालीये, केबम,

लुईर्वांग थ्यू दुइलिन रुअक प्वक के पद,

थिन्दिन राइ लुइ ये।⁷

अर्थ- हे प्रिय ! अगर तुम खेत जा रही हो तो (मेरे लिए) अपना प्रेम छोड़ जाओ। (तब लड़की अपने प्रेमी से) आज जल्दी आऊँगी, मेरी राह देखते रहना। वापसी में प्रेयसी ने सुंदर फूल लाकर दिए, जिससे प्रेमी खुशी से फूला न समाया। वह सोचता है कि अपनी सखियों के बीच सबसे सुंदर एवं सुशील ही नहीं, वह

⁷ साक्षात्कार से प्राप्त, गायक- पिग्दीन न्बुंग।

सर्व-गुण संपन्न है। मैं जीवन पर्यंत उसके साथ रहना चाहता हूँ। उसकी वाणी मीठी है और जब वह अपने बालों को बाँधने का अभ्यास करती है, तब उसे देख झरने की तरह गीत बह निकलते हैं।

इस गीत में प्रेमी युगल के वार्तालाप के साथ-साथ प्रेमी के द्वारा अपनी प्रेमिका के सौंदर्य का वर्णन किया गया है। जेलियांग समाज में, जिन घरों के खेतों में अधिक कार्य न होते थे, ऐसे घरों के पुरुष वर्ग अकसर गांव में ही रहते या शिकार पर जाते थे। ऐसी एक परिस्थिति में जब प्रेमी गांव में था, तब अपनी प्रेयसी को खेत के लिए निकलते देखकर इस गीत को प्रस्तुत किया गया है। इस गीत में 'पिदुई' अर्थात् 'बाल बाँधना' शब्द का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। जेलियांग परंपरा के अनुसार, शादी के बाद औरतें न तो बाल कटाती हैं और न ही उन्हें खुला रखती हैं। इसी संदर्भ में यहां कहा गया है कि प्रेयसी अपने बाल बाँधने का अभ्यास करती है अर्थात् वह वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने योग्य हो गई है। इसलिए इसका अभ्यास कर रही है। इस प्रकार, इस गीत में प्रेमी एवं प्रेमिका के मन में परस्पर उत्पन्न रति के भाव को व्यंजित किया गया है।

इ तद करा नाइ अहू तू केनुइ द्यक माक वुन्नेइ,
जिद मेंग लुलाक ये, जिद क्यूवुन-जिदक्यांग सू,
तेज्यू चेमांग है रगाइ जी सांग्रू,
जिद मेंग चेमांग लाम मान कीन दे,
अखीन न्माक गै,
केग्यू ना कुम्जे खलिन्तौ-खलिन्तौ
चेली वांग मेगुइ पिलौ,
अल्यू रेंगुंग ले वांग,
केख्यू खीन लौ अमेराइ।

अर्थ- मैं जब निकल रहा था, तब अपनी प्रेयसी को अलविदा कह नहीं पाया और अब नींद भी आ नहीं रही है। एक पल के लिए नींद आती है, तब भी उसका साथ ही पाता हूँ, पर अफसोस कि सपनों में तो जीवन जीया नहीं जाता है और सपनों में मैं उसे अपना बना नहीं सकता। इसलिए हे! मेरे साथियों, जिस प्रकार मधुमक्खियाँ एक के ऊपर एक बैठकर लंबी पंक्ति बना लेती हैं, उसी पंक्ति के समान मेरी इस कामना को प्रेयसी तक पहुँचा दो कि वह किसी रईस के यहां ब्याही जाए।

उपर्युक्त पंक्तियाँ 'जेंग्लिनांग' नामक गीतकार के लंबे गीत से ली गई हैं। उल्लेखनीय है कि प्राचीन काल में यह व्यक्ति नमक खरीदने के लिए परदेश गया और वहां वह किसी के द्वारा बंधक बना लिया गया। जब उन्हें यह आशा ही न रही कि वह वापस अपने गाँव कभी जा पाएगा, तब उसने गीत के

माध्यम से अपने साथियों के द्वारा अपनी प्रेमिका तक यह बात पहुंचाई। गीत में मधुमक्खियों की पंक्ति के संदर्भ से गीतकार ने अपने साथियों से अनुरोध किया है कि यदि किसी एक साथी के द्वारा उसकी प्रेयसी तक उसकी बात न पहुंचाई जा सके, तो परस्पर संदेश भेजते हुए उसे पहुँचाया जाए। इस गीत में 'जेलियांग' का अपनी प्रेयसी के लिए वियोग के अत्यंत मार्मिक भाव अभिव्यक्त हुए हैं।

जेलियांग लोक गीतों में अभिव्यक्त भावों के आधार पर इनके विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इनके उद्भव का मूल आधार ही प्रेम है, इसीलिए हर्षोल्लास, शोक, विषाद, विदाई और यहाँ तक कि कृषि-कार्य के गीतों में भी प्रेम को ही प्रधान भाव के रूप में स्वीकारा जा सकता है। हर्षोल्लास के गीतों में तो प्रेम ही है, यदि कोई शोक गीत गा रहा है, तो उसके मन में अपने किसी प्रिय से बिछुड़ जाने का अवसाद लिए गीत प्रस्फुटित होता है, जिसके मूल में उस 'बिछुड़े' के प्रति प्रेम भाव छलकते हैं। विवाह-गीतों में किसी दुल्हन के स्वागत में गाए जाने वाले गीतों में यदि परिवार की नई सदस्या के लिए प्रेम भाव है, तो विदाई के गीतों में, अपने बचपन के घर से सदा के लिए जाती, उसी दुल्हन से बिछुड़ने के विरह स्वर में भी प्रेम तत्त्व की ही प्रधानता होती है। कृषि-कार्य के गीतों में यदि किसी बाला के श्रम-जनित सुख-कपोलों पर स्वेद कण के छलकते सौंदर्य का वर्णन किया जाता है तो वह भी प्रेम की अभिव्यक्ति है और वसंत के आगमन पर शुष्क दिनों में सूखते ग्रामीण जल-स्रोत को छोड़, प्रेमी जोड़ों का गाँव से दूर जल-प्रपातों में स्नान करते हुए परिहास करने के मूल में भी प्रेम-भाव ही व्यंजित होता है। किसी युवती के सौंदर्य पर मोहित हो, यदि किसी पुरुष के कंठ से उसकी प्रशस्ति में गीत गुंजित होते हैं या फिर कोई युवक आत्म-प्रशस्ति के गीतों से किसी युवती को लुभाने का प्रयास करता है तो, भी उसके मूल में प्रेम ही होता है। यदि लोक मानस अपने गाँव-अपनी माटी की प्रशंसा में उसे किसी राजे-महाराजे की अट्टालिकाओं से भी अधिक सुंदर बताता है, तो देश-प्रेम है और वही लोक यदि अपने ग्रामांचल की उपेक्षा करके परदेश में बसे लोगों के प्रति उलाहना के गीत गाते हैं, तो उसके मूल में भी देश प्रेम है। इस प्रकार यह कहना असंगत नहीं है कि जेलियांग लोक गीतों की आत्मा प्रेम-तत्त्व है, जिसके बिना इनमें जीवन का संचरण असंभव सा है।

5.3.2 : चेंगेंग/तेथुन लुई (प्रशस्ति के गीत)

जेलियांग लोकगीतों में भावों के आधार पर प्रशंसा के भी अनेक गीत गाए जाते हैं। इन गीतों के अंतर्गत त्योहार-उत्सवों में गाए जाने वाले चेक्यू या जौहुतलुई सबसे पहले आता है, जिनमें किसी यजमान की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। इन गीतों को उदाहरण सहित चेक्यूलुई शीर्षक के अंतर्गत रखा जा चुका है। प्रशस्ति के दूसरे गीतों में आत्म प्रशस्ति एवं पर-प्रशस्ति के भी गीत गाए जाते हैं।

आत्म-प्रशस्ति नामक गीतों में गीतकार स्वयं की विशेषताओं, जीवन में प्राप्त किए गए उपलब्धियों तथा अपने कुल-खानदान की उच्च स्थिति इत्यादि को अपने गीत में व्यक्त करता है। वैसे तो, चेक्यूलुई भी पर-प्रशस्ति है, पर इसके अतिरिक्त भी जब किसी स्त्री या पुरुष के सौन्दर्य, वीरता, शालीनता आदि की बातों के आधार पर किसी अन्य व्यक्तियों द्वारा उसकी प्रशंसा की जाती है, तब उसे पर-प्रशस्ति के अंतर्गत रखा जाता है। कुछ उदाहरणों के माध्यम से यहां इसे समझा जा सकता है-

सांगलाम न्बीन मेंग जे अतू किन,
 वीजे सौना लौ जे तद केसू नै,
 अल्यू यो असाइ सुइ लू लौ जेलू
 अखांग नांग तेज्यू न लुंग ने,
 इ सुइ वांग पिंग ये जे।
 मैना पेचेंग ये, पामे राइ लुंग दौ,
 पेज्यू नातू फुत काम ने।
 अकी रा केता केंग,
 न्मुइ-प्यू लेंग बुइ प्वांग तू दे मनांग लौ,
 सौचाम पिंग ये लुंग लौ,
 मैना हाइ लुंग्या माक गै।⁸

अर्थ- मैं परदेश में निकला ही था कि लोगों ने पूछना आरंभ किया कि यह किसका लड़का है। ऐसे समय मैंने प्रेयसी से कहा, चलो मेरे साथ, अपना घर तुम्हें दिखाऊँ। फिर युवती ने कहा, तुम तो विवाहित और संतान युक्त प्रतीत होते हो। यह सुनकर मैंने कहा कि यदि कोई प्रेम करने वाली मिल जाए तो अपने परिवार-संतान का भी बहुत लोग परित्याग कर जाते हैं। मेरे घर धन-धान्य की कोई कमी नहीं। तुम्हारे माता-पिता को हाथी-समान मिथुन दे देंगे। किसकी बात से डरते हो। इस संसार में एक ही बार तो जीना होता है।

उपर्युक्त गीत में एक पुरुष के द्वारा किसी युवती को पाने की लालसा में आत्म प्रशस्ति के माध्यम से उसे लुभाने का प्रयास किया गया है। आत्म प्रशस्ति में प्रायः दंभ का भाव भी होता है और इस गीत में भी एक विवाहित पुरुष के द्वारा अहंकार पूर्ण भाव से एक युवती को लुभाते हुए अपने परिवार को उसके मूल्य चुकाने में सक्षम बताया गया है। इसलिए वह 'बुइप्वांग' अर्थात् हाथी के समान बड़े मिथुन के द्वारा लड़की के मूल्य चुकाने की बात करता है।

⁸ साक्षात्कार से प्राप्त, गायक- नामचुन्कम।

तद मेनुकजे वी मेनू
मेरीवांग जे वी लौ?
मनु बो है खान्ने केवांग।
तद मनुक सुजे न्फी वी,
मेस्वांग वांग जे न्जू थिन के रूइ कुम,
न्थाम बुन्क्यू रुपना ये लू,
जी मेतान ये,
न्जू डौजे अलू तिन थ्यू मेंग लाक गै।⁹

अर्थ- एक युवक, युवती के सौंदर्य की प्रशंसा में कहता है कि हे प्रिय! पीछे से देखूँ या सामने से, तुम्हारे सौंदर्य का कोई मुकाबला नहीं है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि तुम पीठ से अधिक सुंदर लगती हो या सामने से। फिर वह स्वयं कहता है कि पीछे से देखूँ तो तुम्हारे पैर इतने सुंदर हैं और जब सामने से तुम्हें देखता हूँ, तो तुम्हारा मुख मुझे मोहित करता है। इस पर तुम्हारे गेसू, सौंदर्य में और भी चार चाँद लगा देते हैं। इस प्रकार तुम्हें देखते हुए मैं अपने खेतों के कार्य नहीं कर पाता हूँ, क्योंकि मेरा ध्यान तो तुम्हारी ओर ही लगा रहता है।

इस गीत को पर-प्रशस्ति या सौंदर्य बखान कहा जा सकता है। लोक गीतों में जिस प्रकार स्त्री-सौंदर्य को मूर्त रूप दिया गया है, यह गीत उसका एक अनन्य उदाहरण है। प्रस्तुत गीत में पीठ से पैर के सौंदर्य का वर्णन इसलिए किया गया है, क्योंकि पुराने जमाने में लड़कियाँ अपने घुटने तक ढकी मेखला ही पहनती थीं और ऐसे में पैरों को देखकर उसके सौंदर्य का अनुमान लगाया जा सकता था।

5.3.3 : वीर-भावों से युक्त गीत

जेलियांग जनजाति में कुछ लोकगीतों में वीर भाव या वीर रस से युक्त भाव पाए जाते हैं। इस प्रकार के गीतों में किसी गीतकार के द्वारा शिकार में प्राप्त किए गए वन्य पशुओं का विवरण या किसी अन्य गांव या जाति से लड़ाई के दौरान जितने भी शत्रुओं का वध किया होता है, उनका वर्णन किया जाता है। इस प्रकार का वर्णन अकसर लंबे गीतों (लुइथेंग) के अंतर्गत ही किया जाता है और इन्हें एक प्रकार से गीतकार या गायक की आत्म-प्रशस्ति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इन गीतों में गीतकार अपने द्वारा संपादित किए गए वीरता के कारनामे स्वयं गिनाता है। कभी-कभी कुछ लोगों के द्वारा इन्हें युद्ध के गीत या चेरी-लुई का नाम दे दिया जाता है। चेरीलुई या युद्ध के गीत कहने से पाठक के मन में

⁹ साक्षात्कार से प्राप्त, गायक- पिग्दीन न्बुंग।

यह भाव उन गीतों के लिए अनायास ही उत्पन्न होता है, जिनमें युद्ध करते हुए सैनिकों के मनोबल को बढ़ाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करते हुए गाया जाता है। इसलिए इन गीतों को सुनते हुए गीतकार के वीरता की कथा का अनुभव तो होता है, परंतु इनमें युद्ध की क्रियाशीलता को दिखाने वाले भाव नहीं होते हैं।

5.3.4 : मौसम को दर्शाने वाले भावों के गीत

जेलियांग लोकगीतों में विभिन्न जलवायु को दर्शाने वाले गीत भी गाए जाते हैं। इन गीतों की रचना मूल रूप में यद्यपि मौसम को दर्शाना नहीं होता है। फिर भी लोगों की गतिविधि एवं जीवन-क्रियाशीलता के आधार पर विभिन्न ऋतुओं में गाए जाने के कारण उनमें अलग-अलग ऋतु के आवरण आ जाते हैं, जिन्हें ऋतु संबंधी गीत भी कहा जा सकता है।

तिंग नैमिक जे कलिए,
 अरम मैषू लुंग यौ, लुतिन तिंग हा न्ता ये,
 कदी मलइ मा, तिंग कू जे कली लौ,
 अल्यू थुम्लुम लुलाक नेइ
 लापुई तिंग रा थेंग ये, केसा कीरा मितू लौ।¹⁰

अर्थ- हे मेरे गांव के लोगों, सूरज अपनी स्थिति बदल रहा है और ऐसा लगता है कि बीजों के बोने का समय अब जा रहा है। धरती ने अपनी जगह बदल ली है या फिर आसमान साफ हो जाने के कारण सूरज का तपन बढ़ गया है। इसलिए मेरे चेहुत की युवतियों, सोच-समझकर अपना जीवन-साथी चुनो, क्योंकि 'लापुई तिंग' अर्थात् औरत का जीवन काल बहुत लंबा होता है।

प्रस्तुत कृषि गीत बोआई के समय गाया जाने वाला गीत है। गीत के भाव से स्पष्ट होता है कि बोआई के अंतिम दिनों में इसे गाया जाता है, क्योंकि इसमें गर्मी के अधिक बढ़ जाने के कारण लोगों को जल्दी से खेतों में बीज बो देने का आह्वान किया गया है। इस प्रकार गीत के गाए जाने के समय तथा उसमें तपते सूर्य की तेज धूप का वर्णन किए जाने के कारण इसे मौसम दर्शाने वाले गीतों के अंतर्गत भी रखा जा सकता है। अधिक स्पष्टता के लिए यहां यह भी उल्लेख किया जाना अपेक्षित होगा कि जेलियांग समाज में जब झूम कृषि की जाती है, तब उसमें बरसात आरंभ होने के पहले बीजारोपण कर दिया जाता है ताकि बरसात की बूँदें पड़ते ही वे अंकुरित हो जाएँ। यहां का मौसम ऐसा है कि गर्मी आई

¹⁰ कृषि गीत, न्वांगराम गांव के लोगों द्वारा प्रस्तुत।

नहीं कि बरसात आरंभ हो जाता है। इसलिए जब लोगों को सूरज की तपती धूप का एहसास होने लगता है, तब वे समझ जाते हैं कि अब बरसात दूर नहीं है।

अनाई चेकिन्दौ मेजांग जे, दुइलिन कामेसिंग तू जुन्वांग,
अल्यू न्मीन राइलौ, ई न्तू जुन्वांग, अनाइ न्छूजे,
अग्वांग दुइ अगी ये, बुन्फ्यांग पिंग ये,
आमेराइ अतू रू, न्दा अकिन रा वी ये।

अर्थ- शिशिर ऋतु के दिनों (मैं और प्रेयसी) हम दोनों परिहास करते हुए स्वच्छ झरने की ओर चलते हैं। प्रेयसी आगे-आगे और मैं उसके पीछे-पीछे चलते हुए वहां जाकर नहाते हैं। 'अग्वांग'¹¹ के झरने का जल इतना ठंडा है कि मैं उसमें नहाने से कतराने लगता हूँ। ऐसे समय मेरी प्रेयसी अपनी प्रेम-भावनाओं से युक्त होकर मुझे डाँटती रहती है, उन दिनों की बात ही कुछ और थी।

प्रस्तुत गीत में शिशिर ऋतु के समय का वर्णन है। वैसे तो यह कृषि कार्य के दिनों में भी गाया जाता है, परंतु विषय-वस्तु के रूप में शीत ऋतु के समय फुर्सत में युवक-युवतियों के द्वारा स्नान के लिए झरने में जाने के प्रसंग को लिया गया है। इस गीत के माध्यम से यह बात निकलकर आती है कि जाड़े के दिनों में जब कृषि संबंधी सभी कार्य समाप्त करके त्योहार-उत्सवों के दिन होते थे, तब प्रायः गांव के युवक-युवतियां अपने-अपने समूह में गांव से दूर झरने-जैसे जल-स्रोतों की ओर नहाने जाते थे। कहा जाता है कि त्योहारों के आने के पूर्व गांव के युवक-युवतियों को नहाने के साथ-साथ अपने वस्त्रों एवं आभूषणों को धो-धाकर साफ रखने होते थे। इन्हीं तैयारियों के चलते वे सामूहिक रूप में दूर के झरनों में चले जाते थे। उल्लेखनीय है कि जेलियांग गांव प्रायः पहाड़ी पर बसे होते थे और सूखे के दिनों में गांव के निकट के पनघट या जल-स्रोत सूखने लगते थे। ऐसे समय पर उन सूखते हुए जल-स्रोतों में जो थोड़े जल बचे होते थे, उन्हें घरेलू उपयोग एवं वृद्ध महिलाओं के लिए छोड़कर युवक-युवतियाँ गांव से दूर अच्छे जल-स्रोतों में नहाने-धोने के लिए निकल जाया करते थे। इस प्रकार, इन गीतों में लोक-जीवन को बड़े ही सूक्ष्म ढंग से दर्शाया गया है।

5.3.5 : चुन्सित लुई (शोक गीत)

जेलियांग लोकगीतों में भाव के आधार पर कुछ गीत ऐसे भी प्राप्त होते हैं, जिनमें वैयक्तिक अथवा सामूहिक जीवन के किसी मोड़ पर संघर्ष के दौरान आने वाले दुःख भरे भावों एवं व्यथाओं की अभिव्यंजना की गई है। इस प्रकार के गीतों में एकांत वास के कारण शोक-जैसे भाव भी आ जाते हैं।

¹¹ स्थान-वाचक शब्द, जो अपेक्षाकृत ठंडा जगह के लिए प्रयोग किया जाता है।

वैसे, प्रेम-विरह गीतों में भी दुःख के भाव व्यक्त होते हैं। फिर भी उन गीतों से थोड़ा अलग, व्यक्ति जब अपने वैयक्तिक जीवन में पारिवारिक सुखों से वंचित होकर एकांत में रहकर अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है, तब उन गीतों में सगे-संबंधियों के अभाव जनित दुःख अभिव्यंजित होते हैं। कुछ उदाहरणों के माध्यम से इन्हें समझा जाना अपेक्षित रहेगा-

अज्यूना जेंगेबे अद्वांग दीनी,
 लुतिन रान बामे, अज्यूना साइहा काम त्रेइ।
 इने न्साइगा लुतिन्थू मेंग अङ्गु दुन गा,
 काब-काब जे किन नेइ,
 मै डौ मेगिन थ्यू ये,
 चेरापुइ जूप्पक माक बुई ये।

अर्थ- मैं अपने बच्चों के भविष्य के लिए अपने अन्नागार को बढ़ाने की दृष्टि से कृषिकार्य में जी-जान से लगा हुआ था, पर मेरा ऐसा दुर्भाग्य रहा कि वे सभी चल बसे। इसके बाद उन सबकी माँ भी चल बसी। तुम्हारे पीछे मैं खेत में रोते हुए काम कर रहा हूँ। लोगों के सामने मैं अत्यंत दयनीय स्थिति में प्रतीत होता हूँ। इसलिए हे देवी माँ (हे दैव) ! विरह की इतनी तीक्ष्ण पीड़ा अपेक्षित न थी।

यह एक लुइथेंग का अंश है और इस गीत का आदिगायक न्जौ गांव के 'हुकम्बो' नामक व्यक्ति माना जाता है। उल्लेखनीय है कि गांव में किसी महामारी के आने के कारण उसके सभी बच्चों सहित उसकी स्त्री की मृत्यु हो गई और उनके विरह में उसने इस गीत की रचना की। इसमें प्रयुक्त 'अङ्गु दुन' कृषि कार्य संबंधी एक विशिष्ट शब्द है, जिसे गीतकार ने बखूबी ढंग से गीत की पंक्तियों में पिरोया है। इस शब्द का अर्थ कृषि-कार्य के उस अंतराल या खेत के उस भाग से लगाया जाता है, जिसे चेहुत/हेगुत बिना विश्राम किए एक गीत को गाते हुए पूरा करता है। साथ ही, गीत में प्रयुक्त चेरापुइ शब्द का अर्थ 'देवी माँ' होता है। परंतु प्रकारांतर से इसका भाव दैव या भाग्य से ही लगाया जाता है। इसलिए यहां यह तथ्य निकलता है कि जेलियांग लोक-आस्था के अनुसार ईश्वरीय सत्ता को कहीं-कहीं स्त्रीवाचक अस्तित्व के रूप भी में स्वीकार किया जाता है।

अलुइर्वाङ्थू रगुइ, सिंग्मुइन्गुई,
 आमेराइ लेइ लाम मेनिंग,
 अलुइर्वाङ्थू रगुइ बाम, काब सौ माक गै,
 इने थ्यूरी लाम हा लुमक, प्युबुन लाम हालुमक,
 मैना पलु तिन ये चेराम ज्यू कामत्रेई।

अर्थ- मैं अपने प्रिय की याद में इस पेड़ पर टेक लगाए उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ और अपने नीरस गीत के माध्यम से उसे पुकारते हुए रोता रहता हूँ। इस चक्कर में मैं न तो शिकार कर पाया हूँ और न ही अपने खेत में उगे हुए खर-पतवारों को ही साफ कर पाया हूँ। ऐसे में लोग अपने खेतों को सँवारे जा रहे हैं और मेरा खेत जंगल में तबदील होता जा रहा है।

यह गीत भी एक लुइथेंग का अंश है, जिसका आदिगायक 'चौगाइंग' नामक व्यक्ति माना जाता है। उल्लेखनीय है कि उसकी प्रेयसी शादी करके किसी अन्य गांव में चली गई और वह उसे याद करके रोता रहा तथा उसमें वह इतना खो गया कि उसके जीवन के सभी कार्य-व्यापार स्थगित हो गए। इस गीत के कुछ व्याख्याकारों के अनुसार, '*इने थ्यूरी लाम हा लुमक, प्युबुन लाम हालुमक*' पंक्ति के आधार पर गीत के इस अंश को द्विअर्थी बताया जाता है। इसका अभिधार्थ पशु-शिकार एवं खेत में खर-पतवारों को साफ करने में नाकामी को प्रकट करता है, वहीं व्यंग्यार्थ यह कहता है कि एक लड़की के चक्कर में पड़कर उसने अपने जीवन में एक योद्धा बनने अर्थात् शत्रुओं के सर को काटकर वीरता सिद्ध करने के सारे रास्ते बंद कर लिए हैं। इस प्रकार पुरुषोचित जीवन-दायित्व के अवसर को गँवाकर उसने अपने जीवन को एक प्रकार से निरर्थक बना लिया है। इस गीत में गीतकार ने अपना शोक तो व्यक्त किया ही है, साथ ही उसके स्वयं के प्रति क्षोभ एवं खीझ को भी प्रकट करता हुआ प्रतीत होता है।

5.3.6 : भक्ति परक भाव के गीत

जेलियांग लोकगीतों के अंतर्गत प्रार्थना के समय गाए जाने वाले गीतों में भक्ति के भाव अभिव्यंजित होते हैं। इनगीतों में लोग अपने जीवन में सुख-शांति एवं समृद्धि की कामना करते हुए अपने आराध्य के प्रति भक्ति की भावनाओं से युक्त गीत गाते हैं। प्रार्थना गीत या भक्ति भावनाओं से युक्त गीतों की परंपरा जेलियांग लोक गीतों में बहुत पुरानी नहीं है, क्योंकि समाज में 'हेराका' संप्रदाय के नाम से धार्मिक सुधार आंदोलन के पूर्व तक इन गीतों की परंपरा नहीं पाई जाती है। इन प्रार्थना गीतों के अस्तित्व में आने के पूर्व लोक में अपने आराध्य को प्रसन्न करने के लिए मंत्र-तंत्र के साथ बलि इत्यादि की प्रथा प्रचलित थी। परंतु इन मंत्रों को लोकगीतों में तो क्या, साहित्य के अंतर्गत रखना भी उचित प्रतीत नहीं होता है। यही कारण है कि बीसवीं सदी के प्रथम तीन दशकों में इन प्रार्थना गीतों के प्रादुर्भाव से ही जेलियांग समाज में भक्ति की भावनाओं से युक्त गीतों का आरंभ माना जाना चाहिए। जिन गीतों की चर्चा समय एवं आयोजन-आधारित गीतों के वर्गीकरण में प्रार्थना गीत के रूप में की गई है, उन्हें भावों के आधार पर भक्ति परक गीत का नाम दिया गया है। अतः यहां उदाहरण को फिर से दोहराए जाने की आवश्यकता नहीं लगती है।

5.4 : गायकों की संख्या पर आधारित गीत

जेलियांग समाज में प्रचलित लोकगीतों के अंतर्गत किसी गीत-विशेष को उनके गायकों की संख्या के आधार पर भी वर्गीकृत किया जाता है। हालांकि इनमें स्पष्ट विभाजक रेखा खींची नहीं जा सकती है। फिर भी कुछ हद तक यह भी समझ लेना अपेक्षित रहेगा कि किस प्रकार के गीतों को कितने गायक मिलकर गाते हैं। इस दृष्टि से इन्हें तीन वर्गों में रखा जा सकता है-

- एकल गीत
- युगल गीत
- सामूहिक गीत

5.4.1 : एकल गीत

जेलियांग लोकगीतों के अंतर्गत एक व्यक्ति के द्वारा गाए जाने वाले गीतों को लुइथेंग (लंबे गीत) कहा जाता है। लुइथेंग की चर्चा गीतों के स्वरूप के आधार पर वर्गीकरण में उदाहरण सहित की जा चुकी है। परंतु गायकों की संख्या के आधार पर इन गीतों को पुनः चर्चा अपेक्षित मानी जा सकती है। लुइथेंग अर्थात् लंबे गीत अपने स्वरूप के कारण तथा उनमें व्यक्त वैयक्तिक भावों के कारण एक व्यक्ति द्वारा ही गाया जाता है। लुइथेंग बिन्दु के अंतर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इन गीतों में एक प्रकार से व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को विस्तार से पिरोए जाने के कारण एक प्रकार से इन्हें लोक-गाथा भी कहा जा सकता है। आकार में अपेक्षाकृत बड़ा होने के कारण इन्हें याद करना या स्मरण रखना भी आसान नहीं होता है। समाज में प्राचीन काल से लेखन की परंपरा न होने के कारण जिन लोगों की स्मरण शक्ति अधिक होती थी, वे ही इन गीतों को याद करके उनका गायन भी कर पाते थे। इसके अतिरिक्त इन गीतों की पंक्तियों को गाते समय बार-बार दोहराया भी नहीं जाता है। इसलिए इन्हें न तो सामूहिक रूप में गाया जाता है और न ही इन्हें गाते समय 'बाजा' इत्यादि से ताल देने की परंपरा है। इन गीतों को इत्मीनान से बैठकर गाने-सुनने की परंपरा रही है। इसलिए इन्हें गायकों की संख्या की दृष्टि से एकल गीत के अंतर्गत रखा जाता है।

5.4.2 : युगल गीत

जेलियांग लोक गीतों में कुछ गीत ऐसे होते हैं, जिनमें जुगलबंदी की संभावना होती है। इस प्रकार के गीतों के अंतर्गत प्रायः स्त्री-पुरुष की जुगलबंदी होती है। इन गीतों की यह विशेषता होती है कि ये एक प्रकार से नायक एवं नायिका के बीच परस्पर प्रश्नोत्तरी या वार्ता के रूप में गुंथे होते हैं। इन गीतों में पहली पंक्ति यदि किसी पुरुष के द्वारा गाया जाता है, तो दूसरी पंक्ति स्त्री की आवाज में होती

है। यद्यपि इन्हीं गीतों को जब सामूहिक रूप से गाया जाता है, तब इन पंक्तियों को अलग-अलग करके नहीं बल्कि सभी एक सुर में गाने लगते हैं। फिर भी यदि किसी विशेष अवसर पर स्त्रियों एवं पुरुषों में गीत की प्रतिस्पर्धा या गीतों के माध्यम से वार्ता होती है, तब इस प्रकार के गीतों को गाते हुए परस्पर बात भी करते दिखते हैं। उदाहरण के लिए यह गीत यहां प्रस्तुत है-

‘अल्यू यो नांग मेंगला सै, नबुम ल्वाद्यक लौजे।’

“हे प्रिय, अगर तुम खेत जा रही हो, तो अपना प्रेम मेरे लिए छोड़ जाओ”- यह वाक्य पुरुष के द्वारा गाया गया है।

‘न्याइ नै वांग जी या, अमीन फुइ अल्यू बाम लौ’

“आज जल्दी वापस आऊँगी, मेरी राह देखते रहना” – यह कथन नायिका के द्वारा नायक से कहा गया है।

इस प्रकार, जेलियांग लोक गीतों के अंतर्गत जुगलबंदी करके गाए जाने वाले कुछ गीत भी होते हैं। इसलिए इन गीतों को गायकों की संख्या के आधार पर युगल गीत के अंतर्गत रखा जा सकता है। कभी-कभी अपेक्षाकृत कम लंबे वाले ‘लुइथेंग’ को भी दो लोग एक समान स्वर देते हुए गाते हैं। ऐसे गीतों में यद्यपि नायक या नायिका के द्वारा गाए जाने के लिए लिंग आधारित अलग-अलग पंक्तियाँ नहीं होती हैं, फिर भी इन गीतों को दो पुरुषों, दो स्त्रियों या पुरुष-स्त्री के जुगल में भी गाए जाने की परंपरा है।

5.4.3 : सामूहिक गीत

जेलियांग लोकगीतों में ‘लुइथेंग’ को छोड़ दिया जाए तो लगभग सभी प्रकार के गीत सामूहिक रूप में ही गाए जाते हैं। त्योहार-उत्सव हों या कृषि-कार्य- सभी अवसरों पर लोग सामूहिक रूप से आनंदोल्लास में होते हैं या फिर एक ही लय में अपने कार्य करते हैं। इसलिए इनसे संबंधित अधिकांश गीत सामूहिक रूप में ही गाए जाते हैं। अतः इन्हें सामूहिक गीत कहा जाता है।

5.5 : गायकों की अवस्था (आयु) आधारित गीत

जेलियांग लोक में प्रचलित कुछ ऐसे विशिष्ट गीत होते हैं, जिन्हें अलग-अलग आयु वर्ग के लोगों के द्वारा गाए जाते हैं। इस आधार पर इन गीतों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है-

- सर्वसामान्य के द्वारा गाए जाने वाले गीत
- वृद्धों के द्वारा गाए जाने वाले गीत
- बच्चों के लिए/बच्चों के द्वारा गाए जाने वाले गीत

5.5.1 : सर्वसामान्य के द्वारा गाए जाने वाले गीत

इस वर्ग के अंतर्गत वे सभी सामान्य गीत आ जाते हैं, जिन्हें किसी विशिष्ट आयु वर्ग के गीतों के अंतर्गत नहीं रखे गए हैं। कृषि कार्य, त्योहार-उत्सव के गीत एवं लुइथेंग इत्यादि सभी प्रकार के गीतों को इसके अंतर्गत रखा जा सकता है। इन गीतों को शेष अन्य दो नामों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो इसे वयस्कों के गीत भी कहा जा सकता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन्हें अन्य आयु वर्ग के लोगों के द्वारा गाया नहीं जा सकता है।

5.5.2 : वृद्धों के द्वारा गाए जाने वाले गीत

जेलियांग लोक में प्रचलित कुछ ऐसे गीत होते हैं, जिनके भाव से ऐसा माना जाता है कि उन गीतों में व्यक्त भाव बच्चों या वयस्क लोगों के लिए नहीं, बल्कि वृद्धों के लिए है या उन गीतों में किसी वृद्ध पुरुष अथवा महिला के द्वारा अपनी वृद्धावस्था के भावों को व्यक्त किया गया है। ऐसे गीतों को प्रायः वे ही लोग गाते हैं, जो उस अवस्था तक पहुँच चुके होते हैं। ऐसे में, इन्हें अन्य आयु वर्ग के लिए पूर्णतया वर्जित है, ऐसा तो नहीं कहा जाता है, फिर भी समाज में यह मान्यता बनी रहती है कि अपने आयु वर्ग की अनुकूलता के अनुसार जिस प्रकार बात करनी चाहिए, उसी प्रकार गीतों के गायन में भी इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए। अतः अपने आयु वर्ग के प्रतिकूल भाव वाले गीतों को यदि कोई गाता है, तो उसे अशोभनीय माना जाता है। वृद्धों के द्वारा गाया जाने वाला एक गीत यहां उद्धृत है-

अचुन मेकुमजे त्रादौ लुंगचुन खैता मेखा,
अजू तेदुइ दुंग का मताइ वुन,
थम्बुन केजिंग हावुन ये,
तेजू केलीन्दी ये,
केथिन पुन्खै अकील्वांग रम्बौ तू खून,
अलुइ थ्यू थिन्क्यू वुन नेइ,
अचुन म्पवांगनी ता वुन नेइ।¹²

अर्थ- मैं यह सोचता रहा कि अभी-भी मैं जवान हूँ। इसलिए जवानी के रंग-ढंग में मैं निकला ही था कि जल में मैंने अपना प्रतिबिंब देखा, तो पता चला कि सिर से काले बाल गायब हो चुके हैं और मेरे चेहरे की रौनक जा चुकी है।

¹² साक्षात्कार से प्राप्त, गायक- अज़म्बो न्बुंग।

इसके बाद से मैंने स्वयं को वृद्धों के रंग में रंग लिया और अपने गांव के 'रम्बौ' की रखवाली करने लगा। इस प्रकार मैं अपने गीत को गाते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त हो चुका हूँ और मेरे मन में अब किसी प्रकार की उमंग नहीं रह गई है।

प्रस्तुत गीत में लोकगायक के द्वारा अपनी वृद्धावस्था का वर्णन तो किया ही गया है, साथ ही गांव के 'रम्बौ' की रखवाली का भी जिक्र हुआ है। कहा जाता है कि पुराने जमाने में वृद्धावस्था के लोग कृषिकार्यों से मुक्त होकर प्रायः गांव में ही रहा करते थे और अपने गांव के चारों ओर संरक्षित हरे-भरे जंगल (रम्बौ) को ही देखकर अपने मन बहला लिया करते थे। कुछ ऐसा ही प्रसंग इस गीत का भी है। साथ ही, गीत की एक पंक्ति में जल में प्रतिबिंब देखकर ही अपने चेहरे की असलियत जान पाने के संदर्भ से यह भी स्पष्ट होता है कि पुराने जमाने में जेलियांग समाज में दर्पण जैसी वस्तु का प्रयोग नहीं होता था, जिसके चलते लोगों को स्वयं के सूरत का भान ही नहीं रहता था।

वृद्धावस्था से संबंधित एक और गीत यहां प्रस्तुत है-

इ डुत ल्यूच्यू की न्तौजे,
अल्यूतिंग मी केरा लेइने,
अतू तेलिन जे रामथेंग जू ये,
अखांग ताबुई न्खा,
च्युपी जे अलुंग लुन,
रेंगुंगना चाम च्यूनी जे डुत,
अरामप्यूबुन रियांग च्या-वुन नेइ,
थिन्लू जे अलुंग माक गेइ।¹³

अर्थ- मैं एक दिन 'ल्यूच्यूकी' में जाकर बैठा ही था कि एक विवाह योग्य उम्र की युवती ने मुझे छेड़ते हुए कहा कि जीवन बहुत लंबा है। अभी से यौवन के रंग-ढंग को छोड़कर प्रौढ़ जीवन को क्यों अपनाते हो। यह सुनकर मेरा मन रोमांचित हुआ जाता है और 'रेंगुंगना'¹⁴ की बातों को अधिक स्पष्टता के साथ समझने के लिए मैं उसके अधिक निकट गया। उससे बातें करके ऐसा लगा कि मेरे देश (गांव) में सुंदर स्त्रियों के पैदा होने के सिलसिले का अंत नहीं है और वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मैं शोकाकुल हूँ।

¹³ साक्षात्कार से प्राप्त, गायक- पिंगदीन न्बुंग।

¹⁴ मादा धनेश पक्षी की तरह सुंदर युवती।

इस गीत में युवतियों के द्वारा अपेक्षाकृत अधेड़ पुरुषों को छेड़ने की बात कही गई है, जिसे किसी वृद्ध पुरुष ने अपने ऊपर आरोपित करते हुए गाया है। इस गीत से यह तथ्य निकलकर सामने आता है कि कभी-कभी युवतियाँ अपेक्षाकृत प्रौढ़ (वृद्ध) लोगों के मन को बहलाने के लिए भी उन्हें गीतों के माध्यम से छेड़ती थीं। उनके इन छेड़खानी वाले गीतों एवं बातों को सुनकर वृद्ध पुरुषजन यह सोचते हैं कि हमारे गांव में हर पीढ़ी में सुंदर स्त्रियों के जन्म लेने का सिलसिला चलते रहने वाला है। वे यह भी सोचते हैं कि काश हम भी जवान ही रहते। इस प्रकार के गीत अपने यौवन को पीछे छोड़ वृद्धावस्था को प्राप्त कर चुके पुरुषों के द्वारा गाए जाते हैं या यों कह सकते हैं कि इनमें उनकी भावनाओं को व्यक्त किया गया है, क्योंकि जवानी की अवस्था फिर से प्राप्त नहीं की जा सकती है। गीत की अंतिम पंक्ति- 'वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मैं शोकाकुल हूँ', के माध्यम से गायक ने एक प्रकार से स्वयं पर हास्य-व्यंग्यात्मक भाव को आरोपित किया है। इस गीत में 'रेंगुंग्रा' शब्द का प्रयोग स्त्रियों के सौंदर्य को दर्शाने के लिए उनमें 'मादा धनेश' पक्षी को आरोपित किया गया है, क्योंकि जेलियांग लोक में धनेश पक्षी के सौंदर्य को गौरवशाली माना गया है। इसके साथ ही यहां 'ल्युच्यूकी' अर्थात् युवतियों के मोरूंग की भी बात आई है, जिससे यह तथ्य निकलकर सामने आता है कि पुरुषजन प्रायः ल्युच्यूकी में रात को जाकर युवतियों के साथ बैठकर परिहास भी किया करते थे। उपर्युक्त गीत का जिक्र कृषि-कार्य के गीतों के अंतर्गत किया जा चुका है और यह अमालुई अर्थात् खेतों की निराई के समय गाया जाने वाला गीत भी है। परंतु अर्थ एवं लोक-गायक की मंशा के आधार पर इसे वृद्ध लोगों के द्वारा गाया जाने वाला गीत भी कहा जाता है।

5.5.3 : बच्चों के लिए/बच्चों के द्वारा गाए जाने वाले गीत

जेलियांग लोक-गीतों की परंपरा में बच्चों से संबंधित गीत भी महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इस प्रकार के गीतों में कुछ तो बच्चों के मन को बहलाने के लिए उनकी माँओं या अन्य बड़ों के द्वारा गाए जाते हैं, तो कुछ गीत बच्चे अपने मनोरंजन के लिए स्वयं गाते हैं। अतः इस वर्ग के अंतर्गत पुनः दो प्रकार के गीत देखे जा सकते हैं। बच्चों के अधिकतर गीत कृषि-कार्य के व्यस्तता भरे दिनों में शाम के समय गाए जाते हैं, जब बच्चे अपने माता-पिता की बेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे होते हैं और कभी-कभी माँ को खेतों से आने में देरी हो जाती है, तब बड़ी बहनें अपने छोटे भाई-बहन को बहलाने के लिए इन गीतों को गाती हैं।

गीतों के उदाहरण यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं-

वीजे सौपुइ लौ? अपुइ ये,

अपुइ असाम फुंग्मू-फुंग्माक लौ,
 नाइना पुम फुंग्किन ये जे,
 फुंग्देतू न्तू पिमा,
 अना डे-डे न लेंग्ये। (Zeliang, 2017, page-117)

अर्थ- वह किसकी माँ है? मेरी माँ है।
 मेरी माँ मेरे लिए कुछ लाई है या नहीं?
 खीरा लेकर आ रही है,
 परंतु वह तुम्हारे लिए नहीं है,
 अपने छोटी-सी बच्ची के लिए है।

इस प्रकार के गीत बच्चों के मन को बहलाने के लिए गाए जाते हैं। जेलियांग समाज में कृषि-कार्यों की व्यस्तता के दिनों में जब माता-पिता खेतों में देर शाम तक कार्य करते हैं और देर से घर आते हैं, तब उनके छोटे-छोटे बच्चे उनकी राह देखते-देखते अधीर हो उठते हैं और कभी-कभी माँ की प्रतीक्षा में दुःखी होकर रोने लगते हैं। ऐसे समय में उनकी देख-रेख करती बड़ी बहनें अपने छोटे भाई-बहनों के मन को बहलाने के लिए इस प्रकार के गीत गाती हैं। वे बच्चों को ढाँढ़स दिलाती हैं कि माँ आती होगी और जब वह आएगी तो खेत से खीरे-मक्के आदि लाएगी, जो अपने छोटेबच्चों को देगी। इस गीत से यह तथ्य भी सामने निकलकर आता है कि जेलियांग लोग खेतों में धान लगाने के साथ-साथ खीरे-मक्के इत्यादि भी उगाते हैं, जो धान के परिपक्व होने के पहले खाद्य सामग्री के रूप में तैयार हो जाते हैं।

न्देउबो लुंग्सू प्युबुन नेइतू लुनी जे,
 न्देउ पेरा साजे,
 देउ-देउबो, तुंग-तुंगबो,
 अपुई वांडरी थू। (Zeliang, 2017, page-118)

अर्थ- न्देउबो (Cicada) नए पत्तों को पाने की चाह में,
 उसके ऊपर बैठकर गाते-गाते उसका गला बैठा जाता है,
 इधर न्देउबो गा रहा है, पर मेरी माँ है कि वह घर नहीं आती और सभी माँओं से पीछे आती है।

इस गीत में एक कीट 'न्देउबो' का जिक्र किया गया है, जो शाम के समय गोधूलि वेला में पेड़ों के हरे-भरे नए पत्तों पर बैठकर एक विशेष आवाज़ निकालता है, जिसे अंग्रेजी में सिकैडा (Cicada) कहा जाता है और यह कीट मई-जून के समय शाम को जोर-जोर-से आवाज करता है। इसी आवाज

को उसका गाना कहा गया है। जब बच्चे अपनी माँ की राह देखते-देखते थक जाते हैं, तब उन्हें लगता है कि हम भी उसी प्रकार थक गए हैं, जिस प्रकार न्देउपुइ अपना गला फाड़-फाड़कर गाने के बाद थक जाता है और उसका गला भी फटने लगता है। इस प्रकार के गीत बच्चों के मन को बहलाने के लिए गाए जाते हैं ताकि माता-पिता की अनुपस्थिति में उन्हें बहलाकर खुश रखा जा सके। पुराने समय में जब गोधूलि वेला हो आती थी, तब घर के छोटे बच्चे अपने माता-पिता के लिए बेसब्र हो उठते थे, तब प्रायः बड़ी बहनें अपने छोटे भाई-बहनों को पीठ पर लेते और रात्रि भोजन के लिए पकाया गया गर्म भात में नमक छिड़कर केले के पत्तों में उसे लेकर उन्हें खिलाते और इन गीतों को गाते हुए अपने घर के छोटों को खुश रखती थीं।

बच्चों के लिए गाए जाने वाले इन गीतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे गीत भी होते हैं, जिन्हें बच्चे खेल-खेल में स्वयं गाते हैं। वैसे तो ये गीत एक-दो पंक्तियों के ही होते हैं, परंतु छोटे-बच्चे बड़े चाव से दिन में खेलते हुए इन्हें गाते रहते हैं। इन गीतों का उदाहरण भी यहां प्रस्तुत है-

वांग त्यक त्यू खै, तकाबो, कौरिन्बो,

न्याइ चेमी हा देतू, तेसांग गन लांग न्बाम ये।

अर्थ- चलो खाना खाते हैं, तिलचट्टों एवं टिड्डों,

आज मांस नहीं है, फिर भी अखुनी की सब्जी बनी है।

तिंग्यो साता लौ,

अपौ नाम-रेंगबो तू तेदुइ ने दी नाम्ने।

अर्थ- हे बरसात रुक जाओ।

दादा नाम-रेंगबो बाढ़ के कारण पार नहीं पा रहे हैं।

कचेगा वीथू ये, कचेगा दे वीला,

अना न्युमै सइकाम त्रेइ।

अर्थ- कचेगा (त्योहार) सबसे अच्छा लगता है,

कचेगा कैसा अच्छा है भाई?

हमारे जवान लड़के मारे जा रहे हैं।

उपर्युक्त सभी वे छोटे-छोटे गीत हैं, जो प्रायः गावों में बच्चे खेल-खेल में गाते रहते हैं। इनमें से पहला गीत तब गाया जाता है, जब बच्चे इधर-उधर खेलने-कूदने-फाँदने के बाद दोपहर के समय खाना खाने के लिए अपने घरों को जाते हैं, तब अपने दोस्तों को पुकारते हुए इस प्रकार के गीत गाते हैं। इन गीतों में तिलचट्टों एवं टिड्डों के नाम को जोड़ने के पीछे तुकबंदी है या फिर ऐसा भी है कि बच्चे इन्हीं

कीट-पतंगों को अपने खिलौनों के रूप में प्रयोग करते हैं और गीतों में इन्हें भी जोड़ दिया गया है। दूसरा गीत बरसात से संबंधित है। उल्लेखनीय है कि कभी-कभी जब बरसात बिना रूके अनवरत चलता रहता है और बच्चे खेलने के लिए इधर-उधर नहीं जा पाते हैं, तब उन्हें ऊबन से मुक्त रखने अथवा उनके मनोरंजन के लिए बड़े उन्हें इस प्रकार के गीत सिखाते हैं और बच्चे गाते हैं। तीसरे गीत में 'चेगा' त्योहार का नाम आया है, जो जेलियांग जनजाति का सबसे प्रमुख त्योहार माना जाता है। यह गीत कुतिया एवं मुर्गी के वार्ता के रूप में विख्यात बच्चों का गीत है, जिसमें कुतिया कहती है कि 'चेगा' त्योहार सबसे अच्छा लगता है। लेकिन मुर्गी कहती है कि 'चेगा' त्योहार अच्छा कैसे होगा, हमारे तो सभी जवान लड़के इसी में मारे जाते हैं। इस गीत में व्यक्त भाव लोक की अपनी परिकल्पना है, जो समाज के त्योहारों एवं उसकी परंपराओं से पशु-पक्षियों को भी संबद्ध करता है। उल्लेखनीय है कि 'चेगा' त्योहार के समय पुराने जमाने में सभी पुरुष वर्ग अपना-अपना मुर्गा लेकर उसे लड़ाने के लिए निकलते थे। मुर्गों को लड़ाते-लड़ाते अंत में जिसका मुर्गा जीतता था, वही व्यक्ति विजयी भी घोषित किया जाता था। इसके बाद उन सभी मुर्गों को लोग पकाकर खाते भी थे। इसी संदर्भ को लेकर इस गीत में यह कहा गया है कि जब 'चेगा' त्योहार आता है, तब कुतिया तो बड़ी खुश होती है, क्योंकि उसे ढेर सारे हड्डी चबाने को मिलते हैं। परंतु दूसरी ओर मुर्गियाँ दुःखी इसलिए होती हैं, क्योंकि इसी दिन सबसे अधिक मुर्गे अर्थात् उनके जवान बेटों की बलि दी जाती है। यद्यपि इस गीत का आधार 'चेगा' त्योहार को लेकर है, फिर भी यह गीत इसी त्योहार में गाया जाता हो, ऐसा भी नहीं है। सामान्य समय में भी बच्चे अपने मनोरंजन के लिए इस प्रकार के गीत गाते हैं। इस प्रकार यह कहना गलत न होगा कि जेलियांग लोक में बच्चों के द्वारा गाए जाने वाले गीत भी बड़े रोचक हैं, जो अपने समाज के साथ तो जुड़े ही है, साथ ही पशु-पक्षियों तथा प्रकृति एवं उसके कीट-पतंगों के साथ भी अविच्छिन्न रूप से संबद्ध प्रतीत होते हैं।

5.6 : गायकों के लैंगिक आधारित गीत: पुरुष एवं स्त्री गीत

जेलियांग जनजाति के लोकगीतों के वर्गीकरण के आधारों में एक लैंगिक आधार को भी लिया जा सकता है, क्योंकि लोक में प्रचलित गीतों में कुछ ऐसे गीत होते हैं, जो केवल पुरुषों के द्वारा ही गाए जाते हैं और कुछ गीत केवल स्त्रियों के द्वारा गाए जाते हैं। वैसे तो, अधिकांश लोक गीतों में लैंगिक आधार पर कोई भेद नहीं किया जाता है। परंतु जिन गीतों में किसी व्यक्ति ने अपने पुरुषत्व को बढ़ा-चढ़ाकर आत्म प्रशस्ति की हो, ऐसे गीत प्रायः पुरुषों के द्वारा ही गाए जाते हैं। इस प्रकार के भाव या अभिव्यक्ति प्रायः लुइथेंग अर्थात् लंबे गीतों में ही पाए जाते हैं, जिनमें आदि गायक के द्वारा शिकार में मारे गए पशुओं के नाम एवं संख्या आदि गिनाए गए होते हैं। साथ ही कभी-कभी अपने जीवन काल में

उसने जितनी लड़कियों के साथ अपने संबंध स्थापित किए हैं, उनके नाम तो नहीं पर संख्या गिनाए जाते थे। इससे एक तथ्य यह भी निकल कर आता है कि पुराने जमाने में कुछ दंभी पुरुष अधिक से अधिक लड़कियों या स्त्रियों के साथ शारीरिक या मानसिक संबंध स्थापित करने को अपने लिए सामाजिक गौरव में वृद्धिकारक मानते थे। इसलिए इस प्रकार के गीत केवल पुरुषों के द्वारा ही गाए जाते हैं। वास्तव में, सभी पुरुष इस प्रकार के गीतों को गाना पसंद नहीं करते हैं। इस प्रकार के गीत वे ही लोग गाते हैं, जो लोक में अपना दंभ भरने या लोगों को नीचा दिखाने की मानसिकता से युक्त होते हैं। इस प्रकार दंभ भरे गीतों के अतिरिक्त पुरुषों के द्वारा गाए जाने वाले गीतों में कुछ ऐसे गीत भी होते हैं, जिनमें किसी प्रेयसी के शील एवं सौन्दर्य का वर्णन किया गया होता है। इस प्रकार के गीतों की भाषा भी बड़ी शालीनता एवं विनम्रता से युक्त होती है। इस प्रकार के कुछ गीतों का उदाहरण प्रशस्ति-गीत के शीर्षक में दिया जा चुका है। अतः यहां उदाहरण अपेक्षित नहीं है।

जिस प्रकार कुछ विशिष्ट गीत केवल पुरुष वर्ग के द्वारा ही गाए जाते हैं, उसी प्रकार कुछ गीत केवल स्त्री वर्ग के द्वारा भी गाए जाते हैं। इस प्रकार के गीतों में सबसे महत्वपूर्ण गीत विवाह गीतों के अंतर्गत 'चेमीलुई' नामक विदाई के समय गाए जाने वाले गीत होते हैं, जिन्हें किसी एक लड़की की विदाई पर उसकी सहेलियाँ रोते-बिलखते हुए विदा देते हुए गाती हैं। उसे शुभकामनाएँ देती हैं कि वह जिस घर में ब्याह कर जा रही है, वहां रानी बनकर रहे। इस प्रकार के गीत अपने 'ल्युच्यू' की कोई सदस्या जब विवाहित जीवन में प्रवेश करती है, तब उसकी सहेलियाँ गाती हैं। कभी-कभी सहेली के होने वाले पति एवं ससुर को भी ताने देते हुए वे गीत गाती हैं और कहती हैं कि आप हमारी 'ल्युच्युकी' से हमारी सहेली को लिए जा रहे हो, परंतु यदि उसे खुश न रखा तो हमसे बुरा कोई न होगा। इस प्रकार के कुछ गीतों का उदाहरण चेमीलुई अर्थात् विवाह के गीत शीर्षक में दिया जा चुका है। अतः यहां उदाहरण देना अपेक्षित नहीं है।

5.7 : जेलियांग लोकगीतों के गायन के विविध रूप

जेलियांग लोकगीतों की परंपरा के अंतर्गत गीतों के स्वरूप विविध समय एवं आयोजनानुसार गाए जाने, गायकों की संख्या, अवस्था इत्यादि की चर्चा के साथ-साथ उनके गायन के विविध स्वरूपों पर भी चर्चा कर लिया जाना अपेक्षित रहेगा, क्योंकि गीतों की विविधता के साथ-साथ उनके गायन की भी अलग-अलग पद्धतियाँ विद्यमान हैं, जिनका विश्लेषण किए बिना जेलियांग लोकगीत नामक शीर्षक को पूर्ण नहीं माना जा सकता है। इसलिए इन गीतों के गायन के विविध रूपों को निम्न रूप में विश्लेषित किया गया है-

- कामेतुइबो/कडे-बो/कामेथाबो/चेलिन लुइथ्यू
- चेहुत लुइथ्यू
- लइसुन्बो
- चेलुइ ज्याबो
- चेलुइ का-अबीबो
- चेर्यू तौबो लुइथक

5.7.1 : कामेतुइबो/कडे-बो/कामेथाबो/चेलिन लुइथ्यू

जेलियांग लोक-गीतों के गायन के सर्वाधिक एवं सामान्य प्रचलित पद्धति को कामेतुइबो /कामेथाबो /कडे-बो इत्यादि अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इसके साथ ही चेलिन लुइथ्यू अर्थात् नृत्य करते समय गाए जाने की पद्धति भी इन्हीं के लगभग समान ही गाया जाता है। गीतों के गायन की इस विधि में दो वाद्य यंत्रों 'न्चुम एवं सिंग्तोई' का प्रयोग किया जाता है। न्चुम यहां का पारंपरिक वाद्य यंत्र है, जो ढोलनुमा या बैंड पार्टी में प्रयुक्त 'बॉस-ड्रम' से मिलता जुलता है। सिंग्तोई- मंजीरा या झाल के लिए यहां की स्थानीय भाषा में प्रयुक्त शब्द है। इन दोनों वाद्य-यंत्रों के प्रयोग तथा इनकी गति के अनुसार ही गीत की गति एवं नृत्य के ताल को समंजित किया जाता है। नृत्य के गीत हों या बिना नृत्य के गीतों का गायन आरंभ में धीमी गति में तथा धीरे-धीरे न्चुम एवं 'सिंग्तोई' की गति को बढ़ाते हुए नृत्य एवं गीत की गति को भी बढ़ाया जाता है। इस प्रकार गीत गायन की इस पद्धति में इन दो वाद्य-यंत्रों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है, जबकि अन्य पद्धति में इनका प्रयोग कम ही होता है।

5.7.2 : चेहुत लुइथ्यू

कृषि कार्यों के अंतर्गत बोआई एवं निराई के समय गाए जाने वाले कृषि-गीतों की गायन पद्धति को 'चेहुत-लुइथ्यू' के नाम से जाना जाता है। वैसे तो कृषि गीतों में तेतिनलुई (बोआई गीत) एवं अमालुइ (निराई-गीत) दो मुख्य नाम आते हैं। फिर भी चूंकि इन गीतों को सामूहिक रूप से चेहुत या हेगुत के द्वारा गाया जाता है। इसलिए इन गीतों को चेहुतलुइ/हेगुतलुइ भी कहा जाता है। इन गीतों के गायन में किसी भी प्रकार के वाद्य-यंत्रों का प्रयोग नहीं किया जाता है। परंतु इन्हें भी धीमी गति से आरंभ करके धीरे-धीरे उसकी गति को बढ़ाते जाते हैं। गीत की गति के बढ़ने के साथ-साथ बोआई या निराई के कार्यों में संलग्न हाथों की गति भी बढ़ती जाती है और जब यह गति अपने चरम पर पहुँच जाती है, तब गीत को एक बार पुनः धीमी गति से आरंभ किया जाता है और कुछ गति देने के बाद उसका अंत किया जाता है। जब गीत के गायन का समापन हो जाता है, तब बोआई या निराई के कार्यों को भी विराम

देकर सभी लोग विश्राम करते हैं। इस प्रकार 'चेहुत-लुइथ्यू' अपनी विशिष्टता के कारण इसकी अपनी अलग पहचान होती है।

5.7.3 : लुइसुन्बो

'लुइसुन्बो' भी लोकगीतों के गायन का एक विशेष तरीका होता है। इस गायन पद्धति का प्रयोग भी कृषि-कार्य से निवृत्त होकर घर की ओर लौटते हुए चेहुत (समूह) के द्वारा किया जाता है। इसमें लोग चेहुतलुइ (कृषि गीत) या अपेक्षाकृत कम लंबाई वाले लुइथेंग (लंबे गीत) को चुनते हैं। गायन की इस परंपरा में गीत को एक ही बार गाय जाया जाता है और एक विशेष लय में सामान्य 'चेहुत लुइथ्यू' से काफ़ी धीमी गति में सामूहिक रूप में गाया जाता है। कृषि कार्य के सामान्य गीत-गायन में गीत की आवृत्ति कई बार करते हुए उसकी गति में बढ़ोतरी की जाती है। परंतु 'लुइसुन्बो' में गीत को अत्यंत धीमी गति से गाते हुए उसे एक ही बार में सम्पन्न किया जाता है और गीत को पूर्ण करने तक उसकी गति में कोई परिवर्तन नहीं किया जाता है। चेहुत अर्थात् कृषि कार्य के लिए बनाए गए युवक-युवतियों का समूह जब किसी खेत में काम करके शाम को लौटने लगता है, तब खेत से प्रस्थान के पहले आस-पास के क्षेत्र में खेत आए हुए लोगों को सूचित करने के लिए इस गायन पद्धति का प्रयोग किया जाता है, ताकि लोगों को पता चले कि चेहुत निकल रहा है और वे भी घर के लिए खेतों से निकल सकें। यदि सामान्य लय में कृषि-गीत गाया जाए, तो लोगों को यह पता नहीं चल पाता कि चेहुत अब गांव की ओर प्रस्थान का संकेत दे रहा है। इसलिए गायन के इस विशेष तरीके से लोगों को घर जाने की सूचना मिल जाती है। जेलियांग जनजाति के लोगों के झूम कृषि वाले खेत प्रायः गांव के रिहायशी इलाके से दूर घने जंगल के बीच होते हैं। ऐसे में हिंसक पशुओं का भय भी रहता है और पुराने जमाने में तो शत्रुओं का भी भय बना रहता था कि कब कौन किसका सर काट ले जाए। इन्हीं कारणों से सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए चेहुत जब खेत से निकलने लगता था, तब गायन के इस पद्धति से लोगों को एक प्रकार से आगाह करता था। इसे सुनते ही लोग कार्यों को छोड़ अपना सामान समेटकर घर की ओर निकलते और चेहुत के आगे-आगे चलकर घर पहुँच जाते थे। सुरक्षा के अतिरिक्त कभी-कभी बरसात के दिनों में काले बादल इतने छाए रहते कि दिन से कब शाम हो गई, इसका भी पता नहीं चल पाता है। ऐसे में 'चेहुत' के द्वारा 'लुइसुन्बो' सुनकर लोगों को पता चलता कि अब अपने बसेरे की ओर लौटने का समय हो गया है। कृषि कार्यों के समय के अतिरिक्त 'चेहुत' जब गांव में 'अथौसक' जैसा विशेष आयोजन करता है, तब भी किसी विशेष कार्यक्रम के आरंभ को सूचित करने के लिए गायन की इस प्रक्रिया को अपनाया जाता है। इस प्रकार यह कहना चाहिए कि जेलियांग लोक गीतों की गायन परंपरा में 'लुइसुन्बो' यद्यपि

सर्वसामान्य में बहुप्रचलित नहीं है। फिर भी विशेष प्रयोजन को लेकर गाए जाने के कारण इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

5.7.4 : चेलुइ ज्याबो/हेलेउ जेबे

चेलुइ/हेलेउ (गीत) को जब 'आलाप' के साथ गाया जाता है, तब उसे ज्याबो या जेबे कहा जाता है। इस गायन पद्धति का प्रयोग लुइथेंग के गायन में किया जाता है। जैसे कि लुइथेंग के संदर्भ में यह कहा गया था कि अन्य सामान्य गीतों के विपरीत आकार में लंबे होने के कारण इनके गायन में पुनरावृत्ति नहीं होती है और एक बार ही इसे गाकर समाप्त किया जाता है। इसी गायन के सिलसिले में राग के अनुसार गीतों को गाने के लिए धीमी गति के साथ आलाप देते हुए गाया जाता है, जिसे "चेलुइ ज्याबो" कहते हैं। लुइथेंग (लम्बे गीत) को किसी कार्य की गतिशीलता में नहीं, बल्कि इत्मीनान से बैठे-बिठाए सुने और सुनाए जाते हैं। इसलिए इस गायन की गति भी धीमी होती है। परंतु यदि लुइसुन्बो से इसकी गति की तुलना की जाए, तो थोड़ी-सी तीव्रता इसमें अधिक होती है।

लुइथेंग को लोग रात्रि के समय सोने के पहले अपने-अपने खंग्चू या 'ल्युच्यूकी' में बैठकर गायकों से सुनते हैं। वैसे तो प्रायः इस गायन पद्धति में एक व्यक्ति ही गाता है। परंतु यदि कोई दो व्यक्ति ऐसे हों, जो राग एवं आलाप तर्ज पर आपस में सामंजस्य बिठा सकें, तो दो लोग भी मिलकर एक साथ गीत सुनाते हैं। इस गायन की एक और विशेषता यह भी है कि इसमें इकतारा या वायलिननुमा एक वाद्य यंत्र का भी प्रयोग किया जाता है, जिसे स्थानीय भाषा में 'तरा' या 'त्रा' कहा जाता है। इसके प्रयोग से गायक को आलाप लेने में अधिक सुविधा होती है और सुनने वालों को गीत और भी अधिक सुरीला लगने लगता है। कभी-कभी गायन की इस परंपरा में 'न्यम' अर्थात् बाँसुरी का भी प्रयोग किया जाता है, जिसमें एक व्यक्ति गाता है और दूसरा व्यक्ति सुर देते हुए बाँसुरी बजाता है। 'चेलुइ ज्याबो' सामान्यतः खंग्चू या 'ल्युच्यूकी' में ही होता है, परंतु कभी-कभी युवकजन मौज-मस्ती में जंगल में घूमते समय या रात्रि के समय अपने खंग्चू को जाते हुए या फिर ल्युच्यूकी टहलकर वापस आते समय गांव की सड़कों पर भी गाते हुए चलते चले जाते हैं। इन गीतों का गायन प्रायः जाड़े की ऋतु में स्वच्छ आसमान के नीचे फुरसत में, जब लोग कृषि कार्यों की व्यस्तता के कारण प्रातः जल्दी उठने की फिराक में नहीं होते हैं- किया जाता है। इस प्रकार यह कहना चाहिए कि लुइथेंग गीतों के 'चेलुई-ज्याबो' की परंपरा फुर्सत के दिनों में ही रही है।

5.7.5 : चेलुइ का-अबीबो

जेलियांग लोकगीतों की गायन परंपरा में इसे अनौपचारिक गायन भी कहा जा सकता है, क्योंकि इसमें किसी प्रकार की औपचारिकता या भूमिका की आवश्यकता नहीं पड़ती है। चेलुइ अर्थात् गीत, 'का-आबीबो' अर्थात् काटना। इस प्रकार गायन की इस परंपरा के अनुसार, जिस प्रकार लोग बहस में एक-दूसरे की बातों को काटते जाते हैं, उसी प्रकार इसमें गीतों के गायन के माध्यम से परस्पर प्रतिस्पर्धा के द्वारा एक दूसरे की बातों को काटने का कार्य करते हैं। इसलिए अनौपचारिक होते हुए भी इस गायन का अपना अलग ही अंदाज होता है और बड़ा ही रोचक होता है। इस प्रकार का गायन प्रायः लोग जब एक साथ बैठकर 'जौ' (शराब) पीते हैं, तब अनायास किसी के मुख से एक गीत के निकलते ही उसके प्रतिद्वंदी के रूप में दूसरा गायक उसके गीत के आगे की कड़ी या कुछ नया गीत गा देता है और यह सिलसिला लंबे समय तक के लिए चल पड़ता है। कभी-कभी यह प्रतिस्पर्धा केवल दो लोगों के बीच नहीं, बल्कि दो गुटों के रूप में चलने लगता है, जिसमें गाने वाले तो मुख्यतः दो ही लोग होते हैं, पर उनके समर्थन में लोग अपने प्रिय गायक की पीठ थपथपाकर उसका हौंसला बढ़ाते और कभी-कभी एक-दो पंक्तियाँ उसके साथ भी गा देते हैं। इस प्रकार जब गायन की यह प्रतिस्पर्धा आरंभ होकर अपने चरम पर पहुँचती है, तब कुछ तो मधु के जोश में और कुछ गीतों के उकसाने वाले भावों के कारण माहौल में गर्माहट आ जाती है और कुछ लोग तो हाथापाई की स्थिति तक भी पहुँच जाते हैं। पर वातावरण को नियंत्रित करना गायकों के गीत चयन के ऊपर भी निर्भर करता है, क्योंकि जिस प्रकार के भावों को लेकर एक गायक निकलता है, उसी के अनुरूप ही दूसरा गायक भी अपने गीत का चयन करके उसका प्रत्युत्तर देने का प्रयास करता है। ऐसे में यदि एक गायक दंभ भरे गीत या आत्म प्रशस्ति के भावों से युक्त गीत गाता है, तब दूसरा गायक उसके ऊपर और चढ़ने का प्रयास करता है और यदि पहला गायक नम्रता के साथ अपने प्रतिद्वंदी के गुणों का बखान करता है, तब दूसरा भी उससे अधिक विनम्रता एवं अदब के साथ अपने गीत की प्रस्तुति करता है। इस प्रकार जेलियांग लोक गीतों के गायन की परंपरा में यह पद्धति अत्यंत रोचक एवं उत्साह वर्धक होता है। इसके साथ ही, यद्यपि इसे अनौपचारिक रूप दिया गया है, फिर भी गायन की इस परंपरा से ही समाज में यह पता लगता है कि लोक गीतों के स्मरण के मामले में कौन कितने पानी में है और इस गायन के माध्यम से ही लोग अधिक से अधिक गीतों को सुनकर स्मरण कर पाते हैं तथा उनके अर्थ की गहराई को भी समझ पाते हैं।

5.7.6 : चेर्यू तौबो लुइथक

चेर्यू तौबो या हरेउ तौबे एक प्रकार से धीमी गति में की जानेवाली नृत्य की प्रक्रिया का नाम है, जिसमें लोग किसी त्योहार-उत्सव के दिन अपने पारंपरिक परिधान में सज-धजकर गांव की सड़कों पर

प्रदर्शन करते हुए चलते हैं या कभी-कभी किसी विशेष अवसर पर बड़े मैदान में जन समूह के समक्ष इसका प्रदर्शन किया जाता है। इसमें वास्तविक जेलियांग नृत्य से अलग असीमित संख्या में बच्चे, बूढ़े और जवान सभी भाग लेते हैं, जबकि किसी नृत्य में एक निश्चित संख्या के साथ-साथ समान आयु वर्ग विशेष रूप से युवा-जन ही भाग लेते हैं। इस धीमी गति वाले नृत्य के प्रदर्शन में गाए जाने की पद्धति को 'चेर्यू-तौबो- लुइथक' कहा जाता है। वास्तव में, इसके लिए विशेष गीत भी होते हैं, जिन्हें नृत्य-गीतों के अंतर्गत न रखकर 'चेर्यू-तौ-लुई' भी कहा जाता है। इस गायन की यह विशेषता होती है कि इसमें यति अर्थात् विराम अत्यधिक होते हैं और अन्य गीतों के गायन की प्रवाहता के विपरीत 'चेर्यू तौबो' प्रक्रिया के अंतर्गत पैरों के गतिक्रम के अनुसार गीतों में भी विराम होते हैं। इन गीतों के गायन में भी न्चुम (ढोल) एवं सिंग्तोई (मंजीरा) का प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इन गीतों के लिए भी नृत्य की तरह ताल को धीमी गति से धीरे-धीरे तीव्रता की ओर बढ़ाया जाता है। यद्यपि गाए जाने की प्रक्रिया में विराम की अधिकता एवं अटक-अटक कर गाए जाने की पद्धति अपनाई जाती है, फिर भी जिस प्रकार नृत्य या अन्य त्योहार-उत्सवों के गीतों को बार-बार पुनरावृत्ति के साथ गाया जाता है और प्रत्येक पुनरावृत्ति में गायन की गति को बढ़ाया जाता है, जब तक कि वह गति अपने चरम तक पहुँच न जाए, ठीक उसी प्रकार से ही इन 'चेर्यू-तौबो'-लुइ' को भी गाया जाता है और अपने चरम पर पहुँचाने के बाद ही इसे पूर्ण विराम देकर नृत्य की प्रक्रिया को भी रोका जाता है। इस प्रकार 'चेर्यू-तौबो-लुइथक' भी यहां के लोक-गीतों की गायन-परंपरा का एक महत्वपूर्ण अंग है।

अंततः हम कह सकते हैं कि जेलियांग लोक गीतों में जिस प्रकार की विविधता है, उसी प्रकार उनके गायन के प्रकारों में भी विविधता पाई जाती है। उपर्युक्त गायन की विधियों के अतिरिक्त 'न्थ्यम लुइ' (बाँसुरी गीत) एवं 'तरा या त्रा लुइ' (इकतारा-गीत) के गायन के भी कुछ अलग-अलग अंदाज होते हैं। परंतु वे इतने भी अलग नहीं हैं कि उन्हें अलग रूप में वर्गीकृत किया जाए। लेकिन इतना तो अवश्य है कि जो लोकगीतों के सही ज्ञाता हैं, उनके अनुसार बाँसुरी बजाते हुए गाए जाने वाले गीतों का लय अन्य गीतों से पूर्णतया भिन्न होने के कारण उन्हें गीतों के वर्गीकरण में अलग रखा जाना चाहिए। उसी प्रकार से 'तरा' बजाकर गाए जाने वाले गीतों के संदर्भ में भी यही कहा जा सकता है। उपर्युक्त सभी बातों के साथ-साथ यह भी स्पष्ट किया जाना अपेक्षित होगा कि जिस प्रकार हिन्दी या अन्य गीतों में मुखड़ा-अंतरा की पद्धति पाई जाती है, उस प्रकार के गीतों का स्वरूप यहां नहीं पाया जाता है और यदि गीत छोटा है, तो उसे बार-बार दोहराकर गाया जाता है, चाहे वह किसी भी प्रकार के गीत के अंतर्गत आता हो, पर लुइथेग एवं लुइसुन्बो को एक ही बार गाकर पूर्ण माना जाता है। जेलियांग लोक गीतों की परंपरा में कभी-कभी चेरीलुइ या हेरेइ लुइ अर्थात् युद्ध गीत का भी नाम लिया जाता है, पर इस शोधार्थी

के द्वारा अपने अन्वेषण एवं विश्लेषण के दौरान किसी भी जेलियांग गांव में इस प्रकार के गीतों का प्राप्त न होना एक प्रकार से यह स्पष्ट करता है कि 'चेरी-लुइ' जैसा गीत नहीं रहा है। इस संबंध में यहां यह कहना अधिक समीचीन रहेगा कि अन्य जनजातियों में युद्ध के नृत्य या युद्ध के गीत विद्यमान हों और उनकी विद्यमानता के चलते उड़ती-उड़ती बातों के माध्यम से जेलियांग लोक पर भी इस प्रकार के गीतों एवं नृत्य की विद्यमानता का चोला ओढ़ा दिया गया हो। हाँ, यहां के जो लंबे गीत (लुइथेंग) हैं, उनके आदि गायकों ने अपनी गाथा में युद्ध के दौरान शत्रुओं के सर काटने या भाले से मारकर उनकी अँतड़ियों को बाहर निकालने आदि का वर्णन किया है। साथ ही, शिकार में मारे हुए पशुओं की संख्या, नाम आदि भी गिनाए हैं, जिन्हें सुनकर लोगों के मन में शिकार या युद्ध के प्रति एक प्रकार का जोश भी उत्पन्न होता होगा और भय भी। परंतु जैसे कहा गया कि लुइथेंग आराम से बैठकर गाए जाने वाले गीत होते हैं, इसीलिए युद्ध के वर्णन मात्र से ही इन्हें 'चेरीलुइ' कह देना अनुचित ही नहीं बल्कि प्रासंगिक नहीं है, क्योंकि युद्ध-गीत कहा जाए तो वे युद्ध के लिए निकलते हुए सैनिकों के उत्साहवर्धन में गाजे-बाजे के साथ गाए जाने वाले गीत होने चाहिए। परंतु यहां के लुइथेंग में इस प्रकार के न तो उत्साहवर्धक गति होते हैं और न ही गाजे-बाजे के साथ इनका गायन किया जाता है। अतः जहां तक जेलियांग लोक गीतों की बात है, उनमें युद्ध के गीत अनुपलब्ध ही हैं, ऐसा मान लेना चाहिए।

5.8 : जेलियांग लोक-नृत्य

जेलियांग जनजाति की सांस्कृतिक परंपरा में नृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है। सभी नागा जनजाति-नृत्यों में जेलियांग नृत्य को सबसे सुंदर माना जाता है। इसका कारण यह है कि ये लोग गीतों के गायन के साथ ताल मिलाते हुए नृत्य करते हैं, जबकि अन्य जनजातियों के संदर्भ में गीत के साथ नृत्य बहुत कम ही देखे जाते हैं। यद्यपि नृत्य को लोक साहित्य का अंग माना नहीं जा सकता, फिर भी इसका सानिध्य हमेशा से गीत-गायन के साथ रहा है। इसलिए लोक गीतों के साथ नृत्य का संक्षिप्त विवरण देना अपेक्षित हो जाता है। विभिन्न नागा जनजातियों में नृत्य की उत्पत्ति के संबंध में अलग-अलग धारणाएं बनी हुई हैं। सुमी जनजाति की एक लोककथा के अनुसार भूत-प्रेतों ने एक रात किसी गांव में आकर उत्सव मनाते हुए नृत्य किया था, जिसे किसी मनुष्य ने देख लिया और मनुष्य में आनंदोल्लास के समय नृत्य की परंपरा चल पड़ी। जेलियांग लोक में नृत्य को चेलिन या हेलिम कहा जाता है, जिसका शाब्दिक अर्थ उड़ान से लगाया जाता है।

5.8.1 : नृत्य की उत्पत्ति

जेलियांग लोक में नृत्य की उत्पत्ति के संबंध में दो धारणाएं प्रचलित हैं। पहली धारणा के अनुसार जब मनुष्यों ने पक्षियों के झुंड को आकाश में एक पंक्ति में समान रूप से अपने पंखों को गति

देते हुए उड़ते देखा, तब से लोगों ने उनका अनुकरण करते हुए नृत्य करना आरंभ कर दिया। इसी उड़ने की प्रक्रिया के अर्थ को लेते हुए यहाँ की भाषा में नृत्य को 'चेलिन या हेलिम' कहा जाता है। इसी धारणा के आधार पर ही विभिन्न पक्षियों के नाम पर नृत्यों के अलग-अलग नाम दिए होते हैं। कालांतर में लोगों ने केवल पक्षियों के नाम पर ही नहीं बल्कि अन्य जीव-जंतुओं के नाम पर भी अपने नृत्य की रचना की। यहाँ के नृत्यों में केग्युना (मधुमक्खी की एक प्रजाति), तेपेंगबो (तितली) तथा तमांगबो (मक्खी) आदि के नाम पर नृत्य रखे गए हैं। इस प्रकार के नृत्यों में उन जीव-जंतुओं की गतिविधियों का अनुकरण करते हुए नृत्य प्रस्तुत किए जाते हैं। नृत्य की उत्पत्ति की दूसरी धारणा के अनुसार, धरती पर एक अनाथ का विवाह तिगवांग (ईश्वर) की पुत्री के साथ हुआ और जब वह अपनी पत्नी के साथ अपने ससुराल गया तब उसने सर्वप्रथम परियों को नृत्य करते देखा। इसके बाद जब वह धरती लोक में लौटकर आया तभी से मनुष्यों में नृत्य की परंपरा चल पड़ी। इस प्रकार जेलियांग हो या कोई अन्य जनजाति, नृत्य की उत्पत्ति के संबंध में किसी न किसी दैवीय शक्ति को प्रेरणा मानी गई है।

5.8.2 : नृत्य के प्रकार

जेलियांग नृत्यों में विभिन्न जीव-जंतुओं के अनुकरण के आधार पर उन्हें नाम देकर उन्हें विशिष्ट बनाए गए हैं। परंतु इन विशिष्ट नामों के कारण उन्हें अलग-अलग प्रकार के नृत्य नहीं कहा जाता है। यदि नृत्यों के प्रकार की बात की जाए तो लोक में प्रचलित विभिन्न अवसरों के अनुसार प्रस्तुत किए जाने वाले नृत्यों के आधार पर ही उन्हें नाम दिया जा सकता है। इस आधार पर जेलियांग नृत्य को 'मेतुई लिन, कहुम लिन तथा चेर्यू तौबो- तीन वर्गों में विभाजित किया जाना अधिक उचित जान पड़ता है। अतः यहाँ इन तीन वर्गों के आधार पर ही जेलियांग नृत्य का संक्षिप्त विश्लेषण किया गया है।

5.8.2.1 : मेतुई लिन या रडा लिन

कामेतुइबो या रडाबो का अर्थ हर्षोल्लास होता है। जब समाज में किसी उत्सव या विशेष अनुष्ठान में हर्षोल्लास का माहौल होता है तब लोग खुशी में झूमते हुए जिन नृत्यों को प्रस्तुत करते हैं, उन्हें मेतुई लिन कहा जाता है। इस प्रकार के नृत्यों के अंतर्गत वे सभी नृत्य आ जाते हैं, जिनकी रचना लोक के द्वारा पशु-पक्षियों एवं अन्य जीव-जंतुओं के अनुकरण से की होती हैं। इन नृत्यों की उत्पत्ति के संबंध में ऐसा माना जाता है कि लोक ने अपनी पारखी नेत्रों से पक्षियों के उड़ने की प्रक्रिया, मधुमक्खियों के भिनभिनाने तथा तितलियों के पेंग भरते हुए लचीलेपूर्ण उड़ान की प्रक्रियाओं को देखकर ही इन नृत्यों की रचना की होगी। जब मानव मन खुशी से झूम रहा होता है तब इन नृत्यों का प्रदर्शन करते हुए उसे ऐसी अनुभूति होती है कि वह भी उड़ने वाले जीव-जंतुओं की तरह हवा में लहरा

रहा है। कुछ नृत्यों के लिए विशिष्ट गीत भी होते हैं, जिनमें नृत्य की क्रियाशीलता एवं गतिविधियों के अनुसार ही गीतों के भाव भी व्यंजित होते हैं। जेलियांग लोक में कृषि-कार्य की गतिविधियों को दर्शाते हुए भी कुछ नृत्य किए जाते हैं, जिन्हें 'कृषि नृत्य' का नाम दिया गया है। लोक धारणा के अनुसार कृषि कार्य के दौरान अपने कार्यों में किए जाने वाले गतिविधियों को उत्सवों एवं त्योहारों में दिखाकर लोकरंजन करने के लिए ही इस प्रकार के नृत्यों की रचना की गई है। इन्हें अलग नाम न देकर हर्षोल्लास के नृत्य के अंतर्गत ही रखा जाना अधिक उचित जान पड़ता है। इस प्रकार गीतों के साथ नृत्य के समन्वयन से जब लोक में इसकी प्रस्तुति की जाती है, तब नर्तक एवं दर्शक दोनों ही हर्षोल्लास के साथ झूम उठते हैं। इसलिए इन्हें **रडा लिन** अर्थात् हर्षोल्लास के नृत्य कहा जाता है।

5.8.2.2 : कहुम लिन / चेरा लिन (प्रार्थना नृत्य)

जेलियांग लोक में जिन नृत्यों को प्रार्थना या पूजा अनुष्ठान के समय प्रस्तुत किया जाता है उन्हें कहुम लिन या चेरा लिन कहा जाता है। लोक में इस प्रकार के नृत्यों की परंपरा सृष्टि के आरंभ में अनाथ के तिगवांग की पुत्री के साथ विवाह के समय से ही माना जाता है। इस प्रकार के नृत्य की परंपरा कालांतर में एक प्रकार से लुप्त हो गई थी। वर्तमान में इनकी परंपरा का पुनरुत्थान बीसवीं सदी के आरंभ में जेलियांग समाज के बीच रानी गाइदिन्यू एवं हैपौ जादोनांग के द्वारा धार्मिक सुधार के समय से ही माना जाता है। इसलिए इन नृत्यों की परंपरा 'हेराका' संप्रदाय के लोगों में ही पाई जाती है। रानी गाइदिन्यू के अनुसार- नृत्य भी ईश्वर के द्वारा मनुष्यों के लिये वरदान स्वरूप प्रदत्त है। अतः हम जिस भावना के साथ ईश्वर की प्रार्थना के गीत गाते हैं, उसी श्रद्धा के साथ ही नृत्य का भी प्रदर्शन करना चाहिए। किसी व्यक्ति या जनसमूह के समक्ष प्रस्तुत किया गया नृत्य उस व्यक्ति या जनसमूह के प्रति एक सम्मान का प्रकटीकरण होता है। ऐसे में नर्तकों के द्वारा मनुष्य का सम्मान किया जाना एक प्रकार से ईश्वर के प्रति अपने श्रद्धा को प्रकट करना है। इसलिए हेराका पंथ के लोगों में जब अपने धार्मिक गीतों के साथ नृत्य की प्रस्तुति की जाती है, तब उनमें हुड़दंगता एवं अल्हड़पन के स्थान पर शालीनता दिखाई देती है। प्रार्थना के नृत्य में भी अधिकांश की गतिविधियाँ मेतुई लिन की तरह ही होती हैं, परंतु कुछ विशेष नृत्य भी होते हैं जिन्हें विशेष मुहूर्त में ही प्रस्तुत किये जाते हैं। ऐसे नृत्यों में हेराका लोगों के द्वारा हर पूर्णिमा की प्रातः सूर्योदय के समय अपने प्रार्थना घर के सामने प्रस्तुत किया जाने वाला एक विशेष प्रार्थना नृत्य होता है, जो किसी अन्य समय में नहीं किया जाता है। इस नृत्य में प्रातः लोग अपने प्रार्थना घर में एकत्र होते हैं और जन समूह के द्वारा एक विशेष प्रार्थना गीत को गाए जाने पर कुछ लोगों के द्वारा सूर्य की ओर मुख करके इसे प्रस्तुत किया जाता है। इस नृत्य की यह भी विशेषता है कि इसमें नर्तकों की संख्या विषम होती है तथा केवल पुरुषों के द्वारा ही इसे प्रस्तुत किया जाता है। इसमें अन्य

नृत्यों की तरह न्युम या सिंग्तोई जैसे वाद्य-यंत्रों का प्रयोग नहीं किया जाता है बल्कि गीत की गति के आधार पर ही उसकी गति को समन्वित किया जाता है।

5.8.2.3 : चेर्यू तौबो

यह एक विशेष प्रकार का नृत्य होता है जो जेलियांग लोगों के नृत्य को अन्य जनजातियों से अलग विशिष्ट बनाता है। यद्यपि इसका प्रदर्शन भी त्योहारों एवं उत्सवों में हर्षोल्लासपूर्ण वातावरण में आनन्दित होकर ही किया जाता है फिर भी सामान्य नृत्यों की तरह अपने विशिष्ट पद्धति में बंधे न होने के कारण लोक ने इसे अलग नाम ही दे रखा है। जहाँ सामान्य नृत्य एवं प्रार्थना के नृत्यों में नर्तक जन किसी मंच या एक स्थान पर बने रहकर विभिन्न क्रियाकलापों का प्रदर्शन करते हैं, वहीं 'चेर्यू तौबो' नामक इस नृत्य में लोग दो पंक्तियों में होकर पूरे गांव का भ्रमण करते हुए भी अपने क्रियाकलापों का प्रदर्शन करते चलते हैं। अन्य नृत्यों में जहाँ नर्तकों की संख्या लगभग निश्चित होती है, इसमें असीमित संख्या में लोग शामिल हो सकते हैं। हर्षोल्लास के अन्य सामान्य नृत्यों की तरह इसमें भी वाद्य-यंत्रों का प्रयोग किया जाता है पर इस नृत्य की ताल विधि में अंतर पाया जाता है। इस नृत्य की यह विशेषता है कि इसमें गीत-गायन तथा नृत्य की गति अन्य की अपेक्षा धीमी रहती है। जब सभी लोग नृत्य में शामिल हो जाते हैं तब वही लोग गीत गायन भी करते हैं। सामान्य नृत्यों की परंपरा में नर्तकजन गीत नहीं गाते बल्कि वाद्य एवं गीत गायन के लिए अलग से लोग होते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि जेलियांग लोक के नृत्यों का साहचर्य हमेशा गीत गायन के साथ रहा है। इसलिए लोक गीत के रूप में साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण के दौरान इन नृत्यों की विवेचना भी अपेक्षित हो जाती है। इनके विवेचन से यह भी स्पष्ट होता है कि लोक गीतों में व्यक्त भावों को इन नृत्यों के माध्यम से ही पूर्ण अभिव्यंजना प्राप्त होती है। इसलिए प्रत्यक्ष रूप से नृत्य यद्यपि लोक साहित्य का अंग नहीं है, फिर भी इनके अभाव में गीतों की अभिव्यंजना को अपनी पूर्णता प्राप्त नहीं हो सकती है।

संदर्भ सूची :

Cheng, Paupai (2003). Pau-Pai Lui Khuang. Guwahati: Heritage Foundation, Guwahati
(on behalf of Zeliangrong Pau-Pai Cheng Association).

Newme, Paurangteutuile (2023). Heraka: Heraleu Samrang. Hangrum: Heraka Moksha Foundation, H.Q.-Hangrum.

Newme, Pautanzan (1998). (Edited) Zeliangrong Heraka Me Leu. Haflong: Regional Zeliangrong Heraka Association, Assam.

Newme, Ramkuiwangbe (2009). (Edited) Heraka Me Leu. Haflong: Zeliangrong Heraka Association.

Zeliang, Dr. Tasile N. (2017). Liangmai Lui. Guwahati: Vidya Bharoti Purbottor Kshetra, Asom Prakashon Bhaarti.

वेब ओपेक:

Nbung, Azanbo (2020). A Movie of Naga Folktales- Pepui Tenu (A Story of Step Son).

<http://www.youtube.com/@Azanbofilms>.

Liangmai Foundation

<http://www.youtube.com/@LiangmaiFoundation>.

अध्याय – छह

जेलियांग जनजाति - लोक कथा तथा लोकोक्तियाँ

6.1 पुरा कथाएँ (प्राचीन कथाएँ)

6.1.1 बंगलावांग

6.1.2 अमांग

6.2 मनोहर कथाएँ

6.2.1 बाम्मेइ कांग / बाम्लेइ काक (इच्छा पूरक तश्तरी)

6.3 अनाथों की कथाएँ-

6.3.1 पेपुई तेनू (सौतेली माँ)

6.3.2 अनाथ का जाल

6.4 वीर पुरुषों की कथाएँ-

6.4.1 कैवींग

6.4.2 त्रीम्स्वांग

6.5 शिक्षा प्रद कथाएँ

6.5.1 नमुतुन की कथा

6.6 पशु-पक्षियों से संबंधित कथाएँ

6.6.1 गिलहरी और भालू

6.7 हास्य-व्यंग्यात्मक कथाएँ

6.7.1 अचम्पू की कथा

6.8 छोटे बच्चों के लिए अतिलघु-काव्यात्मक कथाएँ-

6.8.1 अपे राचम (दादी की कहानी)

6.8.2 न्पुपुई राचम अर्थात् न्पुपुई (एक चिड़िया) की कहानी

6.9 लोकोक्तियाँ

अध्याय – छह

जेलियांग जनजाति – लोक कथा तथा लोकोक्तियाँ

लोक कथाएँ किसी भी समाज के लोक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग मानी जाती हैं, जिनमें उस समाज के वृहद् एवं सजीव रूप चित्रित होते हैं। लोक में प्रचलित ये कथाएँ प्रायः मौखिक रूप में पीढ़ी डर पीढ़ी हस्तांतरित होती आई हैं, जो देश-काल में परिवर्तन के साथ-साथ अपने स्वरूप में कुछ परिवर्तन लाती चली आती हैं, परंतु उन कथाओं में अभिव्यक्त आदि कथाकार द्वारा कथित भाव सदैव से विद्यमान रहे हैं और समाज को अलग-अलग समय एवं परिस्थिति के अनुसार सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दृष्टि से दिशा-निर्देशित करते रहे हैं। जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत पुरा कथाएँ, मनोहर कथाएँ, अनाथों से संबंधित कथाएँ, वीर योद्धा संबंधी कथाएँ, शिक्षा-प्रद कथाएँ, पशु-पक्षी संबंधी कथाएँ, हास्य-व्यंग्यात्मक कथाएँ तथा छोटे बच्चों के लिए अति लघु कथाएँ प्रायः सुनी-सुनाई जाने की परंपरा रही है। इन कथाओं के आदि स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों ने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर अपनी कल्पना-शक्ति को उनमें जोड़ते हुए इनकी रचना की होगी और संभवतः समय परिवर्तन के साथ-साथ उनमें कुछ अन्य तत्त्व भी जुड़ते चले गए होंगे। आज भी बहुसंख्यक जेलियांग लोक ग्रामीण क्षेत्रों एवं वनांचलों में बस्ता है, अतः स्पष्ट है कि इनकी लोक कथाओं का उद्भव भी प्रकृति के प्रांगण में ही हुआ होगा। ऐसे में पुरा कथाओं में व्यक्त आदि-पुरुष से लेकर पशु-पक्षी एवं मानव समाज के विस्तार तक की इनकी लोक कथाओं में मानव एवं प्रकृति के बीच सहज समन्वय एवं एकाकार की प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। प्रकृति के बीच स्थित लोक की मानसिकता एवं उनकी कल्पनाशीलता के कारण ही मानव जाति ही नहीं, बल्कि लोक के समक्ष विद्यमान सभी जीवों- पशु-पक्षियों, यहां तक कि कीड़ों-मकोड़ों को भी सामान्य रूप में मनुष्य जाति से सामान भाषा में संवाद करते हुए दिखाना इनकी लोक कथाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इन कथाओं में कभी-कभी सजीव ही नहीं, बल्कि प्रकृति में विद्यमान निर्जीव मानि जाने वाली वस्तुएं तथा प्राकृतिक उपादान- नदी-नाले, पहाड़, घाटी, वृक्ष इत्यादि भी सजीव रूप धारण करके अन्य जीवों के साथ अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करते हुए चित्रित किए जाते हैं। इस प्रकार जेलियांग लोक कथाओं को यदि उनकी प्रवृत्ति के आधार पर अलग-अलग देखा जाए तो उन्हें निम्न रूप में रखा जा सकता है-

- पुरा या प्राचीन कथाएँ
- मनोहर कथाएँ
- अनाथों की कथाएँ

- वीर पुरुषों की कथाएँ
- शिक्षा-प्रद कथाएँ
- पशु-पक्षियों से संबंधित कथाएँ
- हास्य व्यंग्यात्मक कथाएँ
- छोटे बच्चों के लिए अतिलघु काव्यात्मक कथाएँ

जेलियांग लोक में प्रचलित कथाओं को उपर्युक्त बिन्दुओं के आधार पर कुछ कथाओं के उदाहरण के साथ व्याख्यायित करते हुए सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में इनके प्रभावों एवं महत्त्व का विश्लेषण किया गया है और साथ ही यह भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि इन कथाओं के निर्माण में आदि कथाकारों ने किन-किन पहलुओं को आधार बनाते हुए अपनी कल्पनाओं को मूर्त-रूप प्रदान किया है।

6.1 : पुरा (प्राचीन) कथाएँ

जेलियांग लोक की पुरानी लोक कथाओं के अंतर्गत सृष्टि की रचना तथा उसके बाद आदि-मानव के द्वारा इस धरती पर मानव-जीवन तथा उसकी सभ्यता के विकास को दर्शाने वाली कथाएँ आती हैं, जिनमें बंगलावांग, अमांग और असा-मुन्चेरुंग की कथाएँ मुख्य रूप से आती हैं। इन कथाओं में से बंगलावांग की कथा को सबसे प्राचीन माना जाता है और कहा जाता है कि वही इस धरती के आदि-पुरुष थे। इन्होंने ही इस धरती पर सबसे पहले पदार्पण किया और मानव-जाति किए जीवन का विस्तार किया।

6.1.1 : बंगलावांग की कथा (Daime, 2020, page-1-8)

जेलियांग मिथकीय कथाओं के अनुसार कहा जाता है कि सृष्टि के आरंभ में तिंग्वांग (ईश्वर) ने पृथ्वी, सूर्य, चाँद एवं तारों को बनाने के बाद मानव की रचना की। ऐसा माना जाता है कि आरंभ में पृथ्वी पूरी तरह से जलमग्न थी। ऐसा कहा जाता है कि जब पृथ्वी अपने अस्तित्व में आई तब तिंग्वांग ने अपने पुत्र बंगलावांग को पृथ्वी पर राज करने के लिए भेजा। ईश्वर की प्रेरणा से जब वह धरती पर उतरा, तब सम्पूर्ण धरती पानी से भरी हुई थी और उसने 'चिगेनेबांग'¹ को अपना बसेरा बनाया। इस कथा के अन्य लोक-स्रोत के अनुसार उसने 'केदिन्थित सिबांग'² पर अपना सबसे पहले पैर रखा। धीरे-धीरे उसने इस धरती को आकार दिया और मनुष्य तथा अन्य जीवों के रहने योग्य बनाया। इसके बाद उसने अपनी

¹ बरगद की एक प्रजाति, जिसे सृष्टि के प्राचीनतम वृक्षों में से एक माना जाता है।

² गूलर की एक प्रजाति।

उँगलियों से पत्नी जिगाले एवं बहन हजाले की रचना की। कहा जाता है कि उसने अपनी पत्नी की रचना अनामिका अंगुली से की, जिससे उसका नाम जिगाले अर्थात् 'बिना नाम की' पड़ा। तत्पश्चात् उसने धरती पर रहने के लिए अन्य सभी जीवों एवं निर्जीव वस्तुओं की रचना की और अंततः वह इस धरती का स्वामी बन गया। इसीलिए कहीं-कहीं इन्हें '*अपौ चेवांग*' अर्थात् आदि राजा के नाम से भी पुकारा जाता है। कहा जाता है कि जिगाले ने एक पुत्री को जन्म दिया जिसका नाम कमादिले रखा गया और हजाले ने आठ पुत्रों को जन्म दिया जिन्हें जेलियांगरोंग लोक में आठ देवताओं के रूप में माना और पूजा जाता है। उनके नाम इस प्रकार हैं- *केचिंग पेउ (अर्थात् ज्येष्ठ)- न्याय के देवता, ल्हू (खेती के देवता), हेरान्सिया (युद्ध के स्वामी), त्राक (दुष्टों के संहारक), मेकांग (अग्नि देव), चुपराइ (धन के स्वामी), मिश्रू (अच्छे कर्मों के देव), तेसिन वांग/हेचा वांग (अर्थात् अजगर राजा- जल के देवता)।*

जेलियांग लोक में इस कथा को सृष्टि के आरंभ की कथा तथा बंगलावांग को आदि-पुरुष मानते हुए मिथकीय कथा के रूप में सुनी-सुनाई जाती रही है। लोगों में यह विश्वास है कि बंगलावांग के आठों भांजे आज भी धरती के किसी न किसी कोने में रहकर अपने-अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। हेजाले के आठ पुत्रों में से अन्य लोगों के अस्तित्व के बारे में लोक में कोई स्पष्ट धारणा नहीं है, पर उनमें से दो- चुपराइ एवं मिश्रू के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि ये दोनों आज भी जेलियांगरोंग क्षेत्र में विद्यमान हैं और मानव-जाति के भरण-पोषण एवं सुख-दुःख का ध्यान रखते हुए लोगों के कर्मानुसार उनपर अपनी कृपा बरसाते हैं। चुपराइ को 'हेरावांग' अर्थात् देवताओं में सर्वोच्च के नाम से भी जानते हैं। (Newme, 2019, page-14) इसी प्रकार जेलियांग लोक, विशेषतः 'हेराका' पंथ के लोग मिश्रू को अपना कुल-देव मानते हैं और वे विश्वास करते हैं कि इनकी कृपा के बिना ईश्वर की कृपा-दृष्टि प्राप्त नहीं की जा सकती है। आज भी जेलियांगरोंग पैतृक धर्मावलंबी *हेराका तथा तिगकौ रागवांग चाप्र्यक* अनुयायी प्रार्थना-पूजा करने के लिए प्रति-वर्ष हजारों की संख्या में माघ माह की पूर्णिमा को 'मिश्रूकी' अर्थात् मिश्रू देव के निवास स्थान के रूप में विख्यात, असम के कछार पर्वत पर स्थित 'भुवन गुफा' जाते हैं। लोगों का अटूट विश्वास है कि यहां आकर प्रार्थना करने से दैहिक, दैविक एवं भौतिक-सभी प्रकार की पीड़ाओं से मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार यहां इस बात का विश्लेषण करना अपेक्षित एवं प्रासंगिक हो जाता है कि जेलियांग समाज में प्रचलित इस पुरा-कथा तथा इसमें चित्रित दैवीय एवं मानवीय चरित्र काल्पनिक मात्र हैं या उनके इन पूर्वजों का वास्तविक अस्तित्व रहा होगा। ध्यान देने योग्य बात यह भी है कि इस कथा में व्यक्त तेसिनवांग/हेचावांग अर्थात् जल के देवता के नाम पर ही आज सामान्य लोक में अजगर को तेसिन या हेचा के नाम से जाना जाता है और यह माना जाता है कि जलीय प्राणियों में वही सबसे शक्तिशाली जीव होता है। किसी-किसी कथाकार के अनुसार हेजाले ने

सीधे-सीधे आठ पुत्रों को जन्म न देकर आठ अंडे दिए थे, जिनसे अलग-अलग प्रकार के आठ जीवों की उत्पत्ति हुई। इस बात को विचारणीय तथ्य इसलिए भी माना जा सकता है कि उनकी आठ संतानों में से एक हेचावांग भी था जो सामान्य रूप में अंडे से ही उत्पन्न होता है। वैसे इन तथ्यों को यदि लोक-विश्वासों के आधार पर लिया जाए, तो इनमें उनके धार्मिक एवं दैवीय परिकल्पनाओं के आधार प्रतिबिंबित होते हैं और यदि इन्हें केवल मनोरंजन के उद्देश्य से सुनी-सुनाई जाती है तो ऐसा माना जाना चाहिए कि ये कोरा-कल्पित कथा मात्र हैं, जिनकी रचना आदि-कथाकार ने लोक-रंजन के लिए ही की होगी।

बंगलावांग कथा के अगले चरण के अनुसार, जब उसकी पुत्री कमादिले और बहन हजाले के सभी पुत्र बड़े हुए, तब कुछ समय बाद हेचावांग जल-देवता के रूप में पानी में रहने चला गया और धीरे-धीरे अन्य संतानों ने भी अपना-अपना स्थान निश्चित करते हुए धरती के अलग-अलग जगहों पर रहने हेतु प्रस्थान किया। कहा जाता है कि आठ पुत्रों में से कमादिले का विवाह चुपराइ से हुआ और वह अपने कथित मामा-ससुर बंगलावांग के घर में ही रहने लगा। इस कथा के अनुसार यह भी कहा जाता है कि एक बार बंगलावांग एवं चुपराइ के बीच मल्ल युद्ध हुआ और यह तय हुआ कि जो जीतेगा, वही इस धरती पर राज करेगा तथा हारने वाले को धरती लोक छोड़कर जाना पड़ेगा। इस युद्ध में चुपराइ विजयी घोषित हुआ और बंगलावांग ने अपना धरती का राज उसे सौंप दिया तथा स्वयं पाताल लोक पर राज करने के लिए चला गया। ऐसा कहा जाता है कि कमादिले ने अपने पति की विजय को सुनिश्चित करने के लिए अपने कुछ बाल निकालकर पिता के पैरों में उलझा दिए थे, जिससे कुशती के समय वे गिर पड़े। बंगलावांग को इस बात का पता था कि वह दीर्घकाल तक पृथ्वी पर राज नहीं कर पाएगा, क्योंकि जब तिंवांग ने उसे धरती पर पहली बार भेजा था, तब उसने यह प्रतिज्ञा की थी- “यदि ‘चिगेने’ के पेड़ पर बैठते ही मेरे पैर जल को छू जाते हैं, तब मैं धरती लोक पर अपने राज को कायम न कर पाऊँगा।” कहा जाता है कि बंगलावांग अपनी प्रतिज्ञा पूरा न कर सका- ‘So, when he stepped on *Chegene* tree, his left heel touched water. Hence he couldn’t rule successfully on earth.’ (Newme, 2019, page-14) इसलिए वह जानता था कि उसे धरती लोक छोड़कर कहीं और जाना पड़ेगा। जेलियांग लोक में आज भी यह विश्वास किया जाता है कि बंगलावांग ही पाताल लोक के राजा हैं। बंगलावांग के पाताल प्रस्थान के बाद चुपराइ ने दीर्घकाल तक इस धरती पर राज किया और कमादिले एवं उनकी कई संतानें हुईं, जिनसे इस धरती पर मानव जाति का विस्तार हुआ। दीर्घकाल तक इस धरती पर राज करने के बाद वे दोनों अदृश्य होकर देवी-देवता के रूप में इस संसार में रहने लगे। चुपराइ को चेरावांग/हेरावांग अर्थात् ‘देवराज’ के नाम से भी जाना जाता है, जैसे कि यहां कहा गया है- ‘Chuprai and his wife Kamadile had children of their own and generations after

generatuions, they ruled the Earth for an aeon and later became gods. Chuprai was also known by the name of Herawang.' (Newme, 2019, page-14)

उपर्युक्त लोक कथा के अंतर्गत आने वाले सभी पात्र मनुष्य रूप में परिकल्पित होते हुए भी किसी न किसी तरह से दैवीय स्वरूप को प्राप्त होते प्रतीत होते हैं। ऐसे में इन कथाओं को धार्मिक मिथकीय कथाओं के अंतर्गत माना भी जा सकता है और चूँकि लोक में प्रचलित होकर लोक के द्वारा इसे अपनी कथा के रूप में सुनी-सुनाई जाती है, इसलिए इसे लोक कथा के अंतर्गत रखना भी अनुचित नहीं लगता है। इसके अतिरिक्त इस कथा के माध्यम से जेलियांग लोक की धरती की उत्पत्ति, उसके विकास एवं मानव सभ्यता के विकास की परिकल्पना के विभिन्न स्तरों के साथ-साथ धरती, पाताल एवं आकाश लोक की परिकल्पना की धारणाएं भी प्रतिपादित होती हैं। प्राचीन काल से ही तिग्वांग (ईश्वर) अर्थात् आसमान के राजा शब्द का प्रयोग किया जाना यह स्पष्ट करता है कि इनकी परिकल्पना के अनुसार ईश्वर या तिग्वांग नामक अस्तित्व का स्थान कहीं आसमान में या इस धरती के ऊपर स्थित है और मृत्यु-लोक का स्थान इस धरती के नीचे अंधकार में कहीं स्थिति है। यद्यपि ईश्वर के पर्याय के रूप में इनकी भाषा में प्रचलित तिग्वांग- 'आसमान के राजा' शब्द का प्रयोग किया जाता है, परंतु उसके स्थान को स्वर्ग जैसी कोई परिकल्पना प्राप्त नहीं है और जिस प्रकार स्वर्ग की परिकल्पना नहीं है उसी प्रकार नरक जैसी कोई स्पष्ट परिकल्पना भी नहीं है। स्वर्ग-नरक की परिकल्पना न होते हुए भी जेलियांग लोक के अनुसार हेजाले के आठों पुत्रों को अलग-अलग देवों के रूप में प्रतिष्ठित करके, उन्हें यथोचित सम्मान देते हुए उनकी प्रार्थना पूजा की जाने की परंपरा प्राचीन काल से रही है। इसी क्रम में लोक कथाओं के अनुसार यह विश्वास किया जाता है, कि ये सभी देवता धरती में ही अदृश्य रूप में विद्यमान रहकर अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं। जेलियांग लोक-आस्था के अनुसार धरती लोक जीवित मनुष्यों के रहने का स्थान है और पाताल लोक अर्थात् बंगलावांग का राज्य मृतक लोगों के रहने का स्थान है। इसलिए आज भी यह विश्वास किया जाता है कि जिसका प्रकार मनुष्य धरती पर परिवार एवं समाज के रूप में रहता है, उसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् मृत्युलोक अर्थात् पाताल लोक में जाकर ठीक उसी परिवार एवं समाज के रूप में अपना जीवन यापन करता है। इसलिए जेलियांग लोक में मृत शरीर को धरती के अंदर दिया जाता है और यह माना जाता है कि जब उसके शरीर को मिट्टी के अंदर दिया जाता है, तभी उसकी आत्मा मृत्युलोक के लिए प्रस्थान करती है। इस संदर्भ में यह तथ्य भी सामने आता है, कि जेलियांग समाज में जब किसी की मृत्यु हो जाती है, तो उसे पूर्वाह्न में नहीं बल्कि अपराह्न में ही मिट्टी दी जाती है। इसके पीछे यह लोक विश्वास है कि जब धरती पर दिन होता है, तब मृत्युलोक में रात होती है और यदि इस धरती के पूर्वाह्न में किसी मृतक को मिट्टी दी जाती है, तो वह मृत्युलोक में

अंधकार होने के कारण आगे बढ़ नहीं पाता है और भटकता रहता है। इसी प्रकार धरती लोक की शाम को जब उसे मिट्टी दी जाती है, तब वह मृत्युलोक के भोर में वहाँ प्रवेश करता है। यही कारण है कि जेलियांग लोक की परंपरानुसार मृत्यु संस्कार प्रायः शाम के समय ही किया जाता है। इस प्रकार इन कथाओं के माध्यम से समाज की मान्यताओं तथा लोक विश्वासों को अधिक स्पष्टता के साथ जाना और समझा जा सकता है। ऐसे में इन कथाओं को सुनते हुए कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि ये कोरा काल्पनिक कथा मात्र नहीं है और कहीं न कहीं लौकिक जीवन के उत्स को जानने तथा उसके मूल तक पहुँचने के द्वार इन्हीं लोक कथाओं में ही छिपे हुए हैं।

जेलियांग लोक में प्रचलित पुरानी लोक कथाओं के अनुसार बंगलावांग के बाद अमांग का युग आया, ऐसा कहा जाता है। '2nd Era was marked by the birth of Amang and his reign. He is well known for his grandest feast in in Zeliangrong folktales ever popularly known as *Amang Zau Hubo/Amang Jau Lube*.' (Newme, 2019, page-15) इस दृष्टि से 'अमांग जौ हुबो' कथा को यहां उद्धृत करते हुए इसकी सामाजिक प्रासंगिकता को समझ लेना अपेक्षित रहेगा।

6.1.2 : अमांग जौ हुबो/अमांग जौ लुबे (अमांग का महाभोज) (Daime, 2020, page-136-141)

पुराने जमाने में अमांग नाम का एक बालक था, जिसके माता पिता की मृत्यु हो चुकी थी और वह अपनी छोटी बहन केतेन्ले के साथ गरीबी में अपना दिन बसर करता था। उसकी एक और दूर की दीदी रक्वेन्ले थी, जो हमेशा इन दोनों से दूर ही रहती थी और किसी सम्पन्न परिवार में ब्याहे जाने के कारण वह खुश ही रहती थी। ये दोनों इतने बड़े नहीं हुए थे, कि कुछ खेती-बाड़ी का काम कर सके। इसलिए गांव वालों की दया पर ही अपना पेट पालते थे। वैसे तो गांव के अधिकांश लोग उन्हें खाने के लिए कुछ देते नहीं थे और वे इन दोनों की बुरी हालात का मजाक ही उड़ाया करते थे लेकिन कुछ दयालु लोग इन्हें खाने के लिए कुछ अन्न दे दिया करते थे। जब अमांग कुछ बड़ा हुआ और वर्ष के आरंभ में सभी लोग अपने-अपने दाव (एक प्रकार का धारदार औज़ार) लेकर नई झूम-खेती के लिए जंगल काटने निकले, तब अमांग भी अपने खेत के लिए जंगल की सफाई करने पहुँचा। परंतु उसके पास दाव जैसा कोई औज़ार नहीं था; अतः उसने अपने हाथ से ही पेड़ों, बाँसों एवं झाड़ियों को साफ करना और गिराना आरंभ किया। कुछ पेड़ों एवं बाँसों को उसने खींचकर नीचे जमीन पर लिटा तो दिया पर वह उन्हें तोड़ न सका, जिससे लोगों के रास्ते बंद हो गए, क्योंकि जंगल की कटाई के समय लोग एक दूसरे के खेतों से होकर आवाजाही भी करते थे और ऐसे में लोगों के लिए रास्ते साफ रखने होते थे। जिन लोगों को इस पर गुस्सा आया उन्होंने पेड़ों को पुनः खड़ा कर दिया और कुछ दयालु लोगों ने रास्ते

में पड़े उन बांसों एवं पेड़ों को काटकर साफ कर दिया। इस प्रकार किसी तरह से अमांग ने अपने खेत के लिए जंगल की सफाई कर ली। जब खेत के लिये जंगल को जला कर साफ कर लिया गया तब अमांग ने लोगों से बीज के लिए कुछ धान मांगा, तब उसे किसी ने भी बीज न दिया। अब उसके लिए यह बड़ी समस्या हो गई कि बीज कहां से लाया जाए।

अमांग अकसर देखता था कि उसके घर के नाले में एक जंगली कबूतर आता है और दानों को चुगता रहता है। एक दिन उसकी बहन केतेन्ले घर के आंगन में बैठी कपड़े बुन रही थी। अमांग ने कहा- “बहना ज़रा अपने कुछ बाल निकाल कर देना, मैं इनसे जाल बनाकर कबूतर को पकड़ता हूँ।” बहन ने अपने कुछ बाल खींचकर दे दिए। उनसे जाल बनाकर नाले पर डाला और कुछ ही देर में जंगली कबूतर आया और उसमें फंस गया। जब अमांग ने उसे पका खाने के लिए काटा, तब उसके पेट से धान के कुछ दाने निकले, जिन्हें उसने खेत में बोने के लिए सहेजकर रख लिया। कबूतर के पंख तथा पूंछ के एक-एक पर को उसने सजावट के रूप में घर की दीवारों पर खोंस दिया। कुछ दिनों के बाद उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, क्योंकि उसने देखा कि कबूतर के सभी पर दाव, भाला एवं कुदाली जैसे औजारों में परिवर्तित हो गए हैं। उसने अपनी बहन से इस घटना को गुप्त ही रखने को कहा और उसे पानी ढोने पर लगा दिया तथा वह स्वयं औजारों में सान देने लगा। अब उसके पास इतने अधिक औजार और हथियार हो गए थे, कि उन्हें धार देते-देते पत्थर पर औजारों की रगड़ से भूरे-मटमैले पानी उसकी नाली में बहने लगा। केतेन्ले को दिन भर पानी ढोते देख लोगों ने पूछा तो उसने बताया कि भैया को बवासीर हो गया है, खून आ रहा है, उन्हें साफ करने के लिए मैं पानी ढो रही हूँ। इस बात को सुनकर जो भी उसके घर के सामने से गुजरता और नाली में बहते मैले पानी को देखता, नाक-भौंह सिकोड़ते हुए आगे निकल जाता, परंतु गांव के किसी व्यक्ति ने भी उनकी दवा-दारू की बात तो दूर, अमांग के प्रति संवेदना तक व्यक्त नहीं की।

जब बीज बोने का समय आया, तब अमांग ने अपने नए चमकीले औजारों के साथ खेत में जाकर कबूतर के पेट से निकले धान को खेत में बो दिया। कुछ दिनों बाद जब उसने खेत में जाकर देखा तो पाया कि उसमें धान का एक भी पौधा उगा ही नहीं, बल्कि उसमें तो त्रौ (लौकी की एक प्रजाति) के पौधे उगे हुए हैं, जिससे वह बहुत निराश हुआ और घर वापस आ गया। लोगों के खेतों में धान उगे हुए थे, वे झाड़ियों की सफाई, खेतों में गोड़ाई-निराई के काम कर रहे थे। अमांग अपने खेत से बहुत निराश था, लेकिन एक दिन उसने सोचा कि चलो लौकी ही सही, उससे पानी रखने के लिए डिब्बे तो बनाए ही जा सकते हैं। अतः वह भी अपने खेत में जाकर झाड़ियों को काट-छाँटकर लौकियों को सहेजने लगा और तभी गलती से उसने एक बड़ी सी लौकी को अपने दाव से काट दिया, जिसमें से धान

के दाने छितराकर जमीन पर बिखर गए। अब उसे समझ में आ गया कि इन लौकियों के अंदर तो धान ही धान है। इसके बाद से वह खुशी से बड़ी तन्मयता के साथ अपने खेत की सफाई करने लगा। जब खेतों की सफाई हो गई और फसलों के पकने का समय निकट आ गया, तब उसने घर के पास आंगन में ही अन्नागार बनाना आरंभ किया। लोग उस पर हँसते कि इसके खेत में तो लौकी ही उगे हैं, धान तो है ही नहीं, तो किस लिए अन्नागार बना रहा है। अमांग सहज भाव से उनसे कहता कि लौकी ही रख लेंगे इस अन्नागार में और इस प्रकार उसका अन्नागार भी तैयार हो गया। जब उसकी फसल पक गई तब उसने सभी लौकियों को ढो-ढोकर लाना आरंभ किया। जब उसने उन लौकियों को फोड़-फोड़कर धान के दानों को निकाला, उनमें से इतने अधिक धान निकले कि उसका विशाल अन्नागार पूरी तरह से भर गया। संयोग से उस वर्ष गांव वालों की फसल अच्छी नहीं हुई और फसलों की कटाई के कुछ महीनों बाद ही सभी लोग फाँके होने लगे। अमांगने उन सभी को भरपूर अनाज दिया जिन्होंने दुख के समय उसे खाने को कुछ दिया था और जिन्होंने हमेशा उन्हें दुत्कारा उन्हें भी थोड़ा-थोड़ा अनाज दे दिया।

एक रात अमांग को सपने में उसके मृत पिता ने कहा कि हमारे रसोई में अग्निस्थान के ऊपर दुछती में मिथुन को बाँधने वाली पुरानी रस्सी होगी, उसे ले जाकर गांव के उत्तर दिशा वाले तालाब में छोटे-छोटे टुकड़ों में काटकर फेंक देना और कुछ दिनों के अंतराल पर उस का निरीक्षण करते रहना। अमांग ने ठीक वैसा ही किया जैसे कि उसके पिता ने उससे कहा था। कुछ दिनों बाद जब उसने वापस जाकर तालाब में देखा तो उसमें सैकड़ों कीड़े-मकोड़े हिल-डुल रहे थे। कुछ दिन बाद वे कीड़े, टिड्डों में बदल गए और समय के साथ-साथ उनके आकार में वृद्धि होती चली गई तथा कुछ महीनों बाद वे सभी मिथुन के रूप में परिवर्तित होने लगे। अमांगने तालाब के चारों ओर बेड़ा बनाया और उसी के अंदर अपने सैकड़ों मिथुन के झुंड को पालने लगा। जब सभी मिथुन बड़े हो गए, तब उसने सोचा कि अब उन्हें अपने घर ले आना चाहिए। इसलिए एक दिन वह गांव के सिंकूपौ (पुजारी) के पास गया और उन्हें बताया कि कल वह अपने मिथुन लाने वाला है, उनके दौड़ते हुए आने से किसी को चोट लग न जाए, इसलिए गांव में यह घोषित कर दिया जाए कि सभी लोग घर के अंदर बैठे रहे। अगले दिन सभी लोग घर के अंदर दुबक कर देख रहे थे कि अमांग कहां से मिथुन लाता है, पर एक बुढ़िया बड़ी जिद्दी थी। वह यह सोचकर बाहर बैठे कपड़े बुनती रही कि अमांग जैसा अनाथ व्यक्ति कहां से मिथुन लाएगा। जब अमांग ने मिथुनों के झुंड के साथ गांव के अंदर प्रवेश किया तब उन्हें देखकर सभी लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। सभी मिथुन दौड़ते हुए गांव की सड़कों पर आए और जिद्दी बुढ़िया अपने आप को संभाल पाती, इसके पहले ही उनमें से एक ने उसके घुटने पर ऐसी लात मारी कि उसका हाल बहुत

बुरा हुआ। अब अमांग गांव का सबसे धनी व्यक्ति हो गया था। उसकी बहन केतेन्ले की शादी एक संपन्न परिवार में बड़े धूमधाम से कर दिया गया और उसने भी शादी कर ली, अपना एक विशाल घर बनवाया और उसमें आराम से रहने लगा।

अब अमांग गांव का सबसे धनी व्यक्ति था। अतः उसने जौहू³ के माध्यम से सभी लोगों को महाभोज देने का मन बनाया। अमांग जौहू के लिए मनुष्य, पशु एवं पक्षी, सभी प्राणियों को न्योता दिया गया और यह भी संदेश भेजा गया कि अमांग के इस महाभोज में ही सभी पशु-पक्षियों के राजा का भी चुनाव किया जाएगा, इसलिए सभी लोग अपनी-अपनी तैयारियों के साथ आएँ। न्योता पाकर सभी पशु पक्षी एवं मनुष्य इस आयोजन की तैयारी में लग गए। सभी पशु-पक्षी परस्पर एक दूसरे का श्रृंगार करने लगे। कहा जाता है कि *मियार्गना* अर्थात् भृंगराज पक्षी (Greater Racket-tailed Drongo) एवं तेजा अर्थात् चूहे ने एक दूसरे की पूँछ को सजाने का कार्य किया। पहले चूहे ने भृंगराज पक्षी के पूँछ को खूब सजाया और जब चूहे की बारी आई, तब यह घोषणा हो गयी कि अमांग के यहां महाभोज तैयार हो चुका है और सभी लोग जल्दी आ जाएँ, तब भृंगराज ने जल्दी-जल्दी में चूहे की पूँछ को बेलनाकार में बनाकर छोड़ दिया, जिससे चूहा बड़ा नाराज हुआ और उसने बाद में भृंगराज की पूँछ को अपने दाँतों से कुतर दिया, जिससे बीच में वह केवल डंठल जैसा ही रह गया। चेखेंग अर्थात् बारहसिंगा और चेडा अर्थात् लंगूर ने भी एक दूसरे की पूँछ को सजाने का कार्य किया। पहले बारहसिंगा ने लंगूर की पूँछ बनाया और जब उसकी बारी आई तब उसके साथ भी वही हुआ जो चूहे के साथ हुआ था। लंगूर के चले जाने से बारहसिंगा ने स्वयं पूँछ लगाया इसलिए उसकी पूँछ बहुत छोटी रह गई।

इस प्रकार सभी पशु-पक्षी एवं मनुष्य अमांग के आँगन में जमा होने लगे। सभी सज-धजकर बड़े ही आकर्षक लग रहे थे। सभी सुसज्जित पशु-पक्षियों को देखकर अबेंग अर्थात् उल्लू को लगा कि मैं तो बड़ा भद्दा दिख रहा हूँ; अतः उसने चेरेंग अर्थात् धनेश पक्षी से अनुरोध किया कि वह उसे अपने पंख के अंदर छुपा लें। धनेश ने वैसा ही किया। इसी प्रकार चरेना अर्थात् गंधबिलाव को अपने दुर्गंध के कारण सबके सामने जाते हुए शर्म आ रही थी। उसने तेचू अर्थात् जंगली चूहे से कहा कि मुझे अपने पीछे छुपा लें। जंगली चूहे ने वैसा ही किया। जब सभी लोग आ रहे थे, तब चेकुई अर्थात् शेर बिना किसी से डरे एक गद्दी पर बैठा, आने वाले सभी लोगों से कुछ न कुछ कहता और कुछ सवाल भी पूछता जा रहा था। जब चेखेंग (बारहसिंगा) आया तो उसके लम्बे एवं नुकीले सींगों को देखकर वह कुछ सहम गया और उसने पूछा, - "यह तुम्हारी शोभा ही है या बहादुरी का प्रतीक भी है?" "शोभा ही है," बारहसिंगा ने जवाब दिया। इसलिए कहा जाता है कि इतने नुकीले लंबे सींग होने के बावजूद उस

³ एक अनुष्ठान, जिसमें एक व्यक्ति अपने क्षेत्र के सभी लोगों को दावत देता है।

दिन से उसे डरपोक पशु माना जाता है। जब न्बेंग अर्थात् जंगली सूअर अपने नुकीले दाँतों के साथ आया, तब शेर ने उससे भी वही प्रश्न किया। जवाब में उसने कहा, - “शोभा भी है और वीरता का प्रतीक भी है।” इसलिए कहा जाता है कि शेर भी जंगली सुअर से डर-डरकर रहता है। जब सबसे अंत में मनुष्य अपने चेहेंग-चेंड्यू अर्थात् दाव- भाले इत्यादि हथियारों को चमकाते ‘हुई-हुई’ करते आ पहुँचा, तब शेर उसे देखकर डर गया। ऐसा माना जाता है कि उस दिन से शेर मनुष्यों से डरता आया है।

इस प्रकार जब सभी पशु-पक्षी एवं मनुष्य अमांग के घर आ पहुँचे और महाभोज आरंभ हो गया, सभी लोग खाने पीने में मग्न थे, तब अमांग ने पूछा कि पशु-पक्षियों का राजा किसे चुना जाए। उपस्थित सभी ने धनेश पक्षी का नाम लेकर उसका अनुमोदन किया क्योंकि वही सबसे विशाल, सुंदर एवं आकर्षक लग रहा था। इस पर धनेश पक्षी इतना प्रसन्न हुआ कि वह सब के ऊपर चक्कर लगाते हुए उड़ने लगा, जिससे उसके पंख के अंदर छिपा हुआ उल्लू गिर पड़ा। लोगों ने उसे देखकर कहा- “यह क्या ! इसके तो परजीवी पक्षी भी है, इसे राजा नहीं बनाया जा सकता।” इसलिए धनेश को राजा नहीं बनाया गया और लोगों ने भृंगराज पक्षी को राजा के लिए चुना। वह भी खुश होकर अपनी लंबी पूँछ दिखाते हुए सबके सामने अपने पंख फड़फड़ाए। उसी को जंगल के सभी जीवों का राजा चुन लिया गया। *इसलिए आज भी जब भृंगराज पक्षी किसी जंगल से होकर गुजरता है, तब उसके पीछे छोटे-बड़े पक्षियों के कई झुण्ड चलते हैं। जेलियांग लोक में यह मान्यता है कि उसके पीछे-पीछे चलने वाले सभी पक्षी उसकी सेना के सिपाही होते हैं। इस पक्षी के बारे में यहां तक भी कहा जाता है कि जहां पेड़ों की ऊँचाई पर अन्य पक्षी इसकी सुरक्षा में लगे रहते हैं, वहीं जमीन पर शेर भी इसके सुरक्षा-कर्मी बनकर चलता है। इसलिए लोक में यह भी मान्यता प्रचलित है कि यदि भृंगराज पक्षी के साथ अन्य पक्षियों का झुण्ड चल भी रहा हो, तो शिकार करने के लिए उनके निकट नहीं जाना चाहिए, क्योंकि शेर जैसे हिंसक पशु से हमें खतरा हो सकता है।* इस बीच जब सभी लोग खा पी रहे थे, तब जो भी जंगली चूहे के पास आता उसे एक दुर्गंध आती थी। जब कई लोगों ने इस बात का खुलासा किया, तब जंगली चूहे को डर लगा कि कहीं लोग इसे उसी का गंध न समझ बैठें, इसलिए उसने कहा- “यह मेरा दुर्गंध नहीं है, गंधबिलाव का है।” यह सुनते ही गंधबिलाव शर्म के मारे वहाँ से भाग खड़ा हुआ। अपना भेद खोलने के कारण जंगली चूहे पर उसे इतना गुस्सा आया कि उससे बदला लेने के लिए गांव के मुख्य द्वार पर जाकर घात लगाए बैठ गया। कहा जाता है कि अमांग के यहां महाभोज के लिए जब न्योता भेजा गया तब उसकी दूर की दीदी रक्वेनले को बिल्कुल भी विश्वास नहीं था कि अमांग ऐसा कोई आयोजन कर सकता है और उसने जौ (मधु- मादक पेय) के बदले चावल के माँड़ को अपने ‘इन्-रीबुंग’⁴ में डाल

⁴ द्रव पदार्थों के संचय के लिए बना पात्र, जो लौकी नुमा एक फल (त्रौ) के पककर कड़ा हो जाने पर उसके बाहरी आवरण से बनता है।

लिया। जब वह अमांग के घर पहुंची तब उसकी भयता को देखकर दंग रह गई और घर के अंदर जाने से शर्माकर, बाहर ही टहलते टहलते कहीं फिसलकर गिर पड़ी। उसका माँड़ पूरे जमीन पर फैल गया और लोगों के सामने उसका भेद खुल गया।

जब सभी पशु-पक्षी अमांग के 'जौहू' का दावत खा-पीकर वापस जाने लगे, तब अमांग अपना वेश बदलकर गांव के मुख्य द्वार पर जा बैठा और जो भी वहाँ से निकलकर आता, उससे पूछता कि अमांग का महाभोज कैसा था। सभी लोगों ने अपने-अपने अनुभव बताए। सबसे पहले मनुष्य आया और उसने कहा- "बहुत खाया-पीया और अब भी बहुत कुछ बचे हुए हैं, तुम भी जाओ और खाओ।" इस पर अमांग खुश हुआ और उसने मनुष्यों के लिए यह दुआ किया कि यदि तुम्हें खाने को थोड़ा सा ही अनाज मिले तब भी वह दीर्घकाल तक चल जाए। इसके बाद कबुई-बुइचंग अर्थात् मिथुन ने आकर बताया कि मैंने जितना चाहा, खाया अब मेरा पेट पूरी तरह से भर गया है। इस पर अमांगने उसके लिए यह दुआ की कि एक बार खाने के बाद वह दिन भर आराम किया करें। इसलिए मिथुन के बारे में यह कहा जाता कि अमांग के वचन के कारण ही वह दिन में पेड़ की छाया के अंदर लेटे रहता है। जब भैंस आया तब उससे भी वही पूछा गया तब उसने कहा कि न तो बहुत अधिक खाया न ही कम, ठीक-ठाक था। इस पर भैंस के लिए अमांग ने यह कहा कि तुम जिंदगी भर खाते ही रहोगे। इसलिए कहा जाता है कि भैंस खड़ा हो या लेटे, जुगाली करता रहता है। जब अधिकांश पशु-पक्षी निकल गए तब तेचू (जंगली चूहा) गंधबिलाव को पुकारते हुए गांव के मुख्य द्वार पर आया। इधर गंधबिलाव अपने अपमान का बदला लेने की ताक में था और उसने जंगली चूहा को काट लिया, जिससे उसका सिर धड़ से अलग हो गया। इसे देखकर सभी पशु-पक्षी चिल्लाने लगे, - "जंगली चूहे की हत्या हो गई।" सभी ने मिलकर उसके मृत शरीर को ठिकाने लगाने के लिए उठाया। चूहे के शरीर से खून बह रहा था। चेहूपुइ अर्थात् *नीलकंठ बसंत* (Blue Throated Barbet) नामक पक्षी थोड़ा नाटा था, सो उसने अपने सिर के बल पर उसे उठाया जिससे उसकी चोटी का रंग लाल हो गया। अन्य पक्षियों के शरीर में भी जहां-तहाँ उसके रक्त लग गए, वहाँ उनका रंग लाल हो गया और इन रंगों की देखा-देखी में जिनके शरीर में खून न लगा था, उन्होंने भी अपने शरीर में उसके खून को लगा लिया। कहा जाता है कि जितने भी पक्षियों के परों में लाल रंग होते हैं, वे सभी इसी जंगली चूहे के खून लगने से हुए हैं। कौवे को भी यह रंग भा गया और उसने स्वयं को लाल करने के लिए मृत चूहे के उपर लोटने लगा। इस बीच चूहे का पित्ताशय फट गया और उसके पित्त से सन कर कौवा काला हो गया।

जब सभी अतिथि गण चले गए तब अंत में अमांग ने अपनी बहनों रक्चेनले और केतेन्ले को विदा करते हुए शेरों से कहा कि उन्हें अपने-अपने गांव तक पहुँचा दें। कहा जाता है कि अमांग ने दोनों

बहनों की विदाई के लिए बनाई गई टोकरियों को 'जौहू' के बचे हुए मांस से भर दिया, जिनमें से एक में नीचे हड्डी एवं ऊपर मांस तथा दूसरे में नीचे मांस एवं ऊपर हड्डी से भर दिया। बड़ी बहन ने झट से उस टोकरी को उठा लिया जिसमें ऊपर मांस थे और छोटी बहन केतेन्ले ने चुपचाप दूसरी उठा ली। दोनों अपने गांव की ओर चले, रास्ते में शेर को भूख लगने लगी और दोनों बहनों को रास्ते में ही खाने का यत्न करने लगा। दोनों बहनों ने अपनी टोकरियों से मांस के टुकड़ों को उठाकर शेर के सामने फेंकना आरंभ किया और भागने लगी। रक्वेनले के मांस को झट से निगलकर शेर उसकी और दौड़ता पर केतेन्ले ने हड्डियाँ फेंकी थी, सो शेर उसे चबाते रह गया। अंत में बड़ी बहन को शेर ने मार कर खा लिया और छोटी बहन अपने घर सुरक्षित पहुँच गई।

जब अमांग की कथा की बात की जाती है, तब पूरी कहानी को सुनते-सुनाते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि वह मनुष्य न होकर कोई और ही अलौकिक जीव प्रतीत होता है क्योंकि उसके जौहू अर्थात् महाभोज में सभी पशु-पक्षियों के साथ मनुष्य के आने की भी बात कही गई है। ऐसे में अमांग को पशु-पक्षियों एवं मानवेतर प्राणी या उन सभी से परे, उन सब के ऊपर राज करने वाला किसी दैवीय शक्ति से युक्त अलौकिक अस्तित्व के रूप में भी माना जा सकता है। लेकिन इसके विपरीत बचपन में उसकी गरीबी, गांव में लोगों के साथ रहना, खेती जैसे मानव जीवन-कार्य-व्यापार में संलग्न रहने वाली बातों से तो ऐसा लगता है कि वह एक साधारण सा मनुष्य ही है। इसलिए अमांग की कथा विरोधाभासों से परिपूर्ण है और यहां यह मान लेना उचित रहेगा कि मनोरंजन की दृष्टि से कपोल-कल्पित तथ्यों के आधार पर ही कथाकार ने इस कथा की रचना की है। इस कथा में वर्णित कबूतर के पंखों का औज़ारों एवं हथियारों में बदलना, रस्सी के टुकड़ों से कीड़े उत्पन्न होना, उन कीड़े-मकोड़ों का मिथुन जैसे विशाल पशु में परिवर्तित हो जाना आदि चमत्कारिक घटनाएँ हैं, जो अविश्वसनीय तो है ही, प्रत्यक्ष जीवन में असंभव भी है। इन सब बातों के होते हुए भी जेलियांग समाज की यह भी मान्यता रही है कि सृष्टि के आरंभ से एक अरसे तक सभी प्राणियों की बोली एक जैसी थी और वे परस्पर विचारों के आदान-प्रदान में सक्षम थे। इस संदर्भ में डॉ. विदुन्लुले न्यूमे लिखती हैं – 'Even during the Amang Period, there was only one vernacular dialect by which the whole life forms communicate. However, it was the caterpillar because of which Tingwang (God) had to create different languages for different creatures.' (Newme, 2019, page-15) इन्हीं विश्वासों एवं मान्यताओं के आधार पर ही संभवतः कथाकार ने इस कथा की रचना की हो, ऐसा माना जा सकता है। ऐसे में यह भी कहा जा सकता है कि उस युग में आज की जैसी विकसित भाषा का प्रयोग न करके कुछ ध्वन्यात्मक एवं सांकेतिक भाषा के माध्यम से सभी जीवों में विचारों एवं भावनाओं के आदान-

प्रदान होते रहे हों। फिर भी लोक कथाओं की यह विशेषता रही है कि इनमें इस प्रकार के अचरज भरे तत्त्व बहुतायत रूप में उपलब्ध होते हैं, जिनसे कथाओं को अधिक रोचक एवं मनोरंजक बनाया जाता है।

इस कथा में वर्णित पशु-पक्षियों के संबंध में जितने भी तथ्य प्रकट हुए हैं वे भी कम रोचक नहीं है। इसमें कथाकार ने विभिन्न पशु-पक्षियों के लक्षण-धर्म को अमांग के महाभोज में ही निर्धारित दिखाते हुए यह कल्पना की है कि ईश्वर ने यदि सभी जीवों की प्रकृति, प्रवृत्ति एवं रंग-धर्म का निर्धारण किया होगा, तो इसी अंदाज़ में ही उसने उन्हें गुण-स्वभाव प्रदान किए होंगे। प्रकारांतर से यह कहा जा सकता है कि इस कथा की रचना करने वाले ने सभी जीवों को उनकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति के आधार पर ही निरीक्षित एवं विश्लेषित करके उन्हीं घटकों को पिरोते हुए इस कथा की रचना की होगी। फिर भी लोक-मान्यताओं के अनुसार ऐसा भी कहा जाता है— 'It was said that on the day of Amang's feast, Hingde (Laws) was laid down by the whole mankind and the entire creations. Hingde for everything including the look, appearance and personality etc., were proclaimed on that day.' (Newme, 2019, page-15) इस कथा में वर्णित कबूतर के पंखों का लौह-औज़ारों में परिवर्तित होना, जेलियांग लोक जीवन में लोहे एवं उससे बने औज़ारों के महत्त्व को दर्शाता है। कहा जाता है कि धातुओं के बने बर्तन एवं औज़ारों के लिए यहां के लोगों को असम के मैदानी क्षेत्रों तक जाना पड़ता था, ऐसे में यदि कोई अनाथ इन्हें प्राप्त करना चाहे, तो उसके लिए यह एक प्रकार से असंभव प्रतीत होता है। इसलिए हो सकता है कि कहानीकार ने इस प्रसंग की कल्पना की हो। इसी प्रकार से रस्सी के टुकड़ों से मिथुन बनने के प्रसंग को भी व्याख्यायित किया जा सकता है। इस कथा के अनुसार अमांग का बचपन में गरीब होते हुए भी कर्मठ होना और सपने में पिता जी के द्वारा उसे कुछ राह दिखाना, उसके बाद जीवन में उपलब्धियाँ प्राप्त करना इत्यादि बातें कथाकार के आशावादी दृष्टिकोण को दर्शाते हैं। इस प्रकार की कथाओं के माध्यम से दुखी एवं निराश मनुष्य को अपने जीवन में आगे बढ़ने या मेहनत करने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से भी इन कथाओं की रचना की गई, ऐसा प्रतीत होता है। इस कथा की एक और विशेषता यह भी है कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए जौहू या महाभोज जैसे बड़े आयोजन को कथा की मुख्य घटना के रूप में सम्मिलित किया गया है। इस प्रसंग से यह भी दृष्टिगोचर होता है कि कथाकार ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन में इन अनुष्ठानों के महत्त्व को समझते हुए समाज में उन्हें जीवित बनाए रखने के लिए ही कथा में इन्हें पिरोया होगा।

कुल मिलाकर यहां यह कहा जा सकता है कि अमांग की कथावस्तु विचित्रताओं से परिपूर्ण है और यद्यपि इस कथा में वर्णित अनेक तथ्यों का मानव जीवन के वास्तविक एवं प्रत्यक्ष पहलुओं से कोई सरोकार नहीं है, तथापि लोक जीवन की दृष्टि से उसके मनोरंजन, ज्ञान-वर्धन एवं आशापूर्ण प्रेरणा की दृष्टि से यह कथा सदियों से लोक में प्रचलित रही है, इसलिए इसका अपना अलग ही महत्त्व है।

6.2 : मनोहर कथाएँ

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत अनेक मनोहर कथाएँ कही जाती हैं, जिनमें किसी कारणवश अनाथ हुए बच्चों के जीवन में चमत्कारपूर्ण घटनाओं के कारण उनका जीवन अभाव को पीछे छोड़ते हुए सुखमय हो जाता है। ऐसी कथाओं में प्रायः अपनी सगी माँ के अभाव में सौतेली माताओं के साथ रहने वाले बच्चे कथा के आरंभ में अनेक प्रकार के कष्टों को सहते हुए चित्रित किए जाते हैं। जब विमाताओं का उनके प्रति उपेक्षा एवं प्रताड़ना चरम पर पहुँच जाती है, तब ऐसे बच्चों को प्रायः गृहत्याग या गृह-निष्कासन का सामना करते हुए दिखाया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में वे बच्चे जंगलों अथवा वीरान जगहों पर एकांतवास करते हैं और अचानक किसी दैवीय कृपा अथवा कभी-कभी भूत पिशाचों के किसी कार्य-व्यापार के कारण उन्हें चमत्कारिक वस्तु अथवा शक्तियों को प्राप्त करते चित्रित किया जाता है। इस प्रकार इन कथाओं में वास्तविक जीवन में असंभव से लगने वाली घटनाओं के माध्यम से उन्हें शक्ति संपन्न एवं ऐश्वर्यपूर्ण बनते दिखाया जाता है। ऐसी मनोहर कथाएँ प्रायः सुखांत होती हैं। इस प्रकार की कथाओं के अंतर्गत यहां बम्मेइकांग अर्थात् इच्छा पूरक तश्तरी नाम से प्रचलित एक कहानी को उद्धृत किया गया है, जिसके माध्यम से यह विश्लेषित किया जा सकेगा कि लोक में निराश्रित एवं असहाय लोगों के मनो को सहलाते हुए लोक-रंजन के साथ निराश एवं उदास मन को कुछ समय के लिए ही सही, आशान्वित करने के उद्देश्य से इन कथाओं की रचना की जाती है।

6.2.1 : बाम्मेइ कांग/बाम्मेइ काक (इच्छा पूरक तश्तरी) (Daime, 2020, page-195)

कहा जाता है, कि एक सज्जन विधुर अपने पुत्र के साथ रहता था। वह अपने पुत्र से बहुत प्यार करता था और माता-पिता दोनों के उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए पुत्र का लालन-पालन कर रहा था। ऐसे में एक लड़की को वह विधुर पसंद आ गया। वह किसी तरह से इस विधुर से शादी करने के चक्कर में पड़ी रहती थी। जब बालक के पिता किसी कार्य में व्यस्त होता था, तब वह उसके पास आती, उसे कहानियाँ सुनाती, उसे खिलाती-पिलाती थी। कभी-कभी वह बालक से कहती कि यदि मैं तुम्हारी माँ होती, तो तुम्हें रोज़ अंडे खिलाती, तुम्हें खेतों से मक्के, खीरे, खरबूजे इत्यादि लाकर देती। इस प्रकार वह प्रायः बालक का मन बहलाया करती थी और धीरे-धीरे जब बालक के पिता ने देखा कि उसका पुत्र

लड़की के साथ पूरी तरह घुल-मिल गया है, तब उसने उस लड़की से शादी कर ली। इसके बाद तीनों सुखपूर्वक रहने लगे। आरंभ में सौतेली माँ ने उस बालक पर अपना पूरा प्यार बरसाया, उसे जो भी खाने-पीने की इच्छा होती थी, वे सब दिए, परंतु कुछ महीनों बाद उसने अपना असली रंग दिखाना आरंभ कर दिया। अब बालक के पिता को समझ में आने लगा कि यह लड़की केवल अपने सुख-सुविधा के लिए ही यहां आई है। अतः वह परेशान रहने लगा, परंतु अपनी पत्नी से वह कुछ कह नहीं सकता था। सौतेली माँ ने बच्चे को ठीक से खाना देना भी बंद कर दिया और धीरे-धीरे उस बालक के प्रति वह क्रूर होती चली गयी। कुछ वर्षों बाद औरत ने अपने पति से कहा कि इस बालक को घर से दूर कहीं ले जाकर छोड़ दें। बालक के पिता के मन में पुत्र के लिए अपार स्नेह था, अतः वे ऐसा नहीं करना चाहते थे। इधर पत्नी रोज़ ही उन पर बरसती थी कि बालक को अभी तक घर से क्यों नहीं निकाला गया। बालक अभी इतना बड़ा नहीं हुआ था कि अकेले जी सके, इसलिए उसके पिता बालक को दूर ले जाकर छोड़ने के बहाने से अपने पीठ पर बालक को बाँधते और दूर जंगल में ले जाते, पर जब उसे छोड़कर आने के बारे में सोचता तो उसके मन में प्यार उमड़ पड़ता। इसलिए वे अपने पुत्र को लिए वापस घर आ जाते। इस प्रकार यह सिलसिला कई दिनों तक चलता रहा। इधर दुष्ट औरत पुत्र और पिता दोनों को खरी-खोटी सुनाती रहती। एक दिन पिता ने सोच लिया कि चाहे कुछ भी हो जाए, आज तो पुत्र को जंगल ले जाकर छोड़ ही दूंगा। उसने पुत्र को अपने पीठ पर बाँधा और चलते-चलते गांव के खेतों की ओर से निकला। खेतों में धान के पौधे लहलहा रहे थे, मक्के के फूलों पर मधुमक्खियां भिनभिना रही थी, खीरे के फूल धान के पौधों के बीच-बीच में अपने पीत वर्ण से खेतों को और भी सुशोभित कर रहे थे। बालक ने पिता से पूछा, पिता ने उन सभी पौधों के बारे में एक-एक करके बताया, फिर बालक ने कहा- “पिताजी खीरे एवं मक्के कितने दिनों में खाने लायक हो जाएंगे?” इस प्रश्न को सुनकर पिता का मन भर आया और पुत्र को लिए पुनः घर लौट आया।

पिता ने बालक को अपनी पत्नी के सामने न लाकर, घर के पीछे कहीं छुपाकर बिठा दिया था और उससे कहा कि चुपचाप बैठे रहे, माँ के सामने न आये। इधर उसने अपनी पत्नी से कह दिया कि बालक को जंगल में ले जाकर छोड़ दिया गया है। इस प्रकार कुछ दिनों तक घर में शांतिपूर्ण वातावरण बना रहा। दुष्ट औरत अपने पति से खुश होकर मुस्कुराते हुए बात करने लगी और इधर पिता अपने पुत्र को छुप-छुपकर खाने पीने की वस्तुएं देता रहा। एक दिन पिता ने चुपके से बालक को खाना परोस दिया। वह खा ही रहा था कि सब्जी में उसे इतनी तेज मिर्ची लगी कि वह रोते हुए पानी के लिए चिल्ला उठा। बालक की चीख सुनकर दुष्ट औरत आगबबूला हो गई पिता और पुत्र-दोनों पर बरस पड़ीं। अब पिता के लिए पुत्र को इस प्रकार घर पर रखना असंभव सा हो गया। अगले दिन उसने अपने दिल पर

पत्थर रखकर पुत्र को दूर ले जाकर छोड़ने का मन बनाया। जाने से पहले उसने घर का एक मुर्गा काटा, उसे पकाया तथा एक सूअर को भी काटकर उसकी वसा के बड़े बड़े टुकड़ों को पकाकर केले के पत्तों में बाँध लिया। उसने अपनी छुरी का भी धार बनाया और सभी वस्तुओं के साथ पुत्र को पीठ पर बाँधकर उसे छोड़ने के लिए निकल पड़ा। दोनों पिता-पुत्र चलते-चलते नदी किनारे ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ बीच में एक गूलर का पेड़ और उसके चारों ओर पानी बह रहा था। पिता ने बालक को उस गूलर के पेड़ पर चढ़ाकर उसकी शाखाओं पर बिठा दिया और उसके लिए जो मांस पकाकर लाए थे, उन्हें शाखाओं पर टांग दिया। फिर उसने अपनी छुरी निकालकर बेटे को देते हुए यह कहा कि जब कभी तुम्हारी जान पर आ जाए, तभी इस छुरी का प्रयोग करना और ऐसा कहकर वह दुखी मन से अपने घर लौट आया।

अब गूलर का पेड़ ही बालक का घर था। पेड़ पर लाल-लाल पके फल लदे हुए थे। वह कभी उन फलों को खाता और कभी पिता के द्वारा रख गए मांस के टुकड़ों को खाता। इस प्रकार उसके दिन उसी पेड़ पर ही कट रहे थे, क्योंकि वहाँ से उतर कर कहां जाया जाए, उसे इसका भी पता नहीं था। जेलियांग लोक के अनुसार कहा जाता है कि गूलर का पेड़ वनस्पति जगत का सिन्कू अर्थात् पुजारी एवं वैद्य हुआ करता है। जब बालक उस पेड़ पर रहता था, तब कई पेड़-पौधे उस गूलर के पेड़ से कहते कि उसके लिए पूजा प्रार्थना कर दें, पर गूलर का पेड़ कहता कि मेरे घर पर अतिथि आए हुए हैं और जब तक घर में मेहमान है, तब तक पूजा-पाठ के कार्यों को संपादित करना उसके लिए संभव न होगा, वे किसी और के पास जाए। इस प्रकार उनके द्वारा नकारे जाने के कारण कई पेड़ पौधे मुरझा कर सूख गए। ये सब देखकर बालक को पीड़ा हो रही थी, परंतु वह कहीं और जा भी नहीं सकता था, वास्तव में वह वहाँ से जाना ही नहीं चाहता था। इस प्रकार उनके कई दिन कट गए और एक दिन उसने देखा कि दक्षिण की ओर से एक चेरासिमिंगपे/हेरामेंगपाइ (पिशाचिनी) अपने पीठ पर एक चमकदार तश्तरी लादे हुए, 'कनूहे-कपाहे ताईजंग, कनूहे-कपाहे ताईजंग' कहते हुए आ रही थी। बालक उसे देखते ही डरकर चुपचाप पेड़ की शाखा पर बैठ गया और पिशाचिनी के पार होने की प्रतीक्षा करने लगा। पिशाचिनी नज़रें झुकाए धीरे-धीरे अपने शब्दों को दोहराती जा रही थी, लेकिन अचानक उसे नदी के जल में बालक की परछाई दिख गई और उसे खाने के लिए पकड़ने लगी। जब वह पानी में हाथ डालती, तब परछाई गायब हो जाती और जब जल का हिलना कम हो जाता, तब फिर दिख जाती। ऐसा बहुत देर तक करने के बाद पिशाचिनी ने अपनी नज़र पेड़ पर उठाई और आखिर उसने बालक को देख लिया और उसे खाने के लिए पेड़ पर चढ़ने का प्रयास करने लगी।

अब बालक ने अपने बचाव के लिए उसे बहलाने का प्रयास किया। उसने पिशाचिनी से उसकी तश्तरी के बारे में पूछा तो उसने बताया कि यह बाम्मेइ कांग/बाम्लेइ काक (इच्छा पूरक तश्तरी) है और इससे कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा कहकर जब वह पेड़ पर चढ़ने लगी, तब बालक ने उससे कहा- “दादी, पेड़ पर मत चढ़ो, मेरे पास फलों के साथ-साथ खाने की अनेक स्वादिष्ट वस्तुएं हैं, उन्हें मैं पेड़ से ही नीचे फेंक देता हूँ, उन्हें तुम खाकर अपनी भूख मिटा लेना।” पिशाचिनी मान गई और इधर बालक फलों को तोड़-तोड़कर उसके मुँह में फेंकने लगा और यह उन्हें खाती गई। उसने अपने सारे मांस एवं गूलर के फल तोड़-तोड़कर फेंक दिए, फिर भी पिशाचिनी की भूख न मिटी। उसने पेड़ पर देखा कि अब एक ही पका फल लटक रहा है, तब उसने कहा- “दादी अब मैं अपनी सबसे स्वादिष्ट वस्तु फेंकने वाला हूँ, जिसे खाते ही तुम्हारी भूख-प्यास सब मिट जाएगी। इसलिए अपने मुँह को जितना फैलाकर खोल सकती हो, उतना खोल लो।” पिशाचिनी ने अपना मुँह ऐसा खोला कि उसके ऊपरी ओंठ ने आँखों को और निचले होंठ ने ठुड्डी को ढक लिया। बालक ने फल तोड़ा और उसमें अपनी छुरी को घुसाकर उसे पिशाचिनी के मुँह में ऐसा फेंका कि छुरी के धार से उसके गले की रस्सी कट गई और वह वहीं तड़प-तड़पकर ढेर हो गई। पिशाचिनी मर चुकी थी मगर बालक डरता रहा कि कहीं वह जीवित न हो, इसलिए पेड़ से उतरे बिना ही वह ताकता रहा। कुछ समय बाद पिशाचिनी के मुँह पर मक्खियाँ भिनभिनाने लगी और चींटियों की पंक्तियाँ उनके शरीर पर चढ़ते दिखाई दीं। अब उसे विश्वास हो गया कि पिशाचिनी मर चुकी है और पेड़ पर बैठे-बैठे अब खाने के लिए भी कुछ न बचा था। अतः पेड़ से धीरे-धीरे उतर कर उसने पिशाचिनी की इच्छा पूरक तश्तरी एवं अपनी छुरी उठाई और जंगल की ओर निकलने को तैयार हो गया।

बालक ने ज्यों ही तश्तरी को उठाया, उसके पैर इतने भारी हो गए कि वह एक कदम भी चल न पाया। उसने पिशाचिनी के उन शब्दों को दोहराया जिन्हें वह कहते हुए आई थी- ‘कनूहे-कपाहे तार्जंग - कनूहे-कपाहे तार्जंग’⁵ इतना कहते ही उसके कदम सरपट निकल पड़े और वह दूर जंगल आ गया। कुछ देर बाद उसे भूख लगने लगी और उसने इच्छापूरक तश्तरी से भोजन माँगा। उसके सामने स्वादिष्ट व्यंजनों से भरा थाली प्रकट हो गया। उसने भरपेट खाना खाया और आगे निकलता चला गया। बहुत दूर जाने के बाद उसे एक गांव दिखाई दिया, जहां जाकर उसने एक घर में शरण ली। कुछ दिनों बाद उस घर के पीछे एक झोपड़ी बनाकर वह वहीं रहने लगा। वह बालक अब एक अनाथ था, सो अपने टूटे-फूटे घर में रहता और धीरे-धीरे अब जवान होने लगा। उसके घर के सामने कुछ युवतियाँ प्रायः चेगा/हेगा नामक खेल खेलने आती थीं। एक दिन उन लड़कियों का

⁵ हिलते-डुलते आगे बढ़-हिलते डुलते आगे बढ़।

‘चेगापुम’⁶ लुढ़कते हुए अनाथ के घर चला आया। एक लड़की उसे उठाने के लिए घर के भीतर आई। संयोग से उस समय वह बालक अपने घर पर नहीं था। उस लड़की ने सोचा कि देखें, यह गरीब अनाथ किस चीज की सब्जी बनाकर खाता होगा क्योंकि इनके पास तो कुछ खाने को होता नहीं होगा। जब उसने देखा तो उनके बर्तनों में मांस-मछली के स्वादिष्ट व्यंजन बने हुए थे। दूसरे दिन उस लड़की ने जान बूझकर अपना चेगापुम अनाथ के घर की ओर से लुढ़का दिया और फिर जाकर उसके रसोई में खाने की वस्तुओं को देखने लगी। उस दिन भी अनेक स्वादिष्ट व्यंजन बने हुए थे। इस प्रकार वह रोज अनाथ के खाने को जाकर देखती और कभी-कभी उन व्यंजनों को चख भी लेती। धीरे-धीरे उसके मन में अनाथ के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न हो गई।

कहा जाता है कि उस लड़की ने अपने माता-पिता से उस अनाथ से विवाह करके उसके साथ रहने की बात की, परंतु उसके माता-पिता ने साफ मना कर दिया और कहा कि तुम उस अनाथ से शादी करके कैसी रहोगी, उसके पास कुछ भी नहीं है, क्या खाएगी, पर जब लड़की नहीं मानी तब उसके पिता ने गुस्से में आकर उसे घर से निकाल दिया। उसके सभी वस्त्र एवं आभूषण जला दिए। लड़की भागते-भागते अनाथ के पास आ गई और उसने इच्छा पूरक तश्तरी से उसके मनवांछित सभी वस्तुएं उत्पन्न कर दी। इस प्रकार वह बालक उस लड़की के साथ शादी करके सुखपूर्वक रहने लगा।

यह कहानी एक मनोहर एवं सुखांत कथा है जो जेलियांग लोक में प्रायः बच्चों के मनोरंजन के लिए ही सुनाए जाते हैं, परंतु मनोरंजन होते हुए भी कहीं न कहीं इन कथाओं में लोकमानस तथा लोकविश्वासों को अभिव्यक्ति मिली हुई है। कहानी में सौतेली माँ का अपने पुत्र के प्रति जो रवैया है, वह लोक में सामान्य रूप में प्रचलित विमाताओं की मानसिकता को प्रकट करता है। यहां इतना कहा जा सकता है कि कथाओं में इन विमाताओं का बच्चों के प्रति प्रताड़ना तथा अत्याचारों को वास्तविकता से बढ़ा-चढ़ाकर सुने-सुनाए जाते हैं, फिर भी इतना तो स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि जब कभी किसी बच्चे को अपनी जननी के स्नेह से वंचित होना पड़ता है और उसका स्थान कोई और लेता है, तो वह इस प्रकार कमोबेश अत्याचार तो सहते ही होंगे। यही कारण है कि लोककथाओं में इन विमाताओं के अत्याचार एवं बच्चों के प्रति उपेक्षा को कई कथाओं की कथा-वस्तु के रूप में वर्णित किया जाता है। साथ ही इस कहानी में पिता के मन में पुत्र के प्रति अपार स्नेह होते हुए भी जब अपने स्त्री की बात आती है, तब वे पुत्र के परित्याग के लिए भी तैयार हो जाते हैं। इन तथ्यों को यदि सामाजिक जीवन के स्तर पर देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि पारिवारिक जीवन में स्त्रियां अपने प्रभाव से या जिद से एन-केन प्रकारेण पुरुषों को अपनी बातें मनवाने में सक्षम रहती हैं। इसके साथ ही यह भी कहा जा

⁶ एक प्रकार की लता का बीज, जिसका प्रयोग जेलियांग लोक में चेगा नामक खेल में किया जाता है।

सकता है कि पुरुषों में वैधुर्य जीवन को बिताने की अपेक्षा संतानों का परित्याग करके भी स्त्री के साथ जीवन बिताने की जीजीविषा रहती होगी। इस प्रकार की बातें सर्वसामान्य के लिए तो नहीं, पर किसी-किसी व्यक्ति के जीवन के आधार पर इन कथाओं की रचना की जाती होगी, ऐसा मानना अनुचित प्रतीत नहीं होता।

इस लोककथा में वर्णित चेरासिमिंगपे (पिशाचिनी) भी लोक विश्वास का एक परिकल्पित परंतु अत्यंत वीभत्स एवं भयावह प्रतीक माना जाता है। जेलियांग लोक में यह मान्यता है कि इस प्रकार की पिशाचिनी जंगलों में जगह-जगह पर होती हैं और जब कभी कोई मनुष्य एकांत में उनके नजदीक आता है, तब वह किसी न किसी प्रकार से उसे हानि पहुँचाने या डराने का प्रयास करती है। ऐसा भी कहा जाता है कि वह किसी एकांत व्यक्ति को पाकर, यदि उसकी जान न ले लें, तो भी उसे भयभीत करने के लिए अलग-अलग प्रकार के हथकंडे अपनाती हैं। सामान्यतः यह पिशाचिनी अदृश्य रूप में रहकर कभी पेड़ों को ऐसे झकझोरती है, जैसे कि आँधी-तूफान आया हो और कभी बड़े-बड़े पत्थर लुढ़काकर भी मनुष्यों को डराती है और कभी छोटे-छोटे पत्थरों की बरसात कराती है। ऐसा कहा जाता है कि जब वह पेड़ों को झकझोरकर किसी को डराती है, तब केवल उस व्यक्ति के आस-पास के पेड़ ही उसके प्रभाव में आते हैं और थोड़ी दूर पर शांत पेड़ों को देखकर यह समझा जाता है कि यह पिशाचिनी का काम है। छोटे-छोटे पत्थरों की बरसात के संबंध में लोक में यह मान्यता है कि यद्यपि वह खूब पत्थर बरसाती हैं, फिर भी वे पत्थर मनुष्य के शरीर को बहुत कम छूते हैं और ऐसा भी कहा जाता है कि दुर्भाग्य से यदि किसी व्यक्ति को उन पत्थरों में से एक भी लग जाए, तो किसी न किसी रोग के कारण उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार लोक मान्यता के आधार पर ही इस पिशाचिनी को भी कथाओं में वर्णित किया जाता है।

इस लोक कथा की विशिष्टताओं में से एक यह भी है कि इसमें गूलर के वृक्ष को वनस्पति जगत के सिन्कू अर्थात् पुजारी एवं वैद्य के रूप में वर्णित किया गया है। लोक में सर्वत्र नहीं फिर भी कहीं-कहीं ऐसा कहा-सुना जाता है कि जिस प्रकार मनुष्य समाज की सामाजिक संरचना के अंतर्गत सिन्कू का महत्त्व होता है, उसी प्रकार पेड़ों एवं वनस्पतियों में गूलर का पेड़ महत्त्वपूर्ण माना जाता है और यही कारण है कि इसे वृक्षों का सिन्कू कहा जाता है। इस कथा में अन्य पेड़-पौधों के द्वारा गूलर वृक्ष से अपने लिए पूजा-प्रार्थना करने की विनती की गई है और उसकी असमर्थता के कारण पेड़ों को मुरझाते और सूखते वर्णित किया गया है। इस प्रकार के प्रसंगों से यह तथ्य निकलकर आता है कि इसके आदि कथाकार ने वनस्पति जगत में भी मनुष्यों की तरह संवेदनाओं की उपस्थिति को स्थापित करने का प्रयास किया है। जेलियांग लोक कथाओं की सबसे बड़ी विशेषताओं में से एक यह है इन कथाओं में

मनगढ़ंत और अविश्वसनीय लगने वाले काल्पनिक प्रसंगों का भरमार है, जिनमें से 'बाम्मेइ कांग' अर्थात् इच्छा-पूरक-तश्तरी एक काल्पनिक परंतु अत्यन्त मनोहर एवं रोचक उपादान है और इसकी तुलना हिंदू पौराणिक कथाओं में वर्णित कल्पवृक्ष या अलादीन के चिराग इत्यादि से की जा सकती है। ऐसे काल्पनिक उपादानों के माध्यम से एक ओर, जहां लोगों के मन को रंजित करने के प्रयास किए जाते हैं, तो वहीं दूसरी ओर दुखी, निराश एवं हताश तथा असहाय लोगों के मन को सांत्वना देने के साथ-साथ उन्हें आशान्वित एवं प्रेरित करने के प्रयास भी किए जाते हैं।

6.3 : अनाथों की कथाएँ

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत अनाथों की कथाओं को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। ऐसी कथाओं के अंतर्गत जब कभी किसी बच्चे के जननी की असमय मृत्यु हो जाती है या माँ के द्वारा उसका परित्याग कर दिया जाता है, तब उसके जीवन में आने वाली परेशानियों एवं संघर्षों को इन कथाओं में चित्रित किया जाता है। ऐसी कथाओं में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कोई अनाथ या तो माता-पिता दोनों से वंचित रहता है या फिर पिता के होते हुए भी माँ के अभाव में अनाथ की तरह जीवन जीता है। इन कथाओं में प्रायः माँ के होते हुए पिता के अभाव को अभावग्रस्त नहीं दिखाया जाता है, परंतु यदि पिता के होते हुए भी उसकी माँ न हो, तो उसे अनाथ के जैसा जीवन जीते दिखाया जाता है। इस प्रकार की परिकल्पनाओं के पीछे यह कहा जा सकता है कि जेलियांग लोक में एक संतान के जीवन में उसकी माँ का होना अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। यहां माताओं के संबंध में दो महत्वपूर्ण धारणाएँ बनती दिखती हैं, जिनमें से एक तो यह कि यदि किसी बच्चे की परवरिश अपने जननी के हाथों होती है, तब उसे सर्वसुलभ सुख प्राप्त होते हैं और यदि किसी अभागे के पल्ले में उसकी माँ नहीं है, तब उसे जीवन का वह सुख प्राप्त नहीं हो पाता है। दूसरा, एक और धारणा भी इससे पुष्ट होती है कि यदि किसी बच्चे को विमाता के पल्ले में बाँध दिया जाता है, तब वह उसके जीवन को नरक से भी बदतर बना देती है। ऐसी परिस्थितियों में कभी तो वह अनाथ बच्चा अपने जीवन से तंग आकर इस नश्वर संसार का परित्याग कर देता है या कभी बड़े होने के बाद, जब वह सक्षम हो जाता है, तब अपनी विमाता को दंडित करते चित्रित किया जाता है। इस प्रकार की कथाओं के अंतर्गत यहां पेपुइ तेनू अर्थात्- सौतेली माँ और अनाथ का जाल नामक कथाओं को लिया गया है, जिनके विश्लेषण से इस प्रकार की कथाओं के तात्त्विक एवं मार्मिक पक्षों को उभारने का प्रयास किया गया है।

6.3.1 : पेपुई तेनू (सौतेली माँ) (Nbung, 2020)

कहा जाता है कि एक छोटे से बालक की माँ का देहावसान हो गया था और वह अपने पिता की देखरेख में पल रहा था। इधर लड़का तो बड़ा हो रहा था लेकिन पिता के लिए घर के सभी काम करना

और खेती-बाड़ी दोनों को संभालना मुश्किल हो गया था। इसलिए लड़के की बुआ के कहने पर उसने एक विधवा औरत से शादी कर ली। लड़के का नाम किन्दिन था और उसकी खुशी का ठिकाना इसलिए न था कि वह भी अब माँ के साथ रहेगा। कोई भी उसे बिन माँ का अनाथ न कहेगा। वह सोचता अब तो वह भी औरों की तरह माँ को पुकारते हुए घर में प्रवेश किया करेगा। वैसे तो पिता के साथ रहते हुए उसे किसी चीज़ की कमी का अनुभव नहीं होता था, फिर भी एक बात वह बचपन से देखता आया था कि लोगों की माँ होती हैं और वे अपने बच्चों को दुलारती हैं। जब अन्य बालकों की माँ खेतों से लौटती हैं तब अपने बच्चों के लिए खीरे, तरबूज इत्यादि लाते और बच्चे बड़े चाव से उन्हें खाते। खेतों में नए-नए निकले हुए मक्के को उसके छिलके सहित आग में भूँज कर लाते, जिन्हें बच्चे छील-छील कर खाते, उन्हें माँ खिलाती। ये सब देखकर किन्दिन के मन में हमेशा से यही इच्छा होती थी कि काश उसकी भी माँ होती। इन्हीं बातों को याद करते हुए विधवा से अपने पिता की शादी होते देखकर वह अत्यंत अह्लादित हुआ था। लेकिन ईश्वर की तो कुछ और ही लीला थी और जितने उमंग के साथ वह अपनी नई माँ के आने की प्रतीक्षा कर रहा था, आने वाले दिनों में उसे अपने जीवन में उससे कई गुना हतोत्साहित एवं निराश होना पड़ा।

इधर किन्दिन के पिता अपनी नई पत्नी के साथ जीवन बिताने लगा और उधर उसका पुत्र एकांत होता चला गया। सौतेली माँ का उसके प्रति व्यवहार अत्यंत निर्मम था। कुछ और बड़ा हुआ तो उसने घर पर सोना छोड़ दिया और जेलियांग परंपरानुसार गांव के अन्य युवकों की तरह खंग्व्यू (मोरुंग) में जाकर सोने लगा। वह प्रायः खेती जाता और अपने माता-पिता के साथ काम करता, परंतु चुपचाप रहता। इस पर भी उसकी माँ उसे ताने मारती रहती थी। इसलिए खेत में काम करते समय और खाना खाते समय के अलावा वह प्रायः मोरुंग में या अपने दोस्तों के साथ रहता। जब तक वह दोस्तों के साथ होता, हँसी-खुशी में समय बीत जाता, पर जब घर जाने की बात सोचता तब उसका मन उदास हो जाता। उसकी इस स्थिति से उसके पिता अंजान थे, ऐसी बात तो न थीं, फिर भी वे अपनी पत्नी के सामने कुछ कह नहीं पा रहे थे। शाम हो या सुबह, जब लड़का थोड़ी सी भी देर कर देता तब उसकी माँ उस पर भड़क जाती और दुनिया भर की बददुआएँ दे डालती। इतना ही नहीं, जब किन्दिन खाने के लिए आता, उससे पहले ही वह स्वयं खा-पीकर उसके लिए बचा-खुचा डाल देती। कभी-कभी तो उसे बासी चावल और सब्जी परोस दिया जाता। इन सब परिस्थितियों में वह कभी-कभी छुप-छुपकर रो लेता और अपने दुर्भाग्य को कोसता।

घर की ऐसी परिस्थिति होते हुए भी किन्दिनबो ने कभी-भी अपने दोस्तों, संगी-साथियों से अपनी सौतेली माँ की क्रूरता की चर्चा नहीं की। वैसे तो गांव के सभी युवक-युवतियाँ प्रायः खेती के कार्य में

चेहुत के रूप में परस्पर एक दूसरे की खेतों में जाकर कार्य करते थे और कृषि कार्यों के इस सिलसिले में किन्दिन का गांव की एक युवती के साथ प्रेम जैसा संबंध स्थापित हो रहा था। लेकिन वह सोचता कि इसे मेरी सौतेली माँ के बारे में पता नहीं है और वह यदि मेरे घर ब्याह कर आती है तो भी माँ की निर्दयता को किस प्रकार सहन करेगी। इन्हीं उधेड़बुन में वह अकसर खोया-खोया रहता। घर में माँ की प्रताड़ना को सहता फिर भी दिन में खुशी-खुशी दोस्तों के साथ खेती के कार्यों में लग जाता। एक बार फिर चेहुत के माध्यम से सभी युवक-युवतियाँ समूह में ही खेती के कार्य करने लगे। बारी-बारी से एक दूसरे के खेतों में जाते। इन दिनों किन्दिनबो के प्रति माँ की ज्यादातियाँ और भी बढ़ गई थी। जेलियांग परंपरा के अनुसार जब भी लोग खेत जाते थे, तो दोपहर के खाने के लिए सभी लोग अपना-अपना भोजन बांधकर ले जाते थे और पुराने जमाने में ये पोटली प्रायः केले के पत्तों में बांधी जाती थी। जब भी दोपहर के खाने के लिए सभी लोग विश्राम करते और खेत के बीचों-बीच बने झोपड़े में एकत्र होते, तब किन्दिनबो प्रायः अपनी पोटली लेकर खेती के किनारे झाड़ियों में चला जाता। इस बात को उसकी प्रेमिका बड़े ध्यान से देखती रहती और सोचती कि आखिर यह औरों के साथ बैठकर क्यों खाता नहीं है। उसने इस रहस्य को जानने के लिए एक दिन सभी लोगों से छुप-छुपकर अपनी एक सहेली के साथ अपने प्रेमी अर्थात् किन्दिन के खाने की पोटली को खोलकर देखा। उसे खोलते ही दोनों की आँखें फटी की फटी रह गईं और युवतियों की आँखों से आँसू छलक पड़े।

सौतेली माँ हमेशा से किन्दिन से पीछा छुड़ाकर अकेली ही पति के साथ आराम से रहना चाहती थी, इसीलिए घर पर अपने सौतेले पुत्र को जितना सताया उससे जब मन न भरा तो उसने खेत में भी सभी लोगों के सामने उसे शर्मिंदित करने के लिए उसके खाने की पोटली में चावल के साथ चूहों के सूखे हुए मल को भी मिलाकर बांधना आरंभ कर दिया था, जिसके चलते वह सबके सामने न खाकर खेत के किनारे झाड़ियों में जा छिपकर साही के बाल (काँटे) से चावल के दानों को चुग-चुग कर खाता था। जब उसकी प्रेमिका एवं उसकी सहेली को इस सच्चाई का पता चला तो उन दोनों ने अपने खाने की पोटली के साथ किन्दिन की पोटली की अदला बदली कर दी। जब रोज की तरह उसने खेत के किनारे जाकर अपनी पोटली खोली तब उसे आश्चर्य हुआ कि उसकी पोटली में आज चूहे के मल मिश्रित नहीं है और स्वच्छ-सफेद चावल ही भरे हुए हैं। जब उसने पोटली बांधने की रस्सी को देखा तो ध्यान में आया कि यह तो सौतेली माँ के हाथों बाँधी गई रस्सी नहीं है। वह दौड़कर झोपड़ी में गया जहाँ सभी लोग खाने के लिए अपनी-अपनी खाने की पोटली खोलने ही वाले थे। उसने अपनी पोटली को पहचान लिया। उसकी प्रेमिका अपने गोद में उस पोटली को लिए बैठी हुई थी। अब उसके मन में सारा चित्र स्पष्ट हो गया। सौतेली माँ की मंशा पूर्ण हुई और किन्दिन के परिवार की सच्चाई अब उसकी प्रेयसी

के सामने उजागर हो चुकी थी। वह अपनी सौतेली माँ की प्रताड़ना से उतना दुखी न होता था, जितना कि आज उन बातों के उजागर हो जाने से सभी लोगों के सामने शर्मिंदगी का अनुभव हो रहा था। शाम को जब सभी लोग घर की ओर वापस जाने लगे तब उसने अपनी प्रेमिका से कहा- “आज हमारा चेहुत का भी अंतिम दिन था, कल तो सभी लोग विश्राम करेंगे ही, क्यों न हम लोग कहीं टहलते हुए चले जाए। कल जी भर की बातें करेंगे, तुम अपनी सहेली को लेकर सुबह गांव के मुख्य द्वार पर आ जाना हम तीनों एक अच्छे स्थान पर टहलने चलेंगे।”

किन्दिन के कहेनुसार अगले दिन दोनों सहेलियों ने त्योहारों में पहने जाने वाले नए वस्त्रों एवं आभूषणों को धारण किया और इस प्रकार तीनों टहलते-टहलते बहुत दूर निकल गए। तीनों ने जी भर की बातें की। किन्दिन ने अपने घर की परिस्थितियों के बारे में उन्हें बताते हुए कहा की अब मुझे इस संसार में जीने की इच्छा ही नहीं होती है। इस पर दोनों उसे ढाँढस बँधाते हुए कहते हैं कि सब अच्छा हो जायेगा और उसे इन बातों पर अधिक नहीं सोचना चाहिए। लेकिन उसकी सौतेली माँ के चरित्र एवं उसके बुरे बर्ताव के बारे में जानने के बाद उन्हें यह आभास हो ही गया था कि वह कभी-भी किन्दिन को चैन से घर में रहने नहीं देगी और इस बात से दोनों इतने व्यथित हुए कि उनकी आँखों से आँसू छलक पड़े। इस प्रकार परस्पर बात करते हुए तीनों काफी दूर, पहाड़ी की चोटी पर चढ़ गए। वहाँ पहुँचकर किन्दिनबो ने उन दोनों की ओढ़नी (फैज्याना) माँगी तथा उन्हें ओढ़कर एक पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ की ऊँचाई पर चढ़ने के बाद उसने दोनों युवतियों से पूछा कि मैं इस पेड़ पर चढ़कर कैसे दिख रहा हूँ। दोनों ने कहा कि बहुत अच्छे दिख रहे हो अब उतर आओ, शाम हो चली है, गांव वापस चलते हैं। पर वह और भी ऊपर चढ़ता गया और पेड़ की चोटी पर पहुँचकर गीत के माध्यम से अपनी प्रेमिका से बात करते हुए यह गीत गाया-

अल्यू पोइ, अतू जीमू-जिमाक लौ ?

जीये, जीसांग नेइ, वांग-न्कुम लौ, वांग सू खै।

पेसाइ ने चेरेंग पेंग्खांग न्साइ ने,

न्ज्युना तू पुन्लू पद फुई लौ, अल्यू आमेराइ।

अर्थात्- हे प्रिय ! क्या मैं इस पेड़ की चोटी पर सुशोभित लग रहा हूँ ?

हाँ प्रिय ! तुम उस पर बहुत सुंदर एवं आकर्षक लग रहे हो, मगर अभी नीचे उतरो और गांव की ओर प्रस्थान करो।

हे प्रिय ! वर्षों के बाद जब कभी चेरेंग दुंग (धनेश पक्षियों का झुंड) गांव के ऊपर मँडराते हुए आएँ, तब अपनी संतान को लिए आकर उन्हें देख लेना।

कहा जाता है कि इस गीत को गाते हुए युवक ने स्वयं को एक धनेश पक्षी में बदल लिया और वहाँ से उड़ गया। इसी लोक कथा के आधार पर जेलियांग समाज में यह मान्यता है कि उन लड़कियों के फैज्याना ओढ़कर पक्षी में रूपांतरित होने के कारण धनेश पक्षी के पंखों में काली धारियाँ रह गई हैं। इसके साथ ही ऐसा भी कहा जाता है कि यद्यपि जेलियांग लोग अधिकांश पक्षियों का मांस खाते हैं, परंतु मनुष्य से रूपांतरित होने के कारण इस पक्षी का मांस नहीं खाना चाहिए। इधर दोनों लड़कियाँ उदास एवं भारी मन से रोते-बिलखते हुए गांव वापस आ गईं। इस घटना के बाद से किन्दिन की याद में उसकी प्रेमिका अकसर रोती रहती। किसी भी काम में उसका मन न लगता, अब उसे न तो खेती के कार्यों पर जाने की इच्छा होती थी और न ही किसी खुशी के मौकों पर लोगों के साथ शरीक होने की तमन्ना रह गई थी। उसकी सहेलियाँ त्योहारों एवं उत्सवों में जब नए-नए वस्त्र बुनकर पहनती तब भी वह अपने उन पुराने वस्त्रों में ही रहती, जिनमें उसने किन्दिनबो को अंतिम बार देखा था। जब उसकी सहेलियाँ उससे नए वस्त्र धारण करने के लिए कहतीं, तब वह कहती- “विरह की इस पीड़ा ने मुझे इतना सताया है कि मैं अपनी नजरें उठा नहीं सकती और जब वस्त्र बुनने के लिए नजरें झुकाती हूँ तब आँसुओं से धागे नहीं दिखते, कैसे वस्त्र बनूँ और इन पुराने वस्त्रों में ही मुझे सुकून मिलता है। कभी-कभी स्वप्न में किन्दिन को खंगचूकी में बैठे हुए देखती हूँ तो अगले प्रातः उठने पर और भी दुख होता है।” लेकिन जैसे कहा जाता है कि समय का मरहम गहरे से गहरे घावों को भी पाट देता है, धीरे-धीरे उसने भी अपने प्रेमी के वापस आने की आशा छोड़ दी और उसका ब्याह किसी और से हो गया। उसकी तथा सहेली की भी संतानें हो गईं, और तब तक इधर किन्दिन की सौतेली माँ की भी संतानें हो चुकी थी।

कहा जाता है कि बरसों बाद एक दिन गांव में सभी बच्चे शोर मचाते हुए चिल्लाने लगे- “धनेश पक्षियों का झुण्ड आया है-धनेश पक्षियों का झुण्ड आया है।” गांव के सभी लोग अपने घरों से निकलकर आसमान की ओर ताकने लगे। धनेश पक्षियों ने अपने बच्चों को पीठ पर बाँधे हुए खड़ी सभी माताओं एवं बच्चों के मध्य अपना सुंदर पूंछ गिराए। उन धनेश पक्षियों में से एक ने किन्दिन की प्रेमिका एवं उसके बच्चे के लिए सबसे लंबा एवं सुंदर पूंछ गिराया और सभी धनेश आगे निकल ही रहे थे कि किन्दिन की सौतेली माँ ने भी पुकार लगाई- “धनेश पक्षी मेरे बच्चे के लिए भी अपनी एक पूंछ दे दो।” तब धनेश ने कहा- “अपना मुँह खोलकर ऊपर की ओर देखो।” उसने वैसा ही किया, तब पक्षी ने उसके मुँह पर अपना मल ऐसा त्यागा ही उसका चेहरा मल से लथपथ हो गया और वह गुस्से से बड़बड़ाती अपने घर घुस गई। इस प्रकार एक अनाथ को जिस प्रकार सौतेली माँ ने सताया और जिससे

वह प्रताड़ित होकर के मनुष्य योनि से धनेश पक्षी की योनि में चला गया, यह जेलियांग लोक में प्रचलित प्रसिद्ध कहानी है।

इस कथा के कथ्य के रूप में एक सौतेली माँ के द्वारा अपने पुत्र के ऊपर की जाने वाली प्रताड़नाओं को उजागर तो किया ही गया है, साथ ही लोक जीवन के अनेक पहलुओं को भी इस कथा के माध्यम से दृष्टिपात किया जा सकता है। इस कथा में यह दिखाया गया है कि एक स्त्री के बिना परिवार को संचालित करना एक प्रकार से असंभव हो जाता है, लेकिन यह तथ्य भी सामने उजागर होकर आता है कि यदि वह स्त्री सुपात्र न हुई तो हँसते-खिलते परिवार को नरक भी बना सकती है। इस कथा के माध्यम से यह तथ्य भी उजागर होकर आता है कि जेलियांग लोक में कृषि-कार्य हेतु युवक-युवतियाँ समूह बनाकर बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में जाते थे, जिससे खेती जैसे बोझिल कार्य भी एक प्रकार से रोचक हो जाते थे और बिना किसी ऊबन के सारे कार्य संपन्न कर लिए जाते थे। इस क्रम में अनाथ एवं अपने समूह की लड़कियों के बीच आपसी प्रेम जैसे संबंधों का पनपना एक प्रकार से कृषि-कार्य के सानिध्य का परिणाम कहा जा सकता है जिसे सामाजिक स्वीकृति भी प्राप्त हो जाती थी। इस कथा के संदर्भ में यदि प्रेम अपनी पराकाष्ठा तक नहीं पहुँचता है, तो इसे अनाथ युवक की अपने घर में अपनी दुर्दशा एवं हीनता को कारक माना जा सकता है। यद्यपि उसकी प्रेयसी उसके परिवार में सौतेली माँ के व्यवहार से अनजान न थी और उस युवक के प्रति उसका प्रेम एक प्रकार से सहानुभूति रहित नहीं रही होगी, फिर भी यहां यह कहा जा सकता है कि उसका प्रेम निस्वार्थ था जो एक प्रकार से एक स्त्री के उदात्त प्रेम भाव को अभिव्यंजित करता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इस लोक कथा में जहां मनोविकार जनित मानवीय तृष्णा एवं स्वार्थपूर्ण भावनाओं को एक विमाता के माध्यम से दर्शाया गया है, वहीं एक पिता का पारिवारिक जीवन के बोझ तले अपने कर्तव्यों से विमुख होते तथा युवक की प्रेयसी के चरित्र के माध्यम से लोक-जीवन में व्याप्त उदार मन को प्रकट किया गया है।

6.3.2 : अनाथ का जाल (Daime. 2020, page-213)

किसी गांव में एक अनाथ रहता था। गांव के लोग उसे बिल्कुल भी पसंद नहीं करते थे और हर समय उसका मजाक बनाया करते थे। एक उसने नदी में मछली पकड़ने के लिए गांव के राजा से उसका जाल उधार लिया। नदी पर पहुँचकर जब उसने मछली पकड़ने के लिए जाल को पानी में फेंका, तब उसका जाल किसी अनजान वस्तु से उलझ गया और वह उसे पानी से खींच नहीं पाया, क्योंकि जाल बहुत भारी हो गया था। अब उसे डर लग रहा था, कि राजा का जाल किस तरह से लौटाया

जाए। बहुत कोशिशों के बाद भी जब जाल को छुड़ा न पाया तब वह निराश होकर पत्थर पर बैठ गया। पत्थर पर बैठकर वह उस पर जमे हुए काइयों को उखाड़ता रहा और सोचता रहा कि राजा को मछली देना तो दूर उन्हें उसका जाल न लौटाने के कारण अब बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है। इस प्रकार वह निराश एवं उदास मन से घर लौटने के लिए निकला। अब शाम हो चली थी। उसे बड़ी जोरों की भूख लग रही थी, पर उसके पास खाने को कुछ भी न था। वह धीरे-धीरे चलते हुए, कुछ खाने को कहीं से मिल जाए, इस अपेक्षा के साथ आगे बढ़ ही रहा था कि उसने एक पेड़ के कोटर में मधुमक्खियों का एक छत्ता देखा। उसने उस छत्ते में से शहद निकालकर खाया। अब उसकी भूख शांत हो गई थी, फिर भी जाल को निकाल न पाने के कारण उदास मन से वह गांव की ओर बढ़ गया।

कहा जाता है कि उधर नदी में अनाथ के जाल में एक अजगर का बच्चा अपने बड़े भाई के साथ खेलते-खेलते फंस गया था, जिसके कारण जाल भारी हो गया था। बड़े भाई को लगा कि उसका भाई किसी बड़ी बीमारी की जकड़ में आ गया है। उसने छोटे भाई को इससे मुक्त करने का हर संभव प्रयास किया, लेकिन जब वह उसमें असफल रहा, तब वह किसी ऐसे जीव की खोज में निकला जो उसके छोटे भाई को जाल से मुक्त करा सकता था। जब सभी जलीय जंतुओं में से किसी ने भी उस जाल को छूने और छोटे अजगर को छुड़ाने की हिम्मत न दिखाई, तब बड़ा भाई पानी से बाहर निकलकर किसी ऐसे जीव की खोज में लग गया जो यह काम कर सकता था। पानी के बाहर आकर अजगर ने चारों तरफ नजर दौड़ाई तब कोई भी नजर न आया। नदी किनारे एक विशाल पत्थर था, जिसके पास जाकर उसने अपनी आपबीती सुनाई। उसकी बातों को सुनकर पत्थर ने कहा- “एक इंसान अभी इधर से गुजरा है, वह बड़ा ही काबिल एवं सभी रोगों का इलाज करने वाला प्रतीत होता है क्योंकि उसके आने के पहले मैं भी बीमार, बोझिल और थका सा रहता था। उसने आकर मेरी आँखों के ऊपर जमी हुई बीमारी को हटा दिया और अब मैं बहुत हल्का और स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। मेरी नजरें भी अब साफ हो गई हैं। मैं नदी के स्वच्छ पानी में बहुत गहराइयों तक सब कुछ देख सकता हूँ। अतः यदि तुम उस इंसान तक पहुँच जाओ तो, संभवतः वह तुम्हारे भाई को बीमारी से छुड़ा दे।” यह सुनकर अजगर ने उस इंसान के जाने की दिशा पूछी, तब पत्थर ने उस ओर संकेत कर दिया, जिस ओर वह इंसान निकल गया था। कुछ दूर चलने के बाद अजगर की मुलाकात उस पेड़ से हुई, जिसके कोटर से अनाथ ने शहद निकालकर खाया था। जब अजगर ने उस पेड़ से किसी इंसान के गुज़रने के बारे में पूछा तो पेड़ ने कहा-“हाँ अभी एक इंसान इधर से गया है, वह बड़ा ही काबिल एवं रोगों का इलाज करने वाला व्यक्ति है। मैं बीमार था, मेरा पेट बड़ा भारी रहता था, उसमें कई दिनों से दर्द था। उस इंसान ने आकर मेरे पेट से उस बीमारी को ऐसा निकाला कि मैं अब बहुत ही तरोताजा हो गया हूँ।

निश्चय ही वह इंसान तुम्हारी मुश्किलों का निवारण कर देगा। वह इस ओर निकल गया है।" ऐसा कहकर पेड़ ने अजगर को राह दिखाई। अब अजगर उत्साह एवं उम्मीद के साथ और भी तेज गति से उस दिशा की ओर सरकता चला, जिस ओर अनाथ निकल गया था।

काफी दूर सरकने के बाद अजगर को दूर एक इंसान दिखाई दिया। उसने ज़ोर से पुकार लगाई- "हे इंसान! ज़रा रुक जाओ मुझे तुम्हारी मदद चाहिए।" अनाथ ने पीछे मुड़कर देखा कि एक अजगर उसके पीछे-पीछे सरकते हुए आ रहा है। वह वहीं रुक गया और उसके पहुँचने की प्रतीक्षा करने लगा। नजदीक आकर अजगर ने कहा- "हे मनुष्य! मेरा छोटा भाई एक बड़ी विपत्ति में फँस गया है। उसे किसी ऐसे अनजान बीमारी ने जकड़ लिया है कि वह ठीक नहीं हो पा रहा है। तुम कृपा करके मेरे साथ चलो और मेरे छोटे भाई का इलाज करके उसकी जान बचा लो।" पहले तो अनाथ को कुछ समझ में न आया। उसने अजगर से कहा कि वह कोई वैद्य नहीं है, वह किसी बीमारी का इलाज नहीं जानता है और उसके साथ जाने से मना कर दिया। इस पर अजगर ने नदी किनारे पत्थर एवं रास्ते में पेड़ से मिलने तथा उनके कहे वृत्तांतों को अनाथ के सामने दोहराकर अत्यंत दीनता के साथ गिड़गिड़ाया कि वह उसके भाई को ठीक कर सकता है। अब अनाथ को समझ में आने लगा कि पत्थर व पेड़ ने जो वृत्तांत सुनाए वे तो उसने अनजाने में ही कर दिया था। लेकिन उसे इस बात का भय भी हुआ कि यदि अजगर के साथ उसकी दुनिया में गया, तो कहीं वे उसे नुकसान न पहुँचाने लगे, पर जिस दीनता के साथ अजगर उससे विनती कर रहा था, वह छोड़कर जा भी नहीं सकता था। अतः उसने हामी भर दी और अजगर के पीछे-पीछे चल दिया। इस प्रकार जब दोनों नदी किनारे पहुँचे, तब अजगर ने कहा कि हमारा घर इस नदी के अंदर है और तुम्हें अंदर जाकर ही मेरे भाई का इलाज करना होगा। यह सुनकर अनाथ और भी डर गया और उसने कहा- "मुझे तैरने नहीं आता है और मैं तो मनुष्य हूँ, इस पानी के अंदर मैं ज्यादा देर तक नहीं रह सकता हूँ। अतः मुझे इसके अंदर जाने को मत बोलो। तुम अपने भाई को पानी के बाहर लाओगे तभी मैं उसका इलाज करूँगा।" इस पर अजगर ने कहा- "मेरा भाई इतना बीमार है कि वह हिल-डुल भी नहीं सकता, पानी के बाहर आना तो बहुत दूर की बात है। तुम चिंता मत करो, अपनी आँखें मूँदकर नदी में डुबकी लगाओ, मैं तुम्हें अपने घर पहुँचा दूँगा। अनाथ ने डरते-डरते अपनी आँखें मूँदकर नदी में डुबकी लगाई और कुछ ही देर में उसने स्वयं को राजमहल जैसे एक विशाल घर में पाया। अजगर भी उसके पीछे-पीछे पहुँच गया और उसने अपने भाई की ओर इशारा करते हुए बताया कि देखो मेरे भाई को इस बीमारी से छुटकारा दिलाना है। अनाथ ने देखा कि एक छोटा सा अजगर उसी के फेंके हुए जाल में बुरी तरह फँसा हुआ कराह रहा है। उसको अजगर के बच्चे के ऊपर दया आ गई और उसने धीरे-धीरे उसे जाल से मुक्त करना आरंभ किया। वह

जाल में इतनी बुरी तरह से फंस गया था कि उसे धीरे-धीरे बड़े ध्यान से ही छुड़ाया जा सकता था। उसे जाल से छुड़ाने में कई दिन लग गए। छोटे भाई को जाल से छुड़ाते-छुड़ाते अनाथ एवं बड़े भाई के बीच अच्छी दोस्ती हो गई। वह अनाथ का बड़ा ख्याल रखता था, उसकी इच्छानुसार खाने-पीने की व्यवस्था करता, परंतु अजगर भाइयों के पिता उस इंसान से थोड़ा-थोड़ा चिढ़कर रहता था। इसका कारण अनाथ को समझ में नहीं आया, पर बड़े भाई के अपनापन के कारण अब उसका मन यहीं रमने लगा था। वह चाहता तो अब एक झटके में ही छोटे भाई को जाल से मुक्त कर सकता था, परंतु उसके आतिथ्य-सत्कार में जो आनंद था, उन्हें भोगते रहने के लिए वह रोज़ थोड़ा-थोड़ा करके छोटे अजगर को जाल से धीरे-धीरे छुड़ाता रहा। इस तरह कई दिन बीतने के बाद पूँछ से आरंभ किया हुआ, छोटे अजगर को गले तक जाल से मुक्त कर दिया गया। अब उसे भी आराम मिलने लगा और बड़े भाई को लगा कि अब धीरे-धीरे उसका छोटा भाई स्वस्थ हो रहा है।

एक दिन बड़े भाई ने अनाथ से कहा- “चलो मेरा भाई अब स्वस्थ हो ही रहा है, हम लोग इस बीच शिकार के लिए जाता हूँ और कल ही उसका फिर से उपचार किया जाएगा।” इस प्रकार दोनों शिकार के लिए बाहर निकल गये। वास्तव में शिकार तो एक बहाना था, अजगर का बड़ा भाई, अनाथ को अपने पिता के कुछ रहस्य बतलाने के लिए बाहर ले जाना चाहता था। जंगल में जाकर उसने अनाथ से कहा- “जब मेरा भाई ठीक हो जाए, तो पिताजी प्रसन्न होकर तुम्हें मिथुन, गाँव तथा बकरियाँ इत्यादि, अनेक पशुधन देंगे, पर उन्हें तुम मत लेना, उनका एक पुराना जंग लगा हुआ भाला है, जिसका नाम ‘ह्यातेउ डेउ’ है, उसे ही तुम माँग लेना क्योंकि वह कोई साधारण भाला नहीं है और उससे तुम अपनी इच्छानुसार कुछ भी प्राप्त कर सकते हो। अनाथ ने अजगर के इस बात की गाँठ बाँध ली। अगले दिन जब उसने छोटे अजगर को जाल से पूरी तरह मुक्त कर दिया, तब वह स्वतंत्र होकर इधर उधर घूमने लगा। अजगरों को अब लगा कि इंसान ने उसके छोटे भाई-पुत्र को पूरी तरह से स्वस्थ कर दिया है। जब अनाथ अपना जाल लेकर वापस जाने लगा, तब अजगर के पिता ने उसे अनेक पशुधन देने की पेशकश की, परंतु बड़े ही विनम्रता के साथ अनाथ ने उनसे यह कहा कि मैं इन पशुओं को संभाल नहीं सकता हूँ, यदि आप मुझे कुछ देना चाहते हैं, तो रास्ते में आत्मरक्षा के लिए अपना पुराना भाला मुझे दे दें। अजगर के पिता ने पहले तो आनाकानी की, परंतु जब पुत्रों ने उस पर ज़ोर डाला कि जिसने तुम्हारे पुत्र को इतनी बड़ी विपत्ति से बचाया, क्या तुम उसे यह पुराना भाला भी नहीं दे सकते। इस पर निरुपाय हो कर अजगर के पिता ने अनाथ को अपना ‘ह्यातेउ डेउ’ दे दिया।

अनाथ अपना ईनाम पाकर बड़ी तत्परता के साथ अजगर लोक से बाहर निकलकर पानी के बाहर आ गया। उसने भाला का परीक्षण करने के लिए मन में कुछ कामना करते हुए, उसे फेंका, तब

जहां भाला फेंका गया वहाँ मनवांछित वस्तु प्रकट हो गई। अब उसे विश्वास हो गया कि यह वास्तव में एक जादुई भाला है। गांव पहुँचने से पहले उसने मछलियों की कामना करते हुए एक स्थान पर भाला फेंका और वहाँ मछलियों से भरी टोकरी प्रकट हो गई। इस प्रकार गांव पहुँचकर उसने राजा को उसका जाल भी लौटा दिया और ढेर सारी मछलियां भी दी। राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और उससे कहा कि जब भी तुम्हें नदी जाना हो तुम मेरा जाल लेकर जा सकते हो। इस प्रकार ह्यातेऊ डेउ प्राप्त करने के बाद वह अनाथ बड़े आराम से अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

ऊपर-ऊपर से देखा जाए तो यह कथा एक मनोहर एवं बच्चों के मनोरंजन के लिए एवं किसी दुखी को सांत्वना देने के लिए रचित प्रतीत होती है, जिसका मानव जीवन की वास्तविकता से दूर-दूर तक भी संबंध खोज निकाल पाना असंभव सा लगता है और जेलियांग लोक कथाओं में ही नहीं, बल्कि अन्य नागा जनजातियों में भी इस प्रकार की अनेक कथाओं का प्रचलन लोक में सदियों से चला आया है, लेकिन इन कथाओं का यदि गहराई से विश्लेषण किया जाए, तो इनमें प्रकृति एवं मानवेतर जीव-जंतुओं के प्रति लोक की धारणा एवं उनके दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से लक्षित होते हैं। कहने के लिए इन कथाओं में अभिव्यक्त पत्थर एवं वृक्ष वाला प्रसंग कपोल-कल्पित अवश्य लगते हैं, परंतु प्रकारांतर से देखा जाए, तो यह भी कहा जा सकता है कि लोक-मानस में सजीव ही नहीं बल्कि निर्जीव समझे जाने वाले प्राकृतिक उपदानों के संबंध में भी यह विश्वास रहा है कि उनकी भी संवेदनाएँ तथा भावनाएँ होती हैं। कहानी के नायक अनाथ ने अंजाने में ही सही, जिस प्रकार पत्थर पर जमे हुए काइयों को हटाया और अपनी भूख मिटाने के लिए पेड़ के कोटर को मधुमक्खी के छत्ते से मुक्ति दिलाई, कहीं न कहीं लोकमन में यह भावना व्याप्त रही है कि जिस प्रकार हम मनुष्यों को दुख-दर्द का अनुभव होता है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति में व्याप्त सभी उपादानों को भी सुख-दुख एवं दर्द का अनुभव होता है और वे भी मनोविकारों से युक्त होते हैं। यहां यह भी कहा जा सकता है कि जिस प्रकार मानव शरीर में अनपेक्षित मैल के जम जाने, नाखूनों, बाल इत्यादि के आवश्यकता से अधिक बढ़ जाने से स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है या किसी अन्य बाह्य तत्वों के शरीर में चले आने से शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है, उसी प्रकार प्राकृतिक तत्वों में भी चाहे पत्थरों पर काई का ज़मना हो या पेड़ पर मधुमक्खियों के छत्तों का बनना, किसी न किसी प्रकार से उनके प्राकृतिक मौलिकता पर प्रभाव डालता है। इसलिए प्रकृति ने उन्हें जिस रूप में बनाया है, वे भी उन्हीं रूपों में होने चाहिए। लोकमानस में विद्यमान इस प्रकार की भावनाएँ पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से भी एक बहुत स्वस्थ एवं स्वच्छ विचार है।

इसके साथ ही अजगर के जाल में फंसने, मनुष्य के द्वारा उसकी रक्षा करने के लिए उसके लोक में जाने के दृष्टान्त से यह तथ्य भी निकलकर आता है, कि काल्पनिक दुनिया में ही सही, हम इन

लोक कथाओं में सभी जीव-जंतुओं के साथ मानवीय मन का संबंध स्थापित होते हुए देख सकते हैं। इस प्रकार की लोक कथाएँ, लोक में प्रचलित इन मान्यताओं को भी पुष्ट करती हैं कि सृष्टि के आरंभ में सभी जीव एक ही माता-पिता से उत्पन्न हुए थे और मनुष्य जाति ही नहीं बल्कि मानवेतर, अन्य सभी जीव तथा निर्जीव कहलाने वाले प्रकृति में विद्यमान सभी उपादान भी एक ही भाषा बोलते समझते थे और वे परस्पर भावनाओं को समझ सकते थे। इतना ही नहीं, कहानी में प्रयुक्त अनाथ के द्वारा अपने गांव के राजा से जाल का उधार लिये जाने के प्रसंग से जेलियांग लोगों में प्रचलित गांव के राजा की पुरानी परंपरा वाली मान्यता भी पुष्ट होती है और यह कहा जा सकता है कि जेलियांग लोक में प्रत्येक गांव एक संप्रभु संपन्न इकाई हुआ करता था, जिसमें गांव के संस्थापक या सर्वप्रभावशाली व्यक्ति को ही गांव के लोगों का नेतृत्व करने के लिए राजा अर्थात् चेवांग मान लिया जाता था।

6.4 : वीर पुरुषों की कथाएँ

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत कुछ ऐसी भी कथाएँ कही जाती हैं, जिनमें किसी वीर पुरुष के पराक्रम को चित्रित करते हुए सर्व सामान्य लोगों के लिए असंभव सा लगने वाले अत्यंत ही कठिन एवं विरले कार्यों को सम्पन्न करते दिखाया जाता है। ऐसी कथाओं में जब किसी समाज, लोक अथवा स्त्रियों पर विपत्ति के बादल मंडराए होते हैं और उसके कारण लोगों में भय का माहौल बना होता है तब किसी नायक के द्वारा उनकी विपत्तियों का निवारण करते हुए, उन्हें उस संकट से उबारते चित्रित किया जाता है। लोक में प्रचलित इन कथाओं की यह विशेषता है कि ये पूर्णतया सत्य एवं ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित तो नहीं होते हैं, फिर भी इनमें वर्णित व्यक्तियों के नाम प्रायः ऐतिहासिक पात्र होते हैं और किसी न किसी प्रकार से उन व्यक्तियों के वास्तविक जीवन से संबंधित होते हैं। ऐसे में यह भी कहा जा सकता है कि इन कथाओं के प्रचलन के आरंभ में उन वीर पुरुषों के वास्तविक जीवन को ही कथा में स्थान दिया जाता रहा होगा और देश-काल में अंतर आने के साथ-साथ उन्हें अधिक गौरवान्वित एवं महिमा-मंडित करने तथा लोक मानस के लिए उन्हें अधिक रोचक बनाने हेतु उनमें अतिशयोक्ति के प्रयोग से अन्य कड़ियों को भी जोड़ते चले जाते होंगे। इस प्रकार की कथाओं के अंतर्गत कैवींग, गाइर्यम्रांग, न्केम्सांग और त्रीम्स्वांग आदि की कथाएँ कही जाती हैं। प्रस्तुत शीर्षक के अंतर्गत उदाहरण के रूप में कैवींग व त्रीम्स्वांग की कथा को लेकर इन कथाओं का विश्लेषण किया गया है।

6.4.1 : कैवींग की कथा

जेलियांग जनजाति में प्रचलित **कैवींग** (हैगुइंग) (Bower, 1940-42) की कथा के अनुसार कहा जाता है कि **त्र्यम** नाम के गांव में दिमान्सारेग नामक एक योद्धा रहता था जो अपनी वीरता के लिए गांव

में ही नहीं बल्कि आस-पास के सभी गांवों में भी प्रसिद्ध था। उसका एकमात्र पुत्र कैवींग था। अभी कैवींग बहुत छोटा ही था कि एक शत्रु-गांव **न्के** के लोगों ने दिमान्सारेग की हत्या कर दी। कहा जाता है कि न्यम और न्के गांवों के बीच घोर शत्रुता थी। यद्यपि दिमान्सारेग ऐसा वीर था कि कोई भी खुले द्वंद्व युद्ध में उसे हरा नहीं सकता किंतु संपूर्ण गांव की दृष्टि से न्यम के सामने न्के वाले अधिक ताकतवर थे। इस बात के सहारे से न्के वालों ने न्यम गांव से यह कहा कि यदि वे दिमान्सारेग को उन्हें सौंप देते हैं, तो गांव के बाक़ी सभी लोगों को सकुशल रहने दिया जाएगा। न्के वालों के झाँसे में आकर अपने ही गांव के लोगों ने दिमान्सारेग को धोखे से शत्रु-गांव के हवाले कर दिया और उन सभी ने मिलकर उसकी हत्या कर दी।

कैवींग जब छोटा था, तब तो उसे अपने पिता की मृत्यु के बारे में कुछ पता न था, पर जैसे-जैसे वह बड़ा हो रहा था, तब गांव के अन्य लड़कों से पता चला कि उसके पिता शत्रु के हाथों मारा गया था। जब भी लड़कों में आपस में झगड़ा-बहस इत्यादि होता था, तब वे कैवींग को चिढ़ाने के अंदाज़ में कहते थे, कि तुम्हारे पिता तो शत्रु के हाथों का शिकार हुआ था। इस बात से उसे बहुत दुःख भी होता था और चिढ़ भी होती थी। कैवींग की एक बुआ के सिवाय अपना कोई नहीं था और उसी के यहां वह रहता था। उसने अपनी बुआ से पिता के बारे में कई बार पूछा, परंतु बुआ ने यह सोचकर कि वह अभी बहुत छोटा है, हर बार इस बात को टाल दिया। लेकिन जब एक दिन वह इस बात को लेकर अड़ गया, तब बुआ ने कहा कि अभी तुम बहुत छोटे हो मगर इस बात को कभी मत भूलना कि अपने गांव वालों ने ही धोखे से तुम्हारे पिता को न्के गांव के हाथ सौंप दिया था और उन्होंने उनकी हत्या कर दी। कैवींग ने इस बात की गाँठ बाँध ली और सही समय आने की प्रतीक्षा करने लगा।

कुछ वर्षों बाद जब वह किशोरावस्था में आ चुका था, एक शाम खंगचूकी (पुरुष मोरुंग) में उसकी साफ-सफाई तथा अग्नि-प्रज्वलन के कार्य कर रहा था, तब न्के गांव से आए कुछ पुरुष यात्री रात्रि-विश्राम के लिए वहाँ आए। सभी लोग वहीं बैठे हुए थे कि उनमें से एक ने पूछा- “कैवींग नाम के लड़के का क्या हुआ, आजकल वह कहां रहता है?” कैवींग ने तुरंत उत्तर दिया- “वह मर चुका है।” उस व्यक्ति ने फिर कहा- “ऐसा ही होना था क्योंकि जब हमने उसके पिता को मारा था, तब वह एक छोटा सा बालक ही था।” यह सुनकर कैवींग ने उस व्यक्ति को बड़े ध्यान से देखा कि उसका चेहरा-हुलिया उसके मस्तिष्क में छप गया और उसे पूरा विश्वास हो गया कि अब वह उस चेहरे को पहचानने में कभी गलती नहीं करेगा।

जब कैवींग कुछ और बड़ा हुआ और पूरी तरह से योद्धा बन गया, अपने पिता से भी अधिक बहादुर एवं वीर निकला। उसने अपने गांव वालों से कई बार कहा कि न्के गांव के साथ नदी में संयुक्त मछली पकड़ने का आयोजन किया जाए, पर गांव वाले डरते थे, कि कहीं न्के के लोग फिरसे उन्हें तंग

न करने लगे। इसलिए इस आयोजन के लिए कोई भी तैयार नहीं हुआ। इस पर कैवींग को क्रोध आ गया और उसने खंग्यूकी में बैठने के लिए लगे लकड़ी के सभी तख्तों को अपने दाव से काट डाला। उसने गांव वालों से कहा कि यदि तुम लोग न्के वालों को मछली पकड़ने के लिए नहीं बुलाते हो तो मैं अपने ही गांव वालों से युद्ध छेड़ दूँगा और उन धोखेबाजों को भी खोज निकालूँगा, जिन लोगों ने मेरे पिता को शत्रु-गांव वालों को सौंप दिया था। कहा जाता है कि कैवींग की इन बातों को सुनकर गांव के सभी युवक तथा प्रौढ़-पुरुष जन खंग्यूकी से धीरे-धीरे खिसक गए और अपने-अपने घरों में जाकर दुबक गए। ऐसे में उसका फूफा ही था, जिसने गांव वालों एवं कैवींग के बीच सुलह कराई। उसी ने गांव वालों को न्के वालों के साथ संयुक्त रूप से मछली मारने के लिए मनाया और एक निश्चित तिथि पर मछली पकड़ने की योजना बना ली गई।

दोनों गांवों की ओर से यह तय हुआ कि कोई भी भाला या दाव जैसे हथियार नहीं लाएगा और मछली मारने में प्रयुक्त होने वाले पौधे की जलनशील खाल ही लेकर आना होगा। यद्यपि बात तय हो गई थी, पर कैवींग को तो अपने पिता के हत्यारों से बदला लेना था। अतः उसने अपने भाले की नोंक को हथे से निकालकर उसका धार लगाया तथा उसे अपने झोले में छिपा लिया। दोनों गांवों की ओर से वृक्ष की खाल लाकर नदी किनारे रखी गई और सभी लोग मिलकर उन्हें पत्थर से कूट-कूटकर नदी के पानी में बहाने लगे। धीरे-धीरे नदी के पानी का रंग भूरा पड़ने लगा और मछलियाँ उसकी जलन से तड़प-तड़पकर किनारे की ओर निकलने लगीं। सभी लोग मछलियाँ पकड़कर अपने-अपने **चेबेंग**⁷ में डालने लगे। इधर कैवींग का ध्यान न्के गांव के उस व्यक्ति की ओर था, जिसने उसके पिता की हत्या की थी। वह उस व्यक्ति के पास गया और पानी के अंदर अपना पैर ऐसे दबाया, जैसे उसने पैरों के नीचे एक बड़ी मछली को दबाकर रखा हो। उस पुरुष को संबोधित करते हुए कहा-“**अपौ!**”⁸ इधर आइए, यहां मैंने पैरों के नीचे एक बड़ी मछली को दबा रखा है।” उसने कहा-“**अचापेउ!**”⁹ तुम अकेले पकड़ क्यों नहीं लेते?” नहीं अपौ! यह बड़ी है और यदि मैं झुकता हूँ तो फिसलकर निकल जाएगी।” न्के गांव का वह अधेड़ सा व्यक्ति उसके पास आया और जैसे ही मछली को टटोलने के लिए झुका, कैवींग ने अपने चेबेंग से भाले की नोंक निकालकर उसके पीठ पर घोंप दिया, जिससे उसकी मौत हो गई। उसने उस व्यक्ति का सिर काटा और उसे लेकर भागते हुए चिल्लाया-“न्के गांव के पुरुषों का छलकपट अविश्वसनीय है, सभी लोग अपने-अपने गांव की ओर भागो।” इतना सुनने के साथ-साथ लोगों ने देखा कि नदी का पानी भूरे से रक्त-रंजित होता जा रहा है। इसलिए मछली पकड़ना छोड़कर सभी लोग अपने-अपने गांव की तरफ भाग आए। इस प्रकार कैवींग ने अपने पिता के हत्यारे को मारकर अपना

⁷ बाँस अथवा बेंत से बुना जालीदार झोला, जिसका प्रयोग पुरुष वर्ग मछली, केकड़ा आदि पकड़ते समय प्रयोग करते हैं।

⁸ मामा, दादा या नाना के लिए प्रयुक्त जेलियांग शब्द।

⁹ भांजे या पोते के लिए प्रयुक्त जेलियांग शब्द।

बदला पूरा किया। कहा जाता है कि यह एक सत्य कथा है, क्योंकि त्र्यम् आज भी एक जेलियांग गांव के रूप में विद्यमान है और आज भी कैवींग के द्वारा रचित कई गीत समाज में प्रचलित है।

कैवींग की कथा के संबंध में एक अन्य स्रोत के अनुसार (Baruah, 2009, page-105) ऐसा भी कहा जाता है, कि उसके पिता को अपने ही गांव वालों ने सार्वजनिक रूप से मृत्युदंड दे दिया था। इस स्रोत के अनुसार ऐसा कहा जाता है, कि उसके पड़ोसी गांव वाले इस गांव के विशाल एवं शक्तिशाली मिथुन की नस्ल से जलते थे। अतः उन्होंने इस मिथुन को मारकर उसके खून को कैवींग के पिता के घर तक ऐसा छितरा दिया, जैसे कि उसने मिथुन को मार कर उसके मांस को घर तक ढोकर लाया हो। अगले सुबह जब गांव वालों ने इसे देखा तो दिमान्सारेग को ही मिथुन का हत्यारा माना गया और उसे गांव के सभी लोगों के सामने मार दिया गया। इस समय कैवींग अपनी माँ के पेट में था। यदि वह गर्भवती न होती, तो संभवतः गांव वाले उसे भी मार डालते। कुछ दिनों बाद दिमान्सारेग की विधवा ने कैवींग को जन्म दिया।

जब वह बड़ा हुआ, तब उसकी माँ ने उसे बताया कि उसके पिता की मृत्यु किन परिस्थितियों में हुई थी। माँ ने कैवींग को यह भी बताया कि उसके पिता को मारने वाले व्यक्ति के ललाट पर चोट का एक निशान था, परन्तु उसने यह भी बताया कि तुम्हारे पिता को मारना गांव का सामूहिक निर्णय था और वह भी पड़ोसी गांव के षड्यंत्र के कारण। इसलिए कैवींग चाहता था, कि वह दोनों गांवों के लोगों से अपने पिता की मृत्यु का बदला लें। यही कारण था, कि उसने सामूहिक मछली पकड़ने की योजना बनाई। कहा जाता है कि जिस नदी पर वे मछली पकड़ने गए थे, उसमें एक अजगर भी रहता था, जो उसे मानव-मांस खेलाने वाले को प्रसन्न होकर दिव्य शक्तियाँ देता था। इसलिए कैवींग ने अपने पिता के हत्यारे को मारकर उसका शरीर उस अजगर को समर्पित कर दिया, जिससे खुश होकर उसने उसे एक सम्मोहन शक्ति प्रदान की। अजगर से प्राप्त सम्मोहन शक्ति का प्रयोग उसने दोनों गांवों के मछली पकड़ रहे सभी लोगों पर किया और वे सम्मोहित होकर उसके पीछे-पीछे निकल गए। कैवींग ने उन्हें ले जाकर ऐसे स्थान पर छोड़ा, जहां से वे कभी वापस लौटकर नहीं आए। इस प्रकार कैवींग ने अपने पिता की हत्या का बदला ही नहीं लिया, बल्कि गांव की सबसे अच्छी नस्ल वाले मिथुन को समाप्त करने के लिए भी लोगों को सजा दी।

कैवींग की इस कथा से पता चलता है कि जेलियांग जनजाति में वीरता एवं बहादुरी के किससे सुने-सुनाए जाते ही हैं, साथ ही इस समाज में कैवींग जैसे योद्धा ने भी जन्म लिया। जहां किसी को मारकर उसका सर लाना गौरव की बात थी, वहीं किसी के हाथों मारा जाना कमजोरी एवं बुज़दिली का

प्रतीक माना जाता था, इसलिए कैवींग के पिता की मौत को गांव के बच्चे हीनता की दृष्टि से प्रकट करते थे और यह बात हमेशा उसके मन को कचोटती थी। दिमान्सारेग की हत्या से यह पता चलता है कि न केवल न्के गांव के, बल्कि उसी के गांव के कुछ लोग भी उससे ईर्ष्या करते थे और यह उन दिनों सामान्य बात थी कि अगर कोई अपनी वीरता के कारण विशेष ख्याति को प्राप्त कर लेता, तो उनके प्रति अन्य योद्धाओं में इस प्रकार की भावनाएं उत्पन्न हो जाती थीं। कहा जाता है कि दिमान्सारेग को न्के वालों के हवाले करने के पीछे गांव की सुरक्षा तो बहाना मात्र था, वास्तव में न्यम के कुछ योद्धा ही उन्हें अपने रास्ते से हटाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने इस कुकृत्य को अंजाम दिया।

जेलियांग जनजाति के गांवों में जब कोई परदेसी यात्री आता था, तब प्रायः वह अपने यजमान या रिश्तेदारों के यहां खाना-पीना तो करता था, लेकिन सोने के लिए उन्हें खंगच्यूकी में जाना पड़ता था। हाँ, महिला यात्री प्रायः अपने रिश्तेदारों के यहां रात्रि-विश्राम करती थीं। इसका कारण संभवतः घरों का छोटा होना तथा खंगच्यूकी में सामूहिक विश्राम के लिए स्थान की उपलब्धता रही होगी। अपने अतिथियों के लिए यजमान के यहां से प्रायः कपड़े-लत्ते, कंबल आदि खंगच्यूकी में पहुँचा दिए जाते थे। सामूहिक मछली मारने के संदर्भ में एक विशेष बात यह है कि जेलियांग जनजाति के अनुसार यदि किन्हीं दो गांवों की सीमा किसी नदी से विभाजित होती थी, तो उस नदी में मछली मारने के लिए दोनों गांवों का शामिल होना अपेक्षित माना जाता था। प्राचीन काल में मछली पकड़ने के लिए कोई विशेष साधन नहीं था, सो ये लोग किसी जलन उत्पन्न करने वाले वृक्ष की खाल या जड़ों को कूट-कूटकर नदी में डालते थे, जिसके जलन से मछलियाँ किनारे आती थीं, तब उन्हें पकड़ा जाता था। इस प्रकार के आयोजन के लिए अधिक लोगों की आवश्यकता पड़ती थी, इसलिए भी प्रायः इसमें दोनों गांवों की भागीदारी होती थी।

6.4.2 : **ल्वाकेरेइबिले और त्रीम्स्वांग** (Hemang, 2021)

पुराने जमाने में प्रत्येक जेलियांग गांव के अपने रीति-रिवाज होते थे। कुछ अच्छे कार्यों के लिए तो कुछ बुरी आत्माओं से छुटकारा पाने के लिए अनेक प्रकार के कर्मकांड किए जाते थे। इन्हीं में से किसी गाइली नामक एक गांव की यह परंपरा थी, कि गांव के मुख्य द्वार पर स्थित एक पिशाच को हर वर्ष के आरंभ में एक नवयुवती की बलि चढ़ाई जाती थी। इस बलि के बिना गांव के लोगों का जीवन सुचारु रूप से आरंभ नहीं होता था और वर्षभर गांव में किसी न किसी प्रकार की विपत्ति का साया बना रहता था। इसलिए इस बलि प्रथा को बनाए रखना लोगों की मजबूरी बन गई थी। इस बलि के लिए गांव के बुजुर्गों के द्वारा एक ऐसी युवती का चयन किया जाता था, जिसका शारीरिक एवं चारित्रिक रंग-ढंग में किसी प्रकार का दाग न हो। एक वर्ष गांव के बुजुर्गों ने ल्वाकेरेइबिले नामक लड़की को इस बलि के लिए चुना।

ल्वाकेरेइबिले गांव की सबसे सुंदर कन्या थी। वह अपने माता-पिता की इकलौती संतान थी और केवल रूप में ही नहीं बल्कि घर के सभी कार्यों एवं खेती के कार्यों में भी सबसे निपुण थी। गांव का हर युवक उसे पाना चाहता था। जब भी गांव में कोई त्योहार होता सभी युवक जन उसे रिझाने में लगे रहते थे, परंतु वह सुंदर एवं कार्यों में निपुण होने के साथ-साथ माता-पिता के प्रति भी अत्यंत विनम्र एवं आज्ञाकारी थी, वह उनकी इच्छा के बिना कोई भी कार्य नहीं करती थी। इसलिए जब भी कोई युवक शादी-ब्याह के लिए प्रस्ताव रखता, तब वह अपने माता-पिता से पूछने के लिए कह देती। ऐसे में जब गांव के वर्ष के आरंभ की पूजा के लिए उसे चुना गया, तब उसके माता-पिता गांव के बुजुर्गों के पास गए और उनसे अनुनय-विनय करके बेटी को बख्शने का अनुरोध करने लगे। उन्होंने इस बात का भी हवाला दिया कि यह तो इकलौती है, कई माता-पिता ऐसे हैं, जिनकी कई संतानें हैं, उनमें से किसी को क्यों नहीं चुना गया, पर गांव के बुजुर्गों ने उनके प्रति सहानुभूति जताते हुए भी इस चयन को बदलने में अपनी असमर्थता जतायी। ल्वाकेरेइबिले की बलि चढ़ाई जाने की बात जंगल की आग की तरह चारों ओर फैल गई। केवल गांव के ही नहीं, बल्कि दूर-दूर के गांवों से भी लोग इस सुंदरी को अंतिम बार देखने के लिए आने लगे। उसके माता-पिता दिन-रात रोते रहते, पर किसी भी युवक में यह हिम्मत न थी, कि गांव के बुजुर्गों के निर्णय के खिलाफ विद्रोह करें।

ऐसे में त्रीम्स्वांग नामक एक युवक दूर के एक गांव में रहता था, जो अपनी युद्ध कला, शिकार क्षमता एवं विपत्ति के समय गांव की रक्षा करने के लिए पूरे क्षेत्र में मशहूर था। वह वीर योद्धा, मल्ल युद्ध में माहिर और आकर्षक रंग रूप वाला युवक था। जब उसने सुना कि गाइली गांव की सबसे सुंदर लड़की पिशाच के लिए बलिदान की जा रही है, तब उसने उसे बचाने की ठान ली। यह आसानी से संभव होने वाला नहीं था, क्योंकि यह प्रथा कई दशकों से चली आ रही थी और बहुत सारे शूर-वीरों एवं योद्धाओं ने इस पिशाच से लड़ते हुए अपनी जान गँवा दी थी, परंतु उस युवक के मन में एक अनजान लड़की के प्रति दया एवं सहानुभूति की भावना थी। अतः उसने अपने जीवन को दाँव पर लगाते हुए अपने चेंड्यू (भाला) और चहेंग (दाव या तलवार) पर धार लगाकर उन्हें चमकाया और गाइली गांव की ओर चल पड़ा। उसने अपने गांव से पद-यात्रा आरंभ करके धीरे-धीरे 11 गांवों को पार किया और जब वह बलि प्रथा वाले गांव के मुख्य द्वार पर पहुँचा, तब पहले ही बलि की प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी थी। संपूर्ण ग्रामवासी उस पिशाच को अपना-अपना चढ़ावा चढ़ाने के लिए लेकर खड़े थे और अन्य गांव से आए हुए सभी लोग उस कन्या को देखने के लिए वहाँ एकत्रित थे। जब कोई लड़की वहाँ से गुजरती, तो अनजान लोग गांव वालों से पूछते- “यही लड़की है क्या?” तब गांव वाले कहते- “यह नहीं है।” त्रीम्स्वांग बड़े ध्यान से देख रहा था, कि दूर से एक सुंदर कन्या, नए वस्त्र पहने, अपने माता-पिता के द्वारा लिए

आ रही थी। उसे देखते ही लोगों ने कहा- “यही लड़की है।” लड़की के आते ही गांव वालों ने उसे मुख्य द्वार के बाहर पथरों से बने एक चबूतरे पर बिठाया, उसे एक टोकरी से ढक दिया और उसके चारों ओर अंडे, मुर्गी-मुर्गा आदि पिशाच के लिए रखकर अंदर चले गए और उन्होंने गांव का मुख्य द्वार बंद कर दिया।

त्रीम्स्वांगबे ने स्वयं को झाड़ियों के अंदर छिपा लिया और पिशाच के आने की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ देर बाद चारों ओर ऐसा अंधकार छाने लगा, जैसे कि भयंकर तूफान तथा भारी बारिश आने वाली हो। बिजली चमकने और बादल गरजने लगे। इतना अंधेरा छा गया कि बिजली के चमकने पर ही कुछ नजर आता था। एक बार जब बिजली चमकी तो उसने देखा कि दूर से अंडे जैसे कोई वस्तु लुढ़कते हुए आ रही है। बादल गरजता रहा और जब दूसरी बार बिजली फिर से चमकी, वह मांस के टुकड़े के रूप में बदल गया और नजदीक आ गया। इस प्रकार उसका आकार धीरे-धीरे बढ़ते हुए अंत में वह विशाल पिशाच के रूप में आ गया। उसका रूप इतना भयानक था कि उसे देखते ही डर जाएँ। कुछ देर बाद पिशाच ने स्वयं को एक काले बाघ के रूप में परिवर्तित कर लिया और ल्वाकेरेइबिले के चारों ओर रखे अंडों एवं मुर्गियों को खाने लगा। बीच-बीच में वह लड़की को चाटता था, जिससे धीरे धीरे वह मदहोश होती चली गई। जब वह पूरी तरह से पिशाच के प्रभाव में आ गई, तब ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी। जब अन्य सभी चढ़ावे समाप्त हो गए, तब पिशाच उस लड़की को खाने के लिए आगे बढ़ा। उसने लड़की को निगलने के लिए अपने मुख को इतना बड़ा खोला कि उसके निचले ओंठ ने ठुड्डी और ऊपरी ओंठ ने ललाट को ढक लिया और ऐसा दिख रहा था, मानो कोई धड़ बिना सिर का हो। त्रीम्स्वांगबे इसी पल की प्रतीक्षा में था। उसने अपने भाले से निशाना साधा और एक मंत्र जैसा कुछ बोला जिसका अर्थ था- “हे सर्वशक्तिमान, हे सृष्टिकर्ता, मेरा यह भाला इस पिशाच के मुँह में इतना प्रभावी ढंग से घुसे, कि इसका अगला सिरा उसके गुदे से निकल आए।” इतना कहकर उसने पूरी ताकत के साथ अपने भाले को फेंका और वह उसके मंत्र के अनुसार मुख से गुदा तक पिशाच को बिंध गया। बाघ के अंतिम सांस तक युवक प्रतीक्षा करता रहा, ताकि उसके प्राण पूरी तरह से निकल जाए। कुछ देर बाद उसने एक मक्खी को उड़ते देखा, तो उसे परखने के लिए भेजा कि वह मरा या नहीं। मक्खी ने बाघ के मुख से घुसकर गुदे से निकलते हुए कहा- “अब भी उसका हृदय धड़क रहा है।” फिर कुछ देर बाद उसने एक मधुमक्खी को भेजा। वह उड़कर गया, बाघ के गुदे से घुसकर उसके मुख से निकलते हुए गले में डंक मारा। जब पिशाच हिला-डुला नहीं, तब उसे यकीन हो गया कि अब वह मर चुका है।

पिशाच के मारे जाने की खबर जब गांव वालों तक पहुँची, तब गांव के सभी लोग मुख्य द्वार की ओर दौड़ पड़े। ल्वाकेरेइबिले को लिए, त्रीम्स्वांगबे अपना भाला चमकाते, हुंकार भरते हुए गांव के मुख्य द्वार खोलने की प्रतीक्षा कर रहा था। जब लड़की के माता-पिता ने अपनी इकलौती पुत्री के रक्षक को देखा, तो उनकी बड़ी इच्छा हुई कि दोनों का विवाह कर दिया जाए, पर त्रीम्स्वांगबे इसके लिए राजी नहीं हुआ, क्योंकि उसे तो अपने गांव लौटकर अन्य उत्तरदायित्वों को पूरा करना था। जब लड़की के माता-पिता ने अनुनय-विनय किया, तब वह शादी के लिये राजी हुआ। उसे नए आभूषणों एवं नए वस्त्रों से सुसज्जित किया गया और दोनों की शादी धूमधाम से हो गई। यद्यपि विवाह हो गया था, पर त्रीम्स्वांगबे अपनी पत्नी के नजदीक नहीं आता था। रातों को वह कभी खंग्यूकी (मोरुंग) में सो जाता, तो कभी अपने किसी मित्र के घर पर रुक जाता था। उसे इस बात का भान था कि एक न एक दिन तो उसे अपने गांव वापस जाना ही होगा। इसलिए वह गाइली में अपने परिवार को बढ़ाना नहीं चाहता था। उसकी पत्नी उसे बहुत प्यार करती थी और वह भी उसके सौंदर्य पर मुग्ध था, पर अपने गांव के प्रति उत्तरदायित्व को ध्यान में रखते हुए वह पत्नी से दूर ही रहता था। आखिर उसने मन बना लिया कि अब तो गांव जाना चाहिए। इसलिए कुछ दिनों से उसने अपनी पत्नी का खूब ध्यान रखना आरंभ कर दिया, किसी प्रकार की उदासीनता उससे न दिखाई। हर समय दोनों एक साथ रहते। उसकी बदली हुई प्रवृत्ति को देखकर उसकी पत्नी को कुछ शंका हुआ। अंतिम रात त्रीम्स्वांग कहीं नहीं गया, बल्कि वह पूरी रात ल्वाकेरेइबिले के साथ ही रहा और जब वह सो गई तो उसने अपने सभी आभूषण और नए वस्त्र उतार कर उन पुराने वस्त्रों को पहन लिया, जिन्हें पहनकर वह अपने गांव से आया था। भोर में सूर्योदय के पहले ही जब गांव के लोगों की नींद खुली नहीं थी, त्रीम्स्वांग अपने गांव के लिए निकल पड़ा। जब उसकी पत्नी उठी तो उसके आभूषणों एवं वस्त्रों को देखकर वह समझ गई, कि उसका पति अपने गांव के लिए निकल चुका है।

ल्वाकेरेइबिले अपने पति के पीछे-पीछे दौड़ती चली गई। बहुत दूर जाने के बाद जब उसने अपने पति को न्बेइकी (बराक) नदी पार करते हुए देखा, तो उसने ज़ोर से अपने पति को पुकारा क्योंकि नदी की धार इतनी तेज थी कि उसे वह अकेली पार नहीं कर सकती थी। इधर त्रीम्स्वांग को लग रहा था कि यदि उसने पीछे मुड़कर देखा और पत्नी की आँखों में आँसू देख लिया तो वह उसे छोड़कर नहीं जा पाएगा, इसलिए वह सीधा चलता चला गया और अपने गांव पहुँच गया। इधर ल्वाकेरेइबिले ने अपने पति के सारे आभूषण बराक नदी की धारा में बहा दिया और वह भी अपने गांव लौट गई। इस प्रकार यद्यपि दोनों एक दूसरे से अपार प्रेम करते थे, पर त्रीम्स्वांग का गांव के प्रति एवं

ल्वाकेरेइबिले का माता-पिता के प्रति उत्तरदायित्वों ने दोनों को अलग कर दिया और दोनों अपने-अपने गांवों में ही रहने लगे।

ल्वाकेरेइबिले एवं त्रीम्स्वांग जैसी अनेक लोक कथाएँ जेलियांग लोक में प्रचलित हैं, जिन्हें सत्य कथा भी कहा जा सकता है, क्योंकि जिन कथाओं के पात्रों के स्पष्ट नाम होने के साथ-साथ उनके घटित होने की भौगोलिक स्थिति को स्पष्ट रूप से प्रकट किया गया है, उन्हें पूर्णतया काल्पनिक कथा कहना तर्क संगत नहीं होता है। इस कथा में जिस गाइली गांव का जिक्र किया गया है, वह जेलियांग क्षेत्र के उत्तरी छोर पर आज भी वर्तमान है, हालांकि ऐसा कहा जाता है कि पुराने जमाने में यह गांव पहाड़ की चोटी की तरफ बसा हुआ करता था, परंतु आज आवागमन की सुविधाओं को देखते हुए गांव के लोगों ने पहाड़ी पर स्थित पुराने गांव को छोड़कर नीचे घाटी में नया गांव बसा लिया है। ल्वाकेरेइबिले की रक्षा करने के लिए त्रीम्स्वान्बे जब अपने गांव से चला, था तब से गाइली पहुँचते-पहुँचते उसे कई दिन लगे थे और कथा के अनुसार उसने ग्यारह गांवोंको पार करने के बाद ही गाइली की भूमि पर कदम रखा था। इससे यह कहा जा सकता है, कि वह युवक दक्षिण की ओर से आया रहा होगा, क्योंकि गाइली के पूर्व व पश्चिम में जेलियांग क्षेत्रों का इतना फैलाव नहीं कि बीच में इतने अधिक गांव पड़े। दक्षिण से उसके आने की संभावनाओं में से एक और तथ्य यह भी है, कि जब वह अपनी पत्नी ल्वाकेरेइबिले एवं उनके घर-गांव का परित्याग करके निकल गया, तब उसकी पत्नी ने उसका पीछा किया और बहुत दूर जाने के बाद उसने अपने पति को बराक नदी को पार करते पाया। इन स्थितियों से यह स्पष्ट होता है, कि वह दक्षिण के किसी गांव से आया था और संभवतः यदि बराक नदी के उस पार त्रीम्स्वान्बे का गांव था, तो वह निश्चय ही मणिपुर के किसी जेलियांग गांव से आया रहा होगा। इस प्रकार यहां त्रीम्स्वान्बे के मन में लोगों के दुख के प्रति सहानुभूति को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। दीन-दुखियों के प्रति उसकी इसी सहानुभूति ने इतने बड़े क्षेत्र एवं इतने अधिक गांवोंको पार करके में अपनी बहादुरी एवं निःस्वार्थ भावना के बल पर एक अनजान एवं निरीह लड़की की रक्षा की। इस लोककथा में जो पिशाच का प्रसंग है, वह वास्तविकता से परे और कल्पना के अधिक निकट दिखाई देता है, इसलिए यहां पिशाच वाली घटना को सत्य मानना अनुचित लगता है। परंतु ऐसा भी हो सकता है कि इस कथा-कथन के आरंभ में पिशाच के स्थान पर किसी दुष्ट एवं अत्याचारी मानव ही रहा हो और हो सकता है कि कालांतर में धीरे-धीरे लोक कथा वाचकों के द्वारा उस दुष्ट एवं आतताई मनुष्य को पिशाच का नाम दे दिया गया हो तथा कथा को रोचक बनाने के लिए उसमें अतिरंजित एवं अविश्वसनीय लगने वाली घटनाओं को जोड़ दिया गया हो। यह अलग बात है कि लोक में भूत-पिशाचों के अस्तित्व के बारे में पूरी तरह से विश्वास किया जाता है और हो सकता है कि पुराने जमाने में ऐसा भूत या पिशाच भी रहा हो और जो कहानी में वर्णित

है, वह वास्तव में घटित हुई हो, परंतु आज इन्हें शत-प्रतिशत बताने का दावा कोई भी नहीं कर सकता है। इस कथा के संबंध में, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि ल्वाकेरेइबिले और त्रीम्स्वान्बे दोनों सत्य पात्र रहे हैं।

6.5 : शिक्षा प्रद कथाएँ

कथा साहित्य की यह विशेषता है कि इसमें मनोरंजक तत्वों के साथ-साथ किसी न किसी प्रकार की शिक्षा सन्निहित रहती है। जेलियांग लोक कथाएँ भी इसकी अपवाद नहीं हैं और इनकी सभी लोक कथाओं में किसी न किसी रूप में शिक्षा या उपदेशात्मक तथ्य विद्यमान रहते हैं। इस पर भी कुछ कथाएँ ऐसी होती हैं, जिनमें लोगों को शिक्षा देने या उनका मार्गदर्शन करने के तत्त्व मुख्य रूप से उपस्थित होते हैं या यों कहा जा सकता है कि इस प्रकार की कथाओं की रचना ही प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से लोक मानस को सामाजिक जीवन के अंतर्गत शिक्षित करने के लिए ही किया जाता है। इन कथाओं में से जेलियांग लोक में प्रचलित नमुतुन की कथाएँ शिक्षाप्रद कथाओं के रूप में सुनी-सुनायी जाती हैं। वैसे तो अधिकांश लोक कथाएँ किसी न किसी रूप में मानव जीवन को परिष्कृत करके बुराई से अच्छाई की ओर जाने हेतु प्रेरित करती हैं, परंतु नमुतुन की कथाएँ प्रत्यक्ष रूप से प्रायोजित स्तर पर मानव समाज में न्याय एवं आदर्शवाद को स्थापित करने के लिए रचित मानी जाती हैं। इसलिए शिक्षाप्रद कथाओं के अंतर्गत इस कथा को यहां उद्धृत किया गया है।

6.5.1 : नमुतुन की कथा (Nbung, 2020)

कहा जाता है कि नमुतुन नामक व्यक्ति एक बार किसी अन्य गांव में अपना उधार माँगने गया, तब गृह स्वामी एवं उसकी स्त्री नहीं थे, परंतु घर पर उनकी लड़की थी, जिसका नाम न्यून्तुन था। जब उसने माता-पिता के बारे में पूछा, तब लड़की ने कहा- “मेरी माँ जल छानने तथा पिताजी हवा उत्पन्न करने गए हैं।” नमुतुन को उस लड़की का यह आशय समझ में न आया, इसलिए उसने उससे कहा कि यदि अपने पहली में कहे गए कथन का भाव समझा दें, तो वह उधार माफ़ कर के चला जाएगा। न्यून्तुन ने कहा कि जल छानने से तात्पर्य मेरी माँ नदी गयी है, ताकि मछली, घोंघे, केकड़े इत्यादि को जल से छान-छानकर निकाल सकें और पिताजी अपने नए खेत के लिए जंगल काटने गए हैं। इस प्रकार नमुतुन ने अपने कथानानुसार उनका कर्ज माफ़ कर दिया और यह सोचते हुए घर की ओर वापस मुड़ गया कि यह लड़की असाधारण प्रतिभा वाली है, जो इस प्रकार पहलियों में बात करती है। इस घटना के संदर्भ में लोक में प्रचलित एक गीत भी है, जिसे यहां उद्धृत किया जा रहा है-

न्दा मैणू गा चपौ खेंमेंग,

तेज्युना तू डुत न्यौ जे,
 न्युई-प्यु न्दे वुन लौ, मेंग कू वांग लौ जे लू।
 अपुई दुइलिन जांग, अप्यु तिग काइ की लेजे,
 वांग मा वुन नेइ।
 सितू सिनी चपौर्याम कामे हा कुम ये,
 तेज्यू न रा मान केहू न लुंग सू बाम ये।

अर्थात्

एक बार एक व्यक्ति उधार माँगने गया,
 घर पहुँचकर लड़की से बात करते हुए,
 माता-पिता कहां गए, उन्हें बुलाओ।
 मेरी माँ जल छानने गई है और पिता हवा उत्पन्न करने,
 इसलिए वे घर पर नहीं हैं।
 इसके अर्थ को जानने के लिए उधार माफ़ किया,
 लड़की यह असाधारण है, इसका मोल देना कठिन होगा।

इस प्रकार जब नमुतुन अपने उधार को माफ़ करके अपने घर की ओर वापस चला गया, तब तक उस लड़की के पिता घर आ गए। जब न्यून्तुन ने अपने पिता से नमुतुन के साथ हुई घटना का जिक्र किया, तब उसके पिता यह सोच कर उसे वापस लिवाने के लिए उसके पीछे-पीछे दौड़ पड़े कि एक तो वह व्यक्ति दूर के गांव से आया था और इतनी साधारण सी बात के लिए उसने हमारा कर्ज माफ़ कर दिया, यह उचित नहीं है। नमुतुन काफी दूर निकल चुका था, फिर भी वह व्यक्ति उसका पीछा करता रहा और अंत में उस तक पहुँच ही गया और किसी तरह उसे मनाकर वापस अपने घर की ओर चला। कहा जाता है कि जिस प्रकार न्यून्तुन ने पहेलियों में बात की थी, उसी प्रकार नमुतुन भी हर बात को पहेलियों में ही करता था, जिन्हें आम लोग समझ नहीं पाते थे।

जब न्यून्तुन के पिता नमुतुन को लेकर घर वापस आते हुए, दोनों दुनिया-जहां की बातें करते थे, तब बीच-बीच में नमुतुन अपनी आदतन कुछ ऐसी बातें बोल जाता या पूछ देता, जिसको समझना या उसका जवाब देना, इस बूढ़े के लिए असंभव सा हो जाता था। इस प्रकार जब दोनों चलते-चलते पहाड़ की ढलान पर चढ़ने लगे, तब नमुतुन ने कहा, - "अपौ! गर्मी बहुत हो गयी है, पेड़ की चोटी पर बहती हवा के साथ चलते हैं।" वह नमुतुन के आशय को समझ न पाया। कुछ दूर चलने के बाद फिर नमुतुन ने कहा, - "अपौ ! बहुत थकान हो गई है, एक दूसरे को बारी-बारी से उठाकर चलते हैं। इस पर न्यून्तुन

के पिता ने कहा,- "अरे बेटे! तुम मुझे भले ही उठा लो, पर मुझमें तो तुम्हें उठाने की शक्ति नहीं है।" इसी प्रकार कुछ आगे बढ़ने के बाद जब नदी को पार करना था, तब नमुतुन ने कहा,- "अपौ! अपने नौकरों को आगे चलने के लिए भेजते हैं।" पर इधर इसने कुछ समझा नहीं और कहा,- "हमारे पास नौकर है ही कहां, कि हम उन्हें आगे भेजें।" कुछ और आगे बढ़ने पर दोनों ने देखा कि एक खेत में झोपड़ी टूटी-फूटी, बुरे हाल में थी। नमुतुन ने पूछा,- "अपौ! इस झोपड़ी के दाँत गिर गए हैं या पंख टूट गए हैं?" इस प्रश्न का तात्पर्य भी वह वृद्ध व्यक्ति समझ न पाया और बिना कुछ जवाब दिए आगे बढ़ गया। इस प्रकार घर पहुँचने के बाद न्यून्तुन के पिता ने अपनी पुत्री से रास्ते की सारी बातें बताई जिनका मतलब वह समझ नहीं पाया था। न्यून्तुन सब समझ गयी कि उसकी पहेली के बदले नमुतुन ने उसके पिता से पहेलियों में ही बातें की थीं। उसने अपने पिता से कहा,- "बाबा! पेड़ की चोटी के हवा के साथ चलने का अर्थ है, जब भी हवा से पेड़ की चोटियाँ हिलने लगे, तब-तब उन पेड़ों की छाँव में बैठकर आराम करने से था। एक दूसरे को बारी-बारी से उठाने का तात्पर्य वास्तव में एक दूसरे को लादना नहीं, बल्कि एक दूसरे की बातों को सुनते हुए परस्पर मन बहलाने की बात थी। नदी पार करते समय नौकरों को आगे भेजने से तात्पर्य नदी की गहराई को जानने के लिए अपनी लाठी को आगे-आगे पानी में टोहते चलने से था। झोपड़ी के दाँत गिरने या पंख टूटने से उनका यह तात्पर्य था कि वह झोपड़ी स्वाभाविक जर्जरता को प्राप्त हुई है या किसी ने उसे तोड़-फोड़ दिया है।" ये सब सुनकर उसके पिता को लगा कि उसकी पुत्री एवं नमुतुन के विचार एक जैसे हैं और उनका विवाह कर दिया जाना चाहिए। नमुतुन की पहेली यहीं समाप्त नहीं हुई थी। जब शाम को खाना पकाने लगे, तब न्यून्तुन के पिता ने पूछा- "बेटे किस चीज़ की सब्जी पकाई जाए," तब उसने जवाब दिया- "अपौ आजकल कोई उत्सव-त्योहार तो है नहीं, सो मांस-मछली के बजाय आप उस पौधे की सब्जी बनाइए, जिसके ऊपरी एवं निचली सिरे का कुछ भेद पता न चले।" यहां पर फिर बुजुर्ग व्यक्ति फंस गया। उसने अपनी बेटी का फिरसे सहारा लिया। न्यून्तुन यह सुनकर झट से गांव के पोखरे में गई और वहाँ पत्थरों पर जमे हुए शैवाल (काई) उखाड़कर पिताजी के पास ले आयी। उसने कहा यही पौधा है, जिसके जड़ और ऊपरी सिरे में भेद नहीं होता है। इस प्रकार बेटी की बुद्धिमानी ने फिर से पिता की समस्या का निवारण कर दिया।

जब नमुतुन घर के लिए वापस जाने लगा, तब न्यून्तुन के पिता ने उससे कहा,- "बेटे तुम्हारी और मेरी बेटी की सोच में इतनी समानता है, कि मैं सोचता हूँ कि तुम दोनों विवाह कर के पति-पत्नी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करो। इस पर नमुतुन ने कहा कि यदि उसके साथ मुझे अपना जीवन बिताना ही है, तो मैं विवाह के पहले एक रात उसकी माँ के साथ सोना चाहूँगा। इस पर न्यून्तुन के पिता

को बड़ा गुस्सा आया और अपनी बेटी से कहा कि नमुतुन कैसी बेहदगी बातें कर रहा है। पर न्यून्तुन समझदार थी, उसने माँ को समझाया कि रात को सोने से पहले अपने सारे कपड़े साफ कर लें और बाल एवं वस्त्र में एक भी जूँ न रहे। उसकी माँ ने वैसा ही किया, परंतु सभी वस्त्रों को झाड़-साफ करने के बाद अपने कमर में बंधी सूती की रस्सी को झाड़ना वह भूल गई। रात को जब नमुतुन और उसकी होने वाली सास एक ही बिस्तर पर सोए हुए थे, तब सास के कमर की रस्सी में बैठे जूँ ने उसे काट लिया। वह खुजलाने लगी। नमुतुन अचानक उठा और यह कहते हुए घर से भागकर अपने गांव के लिए निकल गया कि यदि पेड़ के तने में खुजली है, तो उसकी शाखा में भी खुजली होगी ही। इधर न्यून्तुन को यह सिद्ध करना था, कि भले ही माँ के शरीर में जूँ हो, उसके शरीर में नहीं है। अतः वह दौड़कर किसी अन्य रास्ते से नमुतुन के आगे उस रास्ते पर पहुँच गई, जहां से उसे गुजरना था। उसने रास्ते किनारे से गोबर उठाया और उसे रास्ते के बीचो-बीच पटककर उसके ऊपर सुंदर सा एक फूल रोंप दिया तथा घर वापस चली आयी। इधर नमुतुन ने जब आकर गोबर के ऊपर फूल को देखा तब वह समझ गया कि यह न्यून्तुन का ही काम है और वह उसके इस आशय को भी समझ गया कि भले ही माँ के शरीर में जूँ हो, परंतु बेटी साफ सुथरा है। इस प्रकार नमुतुन वापस न्यून्तुन के घर गया और उससे विवाह करके अपने घर ले आया।

इस प्रकार न्यून्तुन से शादी करने के बाद नमुतुन को उसकी बुद्धिमानी एवं सूझ-बूझ के लिए सभी लोग जानने लगे। गांव में छोटे-मोटे झगड़े विवाद को सुलझाने के लिए विशेष रूप से नमुतुन के पास लोग जाते थे। उन दिनों जेलियांग गांवों में राजा हुआ करते थे। जब भी किसी समस्या का समाधान राजा से नहीं निकल पाता था, तब वे नमुतुन को बुलवाकर उससे समस्याओं का हल निकालते थे। कहा जाता है कि एक बार गांव के दो लोगों ने जंगल में जाल बिछाए, जिनमें से एक ने जमीन पर तथा दूसरे ने पेड़ के ऊपर चिड़ियों के लिए जाल बिछाया। संयोग से जमीन वाले जाल में हिरन फँस गया और उसे दूसरे व्यक्ति ने उठाकर पेड़ के ऊपर अपने जाल में फँसा लिया। दूसरे दिन जब दोनों एक साथ अपना-अपना जाल देखने जंगल पहुँचे, तब देखा कि पेड़ पर जाल में हिरन फँसा हुआ था। पेड़ के ऊपर जाल बिछाने वाले व्यक्ति ने हिरन उठाया और घर निकल लिया। जमीन पर जाल बिछाने वाले को शक हुआ और वह शिकायत करने राजा के पास पहुँच गया कि उस व्यक्ति ने मेरे जाल से हिरन निकाल कर अपने जाल में फँसा लिया था। जब दोनों को बुलाकर राजा ने सवाल-तलब किया, तब पेड़ पर जाल बिछाने वाले व्यक्ति ने कहा कि हम दोनों एक साथ जंगल जाकर अपने-अपने जाल के पास गए थे और दोनों ने देखा था कि मेरे जाल में ही हिरन फँसा हुआ था। अब राजा ने नमुतुन को बुलवा भेजा। काफी देर के बाद भी वह जब दरबार नहीं पहुँचा, तब उसने दोबारा अपने दरबानों को भेजा,

तब तक नमुतुन दूर से भागते हुए आ रहा था। देर से आने के कारण राजा उस पर क्रोधित हुए तब उसने कहा- “महाराज! क्षमा करें, मैं बहुत पहले ही निकल चुका था, पर जब नदी किनारे पहुँचा, तब देखा कि बहुत सारी मछलियाँ नदी से निकलकर घास चर रही थीं। इसलिए मैं मग्न होकर उन्हें देखते रह गया। यही कारण है कि मैं देर से आया हूँ।” इस पर पेड़ पर जाल बिछाने वाले व्यक्ति ने जल्दी निर्णय पाने के चक्कर में उतावले होकर कहा कि कहां की मछलियाँ पानी से बाहर निकलती है, नमुतुन झूठ बोल रहा है, इसके ऊपर विश्वास नहीं किया जा सकता। महाराज अपना निर्णय सुना दें, कि हिरन किसका हुआ। इस पर नमुतुन ने कहा- “बहुत खूब कही, जिस प्रकार मछलियाँ पानी से बाहर नहीं निकलती, उसी प्रकार हिरन भी पेड़ पर कभी नहीं चढ़ता है। इसलिए वह हिरन उस व्यक्ति का हुआ, जिसने जमीन पर जाल बिछाया था।” पेड़ पर जाल बिछाने वाला व्यक्ति अपना सा मुँह लेकर रह गया और न्याय हो गया। इसी प्रकार कहा जाता है, कि एक बार एक व्यक्ति अपनी सब्जी पका रहा था और बहुत अच्छी खुशबू आ रही थी। राह चलते एक व्यक्ति ने कहा- “बड़ी अच्छी खुशबू आ रही है।” सब्जी पका रहा व्यक्ति दुष्ट प्रवृत्ति का था, उसने जाकर राजा से शिकायत की, कि इसने मेरी सब्जी की अच्छी खुशबू सूँघ ली है और सब्जी बेस्वाद हो गई है। इस पर राजा ने इसके निपटारे के लिए नमुतुन को बुलाया। नमुतुन ने ‘तेथिकांग’ (लकड़ी का बड़ा सा पतीला) में पानी भरा और घर के छत पर टंगी जानवर की खोपड़ी की परछाई को उस पानी में दिखाते हुए, सब्जी पकाने वाले व्यक्ति से उस खोपड़ी को जल से निकालने के लिए कहा। वह पकड़ता रह गया, पर वह तो परछाई थी, इसलिए जब भी पानी में हाथ देता, गायब हो जाती। इस पर नमुतुन ने उससे कहा कि जिसप्रकार तुम परछाई को पकड़ नहीं सकते हो, उसी प्रकार वह व्यक्ति दूर से ही सब्जी के गंध को तो सूँघ सकता है, लेकिन उसे बेस्वाद नहीं कर सकता। इस प्रकार उसने उसकी शिकायत को बेबुनियाद सिद्ध किया।

इस प्रकार कहा जाता है कि धीरे-धीरे गांव में नमुतुन की ख्याति बढ़ती चली गयी और लोग उसे राजा से भी अधिक महत्त्व देने लगे। अब राजा को उससे ईर्ष्या होने लगी और सोचने लगा कि उसे कैसे बदनाम किया जाए। एक दिन राजा ने नमुतुन को बुलाया और कहा- “हम दोनों एक रात के लिए पत्नियों की अदला बदली करते हैं।” इस पर नमुतुन सकुचाया, पर जब राजा ने आदेश के लहजे में कहा, तब वह मान गया। राजा सोचता था, कि यह अपनी स्त्री की बुद्धिमानी के कारण ही ख्याति प्राप्त करता जा रहा है। अतः उसकी पत्नी के साथ रात बिता कर उसे बदनाम किया जाए। नमुतुन ने घर जाकर अपनी पत्नी को सारी स्थिति समझा दी थी। शाम को जब दोनों एक दूसरे के घर सोने के लिए पहुँचे तब नमुतुन की पत्नी न्यून्तुन ने राजा को इतना खिलाया-पिलाया कि वह जमीन पर ही लुढ़ककर सो गया और जब होश में आया तब पता चला कि भोर हो चुका था। जब वे जाने लगे तब न्यून्तुन ने

राजा से कहा यदि रास्ते में मेरे पति से आपकी मुलाकात हो जाए, तो उनसे यह कहिएगा कि एक मस्त हाथी केले के पेड़ के बीच वाले नरम भाग को खाने के इरादे से आया था, पर वह उसके बाहरी आवरण को भी नहीं खा सका। राजा साहब उनके इस आशय को समझ नहीं पाए, परंतु जब नमुतुन से रास्ते में उनकी भेंट हुई तब उन्होंने यह बात उसको बताई। नमुतुन व्यंग्य के साथ मुस्कुराते हुए एक बात राजा साहब को थमाते चले गए- “आए थे, मेरी पत्नी के साथ रात बिताने और नौकरानी के साथ भी नहीं सो सका।” राजा को अपनी हार के साथ-साथ मूर्खता पर भी बड़ा गुस्सा आया। इसके बाद से राजा के मन में हमेशा यह बात रहती कि नमुतुन को कैसे नीचा दिखाया जाए। एक दिन उसने अपने सैनिकों को भेजकर उसे दरबार में फिरसे बुलवाया और कहा कि दोनों केले के पेड़ पालने की प्रतियोगिता करेंगे और जिसके केले के फूल वाला भाग झुककर जमीन के नजदीक पहुँच जाए, वह विजयी माना जाएगा। नमुतुन ने हामी भर दी और दोनों ने अपने-अपने आँगन में केले का एक-एक पौधा लगा दिया। राजा ने सोचा कि यदि पौधे को खूब खाद-पानी दिया जाए, तो उसके फूल लंबे, भारी निकलेंगे और झुककर जमीन के नजदीक आ जाएगा। इसलिए उसने अपने सेवकों के माध्यम से उस केले के पेड़ की ऐसी देखभाल की, कि वह बहुत ऊँचा उठ गया। इधर नमुतुन अपने केले के पौधे को तब तक बार-बार काट देता था, जब तक कि उसमें फूल निकलने वाले तने का भाग ऊपर न आया था। इस प्रकार राजा का पौधा बहुत ऊँचा और उसका पौधा बौना ही रह गया। जब उसमें फूल आए, केले फल लगे, तब उसके फूल का अगला सिरा झुकने लगा। ऐसे में पौधा छोटा होने के कारण नमुतुन के केले का फूल जमीन को छू गया, जबकि राजा का बहुत ऊँचाई पर लटककर रह गया। इस प्रकार यहां भी नमुतुन की विजय हुई। आज भी बौने केले की एक प्रजाति जेलियांग क्षेत्र में उगाई जाती है, जिसे ‘नमुतुन कदली’ कहा जाता है।

इस प्रकार जब भी कोई प्रतिस्पर्धा होती, तो राजा हार जाता था। अब उसने सोचा कि यदि नमुतुन अधिक दिनों तक उसके राज्य में रहा, तो वही राजा से अधिक प्रतिष्ठित हो जाएगा। अतः उसने उसे मारने की तरकीब सोची। एक दिन राजा ने उसे फिर बुलाया और कहा- “नमुतुन तुम हर प्रतिस्पर्धा में मुझसे जीतते आए हो। इसलिए अब मैं तुमसे कुछ पूछूँगा और यदि तुम सचमुच बुद्धिमान हो, तो उन सवालों के सही उत्तर दे देना, वरना मेरे सैनिकों के हाथों तुम्हें मृत्यु दंड दे दी जाएगी।” अब नमुतुन के पास कोई चारा न था और उसने हामी भर दी। राजा ने उससे पूछा कि आज से कितने दिनों के बाद बरसात होगी, यदि तुम इसे न बता सके तो तुम्हें मरना होगा। इस पर नमुतुन ने इसका जवाब देने के लिए एक दिन का समय माँगा। राजा यह सोचकर राजी हो गया कि बरसात की भविष्यवाणी तो यह कर नहीं पाएगा, इसे समय दे देते हैं, फिर देखा जायेगा। नमुतुन अब गहरी सोच में पड़ गया कि

बरसात की सटीक भविष्यवाणी उसके वश का नहीं है, परंतु यदि राजा को जवाब न दें, तो मारा जाएगा। अगले दिन इसी उधेड़बुन में वह अपनी पत्नी के साथ खेती चला गया। खेत के किनारे खड़े-खड़े वह राजा के सवाल के बारे में सोच रहा था, कि उसके पैरों के पास चींटियों की पंक्तियाँ अपने सफेद-सफेद दाने उठाए, अपनी बॉबी के अंदर चले जा रहे थे। चींटियों को दाने एकत्र करते देखकर नमुतुन समझ गया कि बरसात जल्द ही होने वाली है। अब उसे राजा के सवाल का जवाब मिल गया था। अगले दिन वह फिर दरबार में उपस्थित हुआ और उसने राजा से कहा कि अगले पाँच दिनों के अंदर कभी भी बरसात हो सकती है। यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ कि मौसम इतना साफ एवं आकाश इतना स्वच्छ है, यह व्यक्ति कैसे इतने दावे के साथ कह सकता है कि पाँच दिनों के अंदर बरसात होगी। उसने नमुतुन से कहा कि यदि तुम्हारी बात झूठ निकली, तो तुम्हें अपनी जान गँवानी पड़ेगी। नमुतुन ने उनकी बातों को शिरोधार्य किया और अपने घर चला। कहा जाता है कि पाँच दिन पूर्ण होने के पहले ही आकाश में बादल छा गए और बरसात भी हो गई। इस प्रकार इस बार भी राजा को हार का सामना करना पड़ा। कहा जाता है कि इस हार के बाद से राजा ने नमुतुन को अपनी गद्दी सौंप दी और स्वयं उसके अधीन रहने लगा।

नमुतुन की यह कथा जेलियांग लोक में शिक्षाप्रद लोककथा के रूप में कही और सुनी जाती है। कथावस्तु के अंतर्गत आने वाली विभिन्न घटनाओं एवं समस्याओं को नमुतुन के द्वारा सुलझाते, दिखाने के पीछे एक तो लोक का मनोरंजन करना है तथा साथ ही उसकी न्यायप्रियता एवं बुद्धिमानी के प्रदर्शन से यह कथा लोगों को न्याय एवं नैतिक मूल्यों के लिए भी प्रेरित करती है। कथा के आरंभ में नमुतुन एवं न्यून्तुन के द्वारा पहेलियों में बात करने के प्रसंग से यह संकेत मिलता है, कि यदि वास्तव में कभी ये लोग अपने अस्तित्व में रहे होंगे, तो अपनी वाक-पटुता एवं चतुराई के कारण भी लोकप्रिय हुए होंगे। यदि इस कथा की रचना किसी आदि-कथाकार ने अपनी कल्पना शक्ति के आधार पर की होगी, तो यह माना जाना चाहिए कि वह व्यक्ति भी इस प्रकार की पहेलियों का महारथी रहा होगा। जेलियांग समाज में जब स्त्रियाँ नदियों में मछली इत्यादि को पकड़ने जाती हैं, तब बांस से बुनी जालीदार खांचों को लेकर जाती हैं और उनके प्रयोग से वे जलीय जंतुओं को छानकर निकालती हैं, इसीलिए कथा में इसे जल छानना कहा गया है। साथ ही जब लोग नए खेतों के लिए जंगल की कटाई करते हैं, तब पेड़ों के कटकर गिरने से ऐसा लगता है कि हवाएँ तेजी से बह रही हैं, इसलिए कथा के इस प्रसंग को हवा उत्पन्न करने जैसे नाम देकर पहेल्यात्मक भाषा के माध्यम से लोक में कुतूहल या उत्सुकता उत्पन्न करने के प्रयास किए गए हैं। खेत में टूटी-फूटी झोपड़ी के दाँत गिरने या पंखों के झड़ने वाले कथन में यह आशय छिपा हुआ है कि पुराना हो जाने के कारण वह झोपड़ी टूट-फूट गई या किसी ने उसे तोड़ा

है, क्योंकि यहां दाँतों के गिरने से तात्पर्य ज़रावस्था में आ जाना तथा पंखों के झड़ने से तात्पर्य किसी के द्वारा उसे नष्ट किए जाने से है, क्योंकि अन्य जीवों में न सही, पर मनुष्य के संदर्भ में यह मान्यता है कि वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर दाँतों का झड़ना एक सामान्य प्रक्रिया है और चाहे जितना भी वृद्ध हो जाये किसी भी पक्षी के पंख नहीं झड़ते। यदि उस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जाता कि झोंपड़ी के दाँत गिर गए हैं तब यह माना जाता कि वह अपनी पुरानी अवस्था के कारण टूट-फूट गयी है और यदि जवाब में पंखों के झरने की बात होती, तो ऐसा माना जाता कि असमय किसी ने उसे नुकसान पहुँचाने के इरादे से तोड़-फोड़ दिया है।

संपूर्ण कथा में लोक के मनोरंजन के साथ-साथ नमुतुन की सूझ-बूझ एवं राजा का उसके प्रति ईर्ष्या एवं जलन तो प्रकट हुआ ही है, साथ ही चींटियों के अन्न एकत्र करके अपनी बाँबी में जाने वाले प्रसंग से लोक की प्राकृतिक गतिविधियों के प्रति संवेदनशीलता का भी उदाहरण इस कथा में प्रस्तुत हुआ है। जेलियांग लोक में ऐसा कहा जाता है, कि यदि चींटियाँ अपने घरों से निकलकर अपने दानों को एकत्र करती हैं और उन्हें अपनी बाँबी में ले जाती हैं, तब ऐसा मानना चाहिये कि बरसात जल्द होने वाली है। यह लोक की प्रकृति के प्रति अपनी सूक्ष्म-निरीक्षण क्षमता का एक जीता जागता उदाहरण है, क्योंकि बरसात के आने के बाद चींटियाँ बाहर निकलकर अपने दाने खोज नहीं सकती, इसलिए उन्हें जब बरसात की भनक लग जाती है, तब वे पहले ही अपने दाने एकत्र कर लेती है। इस प्रसंग को कुछ कथाकारों के द्वारा अलग ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, जो संभवतः प्रसंग को अधिक रोचक बनाने के उद्देश्य से रचा गया प्रतीत होता है। उनके अनुसार जब नमुतुन राजा के सवाल के उत्तर के बारे में सोचते हुए अपने खेत के किनारे खड़ा था, तब गलती से उसके पैर चींटियों की बाँबी में पड़ गए, जिससे चींटियों के घर ध्वस्त होने लगे। कहा जाता है कि चींटियाँ बाहर निकलकर उनसे कहने लगी कि वे उनके घर को नष्ट न करें। नमुतुन ने उनके घर को नष्ट न करने के बदले में आने वाले बरसात के सटीक समय को चींटियों से पूछकर पता लगाया। चींटियों से बात किया जाने वाला प्रसंग अविश्वसनीय है, फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि कीड़ों मकोड़ों एवं प्रकृति में उपस्थित वस्तुओं की गतिविधियों के माध्यम से आगामी मौसम इत्यादि की जानकारी का अनुमान लगाना लोक की अपनी एक विशेषता अवश्य रही है।

नमुतुन की कथा के अंतर्गत अनेक ऐसे प्रसंग आते हैं, जिन्हें अन्य जातियों एवं कथाओं में सुने जा सकते हैं। इस संदर्भ में दक्षिण भारत में प्रचलित तेनालीराम, उत्तर भारत में प्रचलित बीरबल-अकबर की कथाओं के किस्से जैसे कई प्रसंग कथा में भी सुने-सुनाए जाते हैं। ऐसे में यह कहना मुश्किल हो जाता कि ये प्रसंग लोगों ने अपनी कल्पना के आधार पर उत्पन्न किए या तेनालीराम एवं

बीरबल की कथाएँ उड़ते-उड़ते आकर इस लोककथा की कड़ियों में जुड़ते चले गए। नमुतुन की कथा के कुछ प्रसंग ठीक वैसे ही हैं, जैसे बीरबल के विद्वेषी जन सम्राट अकबर के कान भरते हैं और किसी भी प्रकार से उसे किसी मुसीबत में ढकेलने की फिराक में हमेशा रहते हैं। इन सभी समानताओं के होते हुए भी यह तो स्पष्ट है कि नमुतुन एवं न्यून्तुन जेलियांग लोक के पात्र हैं और उनकी कथा का उद्भव इसी लोक में ही हुई है, इसे स्वीकार करने में किसी प्रकार की हिचक नहीं होनी चाहिए और इसे कथाकार के द्वारा लोगों को नैतिकता एवं सत्य के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करने हेतु रचित मानना चाहिए।

6.6 : पशु-पक्षियों से संबंधित कथाएँ

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत कथाकारों ने लोक जीवन को तो मार्मिक ढंग से चित्रित किया ही है, साथ ही उनके आस-पास पाए जाने वाले पशु-पक्षियों से संबंधित अनेक कथाएँ भी रचित हैं, जिन्हें लोक में मनोरंजन के लिये सुने-सुनाए जाते हैं। इनकी लोक कथाओं में मनुष्यों के साथ पशु-पक्षियों के अंतर्संबंध को तो दिखाया ही गया है, जिनमें कहानी के मुख्य पात्र के रूप में मानव ही होते हैं और उनके इर्द-गिर्द पशु-पक्षियों को अपने जीवन के लय में बहते चलते दिखाए गए हैं। परंतु इन कथाओं से परे कुछ ऐसी कथाएँ भी हैं, जिनमें पात्र भी पशु-पक्षी हैं और कथावस्तु भी उनके जीवन से ही संबंधित हैं। ऐसे में लोक कथाकारों के द्वारा उन पशु-पक्षियों के रंग-रूप, रहन-सहन, प्रकृति एवं प्रवृत्ति को परखने के बाद अपनी कल्पनाओं के आधार पर उन्हें कथाओं की कथावस्तु के अंतर्गत उतारे गए हैं। इस प्रकार की अनेक कथाएँ जेलियांग लोक में प्रचलित हैं, जिनमें से भालू एवं गिलहरी से संबंधित एक कथा यहां उद्धृत की जा रही है, जिनके विश्लेषण से यह स्पष्ट किया जा सकता है कि इन पशु-पक्षियों के लिए लोकमानस में किस प्रकार की धारणाएँ बनी हुई होती है।

6.6.1 : गिलहरी और भालू (Daime, 2020, page-145)

एक बार एक भालू अपने बच्चों के लिए फल तोड़ने के लिए निकला। वह जाते-जाते अपने साथी पाने की अपेक्षा से अन्य पशु-पक्षियों को बुलाते चला गया कि कोई हो जो मेरे साथ फल तोड़ना चाहता हो, तो वह चल सकता है। कोई और तो नहीं आया पर एक गिलहरी निकली और कहा- “भालू मामा मैं भी चलूँगी फल तोड़ने।” भालू ने कहा- “चलो”, और दोनों साथ चल पड़े। अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच कर दोनों फल तोड़ने लगे। भालू के पास एक बड़ा सा टोकरा था। वह फलों को तोड़-तोड़कर उसमें रखता चला गया और गिलहरी के पास कोई झोला तो था नहीं, सो वह जितनी तोड़ती थी, सब खाती गई। जब फल तोड़ते-तोड़ते भालू का टोकरा भर गया तब उसने कहा- “चलो अब वापस

घर चलते हैं।" दोनों घर की ओर चल पड़े। भालू फलों से भरा टोकरा अपने पीठ पर लादे, लंबी सांसें लेते हुए 'हुई-हुई' करते जा रहा था। इधर गिलहरी उसके पीछे पीछे उछल कूद करते हुए चली। कुछ दूर चलने के बाद गिलहरी को और फल खाने की इच्छा हुई। उसने पेट में दर्द का बहाना बनाते हुए कहा- "भालू मामा मेरे पेट में बड़े ज़ोर का दर्द हो रहा है, मैं और चल नहीं पा रही हूँ।" तब भालू ने उसे अपनी हथेली पर रखा और उसे सहलाते हुए आगे बढ़ा। गिलहरी और भी कराहने लगी और कहा- "पेट में और भी दर्द हो रहा है और दर्द बढ़ता ही जा रहा है।" भालू ने कहा- "तब तुम मेरे टोकरे में आराम से लेट जाओ।" गिलहरी झट से टोकरे में कूद गई और भालू मामा के फलों को खाने लगी। जब तक फल थे, खाती रही और जब टोकरे में ऊपर की ओर छिलके ही रह गए तब गिलहरी ने कहा- "भालू मामा पेट में फिर से बड़ा ज़ोर का दर्द हो रहा है, अपने टोकरे को ज़रा हिलाकर मुझे सहला दो।" भालू ने वैसा ही किया। टोकरे को हिलाने से कुछ फल ऊपर आ गए, उन्हें भी वह खा गई। इस प्रकार रास्ते भर वह फल खाते खाते अपने घर के नजदीक पहुँचते ही टोकरे से उछलकर बाहर निकली और भालू से कहा- "मामा मेरा घर आ गया, अब मैं अपने घर की ओर चलती हूँ।" इतना कहकर वह किसी झाड़ी में अदृश्य हो गई।

भालू ने अपने घर पहुँच कर बच्चों को बुलाया और कहा- "बच्चों! लो जी भर के फल खाओ" और उसने अपना टोकरा घर के आँगन में उड़ेल दिया। यह क्या! उसके बच्चों ने देखा कि ये तो फल नहीं, बल्कि उसके बीज और छिलके ही हैं, उनमें खाने वाला मांसल भाग तो है ही नहीं। उसके सभी बच्चे बड़े निराश हुए। अब भालू को गिलहरी की करतूत समझ में आयी। उसने उसे सबक सिखाने एवं दंडित करने की ठानी। भालू की पत्नी ने कहा- "कितनी बार कहा है कि उस गिलहरी के चक्कर में मत पड़ो, मगर तुम सुनते ही कहा हो, अब तो भुगतो।" भालू को बड़ा गुस्सा आया और वह गिलहरी की खोज में निकल पड़ा। कुछ दूर निकलते ही उसने देखा कि गिलहरी झूला झूल रही है और ठंडी हवाओं में हिलोरें ले रही है। उसने गिलहरी पर चिल्लाते हुए कहा- "ऐ गिलहरी! आज तो तुम गए काम से, आज मैं तुम्हें छोड़ने वाला नहीं हूँ।" तब गिलहरी ने बड़े ही अंजान बनते हुए शांत स्वभाव के साथ कहा- "क्या बात है भालू मामा! मेरे ऊपर इतना गुस्सा क्यों हो?" तब भालू ने पिछली घटना का वृत्तांत कह सुनाया। गिलहरी ने बड़े ही सहज भाव से कहा- "अरे मामा! वह मैं थोड़ी ही हूँ, मैं तो झूला झूलती हूँ। कोई फल खाता है और कोई झूला झूलता है। इस जंगल में मैं अकेली गिलहरी तो हूँ नहीं, होगी कोई और जिसने आप का फल खाया।" तब भालू को लगने लगा, यह भी सच है। फिर उसने गिलहरी से कहा- "मुझे भी झूलने दो, तुम्हारे झूले में।" गिलहरी ने कहा- "न मामा, तुम्हारा शरीर बहुत भारी है और यदि तुम मेरे झूले में झूलोगे, तो यह टूट जाएगा।" पर भालू ने बड़ी मित्रता करते हुए झूले में झूलने की

प्रार्थना की, जिससे गिलहरी मान गई, लेकिन उसने कहा- "थोड़ा रुको, मैं ज़रा झूले की रस्सी को थोड़ा कसकर बाँध देती हूँ।" वह ऊपर गई और उसने झूले की रस्सी को कुतर-कुतरकर ऐसी स्थिति में ला दी, ताकि भालू के बैठते ही वह टूट कर गिर पड़े। अब भालू मामा झूले पर बैठ गया और गिलहरी ने पीछे खींचकर ज़ोर से धक्का दिया। एक बार, दो बार, झूले का पेंडुलम हिलोरें खाने के बाद उसकी रस्सी टूट गई और भालू मामा धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा तथा उसकी हड्डी पसली एक हो गई। वह कराहते हुए अपने घर आया। जब उसकी पत्नी को गिलहरी की करतूत का पता चला तो उसने जले पर नमक छिड़कते हुए कहा- "और जाओ! उस गिलहरी के साथ घूमने, दोस्ती करने।" भालू को अब और भी गुस्सा आने लगा और उसने अबकी बार गिलहरी को ठीक से सबक सिखाने के ठान ली।

जब कुछ दिनों के बाद भालू ठीक हो गया, तब वह गिलहरी की खोज में निकला। कुछ दूर चलने के बाद उसने देखा कि गिलहरी तबला नुमा गोल सा एक आकृति के पास चुपचाप बैठा है। उसने कहा- "ऐ गिलहरी आज तो तुम गए काम से, मैं तुम्हें बताता हूँ कि हड्डी पसली टूटने पर क्या बीतती है।" अनजान बनते हुए गिलहरी ने सौम्य स्वभाव के साथ कहा- "क्या बात है मामा, मेरे ऊपर क्यों इतना गुस्सा करते हो।" भालू ने जब उसे झूले झूलने की घटना का वर्णन किया तब गिलहरी ने कहा- "अरे मामा! हर गिलहरी का अलग अलग काम होता है, कोई फल खाता है, कोई झूला झूलता है, मैं तो अपने राजा के ढोल की रखवाली करती हूँ। देखो मेरे सामने यह पड़ा है, राजा का ढोल। कोई आकर इसे बजा न दे, इसलिए मैं रखवाली करती हूँ।" यह सुनकर भालू को लगा, यह बात भी सही है, हो सकता है कि यह गिलहरी कोई और ही हो। उसे ढोल बजाने की बड़ी इच्छा हुई। उसने गिलहरी से विनती की कि उसे एक बार ढोल बजा लेने दे। गिलहरी ने पहले तो आनाकानी की, फिर कहा- "अच्छा पहले मुझे बाहर जाकर देखने दो कि राजा आ रहे हैं या नहीं। मैं बाहर रखवाली करती हूँ, उसी बीच तुम जल्दी से ढोल बजा लेना।" इतना कहकर वह बाहर निकल गई। इधर भालू ढोल बजाने को बड़ा बेसब्र हो रहा था। वास्तव में यह ढोल या तबला नहीं बल्कि मधुमक्खियों का एक छत्ता था। भालू मामा ने ज्यों ही अपने हाथों से उस ढोल को बजाया छत्ते की सभी मधुमक्खियाँ उस पर टूट पड़ीं। भालू कराहते हुए पहाड़ी की ढलान पर ऐसा लुढ़का कि बहुत नीचे जाकर ही रुका। मधुमक्खियों के डंसने से उसका चेहरा ऐसा सूज गया कि घर आने पर उसकी पत्नी और बच्चे उसे पहचान ही नहीं पा रहे थे। इसके बाद से उसने गिलहरी के पास जाने, उससे बदला लेने या उससे दोस्ती करने का विचार ही त्याग दिया।

इस कथा को कथाकार ने पूर्णतया मनोरंजन के उद्देश्य से ही रचा होगा ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें नैतिकता, सदाचार या आदर्शवाद की बातों को दरकिनार करके गिलहरी की उद्दंडता एवं

भालू की मूर्खता को दर्शाने के लिए ही कथावस्तु की रचना की गई है। इस प्रकार की कथाओं से माध्यम से बच्चों का मनोरंजन तो होता ही है, साथ ही कथाकार ने एक प्रकार से इस बात की भी परिकल्पना की है कि यदि पशुओं के भी मनुष्यों के जैसे औपचारिक परिवार होते, तो वे भी भालू के परिवार की तरह रहते। इसे इस प्रकार से भी कहा जा सकता है कि कथाकार ने मानव परिवार के स्वरूप को ही भालू पर आरोपित करके इस कथा की रचना की है। इस कथा में भालू को एक मूर्ख व्यक्ति के जैसा आचरण करते दिखाया गया है और इसके विपरीत गिलहरी को एक उदंड एवं ढीठ चरित्र वाले जीव के रूप में दर्शाया गया है। इस कथा में यदि भालू एवं गिलहरी के स्थान पर दो मनुष्यों के नाम आ जाते, तो यह कथा पूरी तरह से एक मूर्ख व्यक्ति एवं चालक तथा दुष्ट व्यक्ति की कहानी जैसी प्रति होती है। ऐसे में हो सकता है कि कथाकार ने किसी व्यक्ति के जीवन में घटित घटनाओं को व्यक्तियों के नाम के स्थान पर पशुओं का नाम देकर एक कथा के रूप में पिरो दिया हो क्योंकि भालू को पत्नी और बच्चों के साथ एक भरपूर परिवार के रूप में चित्रित किया जाना यह दर्शाता है कि वह किसी मनुष्य का परिवार ही है और उसके द्वारा बच्चों के लिए फल तोड़े जाने तथा टोकरी में फलों को लेकर आने जैसी बातें पूरी तरह से मानव पर ही लागू होती हैं। मानव क्रिया-कलापों से पूर्ण होते हुए भी कथाकार ने जिस अंदाज में इसे भालू एवं गिलहरी पर आरोपित किया है, यह कथा सुनने में अत्यंत रोचक एवं मनोरंजक लगने लगती है। इसी प्रकार जेलियांग लोक में पशु-पक्षियों से संबंधित अनेक कथाएँ प्रचलित हैं, जिनमें गिलहरी और चिड़िया की कथा, मुर्गी और बिल्ली की कथा आदि भी आती हैं। गिलहरी और चिड़िया की कथा में ऐसा कहा जाता है कि किसी जंगल में इन दोनों ने अपने अपने चरने के लिए जमीन का बंटवारा किया लेकिन कुछ दिनों बाद गिलहरी ने उस चिड़िया के जमीन को भी हथिया लिया। बेचारी चिड़िया रोती रही, कई पशु-पक्षियों से सहायता की गुहार लगाई पर अंत में केकड़े ने ही उसकी सहायता की। कहा जाता है कि केकड़े ने अपने पंजों से गिलहरी के वृषण को ऐसा दबोचा कि उसने एक ही झटके में चिड़िया की हथियायी हुई जमीन वापस कर दी। जंगली मुर्गी एवं जंगली बिल्ली के बारे में कहा जाता है कि एक बिल्ली ने धोखे से मुर्गी से दोस्ती की और एक दिन जब मुर्गी अपने अंडों को से रही थी तब चुपके से बिल्ली ने उसे धर दबोचा और उसे तथा उसके सभी अंडों को खा गई। एक अंडा बच गया और उसने इधर-उधर लुढ़कते हुए कई पशु-पक्षियों से सहायता ली तथा बिल्ली से अपना बदला लिया। इस प्रकार की कथाओं के माध्यम से लोक ने अपनी धारणाओं को पशु-पक्षियों पर आरोपित करके एक प्रकार से लोकमानस को शिक्षा देने का कार्य किया है तथा समाज में न्याय एवं नैतिकता के पक्ष को भी मजबूत करने का प्रयास किया है। इसलिए पशु-पक्षियों पर आरोपित इन मानवीय धारणाओं का अपना महत्त्व होता है, क्योंकि इन कथाओं में पशु-पक्षियों के नाम

होने के कारण किसी व्यक्ति या उसके नाम पर यह आरोपित नहीं होता है, पर कथाकार के कथ्य स्पष्ट रूप से लक्षित हो जाते हैं।

6.7 : हास्य-व्यंग्यात्मक कथाएँ

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत कुछ ऐसी कथाएँ हैं, जो हास्य-व्यंग्यात्मक होने के साथ-साथ एक प्रकार से शिक्षा-प्रद भी हैं। इस प्रकार की कथाओं में अचम्यू एवं अर्यांग नामक व्यक्तियों की कथाएँ लोगों को हँसाने के हेतु से लोक में सुने और सुनाए जाते हैं। इन कथाओं में जहाँ अचम्यू हर किसी काम को अपनी मूर्खता के कारण गलत अंजाम देता चलता है वहीं अर्यांग के बारे में यह कहा जाता है कि वह किसी भी व्यक्ति के द्वारा उससे पूछे गए प्रश्न का उल्टा-पुल्टा एवं निरर्थक जवाब दिया करता था। ये कथाएँ उनकी मूर्खता को प्रदर्शित करने के लिए रचित हैं तथा एक प्रकार से लोगों को इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण कृत्यों से बचकर रहने के संदेश भी ये कथाएँ देती हैं।

6.7.1 : अचम्यू की कथा (Zeliang, 2011, page-14)

हास्य-व्यंग्यात्मक कथाओं के अंतर्गत अचम्यू नाम के व्यक्ति बारे में कहा जाता है कि एक बार उसकी पत्नी ने उसे अपने नवजात शिशु की रखवाली के लिए रखा और वह किसी काम से कहीं चली गई। पीछे से अचम्यू बच्चे की देखरेख तो कर रहा था लेकिन बच्चा रोए जा रहा था और उसे समझ में नहीं आया कि उसे चुप कैसे कराया जाए। उसे भी इतना तो लगा कि कुछ न कुछ तो समस्या होगी, इसीलिए वह देखने लगा कि शिशु को दर्द कहां से हो रहा है। नवजात शिशु होने के कारण कपाल में ललाट के ऊपर उसकी हड्डियाँ पूरी तरह जुड़ी नहीं थीं और उसमें नाड़ी के स्पंदन के कारण उसकी त्वचा दबाव से स्पंदित हो रही थी। उसे देखकर अचम्यू ने सोचा कि शिशु के सर पर फुंसी हुआ है और उसे जरूर इससे दर्द हो रहा होगा। इसलिए उसने दर्द के निवारण के लिए उस स्थान पर सुई चुभो दिया, जिसमें से दुधिया रंग का तरल पदार्थ बह निकला जो बच्चे का मस्तिष्क था, जिसे उसने मवाद समझ लिया और कुछ देर में बच्चा चुप हो गया।

अब अचम्यू यह सोचकर बड़ा खुश था कि बच्चा शांत हो गया है और जब पत्नी आएगी तो वह भी बड़ी खुश होगी क्योंकि उसके साथ रहते हुए भी बच्चा कभी-कभी तो रोता ही रहता था। जब पत्नी लौटकर के आयी तो उसने बड़ी खुशी के साथ पत्नी को बताया कि देखो बच्चा अब रो नहीं रहा है और एकदम शांत हो गया है, तुमको बच्चे को शांत कराना भी नहीं आता, मैंने उसको शांत करा दिया है। उसकी पत्नी को बड़ा आश्चर्य लगा और कुछ शंका भी हुई। उसने पास जाकर देखा तो बच्चा मर चुका

था। अब उसकी पत्नी ने बच्चे के शव का ठिकाना लगाने के लिए उसे भेजा। उसने सोचा कि पहाड़ के ढलान से शव को गिरा देंगे और वह नीचे कहीं चला जायेगा, दफनाने की जरूरत नहीं है। वह अपने बच्चे के शव को बाँस की चटाई में लपेट करके निकला, लेकिन कहा जाता है कि रास्ते में ही बच्चा गिर गया, उसे पता नहीं चला और जाकर पहाड़ की ढलान पर उस चटाई को ही लुढ़का दिया और घर की राह ली। जब वापस आया तो उसने देखा कि रास्ते में एक मृत बच्चे का शरीर पड़ा हुआ है, तो उसने सोचा चलो अपना ही नहीं दूसरों के बच्चे भी मर रहे हैं, तो इसमें इतना रोने-ढोने की बात ही क्या है। उसने जाकर पत्नी से कहा, “अरे तुम क्यों रोती हो, हमारा बच्चा ही नहीं, औरों के बच्चे भी मर रहे हैं, रास्ते में पड़ा हुआ है जाकर के देखो।” जाकर देखा तो, पता चला कि वह तो उन्हीं के बच्चे की ही लाश थी। पत्नी को बड़ा गुस्सा आया, लेकिन करती भी क्या, उसका पति तो ऐसा ही था।

अचम्पू की कथा में ऐसा भी कहा जाता है कि एक बार घर में बर्तन न होने के कारण उसकी पत्नी ने उसे कुछ बर्तन लोगों के यहां से मांगकर लाने को कहा। उसने लोगों के घर जा-जाकर कई बर्तन माँग लिए और जब उन्हें उठाने की समस्या हुई तब उसने सभी बर्तनों में छेद करके उनमें रस्सी घुसाकर उन्हें एक साथ बाँध लिया। जब वह खुशी-खुशी घर आया, तब उसकी पत्नी ने उसे ऐसी फटकार लगाई, कि उसने सभी छेद वाली वस्तुओं को बेकार समझ लिया। एक बार एक व्यक्ति अपना मिथुन बेच रहा था, तो उसने उस मिथुन को खरीद लिया। जब वह मिथुन को लेकर घर आ रहा था, तब रास्ते में मिथुन ने अपना मल त्यागना शुरू कर दिया, तो उसने सोचा इसमें भी छेद है, सो यह किसी काम का नहीं। उसने अपने मिथुन को साधारण से एक बड़े डिब्बे के साथ अदला-बदली कर ली। जब डिब्बा लेकर के आया तो नदी में बाढ़ आई हुई थी। उसमें उसका डिब्बा बहने लगा। अब उसको पकड़े तो कैसे पकड़े, वह उसे पकड़ नहीं पाया, तो उसने उस डिब्बे के पीछे-पीछे अपने भाले को भी फेंक दिया और उसका डिब्बा और भाला दोनों पानी में बह गया। वह खाली हाथ घर आया।

अचम्पू की कथा के संबंध में ऐसा भी कहा जाता है कि एक बार वह झूम-कृषि की खेती के लिए जंगल काटने गया। बहुत तेज बारिश हो रही थी। वह पेड़ पर चढ़कर पेड़ की डालियों को काट रहा था। बारिश होने के कारण पानी से उसका हाथ भीग गया और उसका दाव उसके हाथ से फिसलने लगा। वह एक तने को काट ही रहा था कि दाव उसके हाथ से फिसल कर गिर गया। उसने कुछ देर बाद जब नीचे उतरकर दाव को उठाया तो ठंडा हो गया था और उसे अपने एक मित्र की बात याद आई कि जब कोई मर जाता है तो वह ठंडा पड़ जाता है। उसने सोचा कि उसका दाव मर चुका है और वह बेकार हो गया है। उसने उसे बेकार मानकर फेंक दिया। अपने दाव को फेंकने के बाद वह एक पत्थर के ऊपर बैठ गया और सोचने लगा कि अब क्या किया जाए। कुछ देर बैठने के बाद देखा

कि उसके पैर बहुत ठंडे हो गए हैं, उसका शरीर ठंडा हो गया है। अब उसे लगने लगा कि मेरा शरीर ठंड पड़ गया है तो मैं भी मर गया हूँ। उसने स्वयं को मरा हुआ मान लिया और ऐसे ही पत्थर के ऊपर लेट गया तथा वहीं लेटा रह गया। शाम हो गई, खेती जाने वाले सभी लोग घर वापस आ गए, पर जब वह नहीं लौटा तो उसकी पत्नी को चिंता हुई। वह उसे देखने जंगल गई तो उसने देखा कि अचम्पू पत्थर के ऊपर लेटा हुआ, हिल डुल नहीं रहा है। उसने उसको पुकारा और झकझोरा तब अचम्पू ने कहा की मेरे सभी अंग ठंडे पड़ गए तो मैंने सोचा कि मैं मर गया हूँ। इसलिए मैं यहां पत्थर पर लेटा हुआ था अगर मैं मरा नहीं हूँ तो चलो घर चलते हैं। उसकी पत्नी को उसके ऊपर बड़ा गुस्सा आया लेकिन वह करती भी क्या, क्योंकि वह तो ऐसे ही था।

इसी प्रकार, एक बार उसकी पत्नी ने अचम्पू को फल तोड़ने के लिए जंगल में भेजा। उसने पेड़ पर चढ़कर बहुत सारे फल तोड़े और उन्हें अपने बाँस के बने टोकरे में रख लिया। वह पेड़ से नीचे उतरने ही वाला था कि उसने एक गिलहरी को पेड़ से उतरते देखा। गिलहरी सिर को आगे करके नीचे उतर रही थी, तो उसने सोचा कि गिलहरियाँ पेड़ों पर चढ़ने-उतरने में माहिर होती हैं, इसलिए क्यों न उसका अनुसरण किया जाए। उसने जैसे ही सिर को आगे करके पेड़ से उतरने का प्रयास किया, उसके टोकरे में जितने फल थे, वे सब गिरकर बिखर गए और वह स्वयं भी ऐसा गिरा कि उसका सिर जाकर जमीन से टकरा गया। संयोग यह हुआ कि उसका सिर पत्थर पर नहीं लगा, बल्कि नरम मिट्टी में लगा और वह वहीं बहुत देर तक बेहोश पड़ा रहा। जब होश में आया, तब उसने अपने सर के निशान को हाथी का पद-चिह्न समझ लिया। उसने अपने आप बड़बड़ाते हुए कहा, इतने बड़े पैरों के निशान तो जंगली हाथी के ही हो सकते हैं। उसने जहां-तहाँ कुछ गिरे फल देखे, उन्हें अपने टोकरे में डाला और डर के मारे भागने लगा। टोकरे में जो थोड़े से फल थे, उनके हिलने से आवाज़ आ रही थी। फलों के हिलने की आवाज़ सुनकर कहीं हाथी उसके पीछे न पड़े, इसलिए उसने फलों को भी फेंक दिया और अपना खाली टोकरा लेकर घर वापस आ गया।

इस प्रकार अचम्पू की कथाएँ जेलियांग लोक में प्रचलित हैं, जो हास्य-व्यंग्यात्मक हैं और उसकी मूर्खता को प्रदर्शित करती हैं। ऐसा माना जाता है कि अचम्पू के चरित्र वाला व्यक्ति समाज में कभी तो हुआ था, इसलिए उसके बारे में इस प्रकार की कथाएँ प्रचलित हैं, जो उल्टा-पुल्टा आनन-फानन में कुछ भी करता जाता था जिससे उसके साथ कुछ भी सही नहीं होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रकार के लोगों को प्रतिबिंबित करने के लिए ही इस प्रकार की लघु कथाएँ रची गई हैं। एक प्रकार से इन कथाओं को भारतीय इतिहास में संस्कृत के प्रकांड विद्वान् कालिदास के आरंभिक जीवन की कथाओं के जैसा भी बताया जा सकता है। ये मनोरंजन के साथ-साथ प्रकारांतर से सभी लोगों को

शिक्षा देने के भी कार्य करती हैं कि अचम्पू जैसा काम नहीं करना चाहिए और न ही उसकी जैसी सोच रखनी चाहिए, बल्कि बुद्धि एवं विवेक के साथ हर काम को सोच समझ कर करना चाहिए।

6.8 : छोटे बच्चों के लिए अतिलघु-काव्यात्मक कथाएँ

जेलियांग लोक में प्रचलित कुछ ऐसी अतिलघु कथाएँ भी हैं, जिन्हें काव्यात्मक लय में छोटे बच्चों को सुनाया जाता है। इस प्रकार की कथाएँ बच्चों के मन को बहलाने के साथ-साथ रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग किए जाने वाली शब्दावलियों से उन्हें परिचित कराने के उद्देश्य से भी रचित होती हैं। यहां यह भी कहा जा सकता है कि लोक में औपचारिक शिक्षा के अस्तित्व में आने के पहले इन्हीं कथाओं के माध्यम से छोटे बच्चों को भाषा अथवा बोली का आरंभिक ज्ञान दिया जाता था।

6.8.1 : अपे राचम (दादी की कहानी)

अपे न्देमी ? – (दादी कहां गई ?)

केबी लींग मिना। - (अरवी (बंडा) बोल गई।)

केबी न्देमी ? – (अरवी कहां गई ?)

तचू ने तू लुना। - (जंगली चूहा (Long Tailed Field Mouse) खा गया।)

तचू न्देमी ? – (जंगली चूहा कहां गया ?)

ततू ने मान मिना। - (वह फंदे में फंस गया।)

ततू न्देमी ? – (फंदा कहां है ?)

चेमी ने रू मिना। - (आग में जल गया।)

चेमी न्देमी? – (आग कहां है ?)

तेदुई ने मेर्वाक मिना। - (पानी से बुझ गई।)

तेदुई न्देमी? – (पानी कहां है ?)

अलुइपुइ ने थी लुना। - (भैंस पी गई।)

अलुइपुइ न्देमी? – (भैंस कहां है ?)

पना तू मेजंगलू चेग्यू-ब्यक लम पक वांग मिना। - (अपने बच्चे के साथ नदी की घाटी की ओर भाग गई।)

6.8.2 : न्पुई राचम अर्थात् न्पुई (एक चिड़िया) की कहानी (Daime, 2020, page-223)

न्पुई ने गिलहरी से कहा- मेरे बच्चे के लिए फल तोड़ दो।

गिलहरी ने फल गिराया, तो केकड़े के घर का द्वार बंद हो गया।

केकड़े ने गुस्से में आकर (उड़ने वाले) साँप की पूँछ को पंजों में जकड़ लिया।

साँप गुस्से में आकर जंगली सूअर के घोंसले में घुस गया।

जंगली सूअर ने केले के पेड़ को अपने नुकीले दाँतों से काट गिराया।

केले के पेड़ में बैठा चमगादड़ निकलकर हाथी के सूँड़ में घुस गया।

हाथी ने चिंघाड़ दिया, जिससे सारी दुनिया हिल गई।

सभी गर्भवती जीवों का गर्भपात हो गया।

तिंगवांग (ईश्वर) ने पूछा- यह किसने किया ?

सब ने कहा- हाथी ने।

हाथी ने कहा- चमगादड़ के कारण मुझे छींक आई।

चमगादड़ ने कहा-जंगली सूअर ने मेरा घर उजाड़ा।

जंगली सूअर ने कहा- साँप ने मेरा घर बिखेरा।

साँप ने कहा- केकड़े ने मुझे काटा।

केकड़े ने कहा- इस फल ने मेरे घर का द्वार बंद किया।

फल ने कहा- गिलहरी ने मुझे गिराया।

गिलहरी ने कहा- न्युपुई ने फल गिराने के लिए कहा।

इसलिए न्युपुई को सबके लिए हर्जाना भरना पड़ा।

अब सभी जीवों के गर्भपात के लिए न्युपुई को उत्तरदायी माना गया और यह तय हुआ कि जब भी वह अंडे देगी, सभी को अपने अंडे बाँटेगी। इसलिए जेलियांग लोक में यह मान्यता प्रचलित है कि अपने अंडे दूसरों को देने के कारण न्युपुई नामक चिड़िया एक बार में एक ही अंडे को सेती है और उसका एक ही चूजा निकलता है।

उपर्युक्त दोनों कथाएँ अति लघु काव्यात्मक कथाओं के प्रतिनिधि के रूप में यहां ली गई हैं। इन कथाओं के माध्यम से बच्चों के मनोरंजन के साथ-साथ उनके सामाजिक जीवन संबंधी तथ्यात्मक ज्ञान में भी अभिवृद्धि होती है। पहली कथा में दादी, अरवी, जंगली चूहा, फंदा, आग, पानी एवं भैंस जैसे शब्दों के प्रयोग से छोटे बच्चे इन शब्दों से परिचित तो होते ही हैं, साथ ही उन्हें कथा-सूत्र में पिरोकर उनके कार्य-व्यापार को अंतर्संबंधित करने के कारण उनके गुण-अवगुणों से भी अवगत हो जाते हैं। इस कथा में दादी के द्वारा अरवी नामक सब्जी का बोया जाना, अरवी को जंगली चूहे के द्वारा खोदकर खा जाना, उसे पकड़ने के लिए ततू नामक फंदा का लगाया जाना, विभिन्न प्रकार की वस्तुओं के कार्यव्यापार को अंतर्संबंधित करके उनसे बच्चों को परिचित कराने के लिए ही कथाकार ने इस कथा की रचना की होगी, ऐसा माना जा सकता है। जेलियांग भाषा में 'ततू' एक द्वयर्थक शब्द है, जिसका एक

अर्थ पत्थर भी होता है, इसलिए कथाकार ने इसके अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए उसके आग में जल जाने के दृष्टांत को कथा में पिरो दिया है। इसी प्रकार से दूसरी कथा को भी व्याख्यायित किया जा सकता है और इसमें हाथी के चिंघाड़ने वाले दृष्टांत से कथाकार ने लोक की इस मान्यता को पुष्ट किया है कि हाथी ही संसार का सबसे विशालकाय जंतु है तथा उसके चिंघाड़ने से सभी जीव-जंतु डर जाते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोक की इन कल्पित विश्वासों एवं मान्यताओं का ज्ञान बच्चों को देकर पीढ़ी डर पीढ़ी इन्हें मौखिक रूप में हस्तान्तरित करते हुए इन्हीं कथाओं के माध्यम से ही लोक जीवन की परम्पराओं को जीवंत बनाए रखने के लिए ही इनकी रचना की जाती रही है। यहां यह भी कहा जा सकता है कि इस प्रकार की अति-लघु कथाएँ उन छोटे बच्चों को सुनाई जाती हैं, जिन्हें लंबी कथाओं को सुनने का न तो सब्र होता है और न ही समझ होती है। प्रकारांतर से यह स्पष्ट होता है कि इस प्रकार की कथाओं के माध्यम से लोक की मान्यताओं के साथ-साथ प्रकृति में जीव-जंतुओं एवं पेड़-पौधों के कार्य-व्यापारों के प्रारंभिक ज्ञान छोटे बच्चों को प्राप्त होते हैं, जिन्हें वे आत्मसात करके जीवन के अगले चरण में व्यावहारिक तौर पर अपनाते हैं तथा उनके अनुसार अपने जीवन को ढालने के प्रयास करते हैं।

अंत में यह कहा जा सकता है कि जेलियांग लोक में प्रचलित कथाएँ उनके लोक-जीवन, लोक मान्यताओं एवं विश्वासों के आधार पर तो निर्मित हैं ही, ये इनके लोक जीवन को एक प्रकार से दिशा-निर्देशित भी करती आई हैं। इनकी लोक कथाओं के बारे में यहां यह भी कहा जा सकता है कि जहां इनके आदि कथाकार ने लोक जीवन के अनुभवों एवं प्रकृति के साथ उनके समन्वित जीवन मूल्यों के आधार पर इन कथाओं को कह-सुनाया, वहीं इनमें अभिव्यक्त जीवन के गूढ़ एवं मार्मिक तथ्यों को मौखिक रूप में ही सही, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित करते हुए अपने जीवन-धारा में इन्हें प्रवाहित किया है तथा इनमें व्यक्त तथ्यों के आधार पर अपने लोक जीवन को संचारित किया है। यही कारण है कि इन कथाओं का लोक जीवन में अपना अलग ही महत्त्व है, जिनके बिना उनका साहित्य तो अपूर्ण माना ही जाएगा, साथ ही इनमें व्यक्त जीवन-मूल्यों को आत्मसात किए बिना उनका जीवन भी अधूरा ही माना जाता है।

6.9 : लोकोक्तियों एवं कहावतों में गुंठित जीवन- मूल्य :

किसी भी भाषा में लोकोक्तियों का प्रयोग निश्चित रूप से किया जाता है। लोकोक्तियाँ सामान्य लोगों के द्वारा स्थानीय बोलियों में दैनिक जीवन में प्रयुक्त होते हैं। इनकी उत्पत्ति ही इन्हीं दैनिक जीवन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से होती है। इनका प्रयोग प्रायः किसी विशेष वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में होता है। इसमें स्थान विशेष के भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषिक तत्त्वों की झलक होती है। इन वाक्यों में

जनसामान्य के अनुभवों का निचोड़ या सार होता है। लोकोक्ति का अर्थ लोक के द्वारा कथित एवं स्वीकृत वे वाक्य या वाक्यांश होते हैं, जो किसी निश्चित भाव के लिए व्यंजित होते हैं। जेलियांग भाषा में भी ऐसे अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जो जीवन के हर पहलू से संबंधित होते हैं। लोक कथाओं की तरह ही ये लोकोक्ति भी सर्वसामान्य लोक की रचना होती है। जेलियांग लोक-उक्तियों में कुछ तो समाज का सही मार्ग-दर्शन करने के लिए, तो कुछ उक्तियाँ हास्य-व्यंग्यात्मक पुट लिए मनोरंजक भी होते हैं। लोक में प्रचलित ये उक्तियाँ स्थानीय परिवेश एवं संदर्भ के लिए प्रयुक्त होते हुए भी कुछ तो इतने सारगर्भित हैं कि वे सार्वभौमिक भाव उत्पन्न करते हैं। जेलियांग लोकोक्तियों में जीवन से प्राप्त विभिन्न अनुभवों, पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं में व्यक्त जीवन के गूढ़ सार-तत्त्व व्यक्त होते हैं। इनमें लोक कथाओं के दृष्टांत के आधार पर निर्मित अनेक उक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें प्रायः कथा-पात्रों के चरित्र के अनुसार ही उन उक्तियों के अर्थ समन्वित होते हैं। इनके अतिरिक्त, लोक-विश्वास एवं प्राकृतिक नियमों के आधार पर किसी बात की पुष्टि तथा भविष्य की संभावनाओं को व्यक्त करने के लिए भी इनके इन लोकोक्तियों में अनेक कथन कहे जाते हैं, जिनका उद्देश्य एक प्रकार से लोगों को सीख देने और अनपेक्षित परिणामों से बचने के लिए उन्हें आगाह करना भी होता है। इन लोकोक्तियों में मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों के दृष्टांत को लेकर भी उक्तियों की रचना की गई है। अतः लोकोक्तियाँ इनके साहित्य का एक प्रमुख घटक तो हैं ही, साथ ही भाषा को समृद्ध करने की दृष्टि से भी इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

1. अचम्पू तौदुइ मेलू थ्यू (अचम्पू का गुड़ की खरीदारी) – किसी मूर्ख को काम में लगाकर अधिक नुकसान उठाना
2. अचम्पू पबौ तेदुइने थिन्पाक ते पेङ्गू फिन्तुन खइ (अचम्पू का, अपने बहते डिब्बे को रोकने के लिए उसमें भाला को फेंकना) एक नुकसान से उभरने के चक्कर में दूसरा नुकसान उठाना
3. अबेंग तस्यांगसी तू न्तौ खुन (उल्लू का तस्यांगसी नामक अखाद्य फल के पकने की प्रतीक्षा करना) – मूर्ख व्यक्ति का किसी अप्राप्य परिणाम की प्रतीक्षा करते रहना
4. अ-मेसुम ने अतू रू (अपनी ही लकड़ी से जलना) – अपनों के हाथों धोखा खाना
5. अर्यांग न्यौ थ्यू (अर्यांग की तरह बात करना) – हर बात का बेतुकी जवाब देना
6. अल्यूकी न्की लुमक, तेसांग त्यू लुमक (न तो प्रेमिका से मिल पाया और न ही अखुनी खा सका) – अनिश्चय की स्थिति में किसी भी कार्य को न कर पाना
7. का-तेज्यू गा तेतू फिन्वी (ढलान पर पत्थर लुढ़काना आसान होता है) – अनुकूल परिस्थिति में हर कार्य आसान हो जाता है
8. कामेगिन्ना लुंग केदत (रंक का राजा बन जाना) – वक्त के साथ हैसियत बदलते देर नहीं लगती

9. कुहेना तेकुम मचांग पेमी बुन रा खुन (बटेर का हर साल अपनी पूँछ के बढ़ने की आशा करना)
– असंभावित परिणाम की अपेक्षा लगाए रहना
10. केदत-कदा, मेखुम ब्यू (बार-बार पाला बदलना और औंधे मुँह गिरना) अस्थिर मन वाले का हर बार पाला बदलने के कारण नुकसान होना
11. केदी फुई-अजेंग दी, तिगिन फुई- अजेंग स्याम (जमीन में नजर तो कार्य अधिक, आसमान पर नजर तो काम कम) – मेहनती एवं आलसी व्यक्तियों की तुलना
12. केपेंग केदी क्यू पिंग (लंगूर का जमीन पर उतरने से डरना)- बिना कारण किसी वस्तु या परिस्थिति से डरना
13. केबक तेपिन सुई, तेथी पेजेंग लू (सूअर मिट्टी खोदे, श्रेय कुत्ता ले जाए)- काम कोई करे, श्रेय कोई और ले जाए
14. केली अग्वांग न्युम ब्यू चेहुम न्खुईबुंग सुइब्यू (गिलहरी बाजा बजाए, भालू देखा-देखी में मधु-मक्खी के छत्ते को बजाए) - बिना जाने-समझे किसी का अंधानुकरण करना
15. चगौ लुंग, ज्याबो सुई लुंग (मेढकों के टरनि के साथ टोड का बोल उठना)- जानकार के बोलने पर अनजान व्यक्ति का भी उसी सुर में बोलने का प्रयास करना
16. चेखेंग पके वी, न्यौ मक (बारहसींगा के लम्बे सींग, किसी को नहीं मारता) – सुंदर एवं गठीला शरीर, पर किसी काम के लायक न होना
17. चेखौ पेपा ने साइ, चेमै पा-अली ने साइ (पशु अपने पैरों के निशान से मरे और मनुष्य अपने व्यवहार से)
18. चेगापुई पकी गा हू (केकड़ा भी अपने बिल में बहादुर) – कायर व्यक्ति का अपने घर या इलाके में बड़बोला बनना
19. चेगौ पहाक हा, न्तींग-खींग (बिना मस्तिष्क का मेढक, आप सबसे चतुर) – मूर्ख होकर स्वयं को सबसे बुद्धिमान मानना
20. चेडेग तेदुई थी, पेपुई तू मेनिंग (जंगली बिल्ली का पानी पीते हुए माँ को याद करना) अवज्ञाकारी संतान के द्वारा बाद में पछताते हुए अपने माता-पिता को याद करना
21. चेपुंग केकू गा तेन्यांग पुन्बा (मिट्टी के टीले पर और माटी पाटना) संपन्न परिवार में अच्छे उपहार/भेंट देना
22. चेप्वांग साइ तेथी थांग (हाथी के गुजरने के बाद कुत्ते भौंकते हैं) – करने वाले, कर जाने के बाद पीछे से उसकी आलोचना करना

23. चेरुम तेसा मेसू कपूमै सइ (चेरुम के आग में कपूमै का जलकर मरना)- किसी के धोखे में आकर अपनी जान गँवाना
24. चेहेंग मेखुम पुन, अवांग तप (तलवार गलत पकड़ना, स्वयं का गला कटना) – निपुणता के बिना औजार को छूना और स्वयं चोटिल होना
25. तेचू मी ना मनुई थ्यू (जंगली चूहे के पूँछ की सजावट) – हड़-बड़ी में किसी काम को जैसे-तैसे कर देना
26. तेचूकी गा केबी लिंग (जंगली चूहे के बिल में अरवी बोना) – किसी वस्तु को ऐसी जगह छुपाना, जहां पहले से ही चोर की नज़र है
27. तेजा चेप्वांग अलाइ खाइ (चूहे होकर हाथी की आहट दिखाना) अपनी औकात से अधिक दिखावा करना
28. तेज्वांग बिन गा चेलिन तेजुम खइ (बन्दर के हाथों में बीज देना) – किसी योग्य व्यक्ति को कीमती वस्तु की सुरक्षा का दायित्व देना
29. तेथान अथुई गा मान, चेखा राम्त्वांग तेगी-त्यू (हिरन पेड़ पर चढ़े और मछली घास चरे) – किसी का सफेद झूठ पकड़ा जाना
30. तेथान ने चेलू त्यू चेहंग मुन जुम (हिरन ने खेत खाया, भेड़ा की पिटाई हुई) – गलती से निर्दोष को सजा देना
31. तेथान पेबी खुन तु पींग (हिरन का अपने पाद की आवाज से डरना) - कायर व्यक्ति का थोड़ी सी आहट से भी डर जाना
32. तेथी-केन्या कक गा चेमीरा थुन खइ (दो कुत्तों के बीच एक हड्डी डालना) – दो लोगों में झगड़ा लगाना
33. तेथीपुइ त्यदुम मेखुम जी लक (कुतिया भात की गठरी का तकिया नहीं बनाती) – फिजूल-खर्ची/ बचत न करना/ पाते ही खा जाना
34. तेदुई गा मताई न्बाई – पानी में नमक छिपाना – गलत जगह अपना धन निवेश करना
35. पनौ थ्युमक, तेजी दुन मेस्वांग (ब्याह हुआ नहीं, सुहाग-रात की तैयारी) – किसी काम को पूरा किए बिना परिणाम की अपेक्षा करना
36. पेग्यांग-प्यू जू डौ, पजौ थौ (मेहमान के पहुँचने के बाद ही मधु (शराब) पकाना) – पूर्व तैयारी के बिना आवश्यकता पड़ने पर ही किसी काम को हड़बड़ी में करना
37. पेसुत दुन – एक विपत्ति गया नहीं कि उसके ऊपर दूसरी मुसीबत का आ जाना
38. मलाइ रौ – मेलाइ न्यांग (आलसी व्यक्ति किसी कार्य को दो बार करता है)

39. मुन्चेरुंग असा थक अली, केथू फिसौमक (असा के नक़ल करने के चक्कर में मुन्चेरुंग हर बार मार खाता) बिना समझे किसी का अनुकरण करना और नुकसान उठाना
40. मेटुप-रूप, केन्यू रा मचौ दौ (खकवा व्यक्ति को साँप का विष लग जाना) – लालच के कारण हर-चीज खाने वाले को विषाक्त खाद्य मिल जाना (लालच बुरी बला)
41. मैपी गा केरा कतुप खाइबो (दूसरों के सर पर कचरा डालना) – लोगों के ऊपर झूठे लांछन लगाना
42. मैप्यू ग चेप्वांग साइ सुई, मेलू त्यू (हाथी के साथ रहकर भी भीख माँगकर खाना – अपने हैसियत से ऊपर के लोगों के साथ उठना-बैठना, पर घर में कंगाली ही रहना)

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

- Bareh, Dr. Hamlet (1970). Gazetteer of India, Nagaland, Kohima District. Calcutta: Sree Saraswaty Press Ltd.
- Baruah, Bhaskar Dutta (2009). (Edit.)-Fables from the Misty Mountains-Folklore of the Nagas, Dept of Art and Culture, Govt. of Nagaland. ISBN: 81-85921-66-0. Guwahati: LBS Publications.
- Bose, Swapnaa (2019). A Multi-Skill Course in English. (For Nagaland Board of School Education). Noida: Headword Publishing Company Pvt. Ltd. ISBN:978-93-87744-82-0.
- Daime, Igianeing (2020). Zeme Herasam Benai Napoine Leu (Zeme Folktales & Nursery Rhymes). Haflong: Cultural Centre Haflong, CAD, Dima Hasao, Assam.
- Hangkia, Kipeilua (2011). Ndam Chu Rasam Kuak. Haflong: Prinsol Publication (for Kipeilua Hangkia Self Help Group.)
- Hemang, Irangumle (2021). Tales From Gaili: A Selection of Zeliang Tribe's Folklore and Children's Tales. New Delhi: Zubaan Publishers Pvt. Ltd.
- Newme, Dr. Widonlule (2019). Tingwang Hingde. Guwahati: Zeliangrong Heraka Association, Northeast India.

Zeliang, Dr. Tasile N. (2011). NDA RACHAM-Sat Khat (volume – 1). Guwahati: Asom Prakaashan Bharati.

खुब्बे, ज़किएनी (2010). नागा त्योहार. कोहिमा: हिंदी अनुभाग, विद्यालयी शिक्षा निदेशालय, नागालैंड सरकार.

पाठक, एस.के. (2009). (सं) - ज्ञान गंगा भाग- एक (ग्यारहवीं कक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक). कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा.

पाठक, एस.के. (2010). (सं) - ज्ञान गंगा भाग- दो (बारहवीं कक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक). कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा.

फिलिप, डॉ.बी.पी. (2014). (सं) - नागा लोक कथाएँ. कोहिमा: नागालैंड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कोहिमा.

मुर्मू, भागवत ठाकुर (1982). संताली लोक कथाएँ. कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्.

वेब ओपेक:

360, India (2020). History Revisited: The Romance of Etiben and Jina- A Folktale of Ao Tribes.

<https://india360.theindianadventure.com/2020/05/15/history-revisited-the-romance-of-etiben-and-jina-a-folk-tale-of-ao-tribes/>

Bower, Ursula Graham (1940-1942). Haiguing – Zeme Folktale..

<https://nagajournal.com/haiguing-zeme-folktale/>

Nbung, Azanbo (2020). A Movie of Naga Folktale- Pepui Tenu (A Story of Step Son).

<http://www.youtube.com/@Azanbofilms>.

उपसंहार

‘नागा लोक साहित्य का अनुशीलन’ शीर्षक के अंतर्गत नागा जनजातियों के लोक साहित्य में अभिव्यक्त लोक जीवन की परंपराओं को देखते हुए निष्कर्ष निकलता है कि ‘नागा’ नाम से अभिहित जनजातियों का यह समुच्चय अपनी विविधताओं से परिपूर्ण होते हुए भी उनमें कुछ ऐसी तारतम्यताएं हैं, जो इन्हें इस नाम के अंतर्गत एक सूत्र में पिरोकर सहेजे हुए हैं। इस शोध कार्य को संपन्न करते हुए यह उद्देश्य निश्चित किया गया था कि लोक साहित्य के अध्ययन में विभिन्न अनुशासनों की उपादेयता को किस प्रकार स्थापित किया जाए। इसके साथ ही यह भी प्रयास किया गया है कि नागा लोक साहित्य के विश्लेषण से समाज में उसकी लोक-ग्राह्यता को सुनिश्चित करते हुए उसके विविध विधाओं को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया जाए। यहाँ विशेष रूप से जेलियांग जनजातीय लोक साहित्य के अध्ययन एवं विश्लेषण के माध्यम से नागा जनजातीय समूह की सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास को रेखांकित करते हुए उनकी लोक सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है। उपर्युक्त उद्देश्यों को लेकर शोध कार्य को आरंभ करते हुए, इस प्रश्न के उत्तर को भी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है कि लोक साहित्य का अध्ययन जनजातीय समाज के सांस्कृतिक अस्तित्व को बचाए रखने में किस प्रकार सहायक सिद्ध हो सकता है। साथ ही, इस पर भी विचार किया गया है कि लोक साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण के माध्यम से जनजातीय मनोभाषिक तत्वों को उद्घाटित करते हुए हाशिए के लोगों के जीवन मूल्यों को संरक्षित किया जाए।

प्रस्तुत लोक साहित्य के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि इनमें अभिव्यक्त नागा जनजातियों के मनोभाव, इनके सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आर्थिक जीवन को अत्यंत गहराई तक प्रभावित करते हैं। यही कारण है कि इस समाज ने अक्षर-ज्ञान की दृष्टि से भले ही उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में शिक्षा प्राप्त करना प्रारंभ किया हो, मौखिक रूप में ही सही अपने पुरखों के उत्स को सदियों से संजोए रखा है। लगभग सभी नागा जनजातियों में अपनी उत्पत्ति के संबंध में स्व-धारणाएं बनी हुई हैं, जो उनकी लोक कथाओं के माध्यम से आज की पीढ़ी तक हस्तांतरित होती आई हैं। आओ नागाओं के द्वारा अपने को ‘लोग्लोक’ नामक गुफा से उत्पन्न मानना, चांग लोगों का ‘चोंग्रू’ नामक वृक्ष से उत्पन्न होना, जेलियांग लोक कथाओं में अभिव्यक्त आदि पुरुष ‘बंगलावांग’ का ‘चिगेने’ नामक वृक्ष पर पहली बार अवतरित होना, इनके जातीय उद्भव-संबंधी मान्यताओं के बिंदु को दर्शाते हैं। इस प्रकार, यह प्रश्न भी उठना स्वाभाविक हो जाता है कि कहीं चोंग्रू और चिगेने एक ही वृक्ष के पर्याय तो नहीं है और देश-कालान्तर के कारण लोगों ने उन्हें अलग-अलग नाम दे तो नहीं दिया है। चोंग्रू वृक्ष के नाम पर ही ‘चांग’

लोगों के द्वारा अपनी जाति का नामकरण तथा 'ख्यम्युंडन' अर्थात् 'महा जलस्रोत' से उत्पन्न होने के कारण अपना उसी पर ही नामकरण इस बात की ओर संकेत करता है कि नागा जनजातियों ने अपने उद्गम को अविस्मरणीय बनाए रखने के लिए ही इन संज्ञाओं को अपनाया है। अपने उद्भव के साथ ही लगभग सभी जनजातियों के मन में आज भी अपने प्राचीनतम गांवों को अपनी यादों में संजोए रखने की परंपरा विद्यमान है। आज भी आओ लोगों के लिए 'चुंगलीयिम्ती', जेलियांग लोगों के लिए मेकुइल्वांगदी, मेरिन, रम्टिंगकेबिन और अन्य नागा जनजातियों का आदि गांव खेज़ाकेनो सभी की यादों में है। इसीलिए अधिकांश नागा लोक धारणाओं एवं विश्वास के अनुसार वर्तमान नागा भूमि ही उनका आदि-उद्गम स्थल है। यह अलग बात है कि मानव-शास्त्रियों के द्वारा इन्हें भी अन्यत्र से आया हुआ सिद्ध किया गया है। नृजाति-वैज्ञानिकों के अनुसार लगभग सभी नागा जनजातियों का वर्तमान स्थान में आगमन दो दिशाओं से माना जाता है। कुछ जनजातियों को उत्तर-पश्चिम दिशा- तिब्बत-अरुणाचल से होते हुए तथा शेष नागाओं को थाईलैंड एवं बर्मा की ओर से प्रवर्जित माना जाता है। इसका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता है, परंतु नागाओं की अपनी धारणा है, जो आज भी कायम है। यह संभव है कि देश एवं कालान्तर की दूरी के चलते, प्रवर्जन की प्रक्रिया तथा उसके पूर्व की घटनाएं इनकी मौखिक परंपरा की स्मृतियों से धूमिल होकर अदृश्य हो गई हैं।

लगभग साढ़े सोलह हजार वर्ग किमी में परिसीमित पूर्वोत्तर भारत का छोटा-सा राज्य नागालैंड पूर्व में म्यांमार, पश्चिम में असम, उत्तर में असम व अरुणाचल प्रदेश तथा दक्षिण में मणिपुर से घिरा हुआ है। लगभग बीस लाख की जनसंख्या वाले इस राज्य का अधिकांश क्षेत्र पहाड़ियों व घाटियों के रूप में है। यहाँ की पंद्रह (15) पंजीकृत नागा जनजातियों में अंगामी, आओ, चाखेसंग, चांग, ख्यम्युंडन, कोन्याक, लोथा, फोम, पोचुरी, रेंगमा, सांग्तम, सुमी, तिखिर, यिम्खुंग और जेलियांग आती हैं। कछारी, कुकी, गारो एवं गोरखा अन्य जनजातियाँ हैं, जो नागालैंड की पंजीकृत जनजातियाँ हैं। प्राकृतिक संसाधनों एवं मानवीय सांस्कृतिक परम्पराओं की दृष्टि से यह राज्य अपनी विविधताओं से परिपूर्ण है। नागाओं का पारंपरिक निवास नागालैंड राज्य में ही नहीं बल्कि मणिपुर के सेनापति, तमेंगलोंग, उखरुल एवं चंदेल जिलों में, असम के डिमा हसौ (एन. सी. हिल्स), मिखिर हिल्स, लखीमपुर, नवगाँव एवं शिवसागर जिलों में, अरुणाचल प्रदेश के तिराप एवं चांगलांग जिलों और म्यांमार के सोमरा एवं उससे संबंधित क्षेत्रों तक फैला हुआ है। इस प्रकार, राजनैतिक कारणों से ये अलग-अलग प्रशासनिक क्षेत्रों के अंतर्गत आते हैं, परन्तु, इसे समग्र एवं सम्पूर्णता के साथ नागा लोक भूमि के नाम से अभिहित किया जाता है। नागा जनजातियों के द्वारा अपनी स्वतंत्रता एवं संप्रभुता के लिए लगातार माँग को ध्यान में रखते हुए 'नागालैंड संक्रमणकालीन प्रावधान विनियमन 1961' के अंतर्गत यहाँ के लिए 45 सदस्यीय

अंतरिम समिति का गठन किया जाना और इसी क्रम में भारतीय संसद के द्वारा सन् 1962 में 'नागालैंड एक्ट' पास करके किसी 'जातीय समुदाय' के नाम पर इसे भारत गणराज्य के सोलहवें राज्य के रूप में स्थापित किया जाना एक अभूतपूर्व राजनीतिक घटना मानी जाती है।

नागा जनजातियों के द्वारा वर्तमान स्थान पर जीवन का आरम्भ अथवा 'नागा' नामकरण, उसके अर्थ आदि के बारे में प्रामाणिक तथ्य प्राप्त नहीं हो पाए हैं। मगर इतना स्पष्ट है कि इन्हें अपनी लोक संस्कृति के रूप में अपने पूर्वजों से विशाल एवं समृद्ध विरासत मिली हुई है, जो मौखिक रूप में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती आई है। यद्यपि इनका इतिहास लिखित रूप में उपलब्ध नहीं है, फिर भी इनकी लोक-कथाओं, लोक-गीतों, कृषि-परंपरा, शिकार एवं युद्ध के नियमन, त्योहार तथा लोकोक्तियों में अभिव्यक्त मनोभावों के माध्यम से इनके लोकजीवन को समझा जा सकता है। नागा जनजातियों की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि वे बड़े मनमौजी होते हैं और स्वच्छंदता एवं उन्मुक्तता के बड़े प्रेमी होते हैं। यही कारण है कि एक ही वंश से उत्पन्न होते हुए भी वे इतनी जनजातियों तथा उप-जनजातियों में विभाजित होते गए और कभी-कभी उनकी जाति अथवा समाज का केन्द्रीकरण नहीं हुआ। आज नागा जनजातियों की संख्या का ५० से अधिक होना तथा अपनी सामाजिक एवं सांस्कृतिक विविधता को बनाये रखना उनकी उन्मुक्तता एवं स्वच्छंदता-प्रिय प्रवृत्ति के द्योतक हैं। इसी उन्मुक्त एवं स्वच्छंद प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि प्रत्येक गाँव एक-दूसरे से पृथक् होते गए और सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से वे स्वतंत्र होकर अपना जीवन व्यतीत करने लगे, जिसे ग्राम-समाज अथवा ग्राम-प्रांत कहा जाता है।

लोक जीवन के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि सभी नागा जनजातियों में भाषा, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, रहन-सहन एवं सामाजिक मान्यताओं की दृष्टि से विविधता होते हुए भी, सभी जनजातियों में सार्वभौमिक रूप से एकता पाई जाती है। नागा समाज अथवा लोक में पारंपरिक रूप से गाँव ही समाज की सबसे बड़ी एवं स्वतंत्र इकाई रही है और प्रत्येक गाँव अपने में संप्रभु-सम्पन्न होता था, जो एक प्रकार से किसी राज्य अथवा राष्ट्र से कम नहीं था। कुछ जनजातियों में ग्रामीण प्रशासन के अंतर्गत वंशानुगत तरीके से मुखिया का पद होता था और कुछ में यह जन सामान्य के द्वारा अथवा जन प्रतिनिधियों के द्वारा चुना जाता था। प्रत्येक गाँव में कई कुल के लोग रहते थे और हर एक कुल के लोगों के द्वारा प्रौढ़ व्यक्तियों को अपने प्रतिनिधि के रूप में चुनकर ग्राम समिति में भेजे जाते थे। इन्हीं में से किसी एक को ग्राम-मुखिया के रूप में चुन लिया जाता था और वे ही ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था के मुखिया हुआ करते थे। प्रत्येक नागा गाँव के भूमि की परिसीमा निश्चित रहती है। नागाओं ने प्राचीन रीति एवं परम्पराओं के आधार पर ही भू-स्वामित्व की प्रणाली को विकसित किया है। सैद्धांतिक रूप से गाँव

का मुखिया सम्पूर्ण ग्राम- भू-भाग का मालिक होते हुए भी, ग्रामीण भू-स्वामित्व नियमन के अनुसार, उसका कोई भी अंश किसी बाहरी व्यक्ति को बेच या दे नहीं सकता था। इसके विपरीत, गाँव में स्थायी रूप से रहने के लिए आए, किसी नए परिवार का भी उसकी भूमि पर समान अधिकार होता था। किसी की भूमि पर झूठा हक जमाने तथा उस पर जबरन अधिकार करने पर उसी भूमि में शीघ्र ही मिल जाने की लोक मान्यता तथा विश्वास ने प्राचीनकाल से ही भू-स्वामित्व के नाम पर इनमें अनबन होने की संभावना ही उत्पन्न नहीं हुई। उल्लेखनीय है कि जनसंख्या घनत्व की विरलता के कारण किसी भी व्यक्ति को अपने ग्राम परिसीमा के बाहर के जमीन की कभी आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

सांस्कृतिक परम्पराओं की दृष्टि से विभिन्न नागा जनजातियों की अपनी-अपनी विशिष्टताओं के होते हुए भी शत्रु के सर को काटकर अपनी वीरता का प्रदर्शन करना तथा अपने समाज के लिए 'महा-भोज' का आयोजन करना, सभी जनजातियों की सर्वनिष्ठ विशेषता रही है। पड़ोसी गाँवों अथवा अन्य जनजातीय लोगों से युद्ध में शत्रु-सर को काटकर गाँव लाने तथा उन कटे सिरों की संख्या के अनुसार समाज में किसी योद्धा की प्रतिष्ठा में बढ़ोत्तरी, तत्कालीन समाज में इस परंपरा की महत्ता को अभिव्यंजित करती है। कुछ जनजातियों में योद्धाओं की इसी प्रतिष्ठा के आधार पर ही युवतियों का उन्हें पति के रूप में वरण करना यह दर्शाता है कि उन दिनों आर्थिक संपन्नता की तुलना में इन युद्ध-वीरों को अधिक गौरवान्वित माना जाता था। आदर-सत्कार के प्रतीकार्थ इनके वेश-भूषा एवं आभूषण भी सर्वसामान्य से अलग एवं विशिष्ट बनाए जाते थे। अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बढ़ाने का दूसरा माध्यम 'सामाजिक महाभोज' का अनुष्ठान था, जिसमें यजमान अपने ग्राम-समाज के लिए कुछ निश्चित दिनों हेतु खाने-पीने की व्यवस्था करते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखता था कि कोई भी ग्रामीण इससे अछूता रह न जाए। इन बातों से स्पष्ट है कि इसकी यजमानी करने वाला व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से संपन्न रहता होगा। अतः इस अनुष्ठान के इच्छुक व्यक्ति वर्षों तक खेतों में खूब श्रम करके धन-धान्य का संग्रह और पशु-पालन करके अपनी संपत्ति में बढ़ोत्तरी करते थे। इस अनुष्ठान में अनेक प्रकार के धार्मिक रीति-रिवाजों तथा सामाजिक परम्पराओं का अनुपालन यजमान एवं पुरोहित (सिन्कू) द्वारा तथा कुछेक ग्राम समाज के द्वारा किया जाता था।

जनसंख्या का लगभग 88% ईसाई वाला यह भारत के ईसाई-बहुल तीन राज्यों मेघालय एवं मिज़ोरम के साथ तीसरा राज्य है। कोहिमा, दीमापुर, मोकोकचुंग एवं वोखा जैसे नगरों में छोटे-बड़े गिरजे प्रत्येक नुक्कड़ पर देखे जा सकते हैं। ईसाइयों की कुल जनसंख्या का लगभग 75% बैप्टिस्ट हैं और शेष में रोमन कैथोलिक, रिवाइवल, पेंटिकोस्टल और सेवेंथ डे-जैसे अन्य ईसाई पंथ हैं। कोहिमा एवं दीमापुर में हिन्दू, मुस्लिम तथा राज्य के सुदूर ग्रामीण अंचलों में अपने पारंपरिक पैतृक धर्म के

अनुयायी कई नागा जनजातियों में विद्यमान हैं। प्रत्येक नागा जनजाति की अपनी-अपनी सांस्कृतिक विशिष्टताओं के साथ ही अनेक पर्वों एवं त्योहारों को भी मनाने की परंपरा रही है। कृषि-प्रधान सामाजिक पृष्ठभूमि रहने के कारण इनके प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण त्योहार किसी न किसी रूप में कृषि-कार्य प्रणाली तथा मान्यताओं से संबद्ध होते हैं। यहाँ की सांस्कृतिक विरासत को पर्यटन की दृष्टि से प्रोत्साहित एवं पल्लवित करने के उद्देश्य से नागालैंड सरकार ने इनके पारंपरिक त्योहारों के तर्ज पर ही 'हार्नबिल फेस्टिवल' को आरंभ किया है, जो दिसंबर में पहली से दस तारीख तक कोहिमा के पास किसामा में मनाया जाता है। इस त्योहार में सभी नागा जनजातियों के साथ कुकी एवं कछारी जनजातियों के जीवंत सांस्कृतिक परिवेश का प्रदर्शन किया जाता है।

'अंगामी' नागालैंड राज्य के नृजातीय समूह का एक मुख्य एवं महत्वपूर्ण घटक है। वर्तमान में इनका निवास स्थान कोहिमा, चुमुकेदिमा एवं दीमापुर जिलों के अंतर्गत आता है। इनकी भाषा को जाति के नाम पर ही अंगामी या 'तेन्यिदिये' नाम से जाना जाता है, जो उच्च शिक्षा में पढ़ायी जाने वाली राज्य की एक-मात्र जनजातीय भाषा है। इनके क्षेत्र को चार उपक्षेत्रों- उत्तरी, दक्षिणी, पश्चिमी और चख्रो अंगामी के रूप में विभाजित किया जाता है। नागालैंड की सबसे उन्नत जनजाति 'आओ' ईसाई मिशनरियों के आगमन के साथ ईसाइयत को अपनाने वाली पहली जनजाति होने के कारण शिक्षा में भी अग्रणी होने का गौरव प्राप्त है। प्राचीनकाल में 'पूर्वी अंगामी' कहलाने वाली चखेसांग जनजाति आज सबसे प्रगतिशील एवं उल्लेखनीय नागा जनजातियों में से एक है। तीन उप समुदायों के नाम- चोकरी, खेज़ा एवं सांग्तम को मिलाकर बनाए गए शब्द 'चखेसांग' में से 'सांग्तम' को एक नई जनजाति के रूप में मान्यता दिए जाने के बाद भी नाम में कुछ बदलाव नहीं किया गया है।

अंग्रेजों के शासन काल में 'मजुंग' कहलाने वाले 'चांग' नागालैंड की एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण जनजाति है। जनजाति के नाम के आधार पर ही इनकी भाषा को भी नामित किया गया है। 'चांगसांगमोंगो' नामक स्थान या चोंग्रू नामक पेड़ से उत्पन्न इस जनजाति को अन्य पड़ोसी जनजातियों के द्वारा चंघई, मोचुमी, चांग्रु आदि नाम दिए गए हैं। पूरब से आने के कारण ये लोग अपने को चांग अर्थात् पूर्वी लोग के नाम से पुकारते हैं। अंग्रेजों के समय 'काल्यो केन्यु' के नाम से अभिहित ख्रिश्चियन नागालैंड की मुख्य जनजातियों में से एक है। इनका पारंपरिक निवास म्यांमार से लगी हुई नोकलक जिले के अंतर्गत आता है, जिसकी जनसंख्या का एक बड़ा भाग म्यांमार में भी रहता है। स्वयं को 'क्योंग' अर्थात् मानव के नाम से अभिहित करने वाली लोथा जनजाति आज सबसे प्रगतिशील नागा माने जाते हैं, जिनका पारंपरिक निवास वोखा जिला है। अपने पूर्वजों को पत्थर की गुफाओं से उत्पन्न बताने वाली फोम जनजाति जनसंख्या की दृष्टि से बड़ी न होते हुए भी पारंपरिक सांस्कृतिक विशेषताओं के

कारण अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है। वर्तमान में इनका क्षेत्र लोंग्लेंग जिले के अंतर्गत आता है, जिनका सबसे बड़ा गाँव योंग्याह है। वे यह मानते हैं कि इनके पुरखों का प्राचीनतम स्थान 'यिंगली ओंग्शांग' नामक पहाड़ी श्रृंखला है, जहाँ से वे विभिन्न स्थानों की ओर फैल गए। जनसंख्या की दृष्टि से एक छोटी जनजाति पोचुरी लोगों का मूल निवास स्थान मेलुरी है, जिन्होंने ईसाइयत के प्रभाव में भी 'अनाले' के नाम से अपने पुरखों के धर्म को जीवंत बनाया हुआ है। 'रेंगमा' जनसंख्या की दृष्टि से नागालैंड की एक छोटी परन्तु महत्वपूर्ण जनजाति है। इनका मुख्यालय कोहिमा नगर से 55 कि.मी. की दूरी पर स्थित 'त्सेमिन्यु' जिला है। इनका पारंपरिक निवास स्थान केवल नागालैंड में ही नहीं बल्कि असम के कार्बी-आंगलोंग एवं मिकिर पहाड़ियों में भी फैला हुआ है। रेंगमा लोग अपने को कार्बी-आंगलोंग का मूल निवासी मानते हैं। परन्तु कार्बियों के मौखिक इतिहास के अनुसार ये चीन के युन्नान क्षेत्र से आये बताते हैं।

संगतम नामक नागा जनजाति नागालैंड के त्वेन्संग एवं किफिरे जिलों में निवास करती है। किफिरे इनके क्षेत्र का दक्षिणी भाग है, जबकि उत्तरी क्षेत्र के रूप में त्वेन्संग का लोंग्विम और चारे संभाग आते हैं। इनके 62 गाँव 'युनाइटेड संगतम' के नाम से संगठित हैं, जिनमें से 24 गाँव लोंग्विम-चारे तथा 38 गाँव किफिरे के अंतर्गत आते हैं। सुमी या सेमा नागा नृजातीय समूह का एक मुख्य एवं महत्वपूर्ण घटक है। ये लोग जुन्हेबोटो, किफिरे और दीमापुर जिलों में निवास करते हैं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक ये प्रकृति-पूजक थे और अन्य नागा जनजातियों की तरह ये भी शत्रु-गाँवों के योद्धाओं के सर काटने में लगे रहते थे। ईसाई मिशनरियों के आने के साथ-साथ धड़ल्ले से ईसाई होते चले गए और आज लगभग सभी लोग मतांतरित हो चुके हैं। यिम्खुंग अथवा यिम्खुंगरू का अर्थ 'गंतव्य पर पहुँचा हुआ' होता है। इन्हें यिम्चुंगरू, यिम्चुंगरे के नाम से भी जाना जाता है। सुमी जनजाति के लोग इन्हें यचुमी, यत्सुमी अथवा यचिमी और चांग लोग यम्शोंग के नाम से बुलाते हैं। ये लोग वर्तमान में नागालैंड के त्वेन्संग एवं किफिरे जिलों तथा म्यांमार के पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों में रहते हैं। मकुरी और चिर्र इनकी उप-जनजातियाँ हैं। अधिकांश लोगों के द्वारा ईसाई पंथ को अपनाने के बाद भी कुछ सुदूर गाँवों में अपने पारंपरिक पैतृक धर्म को मानने वाले अब भी विद्यमान हैं।

नागालैंड में नागा जनजातियों के अतिरिक्त कछारी, कुकी, गारो और मिकिर आदि राज्य के पंजीकृत अन्य जनजातियाँ हैं। कछारियों में डिमासा तथा मेच कछारी आते हैं। डिमासा लोग मूलतः दीमापुर नगर तथा इसके इर्द-गिर्द मैदानी क्षेत्र में निवास करते हैं। वास्तव में, यह क्षेत्र इनके द्वारा बसाया गया था। परन्तु नागा जनजातियों के धीरे-धीरे यहाँ आकर बसने के कारण इनकी संख्या विरल हो गई है। आज भी दीमापुर में 'कछारी राजबाड़ी' के नाम से इनके कुछ ऐतिहासिक खंडहर संरक्षित

करके रखे गए हैं। ये लोग मुख्यतः हिन्दू धर्म के अनुयायी हैं। 'कुकी' दूसरी गैर-नागा जनजाति है, जो नागालैंड की जनजाति के रूप में पंजीकृत है। इनका निवास मुख्यतः पेरेन जिले के अथिबुंग क्षेत्र है तथा कुछ गाँव दीमापुर के मेदज़िफेमा क्षेत्र में भी हैं।

यह शोध कार्य विशेष रूप से जेलियांग लोक-साहित्य पर ही केन्द्रित होने के कारण इनके साहित्य को भलीभाँति समझने में सुगमता के लिए इनकी सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का विस्तृत अध्ययन किया गया है। जेलियांग पूर्वोत्तर भारत की एक प्रमुख नागा जनजाति है और वर्तमान में असम, मणिपुर तथा नागालैंड के संलग्न जिलों में निवास करती है। जेलियांगरोंग समुदाय के बारे में किवदंती है कि मखेल से निकलकर रामतिंग कबिन, चेवांग फुंगनिंग और मकुइल्वांग्दी होते हुए अपने वर्तमान क्षेत्र में आये। यह भी उल्लेखनीय है कि मकुइल्वांग्दी में ही जेलियांगरोंग संस्कृति का बीजवपन हुआ। यहीं से जेमै, लियांग्मै और रोंगमै अपनी-अपनी कुछ विशिष्टताओं के साथ अलग-अलग स्थानों की ओर चले गए। परन्तु प्रव्रजन की यह प्रक्रिया अचानक या तेजी से न होकर धीरे-धीरे हुई थी। प्रो. गांग्मुमई कामै की मानें तो इस प्रक्रिया में इन्हें कई सदियाँ लग गईं। सम्प्रति ये पेरेन (नागालैंड), एन. सी. हिल्स. (अब दिमा हसौ, असम) तथा तमेंगलोंग एवं सेनापति (मणिपुर) जिलों में निवास करते हैं। जेलियांग शब्द दो शब्दों का संयुक्त रूप है, जो उसकी उपजातियों जेमै तथा लियांग्मै से बना है। यह संयुक्त नाम इनके लिए इसलिए प्रयोग किया जाता है, क्योंकि इनके उद्भव, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, भाषा-स्वरूप, सामाजिक संरचना एवं सांस्कृतिक परम्पराओं में समानता पाई जाती है। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि ये उप-जनजातियाँ स्वयं को एक पितृ-कुल से उत्पन्न भाई मानते हैं।

जेलियांग नागाओं में चिरकाल से कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक संस्थाएं विद्यमान रही हैं, जो समय के प्रवाह के साथ-साथ कुछ तो धूमिल-सी हो गयी हैं, पर आज भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो समाज में अपनी जीवंतता के साथ शाश्वत बने हुए हैं। इस संदर्भ में बात करते समय हमें यह ध्यान में रखना होगा कि इस जनजाति के सामाजिक स्वरूप का सबसे बड़ा एवं स्वतंत्र इकाई गाँव है। भारतीय लोकतान्त्रिक प्रशासन के अंतर्गत आने के पूर्व तक एक प्रकार से प्रत्येक गाँव एक कबीला की तरह ही अपने अस्तित्व में था। भूमि-स्वामित्व, ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था, कृषि-क्षेत्र जैसे विषयों में हर ग्राम की अपनी संप्रभुता रही है। आज भी न्यायिक मामले एवं कुछ सरकारी परियोजनाओं के अतिरिक्त स्थिति यथावत बनी हुई है। अतः जब समाज के विभिन्न संस्थाओं की बात की जाती है, तब इन्हें एक गाँव के अंतर्गत ही देखा जाना चाहिए। इनमें से प्रमुख आयाम निम्न रहे हैं, जो अब भी कुछेक गांवों में विद्यमान हैं - परिवार, किखुन/किदुई (कुल), खंग्च्यू (हंग्सेऊ), ल्युच्यू (लेउसेऊ), चेहुत (हेगुत), सिन्कू (तिन्कू) प्रणाली, चेवांग (हेग्वांग) का स्वरूप।

जेलियांग समाज में परिवार सबसे छोटी तथा महत्वपूर्ण इकाई है। इस समाज में पितृ-सत्तात्मक तथा एकल परिवार की परम्परा रही है। इस परम्परा के पीछे यह एक कारण है कि यहाँ के लोग गांवों में छोटे-छोटे तथा अस्थायी घरों पर ही निर्भर रहे हैं। परिवार से कुछ विस्तृत, परन्तु एक गाँव के अंतर्गत कई किखुन/किदुई हुआ करते हैं, जिन्हें कुल या खानदान भी कहा जा सकता है। प्रत्येक किखुन एक पितृ-वंशावली से उत्पन्न माना जाता है और इनमें अंतर्विवाह भी वर्जित है। खंग्चू (हंग्सेऊ) एवं ल्युच्यू (लेउसेऊ) - जेलियांग समाज की ऐसी दो सामाजिक संस्थाएं रही हैं, जो समाज के युवक-युवतियों में जीवन के मूल्य संचारित करते आये हैं। यद्यपि आज धर्म-परिवर्तन एवं तथाकथित आधुनिकता ने इन संस्थाओं को मृत-प्राय-सा बना दिया है। फिर भी जहां पारंपरिक पैतृक धर्म के पालन करने वाले लोग अर्थात् पारंपरिक जनजातीय आस्था के अनुयायी हैं, वहाँ ये संस्थाएं आज भी जीवन्त हैं। ये संस्थाएं युवक एवं युवतियों के शिक्षण-प्रशिक्षण के केन्द्र माने जाते हैं। 'खंग्चू' अर्थात् युवकों के लिए वह स्थान, जहां गाँव के सभी अविवाहित युवक अपनी रात बिताते हैं, उसी प्रकार 'ल्युच्यू' युवतियों के लिए सोने का स्थान हुआ करता है। आज सामान्य भाषा में इसे 'मोरंग' के नाम से जाना जाता है। प्रत्येक गाँव में प्रायः दो या अधिक खंग्चू हुआ करते हैं। 'खंग्चूकी' अर्थात् युवकों का घर, जिसमें दिनभर के अपने घर एवं कृषि के कार्यों से निपटने के बाद रात्रि भोजन के पश्चात् सोने तथा सामाजिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए एकत्र होते हैं। इसलिए यह घर मात्र सोने के लिए नहीं होता बल्कि इसकी अपनी कई परम्पराएं और विशेषताएं होती हैं।

जेलियांग समाज में हेगुत या चेहुत कृषि कार्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण आयाम है। हेगुत का अर्थ है युवकों एवं युवतियों का वह समूह जो बारी-बारी से एक-दूसरे के खेतों में जा कर काम करते हैं और कृषि कार्य-व्यवस्था में भी एक-दूसरे का साथ देते हुए जीवन-व्यापार को आगे बढ़ाते हैं। एक हेगुत प्रायः एक हंग्सेऊ एवं एक लेउसेऊ के सदस्य मिलकर बनाते हैं। परन्तु कभी-कभी अपनी संगति-सुविधानुसार, अपने हंग्सेऊ अथवा लेउसेऊ से बाहर के लोगों के साथ भी मिलकर अपना समूह बना लिया जाता है, जिसमें एक बुजुर्ग या वरिष्ठ व्यक्ति का होना अनिवार्य माना जाता है। वरिष्ठ व्यक्ति के द्वारा हेगुत के तौर-तरीकों तथा कार्य का निर्देशन होता है और साथ ही कृषि-कार्य में गाये जाने वाले गीतों के प्रशिक्षण तथा अगुवाई भी ये करते हैं। जेलियांग नागा गांवों में पुरोहित के रूप में कार्य करने वाले को सिन्कू या तिन्कू कहा जाता है। वे गाँव के सबसे आदरणीय व्यक्ति माने जाते हैं। प्रत्येक गाँव में एक मुख्य सिन्कू होता है और एक या दो सहायक होते हैं, जो पहले की अनुपस्थिति में घरों अथवा गाँव के लिए पूजा-अनुष्ठान के कार्य सम्पादित करते हैं। अंग्रेजों के आने अथवा भारतीय प्रशासन के पूर्व तक किसी भी गाँव में ग्राम पंचायत की प्रणाली नहीं थी। ऐसे में, वे ही मुखिया की तरह कार्य करते थे।

सम्पूर्ण गाँव के लिए वे ही घोषणाएँ करते थे और सूचनाएँ भी उन्हीं के माध्यम से लोगों तक पहुँचती थीं । किसी भी कृषि-संबंधी कार्य को आरम्भ करना हो, किसी त्योहार की तिथि तय करनी हो या फिर त्योहारों का आरम्भ - इनकी घोषणा के बिना कुछ न होता था। इसलिए मुख्य सिन्कू हो या सहायक, अपना जीवन अत्यंत संयमित ढंग से जीते थे। जेलियांग गांवों में चेवांग की भी परम्परा रही है। परन्तु यह सिन्कू प्रणाली से पूर्व की है। किसी-किसी गाँव में तिन्कू प्रणाली एवं चेवांग या हेगवांग की परम्परा भी समानांतर रूप से चलती रही है। गाँवों में राजा होते थे। परन्तु उनका ग्रामीण जीवन-व्यापार में ज्यादा हस्तक्षेप नहीं होता था।

जेलियांग जनजाति के लोगों में सामाजिक ढाँचे के साथ साथ कुछ ऐसी सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ विद्यमान हैं, जिनका विवरण दिए बिना इनका समाज विषयक अध्ययन अपूर्ण रहेगा । इनमें कुछ तो वैयक्तिक संस्कार के अंतर्गत आते हैं, तो कुछ को सामाजिक रीति-रिवाजों के शीर्षक के रूप में देखे जा सकते हैं । संस्कारों के अंतर्गत नामकरण, विवाह तथा मृत्यु को महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य माना जाता है । इनके अतिरिक्त *खंग्च्यू-ल्युच्यू सदस्य निर्धारण, विवाह में वर-वधू चयन संबंधी परंपराएं, चेमन-चपौलुत, पैतृक-संपत्ति का उत्तराधिकार, चेमौ-चेमंग, चेहुत-चेकू कूबो, रम्बौ मेज्वक्बो, अजन ल्यूबो तथा रिमन पत्बो* इत्यादि अनेक रीति-रिवाज वैयक्तिक तथा पारिवारिक जीवन में निभाए जाते हैं । जेलियांग समाज में वैयक्तिक संस्कार के अंतर्गत नामकरण, विवाह तथा मृत्यु संस्कार आते हैं, जो अनिवार्य रूप से प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में संपादित किए जाते हैं । यद्यपि *का-अलौबो, चेकुन-बुंगबो एवं चेपी-गुत्बो* इत्यादि संस्कार भी बच्चों के लिए क्रियान्वित किए जाने वाले संस्कार होते हैं। फिर भी समय परिवर्तन तथा बहुसंख्यक समाज के द्वारा अपने पारंपरिक धर्म को छोड़ ईसाईयत को अपनाने के बाद से ये संस्कार धूमिल होकर लुप्तप्राय से हो गए हैं ।

जेलियांग समाज में मानव जीवन के अनिवार्य वैयक्तिक संस्कारों के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसे संस्कार या परंपराएँ भी हैं, जिन्हें सामाजिक जीवन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है। इनमें मुख्यतः किसी बालक या बालिका का *खंग्च्यू-ल्युच्यू* सदस्य निर्धारण, विवाह हेतु वर या वधू के चयन की परंपरा, *चेमन-चपौलुत* संबंधी जिम्मेदारियाँ, पैतृक घर एवं उसकी संपत्ति का अधिकारी, *चेमौ-चेमंग* के अंतर्गत ग्राम से निष्कासन, कृषि-कार्यों के अंतर्गत *चेहुत एवं चेकू-कूबो*, शिकार में प्राप्त मांस-मछलियों या उत्सवों में काटे गए पशु मांस का परिजनों में वितरण के अंतर्गत *अलान-थक-थ्युबो, मदोम्बो, गन्जन ल्युबो*, विवाहित बहन-बेटियों को विशिष्ट त्योहारों पर मायके से खाद्य वस्तुओं एवं मांस-मछलियों का भेंट, *चेमी-मैदम या चेमी मताई*, नवजात शिशु की माँ को दिया जाने वाला *मना-थिन्बो*, किसी खेल-कूद या शिकार में विशेष उपलब्धि पाने वाले योद्धा के द्वारा गाँव को दिया जाने वाला *रिमन* इत्यादि आते हैं ।

जेलियांग जनजाति के सामाजिक जीवन में नए गाँव की स्थापना तथा उसमें क्रियान्वित किए जाने वाले कर्मकांड अत्यंत महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं। यह परंपरा उन दिनों से मानी जाती है, जब ये बंजारों की तरह भ्रमणशील जीवन व्यतीत कर रहे थे। ऐसे में जब भी लोगों को ऐसा स्थान मिलता कि अमुक जगह गाँव बसाने योग्य है, तब वे अपनी परंपरा के अनुसार उस स्थान को साफ करके ग्राम-स्थापन की प्रक्रिया को आरंभ करते थे। नए गाँव को बसाने के लिए स्थान का चयन कई बातों को ध्यान में रखकर किया जाता था। तत्कालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ग्राम स्थल के चयन में सुरक्षा को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता था। ऐसा माना जाता है कि अन्य जनजातियाँ भी कबायली जीवन जीते हुए अपने निवास के लिए नए स्थान की खोज में लगे रहते थे। ऐसे में जब कोई समूह अपने से कमज़ोर लोगों के द्वारा बसाए हुए गाँव को देखते तब उस पर धावा बोल देते और उसपर अधिकार कर लेते या लूट-पाट करते थे। इसलिए जेलियांग परंपरा के अनुसार, गाँवों को ऐसे स्थान पर बसाया जाता था, जहाँ से आने वाले खतरे को आसानी से भाँपा जा सके। इसीलिए इनके प्रायः सभी प्राचीन गाँव किसी पहाड़ी श्रृंखला के श्रृंग पर बसे होते थे, जिसके एक तरफ खाई होती थी तो दूसरी ओर ढलान या कतिपय गाँवों में मैदानी क्षेत्र भी होते थे। प्राचीनकाल से ही जेलियांग समाज की प्रशासनिक व्यवस्था एक गाँव तक ही सीमित रही है, जिसके अंतर्गत आर्थिक, कृषि, सामाजिक एवं यहाँ तक कि संस्कारों की परंपरा भी प्रत्येक ग्राम-प्रशासन के अंतर्गत अपनी विशिष्टताओं के साथ विद्यमान रही है। इस तथ्य के आधार पर यह कहना गलत न होगा कि जेलियांग समाज का गाँव ही अपनी संप्रभुता की दृष्टि से एक पूर्ण इकाई होता था, जिसकी प्रशासनिक व्यवस्था में चेवांग/हेग्वांग, सिंकू तथा अपईमै की प्रणाली महत्त्वपूर्ण रही है।

जिस प्रकार से प्रत्येक जेलियांग नागा गाँव प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से स्वतंत्र इकाई हुआ करता था, उसी प्रकार कुछेक बातों को छोड़कर आर्थिक दृष्टि से भी वह आत्मनिर्भर होता था। इनकी अर्थ व्यवस्था उनकी भूमि तथा वन्य उत्पादों पर निर्भर थी। ये लोग अपनी आजीविका चलाने के लिए मुख्यतः कृषि कार्य करते थे। साथ ही, ये पशुपालन, बागवानी, शिकार तथा कुछ अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यापारिक लेनदेन पर भी निर्भर होते थे। समय के साथ-साथ व्यवसाय के इन रूपों में भी बदलाव अवश्य आए हैं। परंतु अधिकांश गाँवों में आज भी पारंपरिक कृषि अर्थात् *झूम-कृषि* पद्धति को जीविकोपार्जन के प्रमुख साधन के रूप में देखा जा सकता है। समय के साथ सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के परिणामस्वरूप गाँवों में रहने वाले अधिकांश लोग यह सोचते हैं कि ग्रामीण जीवन की अपेक्षा शहरी जीवन आरामदायक एवं सुविधाजनक है। इसीलिए अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के सपने संजोए वे गाँव छोड़कर शहरों की ओर पलायन भी करते जा

रहे हैं। वास्तव में, यह बात कुछ हद तक सच भी है, क्योंकि गाँवों में रहकर पारंपरिक झूम-कृषि तथा वन्य-उत्पादों के आधार पर जीविकोपार्जन करना आज की पीढ़ी के लिए आसान नहीं रहा है। इसके पीछे यह भी सच है कि वर्तमान पीढ़ी के लोग अपने पूर्वजों की तरह न तो मेहनतकश रह गए हैं और न ही उनकी ऐसी शारीरिक क्षमता है कि धूप-बरसात को सहकर वे अपने पुरखों की तरह आह्लादित व स्वस्थ रह सकें।

नागा जनजातियों के लोक गीतों एवं लोक कथाओं के विश्लेषण के बाद निष्कर्षतः यह भी उल्लेखनीय हो जाता है कि जीवन के प्रति लोक के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही दृष्टिकोणों से प्राप्त अनुभवों को आधार बनाकर इन्होंने अपने इन साहित्यिक विधाओं को मूर्त रूप दिया, जिनमें जीवन के विविध फलक व्यंजित हुए हैं। लोक कथा तथा लोक गीत जैसी प्रमुख विधाओं के अतिरिक्त यहाँ कतिपय समाज में उपलब्ध लोक गाथाओं में, जहाँ जीवन के विस्तृत एवं विविध पक्ष व्यक्त हुए हैं, वहीं लोकोक्तियों एवं कहावतों के माध्यम से जीवन के गूढ़ तथ्यों एवं मूल्यों को सूत्रों के रूप में पिरोया गया है। यद्यपि ये सभी सामग्रियां लिखित एवं व्यवस्थित रूप में बहुत कम ही प्राप्त हुए, तथापि साक्षात्कार के माध्यम से, कतिपय पुस्तकों एवं पत्रिकाओं में छपे लेखों तथा इंटरनेट में उपलब्ध विषय-वस्तुओं के आधार पर लोक साहित्य में व्यक्त जनजातीय जीवन को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। यह विश्वास किया जाना चाहिए कि इनके साहित्य की प्रत्येक विधा में जीवन के कुछ न कुछ पुट एवं रंग प्राप्त हो ही जाते हैं, क्योंकि इनकी रचना का आधार ही जीवन तथा उससे उत्पन्न विविध आयाम हैं। वैसे तो लगभग सभी नागा जनजातियों का लोक साहित्य जीवन के स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों ही पक्षों के यथार्थ को अभिव्यंजित करते हैं। फिर भी जिस प्रकार शिष्ट साहित्य में काव्यशास्त्रीय तत्वों के माध्यम से काव्य को और अधिक गौरवान्वित किया जाता है, उसी प्रकार यहाँ के लोक साहित्य-विशेषतया, कथाओं में भी कल्पना तत्त्व को प्रधानता दी गयी है। परिणामतः प्रत्यक्ष लौकिक जीवन से परे अनेक तथ्य यहाँ के लोक गीतों एवं कथाओं में देखे जा सकते हैं। इसके पीछे यह तथ्य होना लाजिमी है कि लोक में मनोरंजन को साहित्य का प्रमुख उद्देश्य मानते हुए विविध विधाओं की रचना में लोक-रंजन के लिए ऐसे तत्त्व भी जोड़े जाते रहे हैं, जो उनके यथार्थ जीवन से परे मनोहर एवं अतिरंजित से लगते हैं। कुछ जनजातियों में लम्बे गीतों की परंपरा रही है, जिनमें गीतकारों ने अपने जीवन की कहानी को गीत के रूप में व्यक्त किया है, जिन्हें गीत न कहकर गाथा भी कहा जा सकता है।

नागा जनजातियों के लोक-गीतों में भी जीवन की अनुभूतियों एवं कल्पनाओं के आधार पर विविध मानसिक स्थिति एवं शारीरिक कार्य-व्यापार के विविध रूप अभिव्यक्त हुए हैं। अनुभूति एवं क्रियाशीलता की विविधता के कारण ही इन जनजातियों में लोक गीतों के विभिन्न स्वरूप एवं प्रकार

देखे जा सकते हैं। यहाँ के लोक गीतों में प्रायः छोटे गीतों में ही विविधताएं अधिक पाई जाती हैं तथा उनके गायन में भी आवृत्तियाँ पाई जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन लोक गीतों में मुखड़ा या अंतरा का भेद नहीं पाया जाता है। इसलिए गायक जन उसे बार-बार दोहराते हुए गाते हैं और इन्हें प्रायः सामूहिक रूप में गाते हैं। लोक में प्रचलित 'लुइ-थेंग' अर्थात् लम्बे गीत, आकार की दृष्टि से अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं, जिनमें कवि या गायक के जीवन की घटनाओं का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में वर्णन होता है। इस प्रकार के गीतों में वह अपने सुख-दुःख, सफलता-असफलता, आकांक्षाओं के साथ-साथ मृदु एवं कटु स्मृतियों को संजोते हुए अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। ऐसे गीतों में कवि अपनी प्रेम गाथा भी सुनाता है, तो कभी शत्रु-संहार में कलम किए गए शत्रुओं के सिरों को लेकर आत्म-प्रशस्ति भी करता है। कुछ गीतों में दैव के मारे प्रेम में असफल एवं पारिवारिक जीवन की निरीहता को व्यक्त करते हुए भी गीत गाए जाते हैं। छोटे गीतों के विपरीत लुइथेंग प्रायः एकल में तथा कभी-कभी युगल में भी गाए जाते हैं। इन गीतों को एक ही आवृत्ति में गाया जाता है। गीतों में व्यक्त भावों के आधार पर स्त्रियों एवं पुरुषों के द्वारा अलग-अलग प्रकार के गीत गाए जाने की परंपरा रही है। यहाँ के गीतों में जीवन के प्रेम-प्रसंग व्यापक रूप में व्यक्त होते हैं, जिनमें संयोग एवं विरह दोनों ही भावनाएं प्रकट हुई हैं। शृंगारिक प्रेम के अतिरिक्त इनमें अपने गाँव, अपनी माटी अथवा अपने देश के प्रति प्रेम की भावनाएं भी प्रबलता से प्रस्फुटित हुई हैं। कुछ गीतों में प्रशस्ति के भाव भी पाए जाते हैं, जिनमें स्त्री-सौंदर्य प्रशस्ति तथा विशिष्ट-अनुष्ठानकर्ता जजमान की प्रशस्तियाँ होती हैं। स्त्री सौंदर्य के गीत प्रायः एकल या युगल में गाए जाते हैं, तो किसी जजमान की प्रशस्ति में जन-समूह के द्वारा हर्षोल्लास के गीत गाए जाते हैं। कुछ लम्बे गीतों 'लुइथेंग' में आत्म-प्रशस्ति के भाव भी होते हैं। परंतु इस प्रकार के भाव बिरले ही होते हैं। जब कोई व्यक्ति अपने जीवन में विशिष्ट उपलब्धियाँ प्राप्त करता है या युद्ध में शत्रु को मारकर उसका सिर काट लाता है या फिर शिकार में भालू, शेर, जंगली सूअर जैसे हिंसक पशुओं का शिकार कर लेता है, तब वह अपनी गौरव-गाथा को लोगों के सामने प्रस्तुत करने के लिए लम्बे गीतों के माध्यम से आत्म-प्रशस्ति के गीत गाता है।

जेलियांग जनजाति में लोक-गीतों की परंपरा विविधताओं से परिपूर्ण है। गीतों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ये अपनी विशिष्टताओं के साथ अपने समुदाय के जीवन प्रणाली को आत्मसात करते हुए लोकरंजन करते रहे हैं। कालांतर में सामाजिक जीवन में परिवर्तन के साथ-साथ सांस्कृतिक दृष्टिकोण में बदलाव आने के कारण यहाँ का लोक-साहित्य अपनी जीवन्तता को खोता-सा प्रतीत हो रहा है। फिर भी सुदूर ग्रामांचलों के लोक-जीवन में आज भी यह जीवंत है। इस समाज में लोक-जीवन के सभी आयामों एवं पहलुओं से संबद्ध हर्षोल्लास, विषाद, संघर्ष, प्रशस्ति एवं गौरव सम्बन्धी असंख्य

गीत गाए जाते हैं। गीतों की विविधताओं को देखते हुए इन्हें इनके स्वरूप, गायकों की संख्या, गाए जाने के समय, गायकों की अवस्था, गायकों के लैंगिक आधार और उनमें व्यक्त भाव आदि के आधार पर वर्गीकृत करके सहजतापूर्वक बोधगम्य बनाने का प्रयास इस शोध-कार्य में किया गया है। आकार या स्वरूप के आधार पर लम्बे गीत एवं छोटे गीत, गायकों की संख्या के आधार पर एकल, जुगल एवं सामूहिक गीत, अवस्था के आधार पर बच्चों एवं वयस्कों के गीत, गाये जाने के समय के आधार पर कृषि कार्य गीत, त्यौहार/उत्सव के गीत, विवाह के गीत, प्रार्थनाएँ और विशिष्ट अनुष्ठान के गीत तथा भावों के आधार पर प्रेम विषयक, भक्ति परक, पर-प्रशस्ति, आत्मप्रशस्ति गीत देखे जा सकते हैं।

जेलियांग लोक गीतों में निहित भावों को देखते हुए यह कहना अनुचित न होगा कि इनमें उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन के मार्मिक सौंदर्य की व्यापक एवं गहराई के साथ अभिव्यंजना हुई है। लोक ने अपने गाँव, अपनी माटी के प्रति अपार प्रेम तथा लगाव दर्शाते हुए गाँव की जमीन से बिछुड़े, नगरों में जाकर बसे लोगों को वापस आकर गाँव में बसने का आह्वान इन गीतों में किया है। प्रकारांतर से यह कहा जाना चाहिए कि जिस राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की बात आज की जाती है, उसका प्रादुर्भाव सदियों पूर्व लोकमानस में हो चुका था। अंतर इतना ही है कि ग्राम-लोक की भौगोलिक परिसीमा के संकुचन के कारण इन भावों को सार्वभौमिकता प्राप्त नहीं हुई, अन्यथा आज की व्यापक राष्ट्रीयता इसी लोक मानस के उपज की परिणति है ऐसा माना जाना चाहिए। इस प्रकार के गीतों में व्यक्त कुछ ऐसे भाव भी हैं, जिनमें गाँव छोड़कर अपने जीविकोपार्जन की खोज में बाहर चले गए लोगों के प्रति गाँव की उपेक्षा का आरोप लगाते हुए लोक ने अपनी पीड़ाओं को प्रकट किया है। वे गीतों में कुछ इस प्रकार कहते हैं- *स्वदेश की उपेक्षा करने वाले शर्मिंदा होंगे। बड़ी लंबी है जिंदगानी, उसे निभानी होगी। परदेसी फूलों के आभासी रंग दिखलाकर उसे बेचने वाले पछतायेंगे, (क्योंकि) अपना गाँव परदेस से अच्छा है। धन-धान्य से परिपूर्ण स्वदेश छोड़ जाने वाले, परदेस में ब्याही दुहितायें (चाहते हुए भी) वापस नहीं आ पा रहीं हैं।* इस गीत में यह कहा गया है कि अपने गाँव की उपेक्षा करके जो लोग परदेश चले जाते हैं, उन्हें बाद में पछताना पड़ता है, क्योंकि बाहरी दुनिया की चमक-दमक में रहते हुए भी किसी न किसी दिन उन्हें अपने लोगों एवं गाँव की याद आती ही है। लेकिन उनके लिए गाँव और वहाँ के लोग बहुत पीछे छूट चुके होते हैं। सर्वगुण संपन्न स्वदेश का परित्याग करके, परदेस में ब्याही दुहितायें (चाहते हुए भी) वापस नहीं आ पा रहीं हैं।

जेलियांग सामाजिक संरचना में 'खंग्चू' एवं 'ल्युच्यू' को महत्त्व दिए जाने के साथ ही इनके गीतों में भी अपने 'खंग्चू' एवं 'ल्युच्यू' के प्रति लगाव तथा उसे अन्य मोरुंग से श्रेष्ठ बताने वाले मनोभावों को अभिव्यक्ति देना इस बात को प्रकट करता है कि उन दिनों युवकों में अपने मोरुंग को गौरवान्वित

करने की होड़ लगी रहती थी। प्रकारांतर से अपने मोरुंग की सदस्य-संख्या को बढ़ाना भी सामाजिक प्रतिष्ठा की बात होती थी, क्योंकि जितने अधिक सदस्य होते थे, उतनी ही प्रभावी ढंग से मोरुंग के संचालन में सुचारुता लाने के साथ-साथ ग्रामीण-जीवन के कार्य-व्यापारों एवं कतिपय विषयों के निर्णय में भी प्रभावी भूमिका के आसार बन जाते थे। संभवतः यही कारण है कि जब कोई दुल्हन बनी युवती अपने ल्युच्यू से सारे रिश्ते-नाते तोड़कर विदा होती है, तब उसकी सभी सहेलियां भावुक हो उठती हैं। इस प्रकार के अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों में लोक ने अपनी भावुकता को प्रकट करने के लिए प्राकृतिक उपादानों के उपमानों का प्रयोग करते हुए उनके भावों को अधिक गहराई प्रदान की है। गीतों के कहन कुछ इस तरह से गढ़े गए हैं- *क्षितिज पर डूबता चाँद क्षीण होता दिखता है, लेकिन जब अगली सांझ पुनः स्वच्छ एवं प्रकाशवान होकर उदित होता है, तब ऐसा लगता है कि वह अपनी केंचुली उतारकर आया है। हम युवक-युवतियाँ अपने यौवन को खोने के बाद चाँद की तरह पुनः आभावान नहीं बन सकते।* गीत के इन कथनों में लोकमानस की यह भावना भी निहित रहती है कि जिस प्रकार चाँद भोर में अस्त होकर भी शाम को पुनः उदित होता है, उसी प्रकार, काश हमारी विवाहित सहेलियाँ भी पुनः अपने यौवन को प्राप्त होकर हमारे साथ आ जातीं। जेलियांग लोक गीतों के विश्लेषण में ध्यान देने योग्य बात यह है कि इन्होंने अपने गीतों में सृष्टि के सबसे तेजस्वी आकाशीय पिंड सूर्य को छोड़ रात्रि के समय दिखने वाले चाँद, तारे, ध्रुवतारे, सप्तर्षि, आकाशगंगा इत्यादि को उपमानों के रूप में प्रयुक्त करते हुए इन्हें अपने गीतों में अधिक महत्त्व दिया है। इस संदर्भ में यह तर्क दिया जा सकता है कि किसी भी त्योहार-उत्सव में गीत-नृत्य के सामाजिक-समारोह प्रायः देर रात तक चलती थी और कभी तो इन समारोहों में ही पूरी रात बिता देते थे। इसीलिए संभवतः इन्होंने रात्रि-संगिनी इन पिंडों को अपने गीतों में अधिक स्थान दिया। यह भी उल्लेखनीय है कि इनके गीतों में ध्रुवतारा एवं सप्तर्षियों को 'तिंगसांग्पुई' तथा 'चेगन की ल्युना' जैसे स्त्रीवाचक नाम देकर इन पिंडों के सौंदर्य एवं आभा को स्त्री-सौंदर्य में आरोपित किया गया है।

जेलियांग लोक गीतों में अभिव्यक्त भावों के आधार पर इनके विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि इनके उद्भव का मूल आधार ही प्रेम है। इसीलिए हर्षोल्लास, शोक, विषाद, विदाई और यहाँ तक कि कृषि-कार्य के गीतों में भी प्रेम को ही प्रधान भाव के रूप में स्वीकारा गया है। हर्षोल्लास के गीतों में तो प्रेम है ही, यदि कोई शोक गीत गा रहा है, तो उसके मन में अपने किसी प्रिय से बिछुड़ जाने का अवसाद लिए गीत प्रस्फुटित होता है, जिसके मूल में उस 'बिछुड़े' के प्रति प्रेम भाव छलकते हैं। विवाह-गीतों में किसी दुल्हन के स्वागत में गाए जाने वाले गीतों में यदि परिवार की नई सदस्या के लिए प्रेम भाव है, तो विदाई के गीतों में, अपने बचपन के घर से सदा के लिए जाती, उसी दुल्हन से

बिछुड़ने के विरह स्वर में भी प्रेम तत्त्व की ही प्रधानता होती है। कृषि-कार्य के गीतों में यदि किसी बाला के श्रम-जनित सुख-कपोलों पर स्वेद कण के छलकते सौंदर्य का वर्णन किया जाता है तो वह भी प्रेम की अभिव्यक्ति है और वसंत के आगमन पर शुष्क दिनों में सूखते ग्रामीण जल-स्रोत को छोड़ प्रेमी जोड़ों का गाँव से दूर जल-प्रपातों में स्नान करते हुए परिहास करने के मूल में भी प्रेम-भाव ही व्यंजित होता है। किसी युवती के सौंदर्य पर मोहित हो, यदि किसी पुरुष के कंठ से उसकी प्रशस्ति में गीत गुंजित होते हैं या फिर कोई युवक आत्म-प्रशस्ति के गीतों से किसी युवती को लुभाने का प्रयास करता है तो भी उसके मूल में प्रेम ही होता है। यदि लोक मानस अपने गाँव-अपनी माटी की प्रशंसा में उसे किसी राजे-महाराजे की अट्टालिकाओं से भी अधिक सुंदर बताता है, तो देश-प्रेम है और वही लोक यदि अपने ग्रामांचल की उपेक्षा करके परदेश में बसे लोगों के प्रति उलाहना के गीत गाते हैं, तो उसके मूल में भी देश प्रेम है। इस प्रकार यह कहना असंगत नहीं है कि जेलियांग लोक गीतों की आत्मा प्रेम-तत्त्व है, जिसके बिना इनमें जीवन का संचरण असंभव- सा है। पशु-पक्षियों, अन्य जीव-जंतुओं, नदी, जल या चाँद इत्यादि प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से मानव मन के भावों को अभिव्यंजित इन गीतों में भले ही शिष्ट साहित्य की तरह शिल्प-तत्वों की सुदृढ़ता एवं पूर्णता न पाई जाती हो, फिर भी भावनात्मक दृष्टि से इनमें प्रत्यक्ष अनुभूतियों के आधार पर सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन के व्यापक एवं गूढ़ रहस्य प्रतिबिंबित होते हैं।

नागालैंड की लोक कथाओं में लोक जीवन का विशद एवं व्यापक चित्रण हुआ है, जिनमें नागा जनजातीय जीवन की संपूर्ण छवि स्पष्ट रूप से झलकती है और सभी नागा जनजातियों में ये पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक स्तर पर ही हस्तांतरित होती आई है। कथाकारों ने मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए जहाँ हास्य को कथा का एक महत्वपूर्ण तत्त्व माना है, वहीं नैतिक शिक्षा एवं न्याय को भी ध्यान में रखते हुए कथाओं को मूर्त रूप दिया है। कहना न होगा कि यहाँ की लोक कथाओं में कल्पना के पुट का अभाव है बल्कि जिस प्रकार नैतिकता को ध्यान में रखते हुए अंत में बुराई की हार तथा भलाई की जीत को दिखाया जाता है, उसी प्रकार मानसिक तुष्टि के लिए अधिकांश कथाओं को कल्पना का पुट देकर सुखान्त बनाया गया है। लोक में प्रचलित कथाओं में कहीं मनोरंजन के उद्देश्य से हास्य तत्वों को प्रमुखता दी गई है, तो कहीं परियों अथवा राजकुमारियों की मनोहर कथाओं में उनका विवाह निर्धन एवं असहाय-अनाथ युवक से कराकर लोक में दुखी, निराश्रित एवं निराश लोगों के मन में सांसारिक जीवन के प्रति राग एवं आस्था उत्पन्न करने के प्रयास किए गए हैं। कुछ दुखांत लोक कथाओं की भी परंपरा रही है। ऐसी कथाओं में प्रताड़ित पात्र मानवीय जीवन से परेशान एवं निराश होकर मानवेतर किसी पक्षी अथवा पशु योनि में स्वयं को परिवर्तित कर लेता है। कभी-कभी ऐसे पात्र मानवेतर योनि में रहकर

उन आततायी पात्रों से बदला लेता है, जिनके कारण उसे अपनी योनि बदलनी पड़ी थी और कभी तो वह स्थायी रूप से समाज में रहकर लोगों को न्याय प्रदान करने का कार्य करता है। यहाँ की जेलियांग जनजाति में प्रचलित 'पेपुई तेनु' नामक एक लोक कथा के अनुसार अपनी सौतेली माँ के द्वारा किए गए अमानवीय व्यवहार तथा प्रताड़ना से परेशान होकर एक युवक अपनी प्रेमिका के प्रेम को अनिच्छा पूर्वक त्यागते हुए एक 'धनेश' पक्षी का रूप धरकर आसमान में उड़ जाता है। उल्लेखनीय है कि कुछ वर्षों बाद जब वह उसी पक्षी के रूप में उड़ते हुए अपने गाँव वापस आता है, तब अपनी सौतेली माँ से बदला लेता है तथा अपनी पूर्व प्रेमिका, जो कि अब किसी और से शादी करके एक बच्चे की माँ बन चुकी होती है- को अपना सबसे सुंदर पंख देकर उड़ जाता है। इसी से मिलता-जुलता सुमी जनजाति में धनेश पक्षी की उत्पत्ति को किविघो नाम के निर्धन लड़के एवं कहली नाम की संपन्न परिवार की लड़की के प्रेम के रूप में सुनाया जाता है, जिसमें प्रेमी अपनी प्रेमिका के लिए फल तोड़ने के लिए पेड़ पर चढ़कर पुनः उतर नहीं पाता है और वहीं से वह धनेश पक्षी बनकर उड़ जाता है। यहीं से ये लोग धनेश पक्षी की उत्पत्ति मानते हैं।

कल्पना एवं नैतिकता के साथ-साथ मानव जीवन की सामान्य भावनाओं तथा उसके विकारों को व्यक्त करने वाली अनेक ऐसी घटनाएं भी यहाँ की लोक कथाओं में प्राप्त होती हैं, जिन्हें हम रोजमर्रा अथवा सर्वसाधारण के दैनिक जीवन में देखते हैं। ऐसे में, जहाँ एक ओर प्रेम, आदर, स्नेह, ममता, सौंदर्य, परस्पर बंधुत्व तो दूसरी ओर लालच, घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, अहंकार तथा वैमनस्यता आदि मनोविकारों को प्रकट करने वाली अनेक ऐसी घटनाएं इनकी लोक कथाओं में प्राप्त होती हैं, जिन्हें हम जन सामान्य के जीवन से जोड़ सकते हैं या यों कहें कि जिन भावनाओं, खुशियों, दुखों, संघर्षों एवं जीवन कार्य-व्यापार को हम सामाजिक जीवन में देखते हैं, उनमें से अधिकांश ऐसे फलक हैं, जो यहाँ की लोक कथाओं में प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त हुए हैं। उदाहरण के रूप में यहाँ प्रचलित एक कहानी 'बेरहम सौतेली माँ' के अनुसार, किसी गाँव में 'लुन्सो' नामक युवक पर सभी लड़कियाँ मरती थीं, पर उसने शोजिला नामक एक निर्धन परन्तु सुशील युवती से शादी कर ली, जिससे जलकर मुखिया की घमंडी एवं बिगड़ी हुई बेटी 'होजी' ने कुछ वर्षों बाद शोजिला की हत्या कर दी और स्वयं लुन्सो से ब्याह करके उसके पुत्र छिपोंग एवं पुत्री त्सयन्ला की सौतेली माँ बन बैठी। कुछ वर्षों के बाद उसने दोनों बच्चों को भी जंगल में छोड़ दिया, ताकि वे हिंसक पशुओं के शिकार बन जाएं, पर वे दोनों बच जाते हैं तथा बड़े होकर अपना ऐसा बदला लेते हैं कि होजी को ही हिंसक पशुओं का शिकार बनना पड़ता है। इस कहानी से यह स्पष्ट होता है कि नागा लोक में जहाँ लुन्सो एवं शोजिला जैसी दंपतियों का प्रेम है, वहीं होजी का ईर्ष्या एवं लोभ भी विद्यमान है। इसमें शोजिला का अपने बच्चों के लिए ममता एवं स्नेह है तो

होजी का अपने सौतेली संतानों के प्रति निर्ममता और क्रूरता है। लुन्सो चाहता था कि उसके बिन माँ के बच्चों को माँ का प्यार मिल जाए, पर वही चाहत उनके जीवन को और अधिक कष्टमय बना देता है। परन्तु यहाँ यह भी दिखाया गया है कि होजी जैसी सौतेली माँ को छिपोंग एवं त्सयन्ला के माध्यम से ऐसी सज़ा मिलती है कि उसे अपने सभी बुरे कर्मों का फल मिल जाता है। ऐसी कहानियों के माध्यम से लोक को जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना करने तथा जीवन के संघर्ष में आगे बढ़ने की प्रेरणा दी जाती है ऐसा मानना चाहिए।

लोकसाहित्य में लोकगीतों के बाद कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। इनका प्रचलन लोकरंजन के उद्देश्य से ही किया जाता रहा है। कथाओं का वाचन प्रायः वृद्ध महिला के द्वारा छोटे बच्चों के समक्ष करने की परंपरा रही है। जब समाज कृषि-कार्य में व्यस्त होता था और किसी एक बूढ़ी काकी को गाँव के बच्चों की देख-रेख की जिम्मेदारी दी जाती थी, तब दोपहर के समय इन्हीं कथाओं के माध्यम से वह बच्चों का मनोरंजन तथा शिक्षा देने का कार्य भी करती थी। लोक कथाओं में सृष्टि के आरंभ, सामाजिक, प्रेम-विषयक एवं सांस्कृतिक तत्व प्रधानता के साथ प्राप्त होते हैं। मनोरंजन की दृष्टि से कभी-कभी हास्य परक कथाओं का भी प्रचलन रहा है। कुछ कथाओं में मनोरंजन के साथ-साथ उपदेशात्मक तत्व भी पाए जाते हैं। कुछ कथाओं में परियों के मनोहर रूप उनके चमत्कारों के माध्यम से किसी अनाथ बालक का सुखी-सम्पन्न हो जाना सामान्य बात रहती है। कुछ कथाओं में दक्षिण भारत में प्रचलित तेनालीराम की मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद तत्वों की विद्यमानता रहती है। इन्हें समाज ने खुद रचा या तेनालीराम की कथाएं ही उड़ते-उड़ते आ पहुंची यह कहना कठिन है। जेलियांग लोक-कथाओं में प्रेम अभिन्न रूप से पाया जाता है। इन कथाओं में भाई-बहिन, पिता-पुत्र, माता-पुत्री, पुत्र-माता और पति-पत्नी के बीच सात्विक प्रेम की भावनाओं को आसानी से देखा जा सकता है। इसके साथ ही इनमें लोकमंगल की भावनाओं के भी पुट पाए जाते हैं। इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि विषय-वस्तु की दृष्टि से लोक-कथाओं में भी लगभग वे ही तत्व हैं, जो शिष्ट साहित्य की कहानियों की है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुसार कथा-तत्वों में बदलाव भी देखे जा सकते हैं।

जेलियांग लोक कथाओं के अंतर्गत पुरा कथाएँ, मनोहर कथाएँ, अनाथों से संबंधित कथाएँ, वीर योद्धा संबंधी कथाएँ, शिक्षाप्रद कथाएँ, पशु पक्षी संबंधी कथाएँ तथा हास्य व्यंग्यात्मक एवं छोटे बच्चों के लिए अति लघु कथाएँ प्रायः सुनी और सुनाई जाने की परंपरा रही है। इन कथाओं के आदि स्वरूप पर यदि ध्यान दिया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों ने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर अपनी कल्पना शक्ति को उसमें जोड़ते हुए इनकी रचना की होगी और संभवतः समय परिवर्तन के साथ-साथ उनमें कुछ अन्य तत्व भी जुड़ते चले गए होंगे। आज भी जेलियांग लोक प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों एवं वनांचलों

में बस्ता है। अतः स्पष्ट है कि इन लोक कथाओं का उद्भव भी प्रकृति के प्रांगण में ही हुआ होगा। ऐसे में पुरा कथाओं में व्यक्त आदि पुरुष से लेकर पशु-पक्षी एवं मानव समाज के विस्तार तक इनकी लोक कथाओं में मानव एवं प्रकृति के बीच सहज समन्वय एवं एकाकार की प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। प्रकृति के बीच स्थित लोक की मानसिकता एवं उसकी कल्पनाशीलता के कारण ही मानव जाति ही नहीं बल्कि लोक के समक्ष प्रस्तुत सभी जीवों, पशु-पक्षियों, यहाँ तक कि कीड़ों-मकोड़ों को भी सामान्य रूप में मनुष्य जाति से समान भाषा में संवाद करते हुए दिखाना इनकी लोक कथाओं की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। इन कथाओं में कभी-कभी सजीव ही नहीं बल्कि प्रकृति में विद्यमान निर्जीव मानी जाने वाली वस्तुएँ तथा प्राकृतिक उपादान नदी, पहाड़, घाटी, वृक्ष इत्यादि भी सजीव रूप धारण करके अन्य जीवों से अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करते हुए चित्रित किए जाते हैं।

किसी भी भाषा में लोकोक्तियों का प्रयोग निश्चित रूप से किया जाता है। लोकोक्तियाँ सामान्य लोगों के द्वारा स्थानीय बोलियों में दैनिक जीवन में प्रयुक्त होते हैं। इनकी उत्पत्ति ही इन्हीं दैनिक जीवन की परिस्थितियों एवं संदर्भों से होती है। इनका प्रयोग प्रायः किसी विशेष वर्ग या क्षेत्रीय दायरे में होता है। इसमें स्थान विशेष के भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं भाषिक तत्त्वों की झलक होती है। इन वाक्यों में जनसामान्य के अनुभवों का निचोड़ या सार होता है। लोकोक्ति का अर्थ लोक के द्वारा कथित एवं स्वीकृत वे वाक्य या वाक्यांश होते हैं, जो किसी निश्चित भाव के लिए व्यंजित होते हैं। जेलियांग भाषा में भी ऐसे अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जो जीवन के हर पहलू से संबंधित होते हैं। लोक कथाओं की तरह ही ये लोकोक्ति भी सर्वसामान्य लोक की रचना होती है। जेलियांग लोक-उक्तियों में कुछ तो समाज का सही मार्ग-दर्शन करने के लिए, तो कुछ उक्तियाँ हास्य-व्यंग्यात्मक पुट लिए मनोरंजक भी होते हैं। लोक में प्रचलित ये उक्तियाँ स्थानीय परिवेश एवं संदर्भ के लिए प्रयुक्त होते हुए भी कुछ तो इतने सारगर्भित हैं कि वे सार्वभौमिक भाव उत्पन्न करते हैं। जेलियांग लोकोक्तियों में जीवन से प्राप्त विभिन्न अनुभवों, पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं में व्यक्त जीवन के गूढ़ सार-तत्त्व व्यक्त होते हैं। इनमें लोक कथाओं के दृष्टांत के आधार पर निर्मित अनेक उक्तियों का प्रयोग किया जाता है, जिनमें प्रायः कथा-पात्रों के चरित्र के अनुसार ही उन उक्तियों के अर्थ समन्वित होते हैं। इनके अतिरिक्त, लोक-विश्वास एवं प्राकृतिक नियमों के आधार पर किसी बात की पुष्टि तथा भविष्य की संभावनाओं को व्यक्त करने के लिए भी इनके इन लोकोक्तियों में अनेक कथन कहे जाते हैं, जिनका उद्देश्य एक प्रकार से लोगों को सीख देने और अनपेक्षित परिणामों से बचने के लिए उन्हें आगाह करना भी होता है। इन लोकोक्तियों में मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु-पक्षियों के दृष्टांत को लेकर भी उक्तियों की

रचना की गई है। अतः लोकोक्तियाँ इनके साहित्य का एक प्रमुख घटक तो हैं ही, साथ ही भाषा को समृद्ध करने की दृष्टि से भी इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

नागा लोक-जीवन के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि इन लोगों ने बीहड़ जंगलों को अपने आदिग्राम-राज्य के रूप में परिवर्तित किया। जातीय समाज के विकास एवं जनसंख्या में वृद्धि के साथ-साथ उन्होंने नए स्थानों पर जाकर अपने गांव बसाए। जीवन को आगे बढ़ाने के प्रति अपने दृष्टिकोण तथा अपेक्षित पेशे को ध्यान में रखते हुए लोगों ने अपनी नई बस्तियों के लिए स्थान का चयन किया। इसीलिए अंगामी लोगों ने सीढ़ीनुमा खेती के लिए ढलान वाले स्थान को चुना और लोथा लोगों ने अपने पितरों की स्मृति में बनाए जाने वाले स्मारकों के निर्माण में प्रयुक्त पथरों के आधिक्य वाले स्थान को अपना निवास स्थान चुना। कुछ नागा जनजातियों ने अपनी सुरक्षा को प्राथमिकता देते हुए पहाड़ी शृंखलाओं के श्रृंग को अपनी बस्ती बनाई। इसी सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उन्होंने रेखीय रूप में बसाए गए बस्ती के दोनों ओर किलेबंदी करके ऊँचे-ऊँचे मुख्य-द्वार बनाए। कुछ लोगों ने अपने-अपने कुल के कॉलोनी के आधार पर अपने द्वारों को निर्मित किया। विशेष रूप से अंगामी नागाओं के बारे में उल्लेखनीय है कि ये लोग अपने-अपने खेल (कुल) के अनुसार ही एक गांव में कई सुरक्षा-द्वारों का निर्माण करते थे, जिनके अवशेष आज भी गांवों में देखे जा सकते हैं। नागा गाँवों में प्रशासनिक व्यवस्था के स्वरूप अपने आप में अद्वितीय रहे हैं। विभिन्न जनजातियों में यह स्वरूप अलग-अलग हैं, लेकिन अधिकांश में प्रजातांत्रिक स्वरूप स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। कोन्याक एवं अन्य पूर्वी नागाओं में गांव का मुखिया अत्यधिक शक्तिशाली एवं प्रभावी होता था, जिसके कारण वे कभी-कभी निरंकुश हो जाते थे। आओ लोगों में प्राचीन काल से ही 'पुतु-मेन्देन' के नाम से ग्रामीण प्रशासनिक समिति की व्यवस्था रही है, जिसका कार्यकाल एक पीढ़ी, अर्थात्- लगभग तीस वर्षों तक भी रहता था। इसी प्रकार, अंगामी लोगों में भी प्रशासनिक व्यवस्था लोकतांत्रिक थी, जिसमें प्रत्येक कुल से कुछ प्रतिनिधि चुने जाते थे। जेलियांग लोगों में कहीं चेवांग अर्थात्- राजा की परंपरा थी, तो कहीं सिन्कू अर्थात्- पुजारी ही गांव के धार्मिक-प्रशासनिक मुखिया के रूप में कार्य करते थे। पोचुरी लोक कथा के अनुसार 'चेखरा' नामक मुखिया अत्यंत निरंकुश हो गया था, जिससे गांव के सभी लोग पीड़ित थे। इसके विपरीत, यिम्ब्रुंग लोक कथा 'विलुप्त लंगा' के अनुसार गांव का मुखिया प्रजा का इतना बड़ा हितैषी था कि उसने ग्रामीण जन की सुरक्षा के लिए अपने पुत्रों तक का परित्याग कर दिया था। इस प्रकार, नागा समाज में प्राचीन काल से ही ग्रामीण प्रशासनिक व्यवस्था अत्यंत सुदृढ़ एवं समृद्ध रही है, जिसकी कुछ न कुछ छाप आज के 'विलेज काउंसिल' के स्वरूप में देखी जा सकती है।

सामाजिक जीवन की दृष्टि से नागा लोक पुरुष प्रधान समाज रहा है। परिवार समाज की छोटी एवं सशक्त इकाई रही है, जो आज भी अपनी जीवंतता के साथ प्रत्येक समाज में विद्यमान है। किसी भी गांव के अंतर्गत मोरुंग की परंपरा अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, जो युवकों एवं युवतियों के शिक्षण-प्रशिक्षण के केंद्र रहे हैं। यह प्राचीन काल से ही समाज-शिक्षा के माध्यम से लोक जीवन के मूल्यों को लोगों में संचारित करता रहा है तथा इसके माध्यम से ही लोक साहित्य की विरासत का मौखिक संस्करण संरक्षित होता आया है। पुरुष प्रधान समाज होते हुए भी स्त्री वर्ग को इस समाज में उच्च पदस्थ माना गया है। पुरुष वर्ग को जहाँ वीरता एवं बहादुरी के प्रतिमान के रूप में देखा जाता था, तो वहीं स्त्री वर्ग को सौंदर्य के प्रतीक के रूप में प्रतिस्थापित किया गया है। इसके साथ ही स्त्रियाँ, अपनी नैतिकता, शील एवं गृहस्थी के कार्य-कौशल के आधार पर भी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं। लोक कथाओं में चित्रित घटनाओं एवं लोक गीतों में अभिव्यक्त भावों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि पुरुष समाज के मन में सदा से ही स्त्री सौंदर्य के प्रति आकर्षण रहा है। इसलिए स्त्री सौंदर्य को अधिक गौरवान्वित करने की परंपरा इस समाज में हमेशा से रही है। पुरुष प्रधान नागा समाज की एक विशेषता यह है कि सभी नागा जनजातियों में पारंपरिक रूप से विवाह का प्रस्ताव पुरुष पक्ष की ओर से स्त्री पक्षों को जाता है और स्त्री पक्ष को उसे स्वीकारने या नकारने की पूर्णतया स्वतंत्रता रहती है। इसलिए पारिवारिक संबंध स्थापित करने में यहाँ सदा से स्त्री पक्ष का पलड़ा भारी रहा है। 'कैविंग' नामक गीतकार ने अपने एक लंबे गीत में अपनी प्रेयसी को जीवन-संगिनी बनाने में निष्फल रहने का बड़ा ही दुखद एवं मार्मिक वर्णन किया है। अंगामी लोक कथा के अनुसार, 'सोप्फुन्यो' नामक लड़की के सौंदर्य पर गांव के सभी युवक मोहित होते हुए भी उन सबको छोड़कर उसका किसी अन्य गांव में ब्याहा जाना समाज में स्त्री सौंदर्य की महत्ता को चरम तक ले जाता है। इसीलिए स्त्रियाँ नैतिकता एवं शील को अपना कवच बनाकर जीती हैं, क्योंकि यदि किसी विवाहिता के ऊपर चारित्रिक लांछन लग जाए या किसी पराये पुरुष के साथ उसका संबंध स्थापित हो जाए, तो कठोरतम दंड देकर उसका न्याय भी किया जाता है। ऐसी परिस्थिति में, उसे पति के घर से निष्कासित तो किया ही जाता है, संपत्ति का कोई भी भाग उसे नहीं दिया जाता और जीवन पर्यंत उस कलंक के साथ उसे जीना होता है। समाज में कभी-कभी स्त्री-सौंदर्य के कारण दो पुरुषों में टकराव की स्थिति भी बनती देखी जाती है। आओ लोक कथा 'जिना एवं एतिबेन' के अनुसार, एतिबेन के सौंदर्य पर मोहित होकर ही 'तेन्यूर' नामक संपन्न व्यक्ति ने अपनी आर्थिक मजबूती का सहारा लेकर प्रेमी जोड़े को अलग कर दिया, जिससे दो प्रेमियों को असमय मृत्यु को वरण करना पड़ा। यह कथा लोक में आर्थिक संपन्नता के प्रभुत्व को स्थापित करती है। इस प्रकार, लोक कथाओं के माध्यम से नागा सामाजिक जीवन को बड़े ही व्यापक रूप में चित्रित किया गया है। पुरुष प्रधान समाज के तर्क में अन्य जनजातियों से अलग 'यिम्बुंग' जनजाति की यह धारणा है कि

पुरुषों की छह आत्माएं होती हैं और एक स्त्री की पांच। इसीलिए समाज में पुरुष को स्त्रियों की अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठित माना जाता है।

नागा समुदाय प्राचीन काल से ही कृषि प्रधान समाज रहा है। अधिकांश जनजातियों में झूम कृषि और कुछ में सीढ़ीनुमा सिंचाई पर आधारित कृषि की परंपरा रही है। धान की खेती ही यहाँ की कृषि का पर्याय है। यहाँ की लोक कथाओं में धान की महत्ता को स्वीकारते हुए कहा जाता है कि मनुष्य ने चूहे की सहायता से किसी झील के बीचों-बीच उगे हुए धान के पौधे से बीज को प्राप्त किया था। इसलिए आज भी यहाँ की कुछ जनजातियों में 'चेम्यूजा' नामक चूहे को अपने अन्नागार या खेत में धान खाते हुए देखकर भी चोट नहीं पहुंचाई जाती है। लोग यह भी मानते हैं कि उसी के द्वारा हमें सबसे पहले धान के बीज प्राप्त हुए थे और उसके खाने से हमारे अन्नागारों में धान की कमी नहीं होती है। नागा लोक कथाओं में चित्रित सामूहिक कृषि-कार्य की परंपरा नागा समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है, जिसे आओ लोगों में 'अलोंजी' तथा जेलियांग लोगों में 'चेहुत या हेगुत' कहा जाता है। अलोंजी में 20 से 30 सदस्य होते हैं, जबकि चेहुत में अपेक्षाकृत कम संख्या में सदस्य होते हैं। दोनों ही रूप कृषि कार्य में परस्पर सहयोग एवं समन्वय के महत्वपूर्ण अंग हैं, जो सामाजिक जीवन में अपेक्षाकृत कमजोर एवं कम कुशल कृषकों के लिए वरदान सिद्ध होते हैं। कृषि कार्य की यह प्रणाली एक ओर लोगों को शारीरिक श्रम से पूर्ण कार्य में भी आनंद प्रदान करती है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक सहयोग के माध्यम से लोगों में सौहार्द्रता को बनाए रखती है। धान ही मुख्य फसल होने के कारण यहाँ के लोगों का मुख्य भोज पदार्थ चावल है, जिसके साथ मांस-मछलियों को भरपूर मात्रा में खाने की परंपरा रही है। इसलिए लोग शिकार, मछली पकड़ने के साथ-साथ पशु पालन को भी अपना अनिवार्य पेशा मानते हैं। पुराने दिनों में यहाँ के लोग चावल का उपयोग मादक पेय बनाने में भी प्रचुर मात्रा में करते थे। विभिन्न जनजातियों में इसके अलग-अलग नाम हैं। परंतु बनाने की प्रक्रिया लगभग एक ही है, जिसमें चावल को पकाकर या महीन कूटने के बाद उसमें गर्म पानी मिलाकर किण्वित किया जाता है। जेलियांग जनजाति में इसे जौ, दुइखी, जौडु तथा अंगामी लोगों में जुथौ, थुत्से इत्यादि नाम दिए गए हैं। चावल से इतर मक्का, बाजरा, कोंदो आदि अनाजों से भी इसे बनाया जाता है। कहा जाता है कि सबसे अधिक नशीली शराब कोंदो से बनती है। यहाँ की एक लोक कथा के अनुसार, 'चेखरा' नामक एक अत्याचारी एवं निरंकुश मुखिया से परेशान होकर गांव वालों ने उसे यह पेय इतना पिलाया कि वह हमेशा के लिए सो गया। जेलियांग लोक कथा 'अमांग जौ हुबो' का नामकरण ही 'जौ' के नाम पर है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि इस पेय का प्रयोग प्राचीन काल से करते रहे हैं। पुराने जमाने में लोग इसका उपयोग कृषि

कार्यों के श्रम से उत्पन्न शारीरिक थकान के शमन के लिए करते थे, पर आज लोग शारीरिक श्रम न करते हुए भी इसका खूब सेवन करते हैं, जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

कृषि प्रधान समाज होने के कारण नागा समाज के अधिकांश धार्मिक एवं सांस्कृतिक उत्सव एवं त्योहार कृषि-कार्य चक्र के आधार पर निर्धारित होते थे। पुराने जमाने में लोग त्योहारों की तिथियों का निर्धारण नक्षत्रों की स्थितियों को परखकर ही करते थे। विशेष रूप से चंद्रमा की स्थिति के अनुसार ही अधिकांश समाज में त्योहारों एवं उत्सवों को मनाने की परंपरा रही है। इससे पता चलता है कि नागा समाज के लोग दैनिक जीवन में चन्द्र पंचांग का अनुपालन करते हुए अपने सभी कार्यों को क्रियान्वित करते थे। इनके त्योहारों के सर्वेक्षण से पता चलता है कि भले ही विभिन्न जनजातियों में इनके अलग-अलग नाम दिए गए हों, उनमें बहुत से अनुष्ठान समान रूप में लोगों के द्वारा संपादित होते थे। अंगामी लोगों में सबसे महत्वपूर्ण त्योहार- 'सेक्रेन्यी', चखेसंग में 'सुक्रेन्यी' तथा जेलियांग लोगों में 'चेगाडी' शुद्धीकरण के पर्व के रूप में मनाए जाने की परंपरा रही है। यिम्खुंग जनजाति में प्रचलित 'मेतेम्रेओ' त्योहार एवं जेलियांग लोगों में 'चेगांखे' के दौरान सड़कों की मरम्मत के विशेष कार्य संपादित किए जाते थे। इसमें लोग खेतों, पनघटों एवं परस्पर गांवों को जोड़ने वाली सड़कों की सफाई, रास्तों के किनारे उगे हुए पौधों एवं झाड़ियों की कटाई-छँटाई करते थे। मेतेम्रेओ संपन्न होने के बाद ही यिम्खुंग लोगों के यहाँ शादी-ब्याह से संबंधित शुभ कार्यों को आरंभ किया जाता था। यही बात लोथा लोगों के 'तोखू इमोंग' त्योहार के संदर्भ में कही जाती है। इसी प्रकार जेलियांग लोगों के चेक्कक या हेकाक एवं यिम्खुंग लोगों के मेतेम्रेओ के दौरान अपने मृत परिजनों एवं पितरों की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की जाती थी। ऐसा माना जाता है कि इन त्योहारों के बाद यदि किसी परिजन की मृत्यु होती है, तो अगले वर्ष इस त्योहार के आने तक मृत आत्मा अपने परिजनों के साथ ही रहती है। इसलिए यह पर्व उन मृत आत्माओं को अंतिम विदाई देने के रूप में भी मनाया जाता है। नागा समुदाय के कुछ त्योहारों के संदर्भ में सामान्य बात यह भी है कि इन त्योहारों के आरंभ होने के बाद किसी बाहरी व्यक्ति को गांव में प्रवेश करने से वर्जित किया जाता था और न ही कोई गांव से बाहर जा सकता था। ऐसे त्योहारों एवं पर्वों के समय प्रायः सभी लोग अपने गांव में ही होते थे और यदि बाहरी व्यक्ति भी किसी कारणवश त्योहार के प्रारंभ में उस गांव की परिसीमा के भीतर रह जाता, तो उसे त्योहार के संपन्न होने के बाद ही गांव से निकलना होता था। वर्तमान में इन सभी त्योहारों की तिथियां अंग्रेजी कैलेंडर के अनुसार निश्चित की गई हैं, जिससे सरकारी दफ्तरों में अवकाशों को पूर्व सुनिश्चित किया जा सके। परन्तु नागा पारंपरिक जीवन एवं उनकी लोक अवधारणाओं को देखते हुए इन त्योहारों को अनुकूल परिस्थिति का ध्यान दिए बिना मनाना प्रकारांतर से इनकी महत्ता को नकारना ही है। नागा त्योहारों के संदर्भ में यह

भी उल्लेखनीय है कि ये लोग हर एक त्योहार में अपने आराध्य की पूजा-अर्चना किसी न किसी रूप में करते थे। इसलिए उनके मन में संसार के सृष्टि-कर्ता के रूप में ईश्वर की परिकल्पना स्पष्ट रही है। इसी आस्था के आधार पर वे अपनी इच्छा पूर्ति अथवा सुखी जीवन की कामना करते हुए उस आराध्य की प्रार्थना करते थे। इसलिए कुछ नृजाति वैज्ञानिकों के द्वारा ईसाईयत के आगमन के पूर्व तक नागा समुदाय को ईश्वर-परिकल्पना-शून्य बताना निराधार है। उन्होंने नागा समाज की धार्मिक भावनाओं को गहराई से जाने बिना ही इन बातों का उल्लेख कर दिया है। यह बात सही है कि नागा समाज में प्रकृति के विभिन्न उपादानों में दैवीय शक्ति की विद्यमानता पर विश्वास बना रहा है। लेकिन यह बात भी उतनी ही सच है कि ये लोग उस अदृश्य शक्ति पर भी विश्वास करते थे, जिसे संसार का निर्माता माना गया है। ख्रिस्तियुंडन जनजाति में प्रचलित 'महा बाढ़' एवं जेलियांग जनजाति में प्रचलित 'बंगलावांग' नामक लोक कथाओं के अध्ययन-विश्लेषण से इस बात का पता चलता है कि प्राचीन काल से ही इन लोगों में ईश्वर के अस्तित्व की अत्यन्त स्पष्ट धारणा रही है।

नागा लोक कथाओं के विश्लेषण से नागा लोगों में विद्यमान इस सृष्टि की रचना संबंधी धारणाओं एवं प्रागैतिहासिक काल के दौरान सामाजिक सभ्यता के विकास क्रम को भी कुछ सीमाओं तक रेखांकित किया जा सकता है। ख्रिस्तियुंडन लोगों में प्रचलित 'महा बाढ़' नामक लोक कथा से यह स्पष्ट होता है कि यहाँ के लोगों में प्रलय जैसी अवधारणा पर विश्वास था। महा बाढ़ के दौरान एक पहाड़ की चोटी पर लोगों के जाकर शरण लेने की घटना इस बात की ओर संकेत करता है कि सृष्टि में जीवों की पुनर्रचना के लिए ही बीज-स्वरूप कुछ जीवों ने वहाँ जाकर शरण ली थी। जेलियांग जनजाति में प्रचलित 'बंगलावांग' की कथा के अनुसार, जलमग्न धरती के ऊपर 'चिगेने' वृक्ष पर उसका शरण लेना प्रलय जैसी परिस्थिति की ओर इंगित करता है। इस प्रकार, इन लोक कथाओं में सृष्टि रचना संबंधी नागाओं की अवधारणा को स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है। यिम्खुंग लोगों में प्रचलित 'विलुप्त लंगा' तथा चखेसंग जनजाति में प्रचलित 'क्रूर भाभी' कथाओं से नागा समाज की सभ्यता के विकास-क्रम को रेखांकित किया जा सकता है। क्रूर भाभी कथा के अनुसार, चखेसंग लोगों के व्यापार, वह भी समुद्री रास्तों में बड़े-बड़े जहाज लेकर जाने वाली घटनाएं, इस बात की ओर संकेत करती हैं कि इन लोगों ने अपने सभ्यता के विकास-क्रम में कभी न कभी तटीय क्षेत्रों को भी अपना बसेरा बनाया था। इसी प्रकार, रेंगमा लोग भी यह विश्वास करते हैं कि उनके पुरखों ने कभी समुद्र के तट पर अपना राज कायम किया था। जेलियांग लोककथा 'अमांग जौ हुबो' के अंतर्गत सामाजिक जीवन के विविध पक्षों एवं पहलुओं का नियमन नागा समाज की सभ्यता के विकास का विशेष चरण में माना जा सकता है। इसी

जनजाति के ही नमुतुन से संबंधित लोक कथाएँ सामाजिक न्याय, नैतिकता एवं दैनिक जीवन में क्रियान्वित होने वाली गतिविधि संबंधी ज्ञान के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

नागा लोक में प्रचलित कथाओं में से कुछ ऐसी कथाएं भी हैं, जिन्हें ऐतिहासिक कथा भी कहा जा सकता है, क्योंकि ये कथाएँ अधिकांश समाज में वर्तमान स्थानों एवं आधुनिक परिवेश पर आधारित हैं। इनमें व्यक्त स्थान-विशेष की स्पष्टता एवं पात्रों के चरित्र-स्वरूप को देखते हुए अनायास ही उन्हें यथार्थ से जोड़ने का मन हो आता है। लिखित रूप में संरक्षित न होने के कारण ही इन कथाओं को लोक कथा का नाम दे दिया गया है, वरना लोक तो उन्हें आज भी अपने पुरखों की कथा अर्थात् इतिहास मानकर ही उनका वाचन-श्रवण करता है। ऐसी कथाओं के अंतर्गत अंगामी लोगों में प्रचलित 'मेहुविय एवं मोरुसा', 'सोप्फुन्यो', आओ लोगों में 'जिना एवं इतिबेन', जेलियांग में 'कैवींग (हैगुइंग)', 'त्रीम्स्वांगबे एवं ल्वाकेरेइबिले' जैसी कथाएं आती हैं। 'मेहुविय एवं मोरुसा' कथा के अंतर्गत केदिमा गांव के नाम का आना तथा मोरुसा के द्वारा मेहुविय का सिर काट लिया जाना इत्यादि बातें इस कथा को सामाजिक यथार्थ के अधिक निकट ले जाती हैं। इसी प्रकार, 'जिना एवं एतिबेन' की कथा में भी गांव के नाम स्पष्ट हैं, जो आज भी वर्तमान हैं और बाकायदा उनकी स्मृति में आज भी स्मारक बने हुए हैं। इस कथा में 'तेन्यूर' नामक धनवान व्यक्ति के द्वारा अपने धन बल का प्रयोग करते हुए जिना को उसकी प्रेमिका एतिबेन से अलग कर देना आओ समाज में आर्थिक रूप से सुदृढ़ व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा तथा प्रभाव को स्पष्ट रेखांकित करता है। इसी प्रकार, 'कैवींग' की कथा में व्यक्त 'त्र्यम' गांव एवं 'त्रीम्स्वांगबे' की कथा में चित्रित 'गाइली' गांव के परिवेश बहुत प्राचीन प्रतीत नहीं होते हैं। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि नागा समाज में प्रचलित बहुत सी लोक कथाएँ उनके पूर्वजों के जीवन की ही कथा हैं, जो लिखित रूप में संरक्षित न होने के कारण धीरे-धीरे अपने स्वरूप में परिवर्तन लाते चले गए। मौखिक परंपरा की इन कथाओं में समय-समय पर कथाकारों द्वारा उन्हें रोमांचक व सरस बनाने के लिए कुछ नई कड़ियाँ जोड़ दी गईं। इस प्रकार, यह माना जाना चाहिए कि सीधे सपाट लोक में प्रचलित पुरखों की ये कथाएँ रोमांच एवं विचित्रताओं से भर गईं। नागा लोक कथाओं में अभिव्यक्त 'सिर काटने की परंपरा' समाज के अत्यंत वीभत्स एवं भद्दे चित्र को प्रस्तुत करता है। लेकिन यदि इस परंपरा के मूल में जाएँ, तो यह पता चलता है कि किसी के सिर को काटकर धड़ से अलग करने की प्रक्रिया एक न्यायपूर्ण एवं तर्कसंगत आधार पर आरंभ हुआ था। इस संदर्भ में आओ लोक कथा के अनुसार, एक पेड़ से किसी चिड़िया ने फल को गिराया, पर उसे गिरगिट ने खाकर आरोप चींटी पर लगा दिया। जब गहराई से छानबीन की गयी, तब असलियत सामने आई। गिरगिट को सजा देते हुए चींटियों ने उसे काट-काटकर सिर व धड़ को अलग कर दिया तथा अपनी सच्चाई एवं विजय के साक्ष्य के रूप में भी

चींटियों ने मिलकर उसे उठाकर सभी जीवों के सामने प्रदर्शन किया। आओ लोग मानते हैं कि इस घटना को देखकर मनुष्यों ने भी न्याय करने के लिए किसी आततायी एवं अन्यायी के सिर को धड़ से अलग करने की प्रथा आरंभ की। काल परिवर्तन के साथ इस परंपरा के स्वरूप में भी बदलाव आए और धीरे-धीरे लोगों ने किसी शत्रु को ही नहीं, किसी भी अनजान व्यक्ति के सिर को काट लाने को भी अपनी वीरता का प्रतीक मान लिया और धीरे-धीरे यह परंपरा सबसे बुरी सामाजिक कुरीतियों में से एक बन गई। इस प्रकार, हम देखते हैं कि लोक कथाएँ नागा सामाजिक जीवन के विकास क्रम को अत्यंत ही व्यापक रूप में चित्रित करती हैं।

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

- Bareh, Dr. Hamlet (1970). Gazetteer of India, Nagaland, Kohima District. Calcutta: Sree Saraswati Press Ltd.
- Baruah, Bhaskar Dutta (2009). (Edit.)-Fables from the Misty Mountains-Folklore of the Nagas, Dept of Art and Culture, Govt. of Nagaland. ISBN:81-85921-66-0. Guwahati: LBS Publications.
- Boruah, B.K. (1993). NAGAMESE: The Language of Nagaland. New Delhi: Mittal Publications. First Edition. ISBN-81-7099-353-9.
- Bose, Swapnaa (2019). A Multi-Skill Course in English. (For Nagaland Board of School Education). Noida: Headword Publishing Company Pvt. Ltd. ISBN:978-93-87744-82-0.
- Bower, Ursula Graham (2002). Naga Path. Guwahati & Delhi: Spectrum Publications. ISBN 81-87502-56-8
- Cheng, Paupai (2003). Pau-Pai Lui Khuang. Guwahati: Heritage Foundation, Guwahati (on behalf of Zeliangrong Pau-Pai Cheng Association).
- Daime, Igianeing (2020). Zeme Herasam Benai Napoine Leu (Zeme Folktales & Nursery Rhymes). Haflong: Cultural Centre Haflong, CAD, Dima Hasao, Assam.
- Deka, Ram Chandra (2004). Treasure Northeast. Guwahati: Heritage Foundation.
- Down, Fredericks S (1983). Christianity In Northeast India. (History of Christianity in India.)
- Epao, Veprari (.....). From Naga Animism To Christianity. Dimapur: Hindustan Print-O-Print.
- Ganguli, Milada (1984). A Pilgrimage to the Nagas. New Delhi, Bombay and Calcutta: Oxford & IBH Publishing Co.
- Haikam, Pauning & Kapfo, Kedutso (2011). Zeme Folktales. Mysore: Central Institute of Indian Languages, Mysore.

- Haleng, Richard (2000). *The Naga Rapport- A tribute to the Naga Youths*. Dimapur: AMEUA Publications.
- Hangkia, Kipeilua (2011). *Ndam Chu Rasam Kuak*. Haflong: Prinsol Publication (for Kipeilua Hangkia Self Help Group.)
- Haokip, James Vungjangam (2010). *Mythology of North-East India*. Shillong: Don Bosco Centre for Indigenous Culture. ISBN: 81-85408-00-45.
- Hemang, Irangumle (2021). *Tales From Gaili: A Selection of Zeliang Tribe's Folklore and Children's Tales*. New Delhi: Zubaan Publishers Pvt. Ltd.
- Hutton, J.H. (1921). *The Angami Naga*. London: Macmillan and Co. Limited.
- Jamir, Senayangba Chubatoshi (S.C. Jamir) (2000). *Bedrock of Naga Society*. Kohima: Nagaland Pradesh Congress Committee.
- Joshi, Hargovind. (2001). *Nagaland: Past and Present*. New Delhi: Akansha Publishing House.
- Kamei, Gangmumei (2002). *JADONANG- A Mystic Naga Rebel*. Imphal: By Author.
- Kamei, Gangmumei (2002). *Tribal land system: The case of the Rongmei in Ethnicity and social change*. Imphal: By Author.
- Kamei, Pro. Gangmumei (2004). *A History of the Zeliangrong Nagas*. New Delhi and Guwahati: Spectrum Publications.
- Kamson, Chaoba (2011). *The Philosophical Concept of Tingkao Ragwang Chapriak*. Imphal: Tingkao Ragwang Chapriak Phom.
- Mathur, N. (1992). *Religious Ethos of The Angami Naga*. New Delhi: Cosmo Publication.
- McCulloch, William (1859). *Account of the Valley of Munnipore and it's Surrounding Tribes > Accounts of the Zeliangrongs*. Calcutta.
- Mirhu (2009). *A Brief Account of Zeliangrong Nagas*. Dimapur: All Zeliangrong Students' Union (AM&N).
- Newme, Dr. Ramkuiwangbe (2015). *RANI PUI GAIDINLIU RASAM*. Guwahati: Heritage Foundation.

- Newme, Dr. Widonlule (2019). Tingwang Hingde. Guwahati: Zeliangrong Heraka Association, Northeast India.
- Newme, Dr. Widonlule (2022). Heraka Cuistomary Law. Haflong: Zeliangrong Heraka Association, Northeast India.
- Newme, Paurangteutuile (2023). Heraka: Heraleu Samrang. Hangrum: Heraka Moksha Foundation, H.Q.-Hangrum.
- Newme, Pautanzan (1998). (Edited) Zeliangrong Heraka Me Leu. Haflong: Regional Zeliangrong Heraka Association, Assam.
- Newme, Ramkuiwangbe (2009). (Edited) Heraka Me Leu. Haflong: Zeliangrong Heraka Association, NEI.
- Sawian, Bijoya (2018). The Main Ceremonies of the Khasi. Guwahati: Vivekanand Kendra Institute of Culture. ISBN 978-93-83079-16-2.
- Thong, Joseph S. (2022). Head Hunters Culture (Historic Culture of Nagas). Tseminyu: JOS Compilation and Translation Chamber, Tseminyu.
- Verrier, Dr.Elvin (1961). Nagaland. Shillong: Published By P. Dutta for the Research Department, Adviser's Secretariat, Shillong.
- Yonuo, Asoso. (1974). The Rising Nagas- A Historical and Political Study. Delhi: Vivek Publishing House.
- Zeliang, Dr. Tasile N. (2011). NDA RACHAM-Sat Khat (volume – 1). Guwahati: Asom Prakaashan Bharati.
- Zeliang, Dr. Tasile N. (2012). Glimpses From the Life of Rani Gaidinliu. Guwahati: Heritage Foundation.
- Zeliang, Dr. Tasile N. (2017). Liangmai Lui. Guwahati: Vidya Bharoti Purbottor Kshetra, Asom Prakashon Bhaarti.
- Zeliang, N. Chamthiu (2000). Culture Conflict in Naga Society. Dimapur: Zeliangrong Heraka Association.
- Zeliang, N.C. (1998). Zeliangrong Heraka Preacher Handbook. Dimapur: Zeliangrong Heraka Council, Nagaland.
- Zeliang, Thunbui (2005). HAIPOU JADONANG. Guwahati: Heritage Foundation.

- अग्रवाल, पुरुषोत्तम (1995). संस्कृति: वर्चस्व और प्रतिरोध. नयी दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन. प्रथम संस्करण.
- अनुशब्द ,डॉ. (2017). (सं) - पूर्वोत्तर भारत का जनजातीय साहित्य. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. ISBN: 978-93-5229-657-6
- उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव (1963). लोक साहित्य की भूमिका. नयी दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
- उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव (1987). लोक संस्कृति की भूमिका. वाराणसी.
- उपाध्याय, सूर्यनारायण. दीक्षित, कृष्ण कान्त. मानक विशाल हिंदी शब्दकोष. नई दिल्ली. कमल प्रकाशन.
- कुमार, प्रो. ब्रज बिहारी (1979). पाइते लोक कथाएँ. कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्.
- खुब्बे, ज़किएनी (2010). नागा त्योहार. कोहिमा: हिंदी अनुभाग, विद्यालयी शिक्षा निदेशालय, नागालैंड सरकार.
- गुप्ता, रमणिका (2018). (सं) – पूर्वोत्तर का आदिवासी स्वर. लेख 'नागा इतिहास की खोज और पुनर्चना' – नैचुरियाजो चुचा. (अनु.) रमणिका गुप्ता. दिल्ली: अनन्य प्रकाशन.
- गुप्ता, रमणिका (2018). (सं) – पूर्वोत्तर: आदिवासी सृजन स्वर. दिल्ली: अनन्य प्रकाशन. ISBN: 978-93-87145-65-8.
- दिनकर, रामधारी सिंह (1962). संस्कृति के चार अध्याय . इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.
- देवी, डॉ. उमा (2021). पूर्वोत्तर भारत का सामाजिक-आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन. डिब्रूगढ़: क्रिएटिव डिजाइन. ISBN- 978-81-952976-6-5.
- धर्मराज (2004). जागता पूर्वांचल- एक आह्वान. गुवाहाटी: हेरिटेज फाउंडेशन.
- परमार, वीरेन्द्र (2021). नागालैंड: लोकजीवन और संस्कृति. नई दिल्ली: मित्तल पब्लिकेशन.
- पाठक, एस.के. (2009). (सं) - ज्ञान गंगा भाग- एक (ग्यारहवीं कक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक). कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा.
- पाठक, एस.के. (2010). (सं) - ज्ञान गंगा भाग- दो (बारहवीं कक्षा के लिए पाठ्य पुस्तक). कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्, कोहिमा.
- फिलिप, डॉ.बी.पी. (2014). (सं) - नागा लोक कथाएं. कोहिमा: नागालैंड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कोहिमा.
- मल्ल, जगदम्बा (2014). स्वतंत्रता सेनानी- रानी गाइदिन्यू. गुवाहाटी: हेरिटेज फाउंडेशन. ISBN 13: 978-93-82326-11-3.

मल्ल, जगदम्बा (2016). नारी अग्रदूत- रानी गाइदिन्यू. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. ISBN 978-81-237-7815-5.

मल्ल, जगदम्बा (2018). हेपाऊ जादोनांग. नई दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. ISBN 978-81-237-8749-7.

मुर्मू, भागवत ठाकुर (1982). संताली लोक कथाएँ. कोहिमा: नागालैंड भाषा परिषद्.

यादव, डॉ. वीरेन्द्र सिंह (2012). (सं.)- लोक साहित्य एवं लोक संस्कृति: परम्परा की प्रासंगिकता एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य. नयी दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन. प्रथम संस्करण. ISSN- 978-81-8455-398-7.

सांगानेरिया, सांवरमल (2010). अरुणोदय की धरती पर. गुवाहाटी: हेरिटेज फाउंडेशन.

सिंह, आलोक (2021). पूर्वोत्तर भारत : लोक और समाज. दिल्ली: सर्व भाषा ट्रस्ट. ISBN978-93-90502-18-9.

पत्रिका:

Brahma, Amarendra (August 2020). Heritage Explorer (Independence Day Special Issue), Revitalisation of Indigenous Faith in Northeast Bharat. Guwahati: Heritage Foundation. ISSN: 2581-9313.

Brahma, Amarendra (August 2021). Heritage Explorer (Independence Day Special Issue), My Village My Family. Guwahati: Heritage Foundation. ISSN: 2581-9313.

Dijinbou, Ab. ALIUH NAIH PAWAN- Annual Magazine: Liangmai Foundation. (December- 2021, Vol. 3). Pajeng Luira Npeng Phenjiu Kadenbo. 21-26.

Newmai, Dr. Hunibou. ALIUH NAIH PAWAN- Annual Magazine: Liangmai Foundation. (December- 2021, Vol. 3). Liangmai Chengh. 1-13.

Singh, Dr. R.K. (August-2018). Heritage Explorer. (vol. xvii, No. 8). Traditional livelihood system among the Chakhesang Tribe of Nagaland. Guwahati: Heritage Foundation. ISSN: 2581-9313.

क्षत्री, प्रेम कुमार (सितम्बर, 2019). नागांचल (सतरहवाँ अंक). कोहिमा: नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, कोहिमा.

फिलिप, डॉ. बी. पी. (जून, 2016). पूर्वोत्तर भारती दर्पण. अंक-6. कोहिमा: नागालैंड राष्ट्रभाषा समिति, कोहिमा. ISSN : 2347-6931.

वेब ओपेक:

360, India (2020). History Revisited: The Romance of Etiben and Jina- A Folktale of Ao Tribes.

<https://india360.theindianadventure.com/2020/05/15/history-revisited-the-romance-of-etiben-and-jina-a-folk-tale-of-ao-tribes/>

Angami Tribes, Religion of Angami, Angami Culture and Occupation.

<https://www.indianmirror.com/tribes/angamitribe.html>

Ao Nagas.

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Ao_Naga

Bhalerao, A.K., Kumar, Bagish (2016). Agricultural Folk Songs of Nagaland. Umiam: Indian Council of Agricultural Research (e-publication).

https://icarzcu3.gov.in/book_publications/6-Nagaland_Song.pdf.

Bower, Ursula Graham (1940-1942). Haiguing – Zeme Folktale..

<https://nagajournal.com/haiguing-zeme-folktale/>

Chakhesang Naga.

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Chakhesang_Naga

Chang (By National Informatics Centre, Govt. of India. 2023).

<https://tuensang.nic.in/chang>

Chukhapa, K.. The Pochury Naga Tribe: A History of their migration and Tribe formation.

<https://ijcrt.org>

Head Hunting Society of Nagaland.

https://webindia1232.com>nagaland>people>naga_society2.

Imchasenla- Reading the Ao Naga Folksongs: Rewriting the Custom of Head Taking.

https://ntm.org.in/download/ttvol/volume10-12/Art_6.pdf

Kamei, Budha (2015). Zeliangrong : Social Structure.

<http://indpeadia.com/ind/index.php/Zeliangrong: Social structure>

Kamei, Budha (2015). Zeliangrong : Social Structure.

<http://indpeadia.com/ind/index.php/Zeliangrong: Social structure>

Khiamniungan People

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Khiamniungan_people

Liangmai Foundation.

<http://www.youtube.com/@LiangmaiFoundation>.

Lotha Naga – Wikipedia.

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Lotha_Naga

Nbung, Azanbo (2020). A Movie of Naga Folktales- Pepui Tenu (A Story of Step Son).

<http://www.youtube.com/@Azanbofilms>.

Pamei, Kendy (20-Jun-2017). Khangchui-Liuchui: Traditional Institution of Liangmai, Part-1. <http://e-pao.net/epSubPageExtractor>.

Phom Naga- Wikipedia.

https://en.m.wikipedia.org/wiki/Phom_Naga

Rengma Naga- Wikipedia.

https://en.m.wikipedia.org/Rengma_Naga

Riamei, Dr. Gaikhamsin (2018). Social Structure of Zeliangrong Society, part-1.

<https://rongmeiencyclopedia.wordpress.com/2018/08/03/social-structure-of-zeliangrong-society/>

Temsu, Robin. Traditional Ao Naga Socio-Cultural History.

https://www.academia.edu/11510733/TRADITIONAL_AO_NAGA_SOCIO_CULTURAL_HISTORY

The Last Head Hunters of Nagaland.

<https://www.atlasofhumanity.com>

Wouters, Jelle J.P.. The making of tribes: The Chang and Chakhesang Nagas.

<https://journals.sagepub.com>

Yimkhyung Naga- Wikipedia.

https://en.m.wikipedia.org/Yimkhyung_Naga

Zeliang Naga Tribes.

https://www.indianetzone.com/51/zeliang_naga.htm